ओ३म्

आर्य जगत्

का

ऋषि निर्वाण (दीपावली) विशेषांक

७ नवम्बर १९६१—दीपावली २०१८

२९ अक्तूबर व ५, १२ नवम्बर के ४३-४४-४५ सम्मिलित अंक वर्ष २१

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ वेद ॥

प्रभु का प्यारा कौन ? क्या धन के भण्डार से भरा हुआ ? या चक्रवर्ती सम्राट् प्रभु प्रेम का प्रसाद पाता है ? क्या विद्या में सर्वत्र प्रसिद्धि पाने वाला या बल शक्ति से सारी धरती प्रकम्पित करने वाला प्रभु के आशीर्वाद को पा लेता है ? नहीं सर्वथा नहीं। ये चीजें चाहे जीवन को भौतिक सुखों से चाहे भर दें पर प्रभु के प्रेम को पाने के लिए तो कुछ और ही चाहिये। वेद का सन्देश है कि प्रभु प्रेम के मधुर प्रसाद को पाने के लिए दो बातें चाहिएं।

पहिला गुण यह हो कि ऐसा व्यक्ति केवल अपने लिए न जीवे। अपने ही स्वार्थ, सुख के संसार में ही रमण न करता रहे। अपितु उसका जीवन दूसरों के लिए हो। परोपकार वृत्ति उस की निष्ठा बन जाये। दूसरा गुण यह हो कि निरन्तर वह सब को अपने आचार, विचार, व्यवहार से जीवन ज्योति देता रहे। उसका सब कुछ जगमगाने वाला होना चाहिए परोपकार और प्रकाश के दोनों गुण होवें। आज दीवाली पर हम श्री रामचन्द्र जी और ऋषि दयानन्द के जीवन की भान्ति वेद के इन दोनों सन्देशों को जीवन में धारण करें। यही सच्ची दीवाली है।

—सम्पादक

द्वार खोल दो



प्रति वर्ष दीपमाला आ कर अपना मौन किंतु जीवन से भरा हुआ दिव्य सन्देश दे जाती है। आर्यसमाज के लिये तो इस का बड़ा महत्व है। आज के दिन उस के प्रवर्तक ने अपना शरीर, जीवन बलिदान कर दिया था। धर्म के परोपकारमय यज्ञ में अपने सर्वस्व की पूर्णाहुति डाल दी थी। आज के दिन पर हम भी अपने जीवन में सन्देश सुनें। प्रेरणा ले सकें। दीक्षा शिक्षा प्राप्त कर सकें। उस देव ने तो अपने जीवन को जगमगाने वाला प्रदीप बना कर सबको प्रदीप्त किया। अनेक जीवन दीपों को जगा दिया। सर्वत्र दीपमाला कर के आज के दिन सर्वमेध कर दिया। वह तो अपना अमर सन्देश दे गये अब हमारा कर्तव्य है कि उसे प्रसारित प्रचारित करें।

वह सन्देश क्या है ? आज के दिन अजमेर के भवन में सर्वमेध करने वाले दीवाली के देवता दयानन्द ने अपने शिष्यों को कहा था कि मेरे पीछे आ जाओ। द्वार खोल दो। इन दोनों वाक्यों में सब कुछ कह दिया। भाव यह था कि आर्यो। वेद के प्यारो ! जिस वेदप्रचार का पवित्र कार्य मैं कर रहा था। उसी मार्ग पर चलते रहना। वेद मार्ग से विचलित मत होना। आर्य समाज के सब के लिए द्वार खोल दो। आर्य धर्म सब केलिए हैं। वेद का सब को समान रूप से सन्देश देना है। ऊंचनीच, छोटा बड़ा, कालागोरा, नर नारी, बालक बूढ़ा, देशी विदेशी सब को अपनाना है। आओ ! दीपमाला के इस दिव्य सन्देश को फैलाएं।

—त्रिलोकचन्द्र

आर्य जनता के लिए परम आवश्यक संदेश



(संदेशदाता श्री आनन्द स्वामी सरस्वती जी महाराज)



दीपमाला के दिन हरेक आर्य समाजीको एकांत में बैठकर यह विचार करना चाहिए कि आज ७७ वर्ष हो गये जब जगत गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने प्रभु की पवित्र वाणी वेद के विचारों के प्रचार के लिये अपना बलिदान दे दिया था। महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना वेद प्रचार के लिए की थी। क्या हमने वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाया है ! या वेद को सर्वथा भुला दिया। आर्य समाज की भिन्न २ संस्थाओं में पहले वेद और वेदानुकूल ग्रन्थों की जो थोड़ी बहुत शिक्षा दी जाती थी अब वह भी बंद हो चुकी है। वेद प्रचार कराने वाली संस्थाओं की वेद प्रचार परीक्षाओं की सम

राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत दयानन्द

(प्रिं. सूर्यभानु जी एम. ए. दयानन्द कालिज जालन्धर)

किसी भी सामाजिक समुदाय की सुरक्षा, आत्म सम्मान तथा आर्थिक एवं नैतिक प्रगति के लिये उस में सामूहिक चेतना का बने रहना अनिवार्य है। देश के नर नारियों के मन में विद्यमान रहने वाली यह सामूहिक चेतना ही देश को राष्ट्र का रूप प्रदान करती है। इस की अनुपस्थिति में जातियां अपनी स्वतन्त्रता, सुख और समृद्धि से शीघ्र ही हाथ धो बैठती हैं। मध्य युग में भारत में ज्यों ही इस सामूहिक चेतना का ह्रास हुआ, देश शताब्दियों के लिये दासता और दरिद्रता की दल-दल में फंस गया। नायक अथवा नेता कहलाने के वही पुरुष-रत्न अधिकारी हैं, जो राष्ट्रीय-चेतना को बनाने में सहायक हों। हमारे राष्ट्र-निर्माताओं में स्वामी दयानन्द जी महाराज का विशेष स्थान है। उनका संवेदन-शील हृदय अकिंचिन भारतीयों की राजनैतिक विवशताओं के प्रति सदैव जागरूक था। उन्होंने सर्व-प्रथम विदेशी सुराज्य की अपेक्षा स्वराज्य की श्रेष्ठता को समझा था। अंग्रेजों द्वारा चलाई गई राज्य पद्धति और व्यवस्था में कितने भी गुण हों, तो भी वह पद्धति स्वराज्य का स्थान लेने में असमर्थ है। इस प्रकार की स्पष्ट धारणा को लेकर स्वामी जी कार्य क्षेत्र में उतरे थे।

केवल इतना ही नहीं, स्वराज्य की कल्पना तब तक अधूरी है, जब तक विचारों में आदान प्रदान के लिये देश की एक सुनिश्चित और परिष्कृत अपनी भाषा नहीं होती। भारत जैसे विविध-भाषी देश में एक-भाषा की आवश्यकता को दयानन्द भलि-भांति समझते थे। इस के लिये उन्होंने हिंदी को आर्य भाषा का नाम दिया। हिन्दी की उन्नति और विकास के लिये वे यथोचित प्रयत्न करते रहे। खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात एक भाषा की आवश्यकता को न समझने के कारण हमने अपने लिये इस प्रकार की भयंकर समस्याएं पैदा कर ली हैं, जिन का समाधान दिन प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है।

फिर, केवल स्वराज्य तथा भाषा की एकता-मात्र से सच्ची राष्ट्रीयता का उदय नहीं होता। ये दोनों तो बाहर की चीजें हैं। राष्ट्रीय एकता का वास्तविक स्रोत तो आन्तरिक अथवा मनोवैज्ञानिक एकता है—वह एकता जो समाज के सामूहिक मन

निधियां लगभग खाली हो चुकी हैं। वेद प्रचार करने वाले साधु संत महात्माओं और उपदेशकों की संख्या भी कम हो रही है। माया का जाल इतना प्रबल हो गया है कि धन कमाने के अतिरिक्त और कोई बात सूझती ही नहीं। अतः आज विचार कीजिए कि मेरा कर्तव्य क्या है, प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य को देखे और निश्चय करें कि मैं वेद प्रचार के लिए क्या कर सकता हूं? और अपने इस निश्चय से सभा को सूचित करने का कष्ट करें।

ने युगों के प्रयत्नों के पश्चात अचेतन रूप में निर्माण की थी—वह एकता जो हमारी पुरानी परम्परा है—जो हमारी जीवन-शैली का प्रकटीकरण है—और जिसे जन-साधारण संस्कृति के नाम से पुकारते हैं। ऋषि दयानन्द संस्कृति की एकता के पक्षपाती थे। उनका शुद्धि का आंदोलन इसी का प्रतीक था। अतः उन्होंने संस्कृति और धर्म-प्रचार को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाया था। स्वामी जी ने राजनैतिक कार्य-क्रम की आंशिक अवहेलना इसीलिये की थी, क्योंकि संस्कृति के बिना राजनीति का निश्चित स्वरूप नहीं बनता। जब तक हमें अपने पूर्वजों के प्रति आस्था और श्रद्धा नहीं होती, जब तक हम अपनी परम्पराओं के गुण-दोष को नहीं समझते, तब तक स्वतन्त्र होते हुए भी हम परतन्त्र हैं। जब तक हमारे मन में अपने अतीत के प्रति गौरव का भाव नहीं, हम मानसिक तौर पर पराधीन हो हैं।

फिर, अतीत भी ऐसा जिसकी उज्ज्वलता में किंचितमात्र सन्देह नहीं, जो प्राणी की मूल समस्याओं का हल पेश करने में सर्वथा सफल है, जिस का आध्यात्मिक सन्देश दुःखी मानव का त्राण करने की क्षमता रखता है। स्वामी जी सर्व विद्याओं और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं—सभी का मूल वेद को मानते थे। उनके निकट हमारी सांस्कृतिक एकता का आधार वेद ही थे। उन्हीं की सहायता से राष्ट्र में सच्चा आत्म-विश्वास उत्पन्न हो सकता है।

परन्तु हम स्वामी जी के उपदेशों को भुला चुके हैं। अपनी परम्पराओं की चेतना हमारे मस्तिष्क से मिटती जा रही है और इस का परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्र होकर भी हम परतन्त्र रहे। अपने सनातन दृष्टिकोण से संसार को देखने की हम में क्षमता नहीं। हम अंधे होकर विज्ञान का अनुकरण कर रहे हैं और इस बात को सोचने का यत्न ही नहीं करते कि विज्ञान की बढ़ती हुई प्रगति का हमारी परम्पराओं के साथ कहां मेल है। हम ने कितने ऐसे विद्वान पैदा किये जो पश्चिमी दर्शन और साहित्य को वेद की कसौटी पर परखते हैं? कितने साहित्य के समालोचक गेटे और शैक्सपीयर की समालोचना शुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से करते हैं। क्या हम में ऐसे विचारक मौजूद हैं, जो आधुनिक मनोविज्ञान का अध्ययन योगदर्शन के सूत्रों को समझ लेने के पश्चात करते हैं? क्या हमारे समाज-सुधार के कार्य-क्रम मनु और दयानन्द के आदेशों का विरोध नहीं करते? और क्या हमारी नवीन चिकित्सा पद्धति में आयुर्वेद से लाभ उठाने का यत्न किया गया है? कुछ अपवाद तो हो सकते हैं, परन्तु साधारण तौर पर हम आंखें मूंद कर पश्चिम की नकल किये जा रहे हैं। यही हमारी मानसिक दासता है। यही शुद्ध राष्ट्रीय चेतना के मार्ग में एक मात्र रुकावट है। हमें अपने अतीत का पता ही नहीं, फिर उस पर गौरव करने का तो प्रश्न ही नहीं बनता।

ऋषि दयानन्द ने हमें अतीत से प्रेम करना सिखाया, वेद के स्वाध्याय का उपदेश दिया, नेत्र हीन राष्ट्र को नेत्र दिये, सच्ची राष्ट्रीय-चेतना के विकास के लिये पुरातन संस्कृति को फिर से जीवित करने का यत्न किया। और इसीलिये वे राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत हैं।

हम क्या करें ?

श्री सन्तोषराज जी हैडमास्टर, दयानन्द नार्मल स्कूल, जालन्धर

आज हम सुनते हैं कि आर्य समाज शिथिल हो रहा है, आर्य समाजी ढीले पड़ गए हैं, वह पहले का सा उत्साह और धर्म प्रेम नहीं रहा। सभी ऐसा कहते सुने जाते हैं। हम आर्यसमाजी स्वयं एक दूसरे के साथ बात करते हुए ऐसे ही शब्द मुंह से बोलते हैं, दूसरों का तो कहना ही क्या। कभी-कभी मैं भी ऐसा ही सोचने लग जाता हूं। परन्तु जब कभी इधर उधर से कुछ विशेष आंदोलन, विशेष उत्साह विशेष प्रेरणा, अथवा विशेष यत्न होता देखने को मिलता है तो जान में जान आ जाता है।

बाहर की गहमागहमी से जब कभी समय मिलता है तो सोचता हूं कि हमारी यह अवस्था क्यों आई। समय का प्रभाव ही कुछ ऐसा है, जीवन की कदरें (मूल्य) ही बदल गई हैं दिन चर्या बदल गई है रहन सहन बदल गया है, जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया है, अंग्रेज ने अपने दो सौ साल के शासन काल में कुछ ऐसा मीठा जहर पिलाया है कि हम अपनी चेतना खो बैठे हैं, अपनी सभ्यता और लक्ष्य को भुला बैठे हैं, अन्दर का संवार खो कर बाहर के आडम्बर से वशीभूत हो रहे हैं, नहीं हो चुके हैं। जीवन की आवश्यकताएं कुछ ऐसी बढ़ा ली गई हैं कि उन की पूर्ति में ही सारा दिन लगे रहते हैं, रात भी दौड़ धूप में ही व्यतीत होती है। रात के एक बजे तक नगरों में चहल पहल के और क्या अर्थ है ?) आठों पहर इस शरीर की सेवा में ही लगे रहते हैं। जब ऐसी अवस्था हो तो हम किसी दूसरे के भले की क्या सोच सकते हैं, धर्म की क्या सोच सकते हैं आत्मोन्नति की क्या सोच सकते हैं ?

परन्तु हम आर्यों को तो ऐसा नहीं करना चाहिये था। आर्य तो भगवान दयानन्द का भक्त है, उस ने तो ऋषि के कार्य को आगे बढ़ाना है, उस ने तो हिंदू धर्म, हिंदू संस्कृति, हिन्दू सभ्यता की रक्षा करनी है और इ . के द्वारा प्राणी मात्र की सेवा करनी है। इतना महान कार्य ! कितना ऊंचा आदर्श ! परन्तु यह सब कहने मात्र से तो नहीं हो सकता, उद्यमेनहि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः, इस के लिए यत्न करना होगा। हम जिस अवस्था में भी हों, जिस काम में भी हों अध्यापक हों, दुकानदार हों, कारखानादार हों, हर अवस्था में अपना अपना काम करते हुए भी अपने आप को वैदिक धर्म के लिये उपयोगी बना सकते हैं। यदि अपने इर्दगिर्द बसने वाले प्राणियों की ही सेवा कर पाएं तो भी हम अपने जीवन को धन्य मान सकते हैं। यह सब कुछ हो सकता है, केवल मन का झुकाव इधर होना चाहिये, कुछ शुभ प्रेरणा होनी चाहिए और कुछ त्याग की भावना होनी चाहिए।

हम प्रातः और सायं भ्रमण के लिये निकलते हैं, हमारे साथ चार पांच की मित्र मण्डली भी होती है। इधर उधर की व्यर्थ बातें न की जाएं, किसी की निंदा चुगली से बचा जाये और वैदिक धर्म तथा आर्य सिद्धांतों पर बातचीत होती जाये

तो कितना सुन्दर हो। सैर की सैर और धर्म चर्चा से धर्म लाभ अपने लिये अपनी मित्र मण्डली केलिये प्राप्त हो सकता है। प्रातः स्मरणीय महात्मा हंसराजजी तथा पूज्य ला० मेहरचंदजी सरीखे महानुभाव इन भ्रमणों में ही युवकों के अन्दर, आर्य धर्म में अनुराग, सादगी और उच्च विचार भर दिया करते थे।

यदि कुछ समय निकाल सकते हो तो अपनी योग्यता से लाभ दूसरों को इस प्रकार भी दे सकते हो किसी मुहल्ले के बच्चों और युवकों को संध्या सिखाएं, उन में सुन्दर सामाजिक नैतिक धार्मिक पुस्तकें पढ़ने की रुचि पैदा करें उन्हें सिनेमा जाने तथा चौसर आदि खेलने से रोकें और पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण से उत्पन्न होने वाली बुराइयों से बचा लें। मेरे एक विद्यार्थी श्री हरचन्दी लाल शर्मा एम० ए० देहली में हैं, अध्यापक है। आठ वर्ष ही हुए होंगे जब कि मैट्रिक जे० वी० थे। इस समय वह स्वयं एम० ए० बन चुके हैं, अपने दो साथियों को बी० ए० तक उठा दिया है। अपनी धर्मपत्नी को भी मैट्रिक पास करवा लिया है। याद रहे यह देवी गुड़गांवां के पिछड़े इलाके से है। यह तो हुई उनकी अपनी निजी सेवा। वे अपने गली मुहल्ले में भी पूजे जाते हैं। इर्दगिर्द के बच्चों को प्रातः एकत्र कर लेते हैं और किसी खाली स्थानपर व्यायाम कराते हैं। उन्हें साफ सुथरा रहने, मीठा बोलने और एक दूसरे के काम आने की शिक्षा देते हैं। सायं को फिर बैठक होती है। सभी बच्चे सन्ध्या करते हैं भजन बोलते हैं और फिर अपनी दिन चर्या सुनाते हैं। इन्होंने अपने इर्दगिर्द एक सुन्दर आर्य वातावरण पैदा कर रखा है। बच्चों के संरक्षक उस नवयुवक का आदर करते हैं और अपने बच्चों पर गर्व करते हैं। श्री हरचन्दी लाल यह सब कुछ कर पाए हैं केवल शुभ प्रेरणा से और कुछ त्याग से।

यदि हम धनाढ्य हों तो अपने धन से भी बहुत सेवा कर सकते हैं। वैसे मैं मानता हूं कि दान धन की अधिकता पर निर्भर नहीं होता यह तो मन की वृत्ति पर आश्रित है। त्याग की भावना हो तो प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ अवश्य दे सकता है। फारसीमें एक कहावत है जिसके अर्थ हैं कि 'धनवान होना धन पर निर्भर है।' हां यदि धन हो इस से हम दूसरों की सेवा कर सकते हैं। इस सेवा कार्य के साथ-साथ अपना धन्धा भी चल सकता है उस में कोई कमी नहीं आ सकती। हम धर्म सम्बन्धी छोटे छोटे ट्रैक्ट (पुस्तिकाएं) छपवा कर हजारों की संख्या में मुफ्त बांट सकते हैं बांटने में यदि समय लगता हो तो यह काम आर्य समाज के द्वारा हो सकता है। प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र आर्य जगत है वह पत्र प्रति सप्ताह आर्य समाज के सदस्यों अपने गली मुहल्ले के लोगों को बांटा जा सकता है। सत्यार्थ प्रकाश की कुछ प्रतियां यथा शक्ति मुफ्त बांटी जा सकती हैं। किसी विद्वान को घर पर बुला कर वेद कथा करवाई जा सकती है। अपने मित्र पड़ोसी और हम स्वयं इस से धर्म लाभ पा सकते हैं।

यदि धन अधिक खर्च कर सकते हो तो कुछ निर्धन विद्यार्थियों की शिक्षा पर खर्च किया जाए,

विधवाओं को मासिक सहायता दी जाए। यदि कोई आर्य परिवार दुःख में ग्रस्त है तो उस के स्वामी को दुकान खोलने, कारोबार जारी करने के लिए कुछ रुपया ऋण के रूप में दिया जाए जब उसका कारोबार चल निकले वह लौटा देगा। मैंने पश्चिमी पंजाब में आर्य समाजी भाइयों का सामाजिक जीवन देखा है। कितना सुन्दर था! जन्म लेना और दिन पूरे हो जाने पर मर जाना इस शरीर का धर्म है। वहां जब कोई किसी व्यक्ति की मौत हो जाती थी बिरादरी के लोग इकट्ठे हो जाते थे। विधवा को ढाढ़स देते और सभी परिवार अपनी शक्ति और उस परिवार की हैसियत के अनुसार धन देते और कुछ रुपया उस विधवा के गुजारा के लिए इकट्ठा कर देते थे। यदि उसका लड़का दसवीं में पढ़ता था तो उसे टाईप राईटिंग सिखा कर नौकर हो जाने तक उस की सहायता करते या उस को टीचर ट्रेनिंग दिला कर अध्यापक बनने में मदद देते। लाहौर में मैंने दयानन्द नार्मल स्कूल के कई ऐसे लड़कों को अपना कोर्स पूरा करने में मदद दी। यदि उस विधवा की कन्या वर प्राप्त हो तो सभी साथ होकर उस का विवाह सम्पन्न करा देते। यह बात तो आज तक भी उन लोगों में है। उधर से आए हुए आर्य लोग धनाढय होने पर भी अब भी अपने इलाके की लड़की ही लेना चाहेंगे। चाहे वह गरीब घर से हो, परस्पर सहायता और प्रेम है। तब वहां आर्य समाज जीता जागता था।

यदि हममें कोई सुयोग्य डाक्टर है तो शिष्टता का व्यवहार कम से कम तो वह कर सकता है। इस से ऊपर गरीब लोगों को मशवरा मुफ्त दिया जा सकता है और आगे बढ़ सकते हो तो गरीब रोगी को दवाई भी मुफ्त दी जा सकती है। फीस देने और दवाई की कीमत देने के लिए धनी मानी लोग मौजूद हैं।

यदि हम में सुयोग्य लेखक मौजूद हैं तो वे लेखनी से सेवा कर सकते हैं। धर्म दिन चर्या, सामाजिक जीवन, धर्म चर्चा और आर्य सिद्धांतों जैसे अनेक विषयों पर छोटे-छोटे लेख लिख कर दैनिक पत्रों, साप्ताहिक पत्रों और मासिक पत्रिकाओं में दिए जाएं। इससे हमारे जैसे अनेक व्यक्ति मार्ग दर्शन पा सकते हैं। धर्म वीर पं० लेखराम जी मरते समय कह गए थे कि लिखने का काम आर्य समाज में बन्द नहीं होना चाहिए। यह साधन बहुमूल्य है।

हम आर्य समाजी किसी न किसी आर्यसमाज के सभासद आवश्यक होंगे। परन्तु हमें दृढ़ता से यह भी निश्चय कर लेना होगा कि हम साप्ताहिक सत्संग में बिना नागा के पहुंचेंगे। इस गहमागहमी के वक्तों में हमारी अनेक संभावनाएं पड़ी आएंगी। इस प्रकार सत्संग में आने से जहां धर्म लाभ होगा आर्यसमाज की बैठकों की शोभा बढ़ेगी संगठन शक्ति बढ़ेगी और साथ ही एक दूसरे के सुख दुख में भाग ले सकेंगे। मेरे विचार में साप्ताहिक सत्संग में शामिल होना आर्यों का संगठन शक्ति को दृढ़ करने का एकमात्र साधन है।

इस लेख में कुछ एक ऐसे सुझाव देने का साहस किया है जो मेरे विचार में हम सब प्रत्येक आर्य नर-नारी अपने जीवन में कर सकते हैं। इस में व्यक्तिगत हानि भी नहीं और समष्टि का कल्याण अवश्य है। आओ आज के पुण्य दिवस पर अपना लेखा जोखा करें और ऋषि के मरण से जीवन पाएं।

महर्षि दयानन्द क्या थे ?

(ले० श्री वेदीराम जी शर्मा एम० ए० प्रो० डी० ए० वी० कालेज जालन्धर)



ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्या के विशद् विश्राम थे।
धर्मधारी धीर योगी, सर्व-सद्गुण धाम थे॥

कार्तिकीय अन्धकार पूर्ण अमावस्या को वह दिव्य दयानन्द हमें अकेला छोड़ चला गया इस अमावस्या का अन्धकार वर्ष की अन्य सभी अमावस्याओं में सघनतम होता है। शूद्रक कवि ने क्या सुन्दर भाव प्रकट किए हैं—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि, वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुष सेवेव दृष्टिर्विफलतां गता॥

'अंधियारी अंगों पर पुत-सी गई है, आकाश अंजन-सा बरसा रहा है, दृष्टि शक्ति इस प्रकार निष्फल-बेकार हो गई है जिस प्रकार असज्जन की सेवा व्यर्थ जाती है।'

ऐसी घनी अन्धियारी रात्रि के इस गहन अन्धकार को प्रकाश में परिणत करने के हेतु चारों ओर दीपमालाएं की जा रही थी। राजमहल से लेकर रंक कुटीर सभी नववधु के शृंगार समान अपूर्व आभा से देदीप्यमान दिखाई पड़ रही थीं। धनियों के बहुमूल्य कांचमय प्रकाशोपकरणों (झाड़-फानूस आदि) से लेकर गरीबों के मिट्टी के दीपकों की कृत्रिम ज्योति भी प्रकृति के प्रगाढ़ान्धकार-से स्पर्धा करने का यत्न-सा कर रही प्रतीत होती थी। वैभवपूर्ण महापुरुष धनिकों के सुसज्जित भवन नाना व्यञ्जनों और विविध मिष्ठान्नों की सरस सुगन्ध से परिपूर्ण हैं तो निर्धनों की झोंपड़ियों में नंगे या चिथड़ों में लिपटे बच्चे धन रूप धान की खीलों से ही खिलखिला रहे थे।

ऐसे अपूर्व वातावरण में ऐसी ही गहन अंधेरी महा अमावस्या की एक सायंकाल विक्रमी सम्वत् १९४० तदनुसार ३० अक्तूबर सन् १८८३ ई० मंगलवार ६ बजे आर्यसमाज के संस्थापक आचार्य महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज की उच्च आत्मा इस नश्वर शरीर का परित्याग कर प्रभु का अमृतानन्द प्राप्त कर इस लोक को प्रकाशमान बना, ज्ञान पुंज से भरपूर कर, पारलौकिक जीवन की ओर प्रयाण कर गई। वेदों का वह सूर्य, शांति का वह सोम, दर्शन का वह निष्णात दार्शनिक संसार को अपनी ज्ञान गंगा का अपूर्व स्रोत दर्शा कर चला गया।

आज हम उनकी स्मृति में इतना ही कह सकते हैं कि दयानन्द ने अपने इस थोड़े से कार्यकाल में जो कार्य किया संसार के इतिहास में वह अपने ढंग की एक अपूर्व ही घटना रहेगी। वह जगदुद्धारक, सार्वभौम, धर्मोपदेशक, सद्विद्याप्रचारक, परोपकारक संन्यासी का रूप थे।

ऐसे सार्वभौम धर्मोपदेशक दयानन्द, भला 'स्वर्गादपि गरीयसी' जन्मभूमि के ऋणों से स्वशरीर धारण और उसके अन्त तक से स्वदेह पोषण रूप उपकार को कैसे भूल सकते थे ? महर्षि दयानन्द इस देश के सर्वप्रथम मुक्ति प्रदाता

थे। कई महाशय शायद विदेशीय वस्त्र त्याग के आन्दोलन का आरम्भ बंगभंग से समझते हैं और इसे गांधी युग की विशेषता मानते हैं किन्तु यदि वे ऐतिहासिक अन्वेषण करें तो ज्ञात होगा कि जिस समय अभी विदेशी वस्त्र वर्जन का कहीं नाम भी न था उस समय इस दूरदर्शी ऋषि ने अपने अनुपम ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में विदेशी वर्जन का शब्द उच्च घोष से घोषित कर जनता तक पहुंचा था और उसी का परिणाम था कि उन्हीं से प्रेरित स्वनाम धन्य महात्मा हंसराज जी, ला० साईंदास जी, श्री पं० गुरुदत्त जी आदि नेतागण स्वदेशी वस्त्र धारण का व्रत ले चुके थे।

वृद्ध भारत को पुनः प्राचीन गौरव पर स्थापित करने का जो भागीरथ प्रयत्न शिक्षा प्रचारक समाज सुधारक देवगिरा (संस्कृत) उद्धारक, राष्ट्रभाषा प्रचारक, छूतछात विनाशक, जगत गुरु दयानन्द ने किया उसे इतिहास कभी भुला न सकेगा। इसीलिए किसी कवि ने कहा है कि—

दयानन्द क्या थे ?
ब्रह्मचारी ब्रह्मविद्या के विशद विश्राम थे।
धर्मधारी धीर योगी, सर्व सद्गुण धाम थे॥
कर्मवीरों में प्रतापी, पर निरे निष्काम थे।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध उनके नाम थे॥

"प्रणाम"

(रचयिता श्री 'शरद' बी एम० ए० पानीपत)

ओ तुङ्ग हिमालय शृङ्ग तुल्य उज्ज्वल महान्
गम्भीर परम पावन् चरित्र गंगा समान
ओ ब्रह्मचर्य साकार, दिव्य जीवन अनूप
पाखंड दम्भ के लिए उग्र विद्रोह रूप
ओ पयोदधि से शांत, बिजलियों से विह्वल
ओ प्रखर तेज में सूर्य, चन्द्रमा से शीतल
निर्भीक तपस्वि, परिव्राट, कौपीन धारि,
आचार्य ऋषिवर दयानन्द, ओ ब्रह्म चारि
ओ जग हित निज जीवन अर्पित करने वाले
विष पी श्री कर भी पर पीड़ा हरने वाले
ओ तेजस्वि, ओ क्रांत दर्शि, ओ सत्य काम
युग पुरुष हमारा युग युग तक तुम को प्रणाम

हमारे ऋषि मुनियों की प्रार्थनाएं

(आचार्य श्री नरदेव जी शास्त्री, वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय
ज्वालापुर (हरिद्वार)

पहली प्रार्थना—१ —'न नास्तिकः'—

हमारे कुल में कोई नास्तिक न हो। यदि कोई नास्तिक हुआ तो मानो वह कुल ही डूब गया।

नास्तिक वह जो ईश्वर को न माने।

नास्तिक वह जो प्रत्येक कार्य में कहे कि इसमें क्या रखा है, उस में क्या रखा है। नास्तिक वह जो अस्ति बुद्धि न रखे। इस अस्ति-बुद्धि के बिना जीवन निरर्थक सा हो जाता है। ईश्वर को ढूंढना हो तो मनुष्यमें अस्ति-बुद्धि अवश्य चाहिए। यदि अस्ति-बुद्धि न हो तो वह ढूंढेगा ही किस को। प्रत्येक बात में, शुभ-कार्य में अस्ति बुद्धि हो और प्रयत्नशील बना रहे तो वह कार्य बन पाता है।

भगवान मनु लिखते हैं—

नास्तिको वेदनिंदकः

नास्तिक वह है जो वेद निंदक है। ठीक है। जो वेद को न मानेगा वह ज्ञान-विज्ञान के तत्वों को कैसे जान पाएगा। वेद ईश्वर प्रेरित ज्ञान है जो वेद के तत्वों को जानेगा वही सच्चा आस्तिक बन सकता है। ईश्वर है और है वह वेदों में जितना स्पष्ट है और किसी धर्मग्रन्थ में उतना स्पष्ट नहीं—स्पष्ट कहा है वेद ने ईश्वर के विषय में कि 'न द्वितीय न तृतीयः, न चतुर्थः, न पंचमः, न षष्ठः, न सप्तमः, न अष्टमः न नवमः अर्थात् ईश्वर एक ही एक है। न दूसरा, न तीसरा, न चौथा, न पांचवां, न छठा, न सातवां, न आठवां, न नववां है अर्थात ईश्वर अपने जैसा अकेला है, अपने जैसा आप है, उस की उपमा कोई नहीं—प्रत्येक आर्य को आस्तिक भाव रखना चाहिए। जो आस्तिक नहीं वह आर्य ही नहीं है न आर्य हो सकता है।

उपनिषद् (कठ) कहती है कि अस्तीत्येवोपलब्धव्यः

वह है अवश्य है ऐसा समझकर ही ईश्वर की खोज में लगना चाहिए। यदि पहिले ही नास्ति बुद्धि रहेगा तो मनुष्य उस के जानने के लिए प्रयत्नशील ही क्यों होगा—इस लिए मनुष्य में अस्ति बुद्धि अवश्य रहनी चाहिए।

दूसरी प्रार्थना—२ 'न च अश्रद्धानः'—

ऋषियों की दूसरी प्रार्थना यह रहा करती थी कि हम में कोई 'अश्रद्धान' श्रद्धा रहित कोई न हो। श्रद्धा के बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता। श्रद्धापूर्वक ही समिधा का चयन करे, श्रद्धापूर्वक ही अग्नि-प्रणयन अथवा अग्नि प्रज्वलन करे, श्रद्धा पूर्वक ही आहुति डाले तब यज्ञ-याग सफल होते हैं—

श्रद्धा भगस्य मूर्धनि

समस्त भग अर्थात छह प्रकार के ऐश्वर्यों का मूल श्रद्धा है। ऐश्वर्यों के सिर श्रद्धा है।

प्राचीनकाल में प्रातःकाल उठकर श्रद्धापूर्वक,

"भग एव भगवानस्तु"

का प्रातः सूक्त पाठ किया जाता था, एक एक देवता का नाम ले लेकर आवाहन किया जाता था। कितनी अपूर्व श्रद्धा थी हमारे पूर्वज आर्यों में।

"श्रद्धां प्रातर्हवामहे" प्रातः होते ही श्रद्धा को बुलाते थे, सायं श्रद्धा को बुलाते थे—तब श्रद्धा आती थी और आर्यों के समस्त कार्य सिद्ध हो जाते थे।

वह आर्य नहीं जिस में श्रद्धा नहीं।

तीसरी प्रार्थना—३ "न च कृतघ्नः"

हमारे पूर्वजों की तीसरी प्रार्थना यह रहती थी कि हमारे कुल में कोई कृतघ्न न हो। कृतघ्न पुरुष का न तो यह लोक है, न परलोक। नीतिकारों का कथन है कि मरने के पश्चात काकादि क्रव्याद पक्षी, पशु भी उस कृतघ्न के मांस को नहीं खाते साधारण नीति भी कहती है कि—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च।
यश्च विश्वास घातकः॥
ते नरा नरकं यान्ति।
यावच्चन्द्र दिवाकरौ॥

मित्रद्रोही, कृतघ्न, विश्वासघाती मनुष्य जब तक पृथ्वी पर चन्द्र, सूर्य, तारा, नक्षत्रगण रहेंगे तब तक नरक में पड़े रहेंगे। इसलिए आर्य पुरुष को कभी किसी से कृतघ्नता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। आर्य पुरुष किये हुए उपकारों को कभी नहीं भूलेगा। उपकार के बदले में उपकार ही करेगा। वह पुरुष नराधम है जो उपकारी पुरुष के साथ अपकार करे। वह नीच है।

चौथी प्रार्थना ४ 'न चानूचानमानी'

हमारे पूर्वज यह भी प्रार्थना करते रहते थे कि हम में कोई "अनूचानमानी" अर्थात घमण्डी न हो। विद्या का दुरभिमान न रखे। एक ओर पलड़े में संसार के समस्त सद्गुण रखे जाएं और दूसरी ओर पलड़े में अभिमान रूपी दुर्गुण रखा जाये तो अभिमान सद्गुणों को हरा देगा।

महात्मा विदुर कह गये हैं कि—

सर्वमेवाभिमानः

अभिमान समस्त गुणों का नाशक है।

अभिमान कई प्रकार के हैं—

(१) कुलाभिमान—मैं बड़े कुल का हूं, उच्चकुल में उत्पन्न हुआ हूं मेरे जैसा कौन है ऐसा समझ कर मान कर दूसरों का तिरस्कार करे तो उस का पतन अवश्यम्भावी है।

(२) विद्याभिमान—मैं बड़ा पंडित हूं, मेरे जैसा और कौन विद्वान् होगा सब मूर्ख हैं—ऐसा समझ कर दूसरों के साथ बरतने वाला भी मूर्ख ही है।

इसी प्रकार—

मैं धनी हूं, मैं बली हूं, मैं ऐश्वर्यशाली हूं इस प्रकार के बहुत से दुराभिमान हैं इन सब से बचे रहना चाहिए। सच्चा आर्य सदैव नम्र ही रहेगा।

पांचवीं प्रार्थना ५—"न परोपतापी"

पूर्वजों की प्रार्थना रहती थी हमारे कुल में कोई ऐसी कुसन्तान उत्पन्न न हो जिस से दूसरों को किसी प्रकार का दुःख, क्लेश, पीड़ा पहुंचे। हमारे यहां कोई ऐसी दुष्ट सन्तान न हो जो परद्रव्यापहारी, परोपकारी अर्थात दूसरे का अपकार करने वाला, दूसरों को व्यर्थ की हानि पहुंचाने वाला न हो। वह आर्य क्या? जिस से दूसरों को कष्ट पहुंचे। जिस के बर्ताव से उसके अड़ोसी-पड़ोसी सदा भय संत्रस्त रहें। आर्य वही है जो केवल अपने ही सुख का ध्यान न रखे अपितु सब के सुख दुःख का ध्यान रखे सब को सुख पहुंचावे आर्य वही है जो दूसरे के दुःख

को देख कर मन में प्रसन्न न हो। आर्य वही है जो शान्त हो, दयालु हो, दाता हो, विनम्र हो। जिस के व्यवहार से सब प्रसन्न हों। आर्य पुरुष यत्नशील रहें कि मनसा वाचा, कर्मणा ऐसा कोई कार्य न करें जिस से किसी को क्लेश पहुंचे या किसी के सुख में बाधा पहुंचे।

आर्य वह है जो स्वयं किसी से द्वेषभाव नहीं रखता। सब से सत्य और प्रेम का व्यवहार रखता है। मधुर बोलता है, मधुर व्यवहार रखता है।

छठी प्रार्थना है—"न ब्रह्मबन्धुः न च देवानां प्रियः"—और सब से बड़ी आवश्यक प्रार्थना रहती थी हमारे कुल में कोई ब्रह्म बन्धु उत्पन्न न हो। ब्रह्मबन्धु उसे कहते हैं जो वेद न पढ़े, वेद में परिश्रम न करे वेदों से नितान्त अनभिज्ञ रहता हो। प्राचीन समय में विद्वान लोग उस पुरुष को ब्रह्मबन्धु कहते थे विनोद में जिस को वेद नहीं आता था। कोई पूछे कि क्या वह पुरुष वेद जानता है ? तो यदि वह नहीं जानता है तो विनोद में कह देते थे कि नहीं वे तो ब्रह्म बन्धु हैं। ब्रह्म कहते हैं वेद को, बन्धु कहते हैं भाई को, वे तो ब्रह्म बन्धु हैं वे वेद पढ़ कर क्या करेंगे। हमारे ऋषि कहते थे कि यदि हमारे कुल में कोई वेद न पढ़ा या न पढ़ सका तो हमारा कुल ब्रह्मबन्धुओं का कुल हो जाएगा। 'वेदमनचूष्य ब्रह्मबन्धु रिवभवति'—

इसी प्रकार हमारे पूर्वजों ने उस पुरुष का नाम 'देवानाप्रियः'— यह देवों के प्रिय हैं, अर्थात मूर्ख हैं। इस का पढ़ने-लिखने से क्या मतलब !

आर्य वह हैं—जिन के घर में वेदादि धर्म ग्रंथ हैं।

आर्य वह हैं—जो घर में केवल वेदादि ग्रंथ नहीं रखते अपितु उन को पढ़ते भी रहते हैं।

आर्य वह हैं—जो स्वाध्यायशील हैं।

जिस समय में

हमारे पूर्वजों के पूर्वजों के प्रति प्राचीन पूर्वज घरों में बैठ कर उपर्युक्त छह प्रकार की प्रार्थनाएं करते थे, न केवल प्रार्थनाएं ही करते थे अपितु मनवचन कर्मों से इस बात में सावधान रहते थे

कि हम में

कोई नास्तिक न हों।

हम में कोई श्रद्धाहीन न हों।

हम में कोई कृतघ्न न हों।

हम में कोई परपीड़क न हों।

हम में कोई दुरभिमानी न हो।

हम में कोई ब्रह्मबन्धु न हों।

हम में—कोई 'देवाना प्रियः" देवताओं के प्यारे अर्थात मूर्ख न हों।

तब के आर्यों का जीवन, तब के आर्यो की महिमा को किस प्रकार वर्णन करें। उन का जीवन कितना पवित्र रहता होगा, उनकी महिमा कितनी बड़ी रहती होगी ऐसे आर्यों का समाज और आर्यों के परस्पर सम्बन्ध कितने दृढ़ रहते होंगे।

वर्तमान आर्यों के घर नास्तिकों के, श्रद्धा विहीनों के घर बनते जा रहे हैं। आर्यों की सन्तान और वह नास्तिक बने वह कितनी आश्चर्य की बात है ! आर्यों की सन्तान और वह वेदज्ञान शून्य रहे कितनी विचित्र बात है। आर्यपरिवार अनार्यता की लपेटों में आ जाये यह कितने दुःख, सन्ताप और परिक्लेश की बात है। कितने परिताप

की बात है कि आर्यपरिवार स्वशिक्षा को तिलांजलि देकर अपनी सन्तान को विदेशी विधर्मी शिक्षा-दीक्षा में लालित पालित पोषित-परिवर्द्धित कर रहे हैं ?

करुणानिधान भगवान से प्रार्थना है कि उस की कृपा से आर्य लोग स्वरूप को समझने में तत्पर होकर आर्य गौरव को सुरक्षित रखने के लिए सचेष्ट हो सकें— आज हम, इस अवसर पर यही बार-बार प्रार्थना कर रहे हैं—

ऐसे आर्यों के पुरोहित भी राष्ट्रहित के हेतु सदैव जागते रहते थे। ऐसे आर्यों के ब्राह्मण भी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण होते थे। ऐसे आर्यों के क्षत्रिय भी क्षात्रतेजः सम्पन्न वीर होते थे जो समस्त संसार में खुली कबड्डी खेल आया करते थे। ऐसे आर्यों के वैश्य भी सर्वैश्वर्य्य संपन्न रहते थे—

अब तो

ब्राह्मणों में वह तेज है।
क्षत्रियों में वह ओज है।
वैश्यो में वह विभूति है

क्योंकि

आर्यों ने

"वेद भगवन् तुम हमारे पूर्वजों के प्राण हो।
रूपमें पुस्तक के हो, पर तत्व में भगवान् हो"—
इस भावपूर्ण गीत का गाना ही छोड़ दिया है।

योगी हमें जगा गया

(रचयिता श्री राजेन्द्र जी एम०ए०बी०टी० आर्य स्कूल धुरी

चादर तान पड़े थे सोये योगी हमें जगा गया।
विष पी कर हम से प्यारा अमृत हमें पिला गया॥
पोपों ने घर घर भारत में लूट खसूट मचाई थी।
गोरों की काली करतूतों से जाति घबराई थी॥
जन सेवा में जीवन दे कर जीना हमें सिखा गया
जड़ पूजाकी जड़पर किसने डटकर मारा वेद कुल्हाड़ा।
यमुना की लहरों से पूछो मेरी गंगा की धारा॥
सन्ध्या-यज्ञ हवन की स्वामी सुन्दर रीत चला गया॥
सन्तान सनातन ऋषियोंकी हम रामकृष्णके प्यारे हैं।
फूकेंगे पापों की लङ्का हम अग्नि के अंगारे हैं॥
पर हित में मरने वाला वह, जीवन भेद बता गया।
विष पीकर हम से प्यारा अमृत हमें पिला गया॥

हम आगे कैसे बढ़ें !

(श्री रलाराम जी एम० ए०, एम० एल० ए० प्रिंसीपल दयानन्द कालेज होश्यारपुर)

****

आर्यसमाज ने वैदिक धर्म रक्षा का काम शुरू किया। कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति इस की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। स्वामी दयानन्द के खण्डनात्मक प्रहारों से अन्य मतानुयायी तो इतने घबरा उठे कि इन्होंने दयानन्द को शांति भंग करने वाला तथा साम्प्रदायिक कलह पैदा करने वाला कहना आरम्भ कर दिया। सत्यार्थ प्रकाश को जब्त करने का आंदोलन ज़ोर से आरम्भ कर दिया। सिन्ध में तो उसे जब्त करके ही दिखा दिया। वे लोग इस बात को तो भूल गये कि पहल किस की थी। दयानन्द ने विरोधियों को उनके ही शस्त्रों से परास्त कर दिया। हिंदु में अपने धर्म, अपनी संस्कृति तथा सभ्यता की ओर हीनता तथा हेयता का भाव पैदा हो चुका था। यह भाव मानव का तथा जातियों का परम शत्रु है। महापुरुष समय समय पर आकर व्यक्तियों तथा जातियों को इस हीनता की विनाशक दलदल से निकालते हैं। दयानन्द की प्रतिभाशाली सिंहध्वनी ने हमें इस गर्त से निकाल कर आत्म-सम्मान की उच्च भूमि पर बिठा दिया। दयानन्द ने हमें अपनी संस्कृति तथा अपनी सभ्यता के लिए गौरव का भाव पैदा कर दिया। मानव की अवनति तथा उन्नति, उत्कर्ष तथा अपकर्ष सब उसके विचारों में छिपा है। 'क्रतुमयोऽयं पुरुषः, यथा क्रतुरस्मिन् लोके भवति, तथेतः प्रेत्य भवति'। अर्थात् (पुरुष विचारों का अनुवाद है। जैसे पुरुष के विचार होते हैं वैसा ही वह बनता है।) पुरुष विचारों का अनुवाद है। विचार निम्नकोटी के हों तो सारा सामाजिक जीवन निरुत्साह, भय तथा दीनता का एक सजीव चित्र बन जाता है। विचार उच्च, उज्ज्वल तथा सबल और शिव हों तो मानव प्रतिभाशाली तथा गौरव-युक्त बन जाता है। निर्धनता इतनी भयानक वस्तु नहीं जितनी मानसिक दुर्बलता तथा हृदयदौर्बल्य तथा क्षुद्रता है। अनिवार्य निर्धनता कोई भ भूषण नहीं। स्वैच्छिक निर्धनता तो मानव महत्व की एक आवश्यक शर्त है। स्वामी दयानन्द ने पराधीनता की जड़ काट दी जब उसने प्रत्येक भारतवासी को भारतीयता तथा भारत का युक्तियुक्त भक्त बना दिया। दयानन्द ने खूब समझा कि परम्परीण तर्क तथा विज्ञान के सामने अंध परम्परा-आधारित श्रद्धा तथा अयुक्तिसंगत व विज्ञान-विरोधी मंतव्य हमारे पुनरुत्थान में सहायक न होंगे। दयानन्द के युक्ति प्रहारों के सामने विरोधियों के आक्षेप फीके तथा विफल हो गये। स्वामी दयानन्द इसी कारण भारतीय राष्ट्रीयता का सच्चा जन्मदाता और आर्यसमाज इस का पोषक बना।

परन्तु वह मंज़िल तो गुज़र गई। भारत के हृदय ने आर्यसमाज को अपना लिया है। आर्यसमाज का सामाजिक सुधार का प्रोग्राम वाद-विवाद की मंज़िल से परे जाकर अब तो आचरण की स्टेज पर है। अब प्रश्न यह है कि आर्यसमाज आगे कैसे बढ़े। आगे बढ़ नहीं रहा, यह तो निर्विवाद है। हिंदी भाषा की आर्यसमाज ने अद्भुत सेवा की। इसे प्रोत्साहित किया। परन्तु आर्यसमाज की नींव

तो संस्कृत पर रखी गई है ।

वेद आर्य समाज की आत्मा है। वेद संस्कृति का स्रोत है। प्रत्येक धर्म के दो रूप होते हैं । एक उच्च रूप जिसे विद्वान स्वीकार करके उसे अपने विचारों द्वारा आगे फैलाते हैं। वे उस धर्म की विचारधारा को दार्शनिक रूप दे कर संसार के मस्तिष्क को जीतने का प्रयत्न करते हैं। इस ओर तो आर्य समाज का पग अब उठ ही नहीं रहा । आर्य सामाजिक क्षेत्र में संस्कृत के विद्वानों का तो नितांत अभाव होता जा रहा है। उस के दो कारण हैं, एक तो यह कि आर्य समाजी अब स्वाध्यायी नहीं रहे। विद्वान या तो अच्छी किताबें लिख कर कुछ आय पैदा करें या आर्य समाज उन विद्वानों का यथोचित प्रबन्ध करे। इन दोनों बातोंका अभाव है। आर्य सामाजिक विचार की पुस्तकें बिकती नहीं अतः उन्हें कोई क्यों लिखे। आर्य समाज की आर्थिक क्षमता तो कुछ भजनीक तथा उपदेशक रखकर ही समाप्त हो जाती है। विद्वान या तो आदर से रहता है या अच्छे वेतन से।

हम में इन दोनों बातों का अभाव है। विद्वानों के विचार पर ताला लगाना भी दयानन्दकी रिपोर्ट के विरुद्ध है। हमारा नियम है सदैव सत्याग्रही होना। अनुसंधान बिना प्रतिबन्ध के हो । परन्तु चाहें हम वह जो हमारे सिद्धांत पर प्रायः पूरा उतरे। शतप्रतिशत सहमति मानव संसार में असंभव है। इसकी आशा रखना और मांग करना चांद के लिये चीखना मात्र है। विद्वानों को आकर्षित करो या विद्वान पैदा करो। अन्यथा आर्य समाज एक मरुस्थल की नदी की भांति कुछ दूर और जाकर तिरोभूत हो जावेगा। वेद के जो हिंदी में भाष्य छपे हैं वे इस योग्यता के नहीं कि विद्वानों को संतुष्ट कर सकें। हमें इस से आँखें मूंदनी नहीं चाहिएं और वेद के विद्वान प्राप्त भाष्य के बिना आर्य समाज का भविष्य ही क्या है? क्या आर्य समाज सचेत और जागृत हो कर इस ओर पग उठाएंगे? आर्य समाज में विद्वानों, विशेषतया संस्कृत के विद्वानों की कमी प्रतिदिन बढ़ रही है। आर्यसमाज के आर्थिक साधन सुकड़ गये हैं।

धर्म्म सदाचार का नाम है। सच्चरित्र धर्म्म का स्तम्भ है, तथा उस की नींव है 'आचारः प्रथमो धर्म्मः' आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म्म है। 'आचार-हीनम न पुनन्ति वेदाः' (मनु) आचारहीन को वेद पाठ भी पवित्र नहीं बनता। 'वृतेन हि भवत्यार्यो न धनेन न तु विद्यया' चरित्र से आर्य बनता है, न धनसे और न विद्या से। धर्म्म का यह उच्च स्वरूप वैदिक संस्कृति की विशेष देन है हमारे नैतिक मापदण्ड बहुत घटिया हो गए हैं, अब आर्य समाजी एक निपुण दुनियादार माना जाता है। दुनियादारी में निपुण होना तो कोई बुरी बात है ही नहीं। 'योगः कर्मसु कौशलं' (गीता) 'योग कर्म में कुशलता का नाम है'। आरम्भ में आर्यसमाजी भाई आर्य प्रतीयता को उच्च नैतिक स्तर पर रखते थे। परन्तु अब हम इस स्तर से बहुत नीचे खिसक गये हैं। सत्य परायणता जो कभी हमारा विशेष लक्षण थी अब विरली ही अनुभवमें आती है। धार्मिक क्षेत्र में आर्यसमाज दूसरी संस्थाओं तथा सभाओं से अब भी ऊंचा है। परन्तु अपने पहले स्तर से कहीं नीचे है। एक आर्यसमाजी जो अपना नैतिक स्तर ऊंचा रखता है बीसियों उपदेशकों के तुल्य है। उच्च नैतिक जीवन को अपना कर ही अब हम आर्य समाज को आगे ले जा सकते हैं।

ओ३म्

आरोग्य मन्दिर

(यमुना नगर जिला अम्बाला की ओर से प्रकाशित पुस्तक)

आरोग्य प्रकाश

(स्वास्थ्य रक्षा और सुधार विज्ञान के विषय में)

पूज्य महात्मा आनंद स्वामी जी महाराज का पत्र :—

वजीर बाग
आर्य समाज श्रीनगर
१७-८-६१

मेरे प्यारे श्री कविराज राम सिंह जी आनंद रहो !

आप का लिखा आरोग्य प्रकाश मुझे मिला। बड़े सुन्दर ढंग से आपने इस में युवकों और युवतियों का पथ प्रदर्शन किया है और बड़े सुन्दर और सरल उपाय शरीर तथा मनको स्वस्थ रखने के लिये बताये हैं। योग आसनों के चित्र दे कर पुस्तक को और भी अधिक रोचक तथा लाभदायक बना दिया है।

ऐसी पुस्तक का प्रत्येक परिवार में पाठ होना चाहिये।

भवदीय —
आनंद स्वामी सरस्वती

Central Health minister Dr. Karmarker's Letter about Arogya Perkash.

D. O No F. 26—3 61 H- M.
Minister of Health,
New Delhi.
May 13 1961

Dear Kaviraj Ram Singh Vaid,

I have glanced through your book Arogya Perkash."

I find that you have dealt with the topics on diet exercise and other aspects of Health in a simple lucid manner. I hope your book will prove help full to all those who seek to keep good health

Yours sincerely
Sd. D P. Karmarker

Kaviraj Ram Singh Vaid
Vaid Vachaspati Ayurvaid Acharya
P/P Arogya mandir
Yamuna Nagar (Ambala)

सब कुछ ही थे आप हमारे

श्री वेद प्रकाश जी बी० ए० प्रभाकर लुधियाना

आज सुनहला पुण्य दिवस वह,
मर्त्य भूमि की जब तज काया।
दयानन्द ने सदानन्द प्रभु
प्रियतम में अस्तित्व मिलाया ॥
नहीं हाय उफ तोबा चिंता
तन विह्वल मन सौख्य समाया।
जिसे निरख गुरु दत्त गुणी ने
ईश चरण में शीश झुकाया ॥
अमा गमों को हर छिन भर में
रमे राम के रोम रोम में।
रोम रोम में रमें रहें जो
दिन कर धरती नखत सोम में ॥
जगन्नियन्ता विश्व विनायक
बसे वज्रतम, मृदुल मोम में।
प्रणव नाम जिन का शुचि सुन्दर
सबल चमत्कृत अमर ओ३म में ॥
ऋषिवर की गुण गरिमा गाथा सुना सके बस स्वयं भारती
विज्ञ दयानिधि योगी रक्षक क्रांति शान्ति मय विश्व आरती
उद्धारक शुभ वरद सुधारक-शुचि वाणी कटु कष्ट टारती
वेद भाष्य सत्यार्थ ज्योति से अघ चादर दो टूक फारती
विधवाओं के कष्ट निवारक हीन अपाहिज परम सहारे
विश्व तरी के नामी नाविक हिंदी गौमाता रखवारे
यज्ञ हवन उपवीत मनुजता नियम यमों के हामी प्यारे
क्या कुछ थे हम कहें कहां तक सब कुछ ही थे आप हमारे

मेला फल्गू पर आर्यसमाज के प्रचार की धूम

(अमरसिंह आर्य सेवक प्रचारक अध्यक्ष अम्बाला करनाल मण्डल)



आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा (अम्बाला करनाल मण्डल) की ओर से विशाल प्रचार कैम्प लगा कर सामवेद यज्ञ और प्रचार का विशेष आयोजन किया गया।

इस वर्ष आश्विन सोमावती अमावस्या पर होने वाले फल्गू मेला पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से आर्यसमाज मंदिर फरल में विशाल प्रचार कैम्प लगा कर २ से ९ अक्तूबर तक सामवेद परायण यज्ञ किया गया।

३० सितम्बर से प्रचार कैम्प लगा दिया गया था। २ तारीख से सामवेद यज्ञ आरंभ हुआ। प्रातः ६ बजे से ८॥ बजे तक होता था जिस में विद्वानों के उपदेश व्याख्यान और प्रभु भक्ति के सुरीले भजन होते थे। हवन यज्ञ के लिये एक विशेष-विशाल वेदी बनाई गई थी। प्रातः ही लोग आर्यसमाज मन्दिर में बहुत श्रद्धा और प्रेम से आर्यसमाज के विचारों को श्रवण करने लिये आ जाते थे। सारे मेले में सामवेद का एकमात्र यही यज्ञ था। यज्ञ का अद्वितीय प्रभाव रहा। ९-१०-६१ को प्रातः ९ बजे इस महान यज्ञ की पूर्णाहुति हुई। जिस में लगभग ६००-६५० स्त्री पुरुषों ने बड़ी श्रद्धा भक्ति के साथ आहुति डाली। यज्ञ के बाद १० बजे से १२ बजे तक विशाल प्रचार कैम्प में खुला प्रचार होता था था जिस में हमारे सभा के अनेक प्रचारक महानुभाव भाग लेते थे।

सन्ध्याकाल में १ बजे से सायं ६ बजे तक निरन्तर भजनों द्वारा प्रचार कार्यक्रम चलता था। रात्रि को भी ८ बजे से १२॥ बजे तक हमारे प्रचारक महानुभावों के सिद्धांत से भरे हुए भजन और इतिहास होते थे जिन को जनता बहुत ही रुचि से सुनती थी। सर्वमेला में इस प्रचार का इतना प्रभाव हुआ कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द की दुन्दभि बज गई। इस के साथ-साथ एक ऊंची श्रेणी का ऋषि लंगर भी लगाया गया था अनेक बहिनों और भाइयों ने भी भोजन बनवाने तथा खिलाने का कार्य किया। प्रति दिन लगभग ३०० आदमी भोजन करते थे। ७ से ९ तक मेले का बहुत जोर रहा इस लिए प्रचार और ऋषि लंगर का कार्य प्रातः काल से आरम्भ होकर रात्रि पर्यंत चलता ही रहा। अनुमान है ७ से ६ ता० प्रातः तक हमारे कैम्प में लगभग १० हजार की उपस्थिति विद्यमान रहती थी। लगभग ५ हजार लोगों को रात्रि में रहने के लिए स्थान मिलता था। इस आधार पर प्रचार का कार्यक्रम बहुत सफल रहा। इस की सफलता का श्रेय जहां पर हमारे उपदेशकों को है वहां पर श्री बाबू मक्खनलाल जी एडवोकेट करनाल को भी प्राप्त है। उन्होंने इस महान कार्य में अन्न और धन के रूप में भारी योग दिया है। अतः हम उनके आभारी हैं।

सभा की ओर से श्री ठा० दुर्गासिंह आर्य तूफान, श्री कुंवर जगतराम जी, श्री शमशेर कुमार जी, श्री बस्तीराम जी, श्री चौ० सूरतराम जी

ऋषि दयानन्द की हिन्दी सेवा

(ले० प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम० ए० गवर्नमेंट कालेज जोधपुर)

अपने कलकत्ता प्रवास के अवसर पर ऋषि दयानन्द संस्कृत में जनता के समक्ष भाषण दे रहे थे और राजकीय संस्कृत कालेज के पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न उनका बंगाली भाषा में अनुवाद कर सुना रहे थे। ये वही न्यायरत्न महाशय हैं जिन्होंने स्वामी जी की वेद भाष्य प्रणाली पर आक्षेप किये थे और जिनका समाधान करने के लिये स्वामी जी ने 'भ्रान्ति निवारण' नामक पुस्तक लिखी थी। श्रोताओं में संस्कृत कालेज के कुछ विद्यार्थी भी थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि स्वामी जी संस्कृत में जो कुछ कह रहे हैं, न्यायरत्न महाशय उसका उल्टा ही लोगों को सुना रहे हैं। उन्होंने खड़े होकर स्वामी जी को इस के लिये सावधान किया और कहा कि न्यायरत्न महाशय तो दुभाषिये बन कर अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं। इस घटना ने स्वामी जी के मन में यह प्रेरणा उत्पन्न की कि लोगों के समक्ष उपदेश उन्हीं की भाषा में दिया जाना चाहिए

इसी अवसर पर स्वामी जी की भेंट ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन से हुई। सेन महाशय स्वामी जी को हिन्दी में प्रवचन करने तथा समाज में पूरी पोशाक पहन कर आने का परामर्श दिया। इस से पूर्व स्वामी जी केवल कौपीन मात्र ही धारण करते थे। स्वामी जी ने सेन महाशय के इस युक्ति-युक्त परामर्श को स्वीकार किया। परन्तु यह विडम्बना ही है कि जिन सेन महाशय ने स्वामी जी को जनता की भाषा हिन्दी में बोलने के लिये प्रेरित किया वे स्वयं ब्रह्मसमाज की सभाओं में अपनी मातृभाषा बंगला में न बोलकर अंग्रेजी में बोला करते थे।

ऋषि दयानन्द ने अपना सर्वप्रथम हिन्दी व्याख्यान बनारस में दिया और उसके पश्चात वे आजीवन अपनी वाणी और लेख में हिन्दी का ही प्रयोग करते रहे। उनके द्वारा रचित समस्त साहित्य हिन्दी में ही लिखा गया है। वेद भाष्य और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का कुछ अंश संस्कृत में है परन्तु उसका हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत कर दिया गया है। स्वामी जी हिंदी को 'आर्य भाषा' कहा करते थे क्योंकि यह वर्तमान में आर्यों की लोकप्रचलित भाषा है। सर्वप्रथम लाहौर में आर्यसमाज के नियमों और उपनियमों का जब पृथक २ निर्धारण हुआ तो प्रत्येक आर्य समासद के लिए आर्य भाषा हिंदी का ज्ञान अनिवार्य ठहराया गया।

ऋषि दयानन्द द्वारा हिंदी की जो महती सेवा हुई है उस का उल्लेख करते हुए हिंदी साहित्य के

'निडर' श्री पं० गौतमदेव आर्य पुरोहित, श्री जयनारायण जी 'शर्मा' इन के अतिरिक्त और भी इस प्रांत के अनेक प्रचारक महानुभावों ने पधार कर अपना अमूल्य समय प्रचार कार्य में दिया। सभा की ओर से उन सब का धन्यवाद है। सभी प्रचारकों ने विशेष परिश्रम और उत्साह से प्रचार और प्रबन्ध का कार्य किया।

इतिहास के सुप्रसिद्ध लेखक आलोचक प्रवर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है—"पैगम्बरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिचते देख कर स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और सम्वत १९२० से उन्होंने अनेक नगरों में घूम २ कर व्याख्यान देना आरम्भ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर तक प्रचलित साधु हिंदी भाषा में होते थे। स्वामी जी ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' तो हिंदी या आर्य भाषामें प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिंदी दोनों में किए। स्वामी जी के अनुयायी हिंदी को 'आर्यभाषा' कहते थे। स्वामी जी ने संवत १९३२ में आर्यसमाज की स्थापना की और सब आर्यसमाजियों के लिए हिंदी या आर्यभाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। युक्त प्रांत के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्यसमाज के प्रभाव से हिंदी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक सम्पर्क से पंजाब वालों की लिखने पढ़ने की भाषा उर्दू हो रही थी। आज जो पंजाब में हिंदी की चर्चा सुनाई देती है, इन्हीं की बदौलत है।" हिंदी साहित्य का इतिहास २००३ का संशोधित और परिवर्द्धित (संस्करण पृ० ४४५)

हिंदी के एक अन्य विद्वान प्राध्यापक रामदास गौड़ ने स्वामी जी की हिंदी सेवा का यथार्थ मूल्यांकन करते हुये लिखा है—

"जनता के लाभ की दृष्टि से मातृभाषा गुजराती होने पर भी इस दूरदर्शी और विद्वान संन्यासी ने राष्ट्रभाषा हिन्दी का ही प्रचार किया। अपने ग्रन्थ भी हिन्दी में ही लिखें, हिन्दी की उन्नति और प्रचार आर्यसमाज का जिसके प्रवर्तक थे, एक विशेष लक्ष्य बनाया। अकेले इन स्वामी जी ने हिन्दी का जितना उपकार किया, हमारा अनुमान है कि अनेक सुसंगठित संस्थाओं ने भी मिल कर अब तक उतना नहीं कर पाया है।"

(हिन्दी भाषा सार पृ.६२)

स्वामी जी द्वारा रचित हिन्दी ग्रन्थों के अब तक सैकड़ों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। स्वामी जी ने हिन्दी गद्य को सशक्त बनाया और उसके माध्यम से खण्डन के विचार प्रकट कर उसे प्रौढ़ बनाया। स्वामी जी शुद्ध हिन्दी लिखने के पक्षपाती थे। संस्कृत के विद्वान होने के कारण उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य रहता था। उन्होंने 'आत्मा और पुस्तक' आदि शब्दों को संस्कृत के व्याकरण के नियमानुसार पुल्लिग और नपुंसकलिंग में प्रयोग किया है हिन्दी की तरह स्त्रीलिंग में नहीं। संस्कृत की सूक्तियों और लोकोक्तियों तथा मुहाविरों का भी उन्होंने सर्वत्र प्रयोग किया है, "यथा यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहन खरः" जैसे नाग नाथ वैसे सांप नाथ। आदि।

स्वामी जी के अनुकरण पर ही आर्यसमाज के परवर्ती नेताओं ने हिन्दी प्रचार को अपने कार्यक्रम का एक अंग बनाया। फलतः हिन्दी भाषा और साहित्य का जो महान कार्य हुआ उसकी एक पृथक कहानी है। आर्यसमाज ने हिन्दी साहित्य को नाथूराम 'शंकर' जैसे महाकवि प्रदान किये, पं. पद्म सिंह शर्मा जैसे समालोचक और सुदर्शन तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार जैसे कहानी लेखक दिये।

स्व. ए. इन्द्र जी तथा पं. रामगोपाल जी विद्यालंकार जैसे सशक्त पत्रकार भी आर्यसमाज की ही देन है। स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने उर्दू में प्रकाशित होने वाले सद्धर्मप्रचारक पत्र को हिन्दी का बनाया तथा भागलपुर में होने वाले चतुर्थ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की। स्वामी श्रद्धानन्द ने ही अपने द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी में सर्वप्रथम सभी विषयों को हिंदी के माध्यम से पढ़ाने की व्यवस्था की। भूगोल, इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र और जीव विज्ञान भी हिंदी में आज से ६० वर्ष पूर्व ही गुरुकुल में पढ़ाये जाते थे, जब कि किसी को स्वप्न में भी यह ध्यान नहीं था कि हिंदी माध्यम से भी ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है।

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज द्वारा की गई हिंदी सेवाओं का अभी यथार्थ मूल्यांकन नहीं हो सका है। लखनऊ विश्वविद्यालय के एक शोध छात्र ने 'आर्यसमाज की हिंदी सेवा' इस विषय पर अन्वेषण कार्य किया है, परन्तु यह Thesis (प्रबन्ध) अभी तक अप्रकाशित है। क्या कोई सभा या समाज इस के प्रकाशन का उत्तरदायित्व लेगा?

महात्मा आनन्द स्वामी जी का कथाप्रचार कार्यक्रम

६ नवम्बर से १२ तक आर्यसमाज सैक्टर ८ चण्डीगढ़ कथा

१३ से १८ तक आर्यसमाज रीडिंग रोड नईदेहली

१९ नवम्बर साधु आश्रम अलीगढ़

२१ से २६ तक कथा आर्यसमाज किला जालंधर शहर।

धन्यवाद और क्षमायाचना

दीपमाला के इस विशेषांक के लिए जिन मान्य सज्जनों ने अपनी कीमती कृतियां भेजी हैं—उनका हार्दिक धन्यवाद करते हैं। साथ ही कुछ लेख छापने से देर के कारण रह गये हैं। अगामी अंकों में क्रमशः उनसे पूर्ण लाभ उठा सकेंगे।

यह विशेषांक आप के सामने है। हमारा तो कर्तव्य के नाते इसे अधिक से अधिक सुन्दर बनाने में प्रयत्न था। आप की वस्तु आप के हाथों में है। सभा के इस मुख पत्र आर्य जगत की उन्नति के लिए आप ही सब कुछ कर रहे हैं आगे भी आप ने ही करना है। पुनः धन्यवाद।

सम्पादक

पचास हजार रुपये का सात्विक दान

माननीया माता रामरानी जी ने अपने स्वर्गीय पति सेठ श्री मिट्ठन लाल जी बम्बई वाले की पुण्य स्मृति में डी. ए. वी. हायर सैकंडरी स्कूल यूसुफ सराय नई दिल्ली को ५० हजार का सात्विक दान दिया है। गत ता: २२ अक्टूबर रविवार को स्कूल में बड़ा भारी समारोह हुआ जिसमें स्कूल कमेटी के सदस्यों, आर्यसमाजी सज्जनों तथा इलाके की भारी जनता ने माता जी का हार्दिक स्वागत किया। हम इस भारी दान पर माता जी का हार्दिक स्वागत करते हुए प्रिंसीपल ईश्वर दास जी, ला० हंस राज जी, प्रिं० रामदास जी तथा प्रिंसीपल बिशन सहाय जी को बहुत २ बधाई देते हैं। भगवान करे कि आप समाज का यह महान शिक्षा संस्थान कालेज का रूप धारण करे। माता जी का यह दान बड़ा ही प्रशंसनीय तथा आदर्श है—

त्रिलोक चन्द

एक दीया और

(रचयितृ कु० सुरिंद्र 'धीर'
हंसराज महिला कालज जालंधर)

आ गई है दीपमाला
ले आओ दिये,
बनाओ बाती,
जलाओ दीये,
कि जागे प्रकाश,
भागे अंधियारा,
मान हो भंग
मानिनी अमा का,
जो कहती है—
"अब प्रकाश कहां ?
हां सुनो—
भूलना मत,
जलाना एक दीया
मानव के मन में भी,
प्रकाश का केन्द्र वह
भरा है अंधेरे से,
एक दम घटाटोप
प्यारकी खिलारी छोड़
करता है शीत युद्ध,
भूल ही चला है वह
जीवन का आदि राग—
मैं तो को, तू मोको

दीवाली

(लै०—राममूर्ति कालिया, एम. ए. देहली)

विषमताओं का अंधेरा, आ गई खाने दीवाली

प्रेमियो जातीयता के
दल, वर्ग, प्रांतीयता के,
अब तुम्हारा कौनसा मुख ?
क्या कहा ? बतलाओ आली।
विषमताओं का अंधेरा, आ गई खाने दीवाली

अमुक भाषा के रसिक वर,
वेष भूषा के भक्त वर,
क्या न जानी पूर्वजों की
वाणी जो है प्रेम वाली ?
विषमताओं का अंधेरा, आ गई खाने दीवाली

आसेत, हिमाचल पुण्य भू
के निवासी एक हैं हम
कौन कहता है, विलग हैं ?
फोड़ दो सिर, दे जो गाली।
विषमताओं का अंधेरा, आ गई खाने दीवाली

स्वराज्य और सुराज्य के द्रष्टा स्वामी दयानन्द

(श्री पं० सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार एम० ए० एल० टी० डी० बी० कालेज गोरखपुर)

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

स्वामी दयानन्द के जन्मकाल तक लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष में अंग्रेजों का शासन स्थापित हो चुका था। जो प्रदेश बचे थे वहां भी धीरे-धीरे अंग्रेजों की स्थिति दृढ़ हो रही थी। १८५७ई०के बाद तो राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक सभी दृष्टियों से भारत का पतन हो गया था। राजनैतिक पराजय उतनी भयंकर वस्तु नहीं जितनी सांस्कृतिक दृष्टि से पराजित मनोवृत्ति और १८५७ से पहले से ही दूरदर्शी अंग्रेजों ने मानसिक दृष्टि से भी भारतीयों को गुलाम बनाने का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस वस्तु को देखकर स्वामी दयानन्द जी ने सब से पहले 'स्वराज्य' की आवाज उठाई। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा 'गन्दे से गन्दा स्वदेशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से कहीं अच्छा है।' बात यह है कि गन्दा स्वदेशी राज्य चाहे कितनी भी गन्दगी फैलाए, वह मानसिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टि से तो हमें गुलाम नहीं बनायेगा। परन्तु विदेशी राज्य तो अपनी जड़ों को जमाने के लिए राष्ट्र को भाषा संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से गुलाम बनाने का प्रयत्न करेगा और भारतवर्ष में हो भी यही रहा था। श्रीमती बेसेंट ने १९वीं सदी में भारत का जो हाल देखा था वह काफी दर्दनाक था। लोग आस्तिकता और नास्तिकता के बीच भटके जा रहे थे। आधिभौतिकता की बाढ़ के मारे राष्ट्र का जीवन विशृंखलित हो गया था। अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग हक्सले मिल और स्पैंसर के अनुयायी हो रहे थे किन्तु अपने साहित्य का उन्हें बिलकुल ज्ञान न था। वे अपने अतीत से घृणा करते थे अतः भविष्य के विषय में उनका कोई विश्वास न था। वे अंधे होकर अंग्रेजों के तौर तरीकों की नकल कर रहे थे एवं अपने कलाकौशल और शिल्प का विनाश करके अंग्रेजी असबाबों से अपना घर सजा रहे थे। राष्ट्रीय जीवन की गति बताने वाली कोई भी क्रिया उन में दिखाई नहीं देती थी। यह संदिग्ध था कि भारतीय हृदय में कोई धड़का भी शेष है या नहीं, यह थी—भारत की वास्तविक स्थिति।

स्वामी दयानन्द ने इस पतन को देखा। और इस के कारणों को दूर कर स्वराज्य की स्थापना और सुराज्य का निर्माण भी अपने सामने रखा और उन्होंने स्वराज्य की स्थापना का भार श्री श्यामकृष्ण वर्मा को सौंपा। तथा स्वयं राजपूताने के राज्यों में जाकर स्वतन्त्रता की भावना भरने का प्रयत्न किया। देश के मानसिक पतन को रोकने के लिए उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा की योजना बनाई

और यह कार्य उन्होंने अपने दूसरे शिष्य स्वामी श्रद्धानन्द को सौंपा। शिक्षा तथा राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद सब से अधिक आवश्यक बात यह थी कि जनता में आई आत्म-हीनता की भावना कैसे दूर की जाय। और इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की। आप शायद यह लेख पढ़कर यह सोचने लगें कि मैं स्वामी दयानन्द के कार्य-कलाप को तथा कार्य-क्षेत्र को संकुचित कर रहा हूं। पर बात यह नहीं। उनकी विश्व-व्यापिनी दृष्टि में 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्देश्य अपने सामने रखा था। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम समय तक उसी के लिए कार्य किया। परन्तु उसका आरम्भ उन्होंने अपने घर से किया इसीलिए रूढ़ियों और गतानुगतिका में फंसे हुए भारतवासियों की कड़ी निन्दा की और उन्हें बतलाया कि तुम्हारा धर्म पौराणिक संस्कारों की धूलि में छिप गया है। इन संस्कारों की गन्दी पर्तों को तोड़ फैंकों। तुम्हारा सच्चा धर्म वैदिक है। जिस पर आरूढ़ होने से तुम फिर विश्व-विजयी हो सकते हो। और यह बात नहीं कि स्वामी जी के प्रभाव में आकर बहुत से हिन्दुओं ने मूर्तिपूजा छोड़ दी। बहुतों ने अपने घर के देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को तोड़कर बाहर फैंक दिया। श्राद्ध बन्द हो गया। अवतारवाद की समाप्ति हुई। स्वदेशी की भावना आई। स्त्रियों को समानाधिकार मिला और शिक्षा मिली तथा राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। हम स्वराज्य की ओर बढ़े। हिंसात्मक या अहिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रत्येक आर्य-समाजी ने अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की। और यह अत्युक्ति न होगी कि ९०-९५ प्रतिशत आर्य समाजियों ने उस में भाग लिया। स्वामी श्रद्धानन्द लाला लाजपतराय, भगतसिंह, रामप्रसाद बिस्मिल आदि कितने ही नाम गिने जा सकते हैं। इस प्रकार 'स्वराज्य' हुआ। परन्तु स्वराज्य के बाद 'सुराज्य' की आवश्यकता भी स्वामी जी ने अनुभव की थी।

सुराज्य' के लिए उन्होंने व्यक्तिगत की चरित्र उन्नति की ओर ध्यान देने और अपने अन्तःकरण या आत्मा की आवाज के अनुसार चलने को कहा उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के ३वें समुल्लास में आत्मा की आवाज के अनुसार चलने की बात बहुत जोरदार शब्दों में कही है। यह आत्मा की आवाज क्या है? इसे यदि मैं सरल शब्दों में कहूं तो यह मनुष्य का अपने ऊपर अपना बन्धन है। भारतीय भाषा के शब्द शास्त्र का एक-एक शब्द एक-एक भावना का द्योतक है। १९४७ की १५ अगस्त को जब भारत को स्वतन्त्रता मिली। अंग्रेजी पत्रों और व्यक्तियों ने अपने यहां से 'इण्डिपेन्डन्स' की घोषणा की। परन्तु हिन्दी पत्रों ने तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने 'स्वतन्त्रता' या 'स्वाधीनता' की सूचना दी। दोनों में अन्तर है। इण्डिपैन्डेन्स शब्द का अर्थ है 'अनधीनता' अर्थात किसी के अधीन न रहना। इसका अर्थ स्वाधीनता नहीं। स्वाधीनता का तो अंग्रेजी अनुवाद होगा 'सैल्फ-डिपैन्डेन्स' अब अनधीनता और स्वाधीनता पर विचार कीजिए। जो व्यक्ति अनधीन होगा वह उच्छृंखल हो जायेगा। और वह उस दशा में रेल में बिना टिकट के जाना अपना धर्म समझेगा। सार्वजनिक स्थानों को गन्दा करके रोग फैलाएगा, काम के समय आराम करेगा, अनुचित साधनों से

धन कमाकर अपनी भलाई के सामने दूसरों के अनिष्ट की परवाह न करेगा। अनियन्त्रण, अनुशासन हीनता उसको नहीं अखरेगी और परिणामतः अधिकांश व्यक्तियों के ऐसा होने पर देशोद्धार और राष्ट्र निर्माण की योजनाएं समाप्त हो जायंगी। विचारिए आज क्या ऐसा नहीं हो सकता? बांध बन रहे हैं और बनने से पहले टूट जाते हैं, क्यों? दवाएं बन रही हैं पर नकली पदार्थों की मिलावट से वे रोगियों के प्राण ले रही क्यों? घी, दूध, तेल सभी वस्तुओं में मिलावट है। देश स्वराज्य के बाद और भी पतन को जा रहा है यह ऐसा लोगों का अनुमान है। क्यों? क्योंकि हमने स्वराज्य के बाद अनधीनता तो पाई पर स्वाधीनता नहीं स्वामी जी महाराज ने इस 'सुराज्य' को लाने के लिए 'आत्मा की आवाज' 'स्व' बन्धन आवश्यक बतलाया है। ठीक है, आप को चोरी करते हुए, घूस लेते हुए गन्दगी फैलाते हुए किसी दूसरे ने नहीं देखा पर परमात्मा तो देख रहा है। उस से बचने का उपाय है अपनी आत्मा की आवाज सुनो और अनुभव करो कि यह कार्य ठीक नहीं। उस दशा में तुम स्वयं को सुखी और देश को सुराज्य की ओर ले जा सकते हो। इस प्रकार यदि हम राष्ट्र को सुराज्य की ओर ले जाना चाहते हैं तो स्वामी जी की स्वाधीनता का उपदेश हमें हृदयङ्गम करना होगा तभी राष्ट्र जाति एवं विश्व का कल्याण सम्भव है। सचमुच हे स्वामी! तेरा विशाल सिद्धांत हमें तुम्हारे उस विराट रूप का पता देता है जिस के विषय में कवि ने कहा है—

तेरा विराट् यह रूप, कल्पना पट पर
नहीं समाता है।
जितना कुछ कहूं मगर कहने को शेष
बहुत रह जाता है।
लज्जित मेरे विचार, तिलक माला भी
यदि ले आऊं मैं।
किस भांति उठूं इतना ऊपर! अवगुण
कैसे छुपाऊं मैं।
ग्रीवा तक हाथ न जा सकते, उंगलियां
न छू सकती ललाट।
वामन की पूजा किस प्रकार पहुंचे तुम
तक मानव विराट।

दीपावली का शुभ पर्व

सभी आर्य हिंदु नरनारी दीपावली के पर्व को बड़े समारोह के साथ मनाएं इस के साथ आर्यसमाजों और आर्य भाइयों को वेद प्रचार के पुनीत कार्य को सुदृढ़ करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से कम से कम चार आना संग्रह कर आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर के वेद प्रचार कोष में भिजवाकर पुण्य के भागी बनें।

खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य जगत के ग्राहक बनना, बनाना आर्यों का परम कर्तव्य है।

अद्वितीय महापुरुष महर्षि दयानन्द

लेखक—श्री भक्तराम जी (पूर्वी अफ्रीका वाले) जालन्धर



पाखण्डानां विनाशाय वेदानां रक्षणाय च।
धर्म संशोधनार्थाय दयानन्दस्य जीवनम् ॥

निःसन्देह महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज का प्रादुर्भाव कवि के उपयुक्त शब्दों में वर्णित परिस्थितियों के कारण हुआ। महर्षि के आविर्भाव से पूर्व देश, जाति और जो हीन-हीन और मलीन दशा थी उस से कोई व्यक्ति अनभिज्ञ नहीं। उस शोचनीय अवस्था को देख कर ही विक्रमी सम्वत १६२४ के कुम्भ के मेले के अवसर पर एक कुटी बना कर उसके ऊपर 'एक पताका महर्षि ने लगा दी थी जिस पर लिखा था 'पाखण्ड खण्डिनी पताका'। जिस पुनीत उद्देश्य 'सत्य धर्म प्रचार' से उस महा मेले पर पधारे थे वह वैदिक धर्म की घोषणा द्वारा पूर्ण हुआ। वहां उनके अनेक व्याख्यान हुए। उन्होंने बहुत शास्त्रार्थ किये और प्रतिपक्षियों पर विजय प्राप्त की।

कुम्भ पर महर्षि को भारत का एक लघुचित्र देखने को मिला जिस से प्रभावित होकर उन्होंने केवल एक लंगोट रखने का व्रत लिया और ईश्वर चिन्तन से शक्ति बढ़ाने के हेतु घोर तपस्या करने लगे। यहां तक कि बोलना चालना भी बन्द कर बैठे और अपनी कुटी में समय बिताने लगे परन्तु सत्य के पुजारी और धर्म प्रचारक देव दयानन्द को शीघ्रातिशीघ्र मौन व्रत त्यागते ही बना। तत्पश्चात उस महान् व्रती ने जो संसार का काया कल्प कर दिया वह विश्वविदित है।

परम हंस परिव्राजकाचार्य स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज को उस चित्रलिखित पुरुष से उपमा दी जा सकती है जिसे किसी ओर से देखा जावे वह हमारी ओर ही देख रहा होगा। वह सर्वतोमुखी थे। पाखण्ड विनाशक, वेदोद्धारक, धर्मसंशोक, वैदिक सभ्यता तथा वैदिक संस्कृति प्रचारक, आर्य भाषा प्रसारक, कुरीति निवारक अनाथ रक्षक, विधवा सहायक, गोपालक अछूतोद्धारक, नारी सुदशा प्रवर्त्तक, समाज सुधारक, स्वराज्य के सर्वप्रथम आन्दोलक आदि कौन से रूप की झलक उनके जीवन में नहीं मिलती? योग शास्त्र के समाधिपाद सूक्त २१ 'तीव्र संवेगाना मासन्नः' के अनुसार पूर्वजन्म के उत्कट संस्कारों के कारण ही वह अद्वितीय प्रतिभाशाली योगी ईश्वर विश्वास पर अद्भुत कार्य द्वारा संसार को आश्चर्य चकित कर गये। अकेले थे पर करोड़ों से अधिक काम कर गये।

आखिरकार काम कर निकला,
न चाहे पास धेला था।
उसे 'दौलत' की परवाह क्या,
प्रभु जिस का सहेला था॥

अपने आचार्य के किस २ उपकार का वर्णन करूं तो भी कुछ एक का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) लोग वेद के नाम तक से अपरिचित थे। मेरे स्वर्गीय पिता बताते थे कि उनके गुरु जी कहा करते 'स्वा० दयानन्द अमृतसर में व्याख्यान देते समय वेद मन्त्रों का उच्चारण करते थे तो बड़े २ पण्डित बोल उठते कि साधु स्वयं मन्त्र बनाकर वेद का नाम ले रहा है। एक बार ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय से महर्षि ने वेद मांगे तो उन्होंने उपनिषद् प्रस्तुत किये। ऋषि ने जर्मनी से वेद मंगा कर यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण और ऋग्वेद का आधे से कुछ अधिक किया।

(२) भारतवासी अंग्रेजी साहित्य पर मोहित थे परन्तु ऋषिने कहा Back to the vedas अर्थात वेदों की ओर लौटो और संस्कृत साहित्य का अध्ययन कर वेद तक पहुंचने का यत्न करो।

(३) ऋषि सन्तान वैदिक सस्कृति और वैदिक सभ्यता को तिलांजलि देकर 'my dear wife' लिखने में गौरव और 'मेरी प्यारी धर्म पत्नी' में मान हानि समझती थी। हम अंग्रेजी बोलते, लिखते पढ़ते,खातेपीते और पहिनते समय। विदेशी भाषाओं के पढ़ने में हमें जो आनन्द आता था वह आर्य भाषा में नहीं। ऋषि ने हमें आर्य मर्यादाओं का पालन करना सिखाया। गुजराती होते हुए उन्होंने अपने सब ग्रन्थ आर्य (राष्ट्र) भाषा में लिख कर हमारे सम्मुख जातीय भाषा को अपनाने का उदाहरण रखा।

(४) नारी को ढोल, गंवार और पशु की कोटि में माना जाता और पांव की जुती के सदृश समझा जाता था। यहां तक कि स्वा० शंकराचार्य कृत 'प्रश्नोत्तरी' में नारी को नरक का द्वार, मदिरा के समान मोहने वाली, त्याज्य, बन्धन, अमृत के समान होने वाला विष और अविश्वनीया कहा गया है। एक स्थान पर 'त्याज्यं सुखं किम्?' के उत्तर में लिखा है स्त्रियमेव'। 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' कपोल कल्पित श्रुति का प्रमाण देकर देवियों को विद्याधिकार से वंचित रखा जाता था। मातृशक्ति का ऐसा घोर अपमान महर्षि के लिए असह्य था अतः दयावतार दयानन्द का हृदय द्रवीभूत हुआ और उन्होंने नारी पूजा के पक्ष में मनुस्मृति का प्रसिद्ध श्लोक—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः॥

बता कर नारियों का खोया हुआ मान प्राप्त कराया। यजुर्वेद के २६वें अध्याय के दूसरे मन्त्र 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' और 'इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्' श्रौत सूत्रादि से स्त्रियों के वेदाधिकार की पुष्टि की।

(५) बाल विवाह के दुष्परिणाम स्वरूप लाखों विधवाएं विद्यमान थीं। महर्षि बाल विवाह का खण्डन कर और पुनर्विवाह की रीति चला कर विधवाओं के दुःख मिटा गये।

(६) निरक्षर भट्टाचार्य, उर्दू के काइदे से विवाह संस्कार कराने वाले, 'हा! निमन्त्रण' का पाठ करने वाले और भिश्ती, बावर्ची, खर का काम करने वाले अग्रजन्मा ब्राह्मण होने का दम भर रहे थे। महर्षि ने उन्हें जन्माभिमान त्याग कर गुण कर्मों की योग्यता प्राप्त करने के लिए कहा।

अपने पथ प्रदर्शक के अगणित उपकारों के सम्बन्ध में उर्दू के कवि के निम्नलिखित शब्दों में कहना पर्याप्त है—

गिने जायें मुमकिन है सहरा के जर्रे
समुद्र के कतरे फलक के सितारे।

संगठन

(ले०—श्री दीवानचन्द्र जी भूतपूर्व प्रिंसीपल डी० ए० वी० कालिज कानपुर)

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

आज कल राजनीतिक नेता संगठन पर विशेष बल दे रहे हैं। वास्तव में तो इस विषय को स्वाधीनता प्राप्ति के दिन से ही गम्भीर विचार का विषय बनाना चाहिये था। विदेशी राज्य का बड़ा सहारा हमारी फूट ही था। यही उन्हें यहां ले आई, इसी ने उन्हें यहां इतनी देर बिठाये रखा। उन्हें इसे कायम ही रखना तो था ही, इसे बढ़ाने में भी उन्होंने पूरा यत्न किया। विदेशी शासन की समाप्ति पर विदेशी यत्न तो कुछ बन्द हुआ परन्तु हमारे

स्वामी दयानन्द मगर तेरे उपकार
न गिनती में आये कभी हम से सारे॥

धन्य दयानन्द! आपके ऋण से उऋण होने का यही एक ढंग है कि हम ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि पर्यन्त ऋषियों के आपके द्वारा बताये गये वैदिक सिद्धान्तों का पालन करें अन्यथा आपके गुण गाते रहने पर काम विपरीत करना हमें सदा ऋणी बनाये रखेगा।

आओ आर्य भाइयो! ऋषि निर्वाण के मांगलिक प्रसंग पर हम स्वयं आर्य बनकर संसार को आर्य बनाने का व्रत धारण करें और जो कहते हैं वह करके दिखा दें जिस से मेरे कुन्दन जैसे स्वामी का नाम उज्ज्वल हो। व्रत पति परमात्मा हम आर्य समाजियों को इस व्रत के पालन करने का सामर्थ्य दें।

दुर्भाग्य ने हमारा पीछा नहीं छोड़ा। प्रान्त, भाषा जातपात, विश्वास के नाम पर फूट की प्रवृत्तियां बढ़ रही हैं। अभी कल ही प्रधान मन्त्री ने बम्बई में कहा कि इन प्रवृत्तियों के होते हुए भी एक दिन भारत संगठित हो कर रहेगा। आशा बहुत शुभ है, परन्तु इस की पूर्ति के लिए हम में से हरेक को कुछ करना होगा। इस लेख में मैं सामाजिक संगठन के मूल सूत्रों या आधारों पर कुछ कहूंगा। हरेक अपने लिये निश्चय कर सकता है कि इस कार्यक्षेत्र में उस का स्थान कहां है।

मैं आज कल 'वेदादेश' नाम की पुस्तक लिख रहा हूं। इस में जीवन के विविध पहलुओं पर वेद के स्पष्ट आदेश को समझने समझाने का प्रयत्न किया है। वर्तमान लेख उसी पुस्तक का एक अंश है।

समाज मनुष्यों के समुदाय का नाम नहीं, उन मनुष्यों का संगठित होना भी आवश्यक है। ऐसे संगठन का एक अच्छा नमूना मनुष्य के शरीर में मिलता है। शरीर के अंगों की बनावट और उन के काम भिन्न हैं, परन्तु जो कुछ होता है, वह समस्त शरीर के हित में होता है। आंख देखती है कि कोई वस्तु खाने के योग्य है या नहीं इस का काम विशुद्ध परोपकार तो नहीं, जो कुछ खाया जाता है, वह आंख की चमक को भी बढ़ाता है। स्वस्थ समाज में निर्विघ्न अंग अनेक प्रकार की क्रिया करते हैं, परन्तु वह सभी क्रियाएं एक दूसरे से

मिलकर समाज के लिये कल्याणकारी होती हैं। नैतिक दृष्टि से, व्यक्ति कर्त्तव्यों और अधिकारों का समन्वय है। जिस व्यक्ति के कर्त्तव्य हैं, परन्तु अधिकार नहीं, वह दास है ! जिस मनुष्य में अधिकार तो हैं, परन्तु कर्त्तव्य नहीं, वह निष्ठुर शासक है। नैतिक मनुष्य न दास है न ऐसा शासक। स्वस्थ समाज में हरेक को समाज कल्याण के लिये कुछ करना होता है, और हरेक परिणाम के भोगने में शामिल होता है। यह सामाजिक न्याय की मांग है।

ऐसे स्वस्थ समाज के निर्माण के लिये वेद का आदेश है :—

संगच्छध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

(ऋ० १० १९१२)

'एक साथ आगे बढ़ो; संवाद करो, तुम्हारे मन एक ज्ञान वाले हों, जैसा देवलोक में नक्षत्र आदि अपना अपना काम करते आये हैं।'

संगठन की सब से अद्भुत मिसाल स्वयं प्राकृत जगत है। इस का विस्तार हमारी कल्पना से बाहर है, परन्तु इस का कोई भाग ऐसा नहीं जो अन्य भागों से प्रभावित न होता हो और उन्हें प्रभावित न करता हो। इस प्रभाव की मात्रा कितनी ही थोड़ी हो, यह शून्य से सदा अधिक होती है। वेद मन्त्र के दूसरे भाग में प्राकृतिक जगत के इस व्यापक सम्बन्ध को मनुष्य समाज के लिये आदर्श बताया है।

समाज की उन्नति में प्रमुख बात यह है कि हरेक भाग को और उस भाग में हरेक व्यक्ति को आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हो। चलते हुए कोई आगे होगा, कोई पीछे एक स्थान पर एक मनुष्य का पग ही स्थिर हो सकता है। चलने वालों की गति में भी भेद होगा— कोई तेज चलेगा, कोई आहिस्ता, कोई पीछे से आगे निकल जायगा, कोई आगे जाने वाला पीछे हो जायगा। पूर्ण समानता कब्रिस्तान में दीखती है, जीवन में तो भेद होता ही है। आवश्यक यह है कि समाज में कोई भाग इतना न पिछड़ न जाय कि वह यात्रा का अंश ही न रहे। भारत के पतन का एक बड़ा कारण यह रहा है कि ऊंच नीच के विचार ने एक बड़े भाग को एक प्रकार से समाज का अंग बना रहने ही नहीं दिया, मन्दिरों में जाना उनके लिये मना है, दूसरों के साथ रह कर काम करना उनके लिये मना है। जो लोग गंगा में डुबकी लगाने से मोक्ष पाने की आशा कर सकते हैं, उनके लिये यह समझ लेना भी सुगम है कि 'अछूत' को 'हरिजन' कहने से प्रश्न हल हो जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रमुख कठिनाई यही है कि कुछ जातियां बहुत आगे निकल गई हैं और कुछ इतनी पिछड़ी हुई हैं कि प्रगतिशील मानवता का अंश ही नहीं रहीं। प्रत्येक जाति और समस्त मानव जाति के लिये अति आवश्यक काम तो यही है कि सब मिलकर आगे बढ़ें। 'संगच्छध्वं'।

मनुष्यों की प्रकृति में कुछ अंश ऐसे हैं जो उन्हें निकट लाते हैं, कुछ ऐसे हैं जो उन्हें एक दूसरे से दूसरे से दूर करते हैं। व्यक्तियोंमें ही नहीं, जातियोंमें भी मतभेद का होना स्वाभाविक ही है। असभ्य अवस्था में मतभेद होने पर बल गुत्थी को सुलझा देता है। सभ्य समाज में जहां बल के प्रयोग की आवश्यकता हो, वहां समाज इस प्रयोग को अपने हाथ में ले लेता है। न्यायालय, पुलिस, कारागार सब इसी प्रयोजन के लिये बने हैं। जब यह झगड़े जातियों या देशों में तीव्र रूप ग्रहण कर लें, तो युद्ध का स्थानापन्न दिखाई नहीं देता। समाज व्यक्तियों के झगड़ों को निपटा सकता है, क्योंकि उसके पास राज की शक्ति मौजूद है। जातियों के झगड़ों को निपटाने के लिये

कोई ऐसी शक्ति विद्यमान नहीं। कुछ कालसे इन विवादों का रंग-रूप बदल गया है। पहले युद्ध छोटी-छोटी रियासतों में होते थे; पीछे देशों मे होने लगे अगला पग यह था कि प्रत्येक लड़ने वाले देश को साथ कुछ साथी मिल गये। अब अवस्था यह है कि पृथ्वी के सभी देश जो लड़ सकते हैं, दो गुटों में बट गये हैं, और स्थिति उस समान है जो तूफान से जरा पहले व्यक्त हो जाता है। इस स्थिति में आशा की रेखा इतनी है कि दोनों पक्ष 'सम्वाद' की चर्चा करने लगे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि विवादों के निपटाने मे बल की अपेक्षा सम्वाद का सहारा लिया जाये। 'सवदध्व'।

सम्वाद होते ही रहते हैं, समाचार पत्रों का बड़ा भाग ऐसे सम्वादों की रिपोर्ट के ही अर्पण होता है। इन का कुछ फल क्यों नहीं निकलता? साधारण अवस्था मे वाणी वह कहती है, जो मन सोचता है, परन्तु जहां राजनीति प्रधान होती है, वहां कथन का उद्देश्य विचारों का व्यक्त करना नहीं अपितु उन्हें गुप्त रखना होता है। अन्त में मानव समाज का कल्याण इस मे है कि यदि दृष्टिकोणों का भेद अटल हो, तो दोनो दल 'सहभाव' की पालिसी के तौर पर स्वीकार करलें। यह व्यवहार मे कितना कठिन है, इस का कड़वा अनुभव हमे हो ही चुका है। सब से पहले यह समझौता चीन और भारत मे हुआ, परन्तु चीनी इधर समझौते पर हस्ताक्षर कर रहे थे, उधर उसी समय कुछ और भी कर रहे थे। वास्तव मे इन विवादों का एक ही हल है, और वह यह कि मानव जाती की विचार धारा प्रमुख भाग में एक धारा हो। एक राष्ट्र में तो इस समानता के बिना गुजारा ही नहीं हो सकता। भारत की राजनीति में इस समय सब से बड़ी कठिनाई यही है कि न भावनाओं की एकता है, न विचारों की एकता।

'संवोमनांसिजानताम'

ऊपर दिये वेद मन्त्र में अधिकतर सामाजिक जीवन के मानसिक पहलू को प्रमुख रखा है। अथर्व वेद के एक मन्त्र में दो विशेष बातों की बाबत कहा है, जो सामाजिक संगठन में महत्वपूर्ण होती हैं—

समानीप्रपा सह वोऽन्न भागः

समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।

सम्यंचोऽग्नि सपर्य तारा नाभिमिवाभितः॥

(अथर्व ३।३०।६)

'तुम्हारी जलशाला एक-सी हो, अन्न का विभाजन एक साथ हो, एक ही जुए में मैं तुम को एक साथ जोड़ता हूं। जैसे पहिये के आरे नाभि में चारों ओर से जुड़े होते हैं, वैसे ही मिलकर ज्ञान स्वरूप प्रभु की पूजा करो।'

यहां तीन समानताओं की ओर विशेष रूप से संकेत किया गया है—खाद्य अन्न, पीने का पानी, पूजा।

व्यक्ति के अधिकारों में सर्वप्रमुख अधिकार जीवित रहने का अधिकार है। जीवन का आधार अन्न, जल और वायु पर है। वायु जो सब से अधिक आवश्यक है, हर कहीं मुफ्त मिलता है। हां शुद्ध वायु के लिये नई स्थिति में थोड़ा परिश्रम करना पड़ता है, दूसरे दर्जे पर जल है। शुद्ध जल को प्रायः पृथिवी के नीचेसे निकालना होता है भारत को लाखों गांवों में यह भी सबको प्राप्त नहीं होता इस कठिनाई का कारण केवल आर्थिक अकुशलता ही नहीं, ऊंच-नीच का ख्याल भी बीच में आ कूदता है। हरिद्वार पानी में के नल लगे, तो भी हरिजन इन से पानी नहीं ले सकते थे, क्योंकि नल उनके स्पर्श से दूषित हो जाते थे। यही मैंने एक बार अपनी पर्वत यात्रा में देखा। खाने का प्रश्न बहुत

जटिल है। मनुष्यों ने अपने विवाह के लिये दो घासों का सहारा लिया है—चावल और गेहूं। आम तौर पर यह अन्न एक ही स्तर के सब को मिल सकते हैं। समान विभाजन का अर्थ इतना ही है कि ये हरेक को बिना मिलावट के प्राप्त हो सकें। तीसरी बात जिस की ओर संकेत किया गया है, पूजा की समानता है। वर्तमान शाही में, भारत की सब से बड़ी आपत्ति देश-विभाजन है, मानो धड़ से दाईं भुजा और बाईं भुजा कट गई हैं। इस आपत्ति की नींव में पूजा का भेद था। स्वयं हिंदुओं में सब से बड़ा बखेड़ा पूजा का भेद ही है। जहां वेदों में एक ईश्वर की पूजा पर इतना बल दिया गया है, वहां पतन के युग में हिंदुओं ने अपनी तसल्ली के लिए अपनी संख्या से भी अधिक संख्या में देवता बना लिये।

मनुष्य पशुओं में एक है;
मनुष्य सामाजिक प्राणी है,
मनुष्य चेतन आत्मा है।

सामाजिक उन्नति की बाबत चिंतन करते हुए हमें इन तीनों पक्षों को ध्यान में रखना चाहिए। स्वस्थ समाज के लिए आवश्यक है कि हरेक को जीवित रहने के लिए शुद्ध जल और शुद्ध अन्न प्राप्त हो सके, समाज के सदस्यों में कायक वाचक, मानसिक क्रियाएं समान अर्थात् निर्विरोध हों, और उनकी पूजा की विधि एक जैसी हो।

अनमोल साहित्य

सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रादेशिक सभा पंजाब के महात्मा हंसराज साहित्य विभाग ने निम्न पुस्तकें D. P. I. द्वारा memo no. 6/16-55-B-14659 Dated 23 April 1955 और No.7077-B-Dated 2-9-60से स्वीकृत हो गई हैं। अतः देश के सभी स्कूलों, कालिजो, आर्य समाजों व आर्य संस्थाओं को निस्संकोच भाव से अपने पुस्तकालयों और छात्रों को इनाम में देने के लिए अधिक से अधिक संख्या में मंगाकर सभा का हाथ बटाना चाहिए।

महात्मा आनन्द स्वामी जी कृत—

१. पार्वती '२५ न० पै०
२. सीता '३७ न० पै०
३. पद्मिनी '३१ „
४. महर्षि दर्शन २'००
५. नवीन और प्राचीन समाजवाद ले (लें० नारायण स्वामी कृत) मूल्य १'००
6. Dayanand his life and work (English) By Principal Suraj Bhan ji M.A 1 50 N. P.
7. Teaching of Ishupnishad („) By L. Sain Dass ji 1 56 N. P.
8. Massage of Gita (English) By L. Sain Dass ji 1 50 N. P.

मिलने का पता—

प्रबंधक महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालंधर।

प्रकाशक तथा मुद्रक श्री मेहरचन्द जी हैडक्लर्क आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा द्वारा वीर मिलाप प्रैस मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय निकट कचहरी जालन्धर नगर से प्रकाशित—[सं० श्री त्रिलोकचन्द्र शास्त्री]

दीपमालाओं से जगमगाती दीवाली

(ले०—कु० विद्यावती जी आनन्द प्रिंसीपल महिला महाविद्यालय जालन्धर)

दीपमालाओं से लहराती दीवाली निकट आ रही है। हिन्दू मात्र के जीवन में इस त्यौहार का बड़ा महत्व है। इस उत्सव के लिये महीनों पहले तैयारियां होने लगती हैं। घर के कोने २ से कूड़ा करकट निकाल निकाल कर बाहर फैंका जाता है। अन्दर बाहर से घर लिपा पोता जाता है। नये नये रंग बिरंगे कपड़े बनवाए जाते हैं। मिठाइयां आती हैं और घर रौशन दीपमालाओं की जलती शिखाओं से जगमगा उठता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की रावण पर विजय की खुशियां मनाई जाती हैं। शताब्दियों से यह त्योहार ऐसे ही मनाया जाता है। हमारे पूर्वजों ने इसे ऐसे ही मनाया था। हम भी ऐसे ही मनाते हैं और शायद आने वाली पीढ़ियां भी ऐसे ही मनाएंगी। यह त्योहार अधर्म पर धर्म की, अन्याय पर न्याय की विजय की यादगार है।

दीपावली का दिवस निकट आ रहा है। मैंने स्वागत की तैयारियां आरम्भ कर दी हैं। नये कपड़े बनवा लिये हैं। दीपमालाओं से जगमगाती दीवाली को पहनूंगी। बुहारी से घर के कोने २ से कूड़ा निकाला जा रहा है। सफेद चूने से दीवारों पर कलई की जा रही है। मैं समझती हूं मेरी तैयारी सब से बढ़ चढ़ कर होगी। दीवाली वाले दिन मेरा घर सब से अधिक जगमगाएगा। परन्तु क्या मुझे इतने से सन्तुष्ट हो जाना चाहिये। क्या मेरे लिये दीवाली के दिवस का इतना ही महत्व है? मन के एक कोने से धीमी-सी आवाज आती है 'नहीं।' यह आवाज जोर पकड़ लेती है, कहती है, 'तुम्हारे लिये—भारत की नारी जाति के लिये ही नहीं वरन समस्त आर्य जाति के लिये यह दिवस एक और बड़ा महत्व रखता है। यह वह दिन है जिस दिन एक महापुरुष ने मनुष्य जाति के उत्थान के लिये भारत भूमि पर अपने जीवन का बलिदान दिया था। यह दिन महर्षि स्वामी दयानन्द का निर्वाण दिवस भी है। उस महर्षि का निर्वाण दिवस जिस ने मनुष्य मात्र को, विशेषकर भारत की हिन्दू जाति को अज्ञान के गहरे अन्धकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश पुंज का मार्ग बताया था। संसार को वेद-ज्ञान का प्रकाश दिखाने वाले महापुरुष की महान आत्मा दीपमालाओं से जगमगाती दीवाली वाले दिन इन शब्दों के साथ प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो' अपने परम पिता परमात्मा की गोद में सिधार गई थी।

महर्षि स्वामी दयानन्द का नाम लेते ही मेरा हृदय गद्गद् हो उठता है। मेरा मस्तक कृतज्ञता से उनके चरण कमलों में झुक जाता है। महर्षि का उपकार भारत की नारी जाति कभी भूल नहीं सकती। जिस समय महर्षि ने अपने गुरु स्वामी विरजानन्द के आदेश पर 'कृण्वन्तो विश्वम् आर्यम्' का बड़ा उठाया था उस समय भारत की नारी जाति पुरुष की जुती के तले रौंदी जा रही थी। वह समाज में अपना स्थान खो बैठी थी।

उस को विद्या प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। वेद-मन्त्र सुनने का अधिकार नहीं था। घर की चार दीवारी के अन्दर उसको घर के दूसरे माल असबाब की तरह छिपा के रखा जाता था। मातृ शक्ति अपने ऊंचे सिंहासन से गिर कर अज्ञानता तथा जहालत के कुएं में पड़ी थी। वर्षों से इस हालत में रहने के कारण वह इसी को अपना वास्तविक स्थान समझ बैठी थी।

महर्षि स्वामी दयानन्द ने नारी जाति को अज्ञानता तथा जहालत के गहरे गर्त से निकाला। उसे पर्दे की जंजीरों से छुड़ाया तथा उसे विद्या प्राप्त करने का और वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया। उसे इस बात का बोध कराया कि उस का स्थान पुरुष के पाओं तले नहीं, उसके बराबार भी नहीं, उस से ऊंचा है। वह मातृ शक्ति है, उसका सिंहासन उसकी अज्ञानता के कारण रीता पड़ा है, सूना पड़ा है। महर्षि ने नारी को जगाया और कहा 'मातृ शक्ति, उठ और अपना सिंहासन सम्भालने के योग्य बन।'

महर्षि दयानन्द की कृपा से भारत की नारी जाति आज खुली हवा में सांस लेती है। स्कूलों तथा कालेजों में पढ़ती है। वह अब विद्या से वंचित नहीं है। वेद भगवान के अथाह ज्ञान का भण्डार उस के सन्मुख खुला पड़ा है। उसे वह सब अधिकार प्राप्त हैं जो पुरुष को प्राप्त हैं। भारत की नारी जाति महर्षि के उपकार को भूली नहीं है। न ही वह उसे भूलेगी। वह महर्षि के प्रति अपने कर्तव्य को समझती है। वह अपने अधिकार का, अपने उच्च स्थान का कभी दुरुपयोग नहीं करेगी। वह मातृ शक्ति है। वह अपनी सन्तान को सच्चा आर्य बनाएगी। जिस वेद ज्ञान के प्रकाश पुंज को प्राप्त करने का उसको अधिकार मिला है वह उसका प्रकाश सब दिशाओं में फैलाएगी। यही उसका महर्षि के अनन्त उपकारों के प्रति मूक धन्यवाद होगा।

✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱

प्रभावशाली आर्य साहित्य

मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, कीर्तन मृतक श्राद्ध आदि पौराणिक पाखण्डों को नष्ट करने के लिए अत्यन्त प्रभावशाली निम्न साहित्य मंगावें।

अवतार रहस्य	मूल्य १॥)
शिवलिंग पूजा क्यों ?	मू० ।≈)
शिवजी के चार विलक्षण बेटे	मू० ≈)
पौराणिक मुख चपेटिका	मू० ≡)
नृसिंह अवतार वध	मू० ।≈)
पुराणों के कृष्ण	मू० ।–)
सनातन धर्म में नियोग व्यवस्था	मू० ।)
पौराणिक कीर्तन पाखंड है	मू० ।)
मृतक श्राद्ध खण्डन	मू० ।–)
शास्त्रार्थ के चेलेंज का उत्तर	मू० ।)
संसार के पौराणिक विद्वानों से ३१ प्रश्न	मू० ≡)
माधवाचार्य की चुनौती का उत्तर	मू० ।≈)

नोट—उत्सवों पर ठोस साहित्य प्रचार तथा पौराणिक विद्वानों को शास्त्रार्थों में परास्त करने के लिए आर्य जन व समाजें उक्त पुस्तकों का सर्वत्र भारी प्रचार करावें।

व्यवस्थापक—

वैदिक साहित्य प्रकाशन संघ कासगंज (उ०प्र०)

✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱✱

जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय

[बहिन कु० सुशीला देवी जी आर्या, एम० ए०, नरवाना]



हम अपने उत्सवों, पर्वों, सभाओं और सत्संगों की समाप्ति पर शांति पाठ के अनन्तर सर्वप्रथम यह जयनाद करते हैं "जो बोले सो अभय, वैदिक धर्म की जय" अर्थात् जो वैदिक धर्म की जय बोलता है वह निर्भय हो जाता है, उसे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं रहती। इस नाद को बोलते समय कई बार मेरे मन में यह शंका उत्पन्न हुई कि इस में सत्यता का कठोर अंश कम है क्योंकि कोई भी मनुष्य वैदिक धर्म की जय बोलने मात्र से अभय नहीं हो सकता किंतु इसका समाधान भी साथ ही प्रस्तुत हो गया। अभिधा शक्ति के अनुसार चाहे इस नाद को हम सत्य से परे समझें किंतु लक्षणा शक्ति से इस में तनिक भी असत्यता नहीं। जो व्यक्ति वैदिक धर्म की जय बोलता है, वह वैदिक धर्म के सुनहरे सिद्धांतों का अनुकरण किये बिना नहीं रह सकता। और यही एक तथ्य है कि जिस का जीवन वैदिक सिद्धांतों के अनुसार व्यतीत होता है, वह सर्वथा सर्वदा, सर्वत्र अभय रहता है। जिस प्रकार आर्य समाजके तीसरे नियम में 'वेदका पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म कह कर प्रकारांतर से वेद के अनुसार आचरण करना भी स्वतः समझ लिया जाता है उसी प्रकार वैदिक धर्म की जय बोलने से वैदिक धर्म के अनुसार आचरण करना अर्थ लेकर अभय प्राप्ति का मार्ग बता दिया गया है।

संसार में सभी प्राणी सुख की प्राप्ति और दुख का निराकरण करना चाहते हैं, फिर प्राणियों के राजा मनुष्य का तो कहना ही क्या? सुख दुख क्या है? इसकी विभिन्न परिभाषाएं दी जा सकती हैं। इन्हीं में से एक भय से मुक्ति ही सुख और भय ही दुख भी कही जा सकती है। भय से पीछा छुड़ाना प्रत्येक की प्रबल चाहों में से एक है। आज के युग में भय चारों ओर खुल कर खेल रहा है। पारस्परिक विश्वास का अभाव होने से कोई किसी से निर्भय नहीं। अभय प्राप्ति के लिये बड़े यत्न मानव ने किये हैं और कर रहा है। ये बड़े-बड़े महत्वपूर्ण संहारक वैज्ञानिक आविष्कार, घातक बम, अणु आयुध सब क्या हैं? एक देश का दूसरे देश से भय मुक्ति का ही यत्न तो। जीव मात्र भयभीत है। बड़े जीवों का भय छोटे जीवों को क्लेशित किये डालता है। राजा को प्रजा के विद्रोह का भय, प्रजा को राजा के अत्याचार का। प्रत्येक देश में बाहरी भय को निवृत्त करने केलिये जहां सेनाएं रखी जाती हैं वहां भीतरी भय का निवारण पुलिस रख कर किया जा रहा है। इस भय की विषम स्थिति में यदि विश्व को अभय-दान

मिल जाए तो इस से बढ़ कर उपकार और क्या होगा ?हां, ऐसी ही अभय प्राप्ति वैदिक-धर्म करवाता है। परन्तु किसे ? जो इसकी जय बोलता है ? नहीं,नहीं, इतनी सस्ती निर्भयता नहीं मिलती। हां, जो इस जय नाद का लाक्षणिक अर्थ समझता है, इस आलंकारिक भाषा के सही भाव को हृदयंगम कर वैदिक सिद्धांतों के सांचे में अपने जीवन को ढालता है, चाहे व्यक्ति हो या दल संस्था समाज देश या जाति वही अभय हो जीवन का वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है।

वेद के सागर में से ऐसे कितने ही मोती चुने जा सकते हैं जो जीवन के पथ को निर्भयता के प्रकाश से आलोकित करने का सामर्थ्य रखते हैं। जीवन में अभय प्राप्ति के लिये सर्वप्रथम तो यह आवश्यक है कि हम से किसी को भय न हो तभी हमें भी किसी से भयभीत न होना पड़ेगा। इसी भाव को वेद मंत्र में 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे' द्वारा प्रकट किया गया गया है। मानव जीवन का सुनहरा नियम यही है कि जो हम अपने लिए दूसरों से चाहते हैं वही दूसरों के लिये स्वयं भी दें। मित्रता की भावना में भी यही पारस्परिकता होनी आवश्यक है। यही भावना अभय होने के लिये परमावश्यक है। हम से किसी को डर न हो यही हमारे अभय होने का मूलमन्त्र है। यदि हम अपने मन, वचन, कर्म से औरों को भय देते रहें और स्वयं अभय रहना चाहें तो चाह चाह ही बनी रहेगी। आज विश्व की अशांति का मूल कारण यही है कि वेद के इस मूल्यवान सिद्धांत के अनुसार आचरण नहीं किया जा रहा। परिणाम प्रत्यक्ष है। शस्त्रास्त्रों व सैनिक शक्ति की आशातीत वृद्धि होने पर भी राष्ट्रों को शत्रुराष्ट्रों का भय ज्यों को त्यों बना है और किसी भी समय गिर पड़ने वाली महायुद्ध की तलवार सिर पर लटक रही है। तथ्य यह है कि विज्ञान की कोई भी प्रक्रिया संसार को भयमुक्त करने का नुस्खा प्रदान नहीं कर सकती। यह चमत्कारिक औषधि तो वेद में ही निहित है।

भय का एक दूसरा कारण कर्तव्य के प्रति उपेक्षा है। इस का स्पष्ट रूप वर्तमान युग में देखने को मिलता है। कर्तव्य परायणता को तिलांजलि देने के कारण आज आप किसी भी क्षेत्र में दृष्टि दौड़ा कर देखिये सर्वत्र भय का नग्न नृत्य देखने को मिलेगा। भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी इसी कर्तव्य का पालन करना नहीं और तज्जन्य त्रुटि पर आवरण डालने के लिये अन्य दूषित उपायों से अपने ऊपर वालों को प्रसन्न करने की चेष्टा में सदा भयभीत रहना, एक स्वाभाविक सा अनुभव हो गया है। क्लर्क अफसर से डरता है, अध्यापक निरीक्षक व प्रबन्धक से चपरासी क्लर्क से डरता है, सहायक मंत्री मुख्यमन्त्री से। इसी प्रकार भय के प्रसार की कोई सीमा नहीं। गम्भीरता से विचार कर देखिये कि यदि विद्यार्थी नियमित रूपसे अपने कर्तव्य का पालन करें यदि अध्यापक हराम की कमाई न खाए तो डरने का क्या काम ? जिस क्लर्क की फाइलें ठीक हैं, जिस गणक का हिसाब साफ है, जिस सहायक मन्त्री ने उत्तरदायित्व को समझा है क्या मजाल है जो भय उस के पास भी

दयानन्द दर्शन का चमत्कार

(ले० श्री आशुराम जी पुरोहित आर्यसमाज सैक्टर ८ चंडीगढ़)

दीवाली के साथ महर्षि दयानन्द के महान दर्शन की स्मृति स्वाभाविक है, जिस दर्शन से संसार भर के लोगों को विज्ञान और बुद्धि की आख प्राप्त हुई। वेदों के अर्थ सुधरे। पुराणों की गाथायें आलंकारिक मानी जाने लगीं। कुरान की तफसीरें अदल-बदल हो गई। बाईबल की आसमानी बातें अन्तरिक्ष में उड़ गईं। बहिश्त और दोजख के किस्से तो अब व्यर्थ की बात हो गई है।

भटक सके ? ऐसा ही कर्तव्य परायण जीवन व्यतीत करने से मनुष्य अभय हो सकता है और मनुष्य का सात्विक धर्मपूर्ण व्यवहार प्राणिमात्र को अभय प्रदान करेगा। आइये, इसी भाव को मन मे लेकर ऋषि जीवन भर निर्भय रहे। किसी प्रलोभन ने किसी शक्ति ने उन्हें भीत नहीं किया। इसी के फलस्वरूप कि उन्होंने किसी को भय नही दिया। यहा तक कि हत्यारो को भी अभयदान देते रहे। कर्तव्य पालन का आदर्श भाव अभयता में निहित है। जो डरेगा वह कभी भी निष्पक्ष और सम्यक भाव से कर्तव्य को निभा न सकेगा। ऋषि का जीवन और मृत्यु दोनों अभय के प्रतीक हैं। उस आप्त महर्षि के जीवन से जीवन-ज्योति जलाने की प्रेरणा मन में भर कर मानस क्षेत्र में अभय का बीज बोने वाले इस नाद से तन मन को तरंगित करें—

जो बोले सो अभय वैदिक धर्म की जय तभी हमारा निर्वाण पर्व मनाना सफल होगा। प्रभु से प्रार्थना है कि हमें अभय रहने व जन जन को अभय करने की शक्ति प्रदान करें।

'ज्ञान से कर्म और कर्म से सिद्धि की प्राप्ति' इस वेद धर्म और सत्य-ज्ञान की चट्टान पर खड़े होकर दयानन्द ने अखिल विश्व को देखने का, सुनने का, सोचने का और बोलने का तथा काम करने का सच्चा दर्शन कराया।

महर्षि ने हमें यह बतलाया कि तुम तेजस्वी बनो। तुम कोयला व राख नहीं हो, अपितु ज्वालावत देदीप्यमान हो। अग्नि के समान ऊपर उठकर सदा अपनी और दूसरों की उन्नति करो। इन्द्र के समान ओजस्वी बनकर असुरों और पापियों का संहार करो। जो विघ्न बाधायें, तुम्हारे सामने आयें उनको मेघ समझ कर चमकते सूर्य की न्याईं छिन्न-भिन्न कर दो। राग-द्वेष से रहित हो प्राणि-मात्र के साथ प्रेम और प्रीति का व्यवहार करो 'द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः' उपकार-मय होकर संसार की सेवा करो। जहां तुम शान्ति को धारण करो वहां अन्याय और अत्याचार को निर्मूल करने के लिये रुद्र को भी आवाहन करो। 'प्रातः सोमयुत रुद्र हुवेम' इस वेद वचनानुसार सोम की आवश्यकता है। शान्ति का प्यास है। परन्तु बिना रुद्र बने और मन्युता को धारण किये यदि सोम (अमृत, शांति) सकता तो परमेश्वर के गौणी नामों में भी (जो गुणों के कारण असंख्य हैं, जिन के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने यह लिखा कि मेरे लिखे यह सौ नाम तो सागर में बिन्दु के समान हैं। क्योंकि जब उसकी शक्तियां और गुण असंख्य हैं तो नाम सीमित कैसे ?) केवल सोम ही मिलता रुद्र नही। परन्तु सौम्यता के साथ रुद्रता की आवश्यकता रही है और रहेगी।

यह उपरोक्त संदेश उस दार्शनिक विज्ञान की ओर-

दार व्याख्या थी जिस का प्रचार महर्षि ने सारे भूमण्डल-वासी जीवों के कल्याण के लिये किया। इसलिये कि संसार में फिर से सुख-शान्ति का राज्य हो जिस का आदर्श प्राचीन काल मे 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' भगवान का स्वरूप रहा है और जिस सत्य-दर्शन के परिणाम-स्वरूप सारी वसुधा एक परिवार बनकर लाखों वर्ष सुख शान्ति और आनन्द से रही है।

महर्षि का यह दर्शन अकाट्य और अद्भुत था। उनकी कही हुई बात युग की अमर गाथा बन गई जिस की ओर दुनिया भर के वैज्ञानिक तथा पण्डित सरपट दौड़े हुए आ रहे है। ऋषि ने कहा वेद-सत्य विद्याओं का पुस्तक है और परमेश्वर का अनादि-ज्ञान है। उस समय तक के अर्वाचीन विद्वानो की यह अधूरी खोज कि 'वेद को तो केवल २-४ या ५ हजार वर्ष ही हुए हैं' अब धराशाई होके रह गई है। जब कि विश्व भर के अनेक विद्वानों का यह मत तो स्पष्ट हो गया है कि जगती तल पर वेद का ज्ञान ही प्राचीनतम ज्ञान है और यह सृष्टि दो अरब वर्ष से चली आ रही है।

महाराज ने कहा कि इस महान सृष्टि का कर्ता ईश्वर ही है और कोई भी कार्य बिना कर्ता के असम्भव है। बन्दरों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति मानने तथा ब्रह्माण्ड के स्वयमेव बन जाने, विकासवादादि की विज्ञान बुद्धि तथा युक्ति हीन सिद्धान्तो का आज के सुशिक्षित तथा सभ्य संसार में कोई स्थान नहीं। इस प्रकार पाषाण-पूजा, अवतारवाद, वर्ण-व्यवस्था, अछूतोद्धार, स्त्री-शिक्षा, मृतक-श्राद्ध, तीर्थ-पूजा, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, गोरक्षा, आर्य-भाषा, राष्ट्र रक्षा, ब्रह्मचर्य, गृहस्थादि आश्रम मर्यादा, शिक्षा और राज्य-धर्मादि अनेक विषयो पर जो सच्चा दर्शन ऋषि-दयानन्द ने दिया वह अन्त-पर्यन्त अखण्ड है और ज्यों ज्यो दिवस-रात्रि, मास और वर्ष बीतते जायेंगे प्रत्येक आने वाला युग इस दार्शनिक मार्ग की ओर बड़ी तीव्रता से बढ़ता हुआ चला जायेगा और युगान्तरों पर्यन्त भी सम्पूर्ण विश्व में एक एक मानव-वाणी से यह गुंजार निकलती हुई सुनाई देगी —

आनन्द सुधा सार दया कर पिला गया।
संसार भर को स्वामी अकेला जगा गया॥

●

आर्य प्रादेशिक सभा जालंधर के तत्त्वावधान में मेला कपालमोचन

गत वर्षों की भान्ति कार्तिक पूर्णिमा के शुभ अवसर पर १८ नवम्बर से २२ तक मेला कपाल मोचन पं० अमर सिंह जी अध्यक्ष अम्बाला करनाल मंडल की देख-रेख में सम्पन्न हो रहा है। इस अवसर पर विश्व-शान्ति महायज्ञ का सुप्रबन्ध किया जा रहा है।

(१) ऋषि लंगर का प्रबन्ध होगा।

(२) उच्चकोटि के विद्वानों भजनमंडलियो के व्याख्यान व भजन सुनने का सुअवसर प्राप्त होगा।

(३) सत्संग से जीवन सुधारने का शुभ अवसर प्राप्त होगा।

अतः दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि इस मेले को सफल बनाने केलिए दिल खोलकर दान देकर पुण्य के भागी बनें।

नोट—ऋतु अनुकूल विस्तरों का प्रबन्ध स्वयं करें।

खुशीराम शर्मा
वेद प्रचार अधिष्ठाता सभा

●

अन्धकार और प्रकाश

लेखक—उपन्यास सम्राट् प्रो० रत्न चन्द्र कविरत्न, प्रधान प्रगतिशील साहित्य लेखक सभा पंजाब

प्रो० रत्न चन्द कविरत्न एक नवोदित साहित्यकार है उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, इन्होने हिन्दी उर्दू, पंजाबी मे लिखे है। इन के उपन्यास 'ठोकर' 'मै हूं एक सिपाही' 'आहे' 'प्यास' 'गगा की लहरे' खद्दर की ओट ने समाज को झकझोड़ कर जगा दिया इनका यह निबंध भी दीपमाला के दिन हमे सत्य पथ पर चलने के लिए बाध्य करता है। —सम्पादक

जीवन अपनी करवट उसी प्रकार बदलता है, जिस प्रकार प्रकृति का अटल पटल पर लिखित नियम आलोक नहीं हो सकता। प्रातः और साय सूर्य के दाए और बाएं अंग हैं, पाताल और आकाश धरा की आराधना और साधना हैं। बसन्त के साथ पतझड़ हर्ष के साथ शोक का समन्व है हंसने के साथ रोना बना ही है। इस पर,परमात्मा ने मानव को अपनी ओर आकर्षित करने का, जीव मात्र के लिए, निर्विकार सत्संकल्प मार्ग बतलाया। प्रभु भक्ति, प्रभु आराधना, सत्यमय आराधना।

भक्ति मार्ग को अपनाते हुए मानव, सम्प्रदायक धराओं से जब कराह उठा, पतन को अपने आपका साधन बना बैठा, घर भेदी ही लका को गिराने मिटाने की योजनाएं बनाने लगे। हमारी हिन्दु जाति के ही मुख्य अधिनायक, मन्त्रों का दुरुपयोग कर के स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति करने लगे। अतीत का भूत पिशाच का नाम देकर अनपढ़ जनता को कुमार्ग पर चलाने लगे। एक ओर मुसलमानों के अत्याचार दुंदभी बजा रहे थे। दूसरी ओर घर के ही पाडे मानव की मानसिक दशा आपत्ति जनक बना रहे थे। इन पटो के बीच पिसते हुए मानव को बचाने के लिए महर्षि दयानन्द जी भारत में आये और अपना दृढ़ संकल्प से कार्य पूरा कर के आज के दिन, इन तारो की साक्षी में इसी नील गगन के सामने नील मणिका, निराकार प्रभु का ध्यान धारण कर चले गये—यही कहते थे प्रभु तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

कितनी सत्य प्रियता है इन शब्दों में अहिंसा का जयनाद हो रहा है, शत्रु के प्रति भी दया की भावना को अपनाया जा रहा है।

दीवाली आती है—हर वर्ष आती है दीपक जलते

है, प्रति वर्ष भारत के वासी मानसिक आनन्द उठाते हैं। हम भूल जाते हैं उस संदेश को, हम भूल जाते हैं उस त्याग को, हम भूल जाते हैं उस ज्ञान को जो उन्होंने जीवन भर की तपस्या करने के पश्चात स्थान २ का भ्रमण करने के पश्चात हमें दिया था—वह संदेश आज भी हमारे सामने है, हम ही भूल गए हैं, हम ही कृतघ्न हो गये हैं।

उस सन्देश को फिर से दोहरा देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं—वह सन्देश है विश्व को आर्य बनाओ क्या हम विश्व को अपना समझ रहे हैं क्या हम विश्व को अपना बनाने का प्रयास कर रहे हैं हमारा दृष्टिकोण तो इतना संकीर्ण और विलीन हो चुका है कि भाई भाई को तलवार दिखा रहा है। घर को रणभूमि बनाया जा रहा है—शिक्षा को नौकरी की सामग्री समझ कर उस का उपयोग किया जा रहा है। दैनिक समाचार पत्र भी महर्षि जी के अनुयायी होते हुए परस्पर विवादों की पगडण्डी पर चल कर अपना नाम चमकाना कर्तव्य समझ बैठे हैं।

इन लोगों को मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं। महर्षि जी वह मार्ग नहीं था जो तुम चोरी-चोरी अपना कर अपना नाम चमकाना चाहते हो उनका मार्ग था—सहन-शीलता यदि मेरे भाई बुरा न मानें तो इन का मार्ग है एक दूसरे पर कीचड़ उछालना, एक भाई सामने उछालता है और दूसरे किसी अन्य का नाम ले कर परोक्ष में।

उत्सव हों या परोक्ष इन्हें यह गीदड़ भभकियों जैसी नीति का त्याग करना होगा—यदि त्याग न हुआ, यदि इन्हें महर्षि जी के द्वारा इस दिन पर दिए गए संदेश का आचरण नहीं किया तो मैं सत्य और विश्वास के साथ कहता हूं। पंजाब की बहुत बुरी दशा होगी।

आज दीवाली है लेकिन मुझे इस बात का कोई ज्ञान नहीं है कार्यालय से आते समय श्री चंचल जी ने अवश्य कहा था "रत्न जी कल अवकाश है।" हां! आज दीवाली है वही दीवाली जिस रात में आर्य जाति अनाथ हुई थी—जिस में हम अपना पथ प्रदर्शक खो बैठे थे। आज वह दीवाली है जिस अमा की नाश में हमारे साथ से हमारी आंखें ओझल हो गई थी आज वही दीवाली है—जिस दीवाली ने ज्ञान का दीवाला निकाल दिया था—आज वही काली रात फिर से आ रही है आज फिर से हमें वर्षों पहिला सन्देश सुना रही है, आज फिर से हमें उस ओर जाने का संकेत कर रही है आज फिर से हम नई राह पर ला कर खड़ा कर रही है, आज वह कह रही है, भारत वासियों यदि कुछ बना सकते तो विश्व को आर्य बनाओ ! आर्य बनाओ।

वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का परम कर्तव्य है

दीपमाला का संदेश

(ले० श्री बृजलाल जी गुप्ता प्रधान आर्यसमाज टोहाना)

✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻✻

दीपमाला का त्यौहार हर वर्ष समस्त भारत वर्ष में मनाया जाता है। कोई नहीं बतला सकता कि यह कब से मनाया जा रहा है। बहुत से इतिहास वेत्ताओं का ख्याल है कि यह लाखों साल से इसी प्रकार मनाया जा रहा है। भिन्न २ विचार के व्यक्ति दीपमाला का भिन्न २ महत्व बतलाते हैं। हम इस लेख में वैदिक धर्म की दृष्टि से विचार करेंगे। दीपमाला करते समय हम पहिले एक दीपक जलाते हैं फिर उस दीपक से दूसरे दीपकों को जलाया जाता है। इसी प्रकार महापुरुषों के सम्पर्क से साधारण मनुष्यों के जीवन ज्योतिर्मय हो जाते हैं। जिस समय ऋषि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय भारत वर्ष के आकाश में चारों ओर अज्ञान के बादल छाये थे परन्तु ऋषि दयानन्द की तीव्र ज्ञान की ज्योति से वह शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गये। लाखों व्यक्तियों का जीवन ऋषि के जीवन से ज्योतिर्मय हो गया।

दीपक स्वयं जलता है परन्तु दूसरों को प्रकाश देता है। मानो दीपक बलिदान की मूर्ति है। स्वयं जल कर दूसरों को प्रकाश देना ही इस ने अपने जीवन का उद्देश्य बना रखा है। दीपक से हमें परोपकार करने की यज्ञमय जीवन बनाने की शिक्षा मिलती है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा है—

'पुरुषो वाव यज्ञः'—मानव जीवन यज्ञ है।

अर्थात मनुष्य जीवन की सफलता, पुरुष का पुरुषत्व यज्ञ में, त्याग में है। जिन व्यक्तियों ने अपने देश, धर्म और जाति के लिये महान बलिदान दिये उनके नाम इतिहास में अमर हो गये।

शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है—

'यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म'—यज्ञ सब से श्रेष्ठ कर्म है। यज्ञ से श्रेष्ठ अन्य कोई कर्म नहीं है। जो व्यक्ति अपने जीवन को यज्ञमय बनाता है, वह दिन प्रति दिन उन्नति की ओर अग्रसर होता रहता है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में कहा भी है—

'यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूत' हे आत्मन! यज्ञ तेरी वृद्धि का, उन्नति का साधन है।

यजुर्वेद में भी आया है—

'मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।'

मेरी गति (क्रिया शक्ति) तथा मेरी सुमति यज्ञ से सफल हों अर्थात यज्ञ से ज्ञान कर्म की सफलता हो सकती है। इस इस से सिद्ध होता है कि शरीर, आत्मा, मन और समाज की उन्नति के साधनों का नाम यज्ञ है। दीपमाला का प्रथम सन्देश यही है कि हम अपने जीवन को यज्ञ मय बनायें ताकि हम शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक उन्नति कर सकें।

जब दीपक जलता है तो अन्धकार स्वयं भाग जाता है उल्लू जैसे जन्तु प्रकाश से भाग जाते हैं। इसीलिए वेद में कहा है, 'उलूक यातु जहि'—उल्लू के स्वभाव को छोड़ दो। जो व्यक्ति उल्लू के स्वभाव के होते हैं। वह ज्ञान के प्रकाश से दूर भागते हैं हमारा कर्तव्य है कि अज्ञानांधकार को छोड़ कर ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करें।

वेद प्रकाश का उपदेशक है। वेद का अर्थ है ज्ञान, ज्ञान साधन, ज्ञान का अधिकारी आदि आदि। वेद स्थान २

पर प्रकाश की प्राप्ति पर बल देता है। हम नीचे कुछ वैदिक सूक्तियां लिखते हैं, जिन में प्रकाश प्राप्ति पर बल दिया गया है।

(१) 'आरोह तमसो ज्योतिः' अन्धकार को छोड़ कर प्रकाश पर आरूढ़ हो।

(२) 'भानुमन्विहि'—प्रकाश का अनुसरण कर।

(३) 'ज्योतिष्मतः पथो रक्ष'—प्रकाश के मार्गों की रक्षा कर।

(४) 'समिद्धस्य श्रयमाणः'—भली प्रकार प्रदीप्त प्रकाश का आश्रय करता है।

(५) 'जीवो ज्योतिरशीमहि'—जीते जी प्रकाश प्राप्त करें। ब्राह्मण ग्रंथ कर्ता ऋषि भी प्रार्थना करते हैं—

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—मुझे अन्धकार से हटा कर प्रकाश की प्राप्ति करा।

दीपमाला का त्यौहार मनाते समय हमें उपदेश मिलता है कि हमें अधिक से अधिक प्रकाश अर्थात ज्ञान प्राप्त करके अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिये। यही दीपमाला का संदेश है।



बताइये इन में कौन उत्तम है ?

(ले०—श्री विद्यार्थी जी प्रताप मुहल्ला रोहतक)

१

सभा का वेतन भोगी उपदेशक आर्य समाज के मंच से धुआंधार व्याख्यान देता है। लच्छेदार शब्दों को प्रयोग करके श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देता है। किन्तु उसका घरेलू जीवन इस प्रकार है, कि स्वयं सूर्य निकलने के पश्चात उठता है। बिना संध्या हवन किये खान-पान करता है। शेष समय अनर्गल बातों में गुजार देता है। न उसे स्वाध्याय से प्रेम है, न परिवार को आर्यत्व में ढालने का विचार है। उसकी कथनी और करनी में आकाश का अन्तर है। इसके विपरीत उसी संस्था का दूसरा वेतन भोगी उपदेशक जहां जनतामें वैदिक धर्मका प्रचार बड़े जोश से करता है, वहां अपने निजी जीवन और परिवारिक जीवन को भी आर्यसमाज के रंग में रंगता है। वह कहने से कुछ कर दिखाना अधिक अच्छा समझता है। कृपया बताइये कि इन में कौन उत्तम है ?

२

एक सज्जन धन धान्य से सम्पन्न है। जन-धन उस के पास पर्याप्त है। आर्य पिता का पुत्र होने के नाते आर्य समाज और आर्य संस्था में भी अपने जन धन के बल बूते प्रधान या मन्त्री का स्थान लिये हुए है। किन्तु उसका निजी जीवन आर्यत्व में रंगा हुआ नहीं। उसकी स्त्री पौराणिक विचार की है। लड़के-वाले सिनेमा नाटक राग रंग में रुचि रखते हैं। तात्पर्य यह है कि उनका जीवन "हाथी के दांत खाने के और, दिखाने के और" के समान है। इसके विपरीत उसी समाज का निशुल्क सेवा करने वाला आर्य निर्धन मजदूर जहां श्रद्धा और प्रेम के साथ आर्य समाज की सेवा करता है, वहां अपना और परिवार का जीवन भी आर्यत्व में रंग देता है। स्वयं वेदोक्त जीवन व्यतीत करता है। उसकी पत्नी आर्य स्त्री समाज में जाती है। उसके पुत्र पुत्रियां आर्य वीर दल, आर्य कुमार सभा तथा आर्य बाल सभा में जाते हैं। अब आप विचार करें कि इन में कौन श्रेष्ट है ?

३

एक व्यक्ति आर्य परिवार से सम्बन्ध रखता है किन्तु उसकी काम करने की रुचि राजनैतिक पार्टियों में है। वह चल रही राजनैतिक पार्टियों में से किसी एक पार्टी का सदस्य बन जाता है। भाग्यवश वह विधान सभा या लोक सभा का सदस्य चुना जाता है। जब सभा में आर्य समाज तथा उसके कार्य कर्ताओं पर आलोचना होती, तो वह party Desciplin के अधीन मुंह में घुन-घुनियां डाल कर बैठा रहता है। इसके विपरीत एक स्वतन्त्र रूप से निर्वाचित आर्य विधान सभाई वा लोक सभाई, जब भी सभा में आर्य समाज और आर्य कर्त्ताओं के विरुद्ध आलोचना होती है, तो वह सिंह के समान गर्ज कर विरोधियों के दांत खट्टे कर देता है। बताइये इनमें कौन उत्तम है।

४

एक आर्य सज्जन आर्यसमाज के क्षेत्र में फलताफूलता है। अपनी जीविका उपार्जन के लिये दैनिक समाचार पत्र प्रकाशन करता है। ईश्वर की कृपा और आर्य समाज के

वह समय कैसा था ?

ले० श्री दयानंद आर्य विद्यारत्न कादियां



अब एक युग पुरुष अपने प्राणों को हंसते २ छोड़ गया । ५९ वर्ष की आयु क्या होती है ? कुछ भी तो नहीं पर दयानन्द ने क्या कर दिखाया, हमें एक आशावाद दे गया कि राम, कृष्ण मर कर फिर आ सकते हैं। प्रत्येक राम बन सकता है, कृष्ण की गीता पुनः सुना सकता है। आत्म निरीक्षण करना पड़ेगा आर्यों ? जमाना था कि अकेले देवदयानन्द ने विश्व को संभाला था। पर आज भी दयानन्द चाहिए। एक तो आर्यों को शुद्ध करें तथा विश्व की आपदाओं से जूझे। दयानन्द गुणगान करना चाहते हो तो जीवन से गुण गान करो। विश्व की नैया आज भंवर में हैं। साम्प्रदायिकता रूपी क्रीड़ा प्रेम व



सहयोग से उसका काम चमक उठता है। किन्तु उसका समाचार पत्र या तो गन्दे विज्ञापनों से भरपूर है, या राजनीतिक पार्टियों का दुमदल्ला बना हुआ। उसे आर्य समाज के प्रचार की इतनी लग्न नहीं जितनी राजनैतिक पार्टियों के प्रोपेगन्डा की है। उस के विपरीत एक मासिक या साप्ताहिक पत्रिका निकालने वाले आर्य सम्पादक, जहा गन्दे विज्ञापनों को स्थान नहीं देता। ग्राहकों से चन्दा प्राप्त न होने पर भी उस ग्राहक के नाम पत्र जारी रखे हुए है। समाचार पत्र का उद्देश्य केवल "आर्यसमाज" के सिद्धान्तों का प्रचार करना है। आर्थिक संकट में होने पर भी वह केवल आर्यों की ओर देखता है। तो फिर आप बताएं कि इन में कौन अच्छा है।

ईश्वर विश्वास को खाना चाहता है। ऋषि ने परलोक-गमन किया था आज के दिन। आज लोगों की तो दीवाली है, किन्तु हमारी रात काली है। हां एक आशा की किरण दिखाई देती है।

सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु
न मे पृणः सख्ये रिषाथनः

इस मंत्र में कहा गया है कि :—

"Me being laberious ask riches from me. The sole creater of the world, and O wise devotees know it for certain that you shall never suffer any harm in my friendship,

प्रभु की सर्वव्यापकता को जान कर मानो। आज एक ठोस कार्यक्रम बनाइये। परिवार को आर्य, पुत्रों-पुत्रियो को आर्य बनाइये। स्कूलों की प्रत्येक श्रेणी से पाच विद्यार्थी चुनलें। उन्हे अपने सम्पर्क में लाइये। उन्हें आर्यसमाज की पुस्तकें दीजिए। फिर देखिए कि कि अगली दीवाली पर जब हम लेखा-जोखा करेंगे तो हमें उदास नहीं होना पड़ेगा। दयानन्द वीर धर्मी के, हम दयानन्द के पीछे केवल बातों से नहीं प्रत्युत कर्मों से चलें। आओ ! आर्यसमाज का साहित्य खूब बांटें, विरोधियों को दें। ताकि वातावरण से उठती लहर सुन सकें क्या !"

"सारा जगत आर्य हो गया है !"

"क्या तुमने नहीं सुना ?"

आर्य समाज

का

भावी प्रोग्राम क्या हो ?

ले० श्री रामचन्द्र जी आर्य मुसाफिर, अजमेर



तीन सौ चौसठ (३६४) दिन वर्ष के व्यतीत होने पश्चात ऋषि निर्वाण दिवस फिर आ ही गया जो हमें आत्म निरीक्षण करने का सन्देश दे रहा है। आज जब हम अपने जीवन और अपने सहयोगी आर्य भाइयों एवं अपनी संस्थाओं की प्रगति की ओर दृष्टिपात करते हैं तथा गहराई से विचार करते हैं तो न केवल हम और हमारी संस्थायें बल्कि प्रत्येक अपनी गतिविधि को शक्तिहीन निर्जीव अवलोकन करते हैं जिस के कुछ कारण हो सकते हैं।

विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी ने देश में नवजीवन संचार करने के हेतु देश के कोने कोने में भ्रमण किया किन्तु जैसी सफलता की आशा की थी वह न हुई आखिर उन्होंने अपना मार्ग बदला और शहरों को त्याग कर जहां आत्म बलिदान की ज्योति सरलता से जगाई जा सके ऐसे भोले-भाले मानवों से युक्त ग्रामों में जाकर राष्ट्रीय चेतना का सिंहनाद फूका। फलतः दो चार वर्षों में ही उस राष्ट्र संन्यासी के आव्हान पर सहस्रों की संख्या में बलिदानी आत्मायें उद्भूत हो गई जिसका फल भारत माता दासता की बेड़ियों से मुक्त हो गई।

माता को बन्धन मुक्त कर वह राष्ट्र-तपस्वी माता का लड़का सपूत बीच में ही काल कवलित हो गया। स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्र निर्माण के महान कार्य में व्याघात उत्पन्न हो गये, स्वार्थ की आंधियां तीव्र गति से चल रही हैं जिन से जातियता और राष्ट्रीयता की भावनाएं समूल नष्ट हो गई हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज का वह सिंहनाद जो उन्होंने ऋग्वेद के शब्दों में लगाया था कि 'कृण्वन्तों विश्वमार्यम् अपघ्नन्तोऽराव्णः' अर्थात ओ ऋषियों की सन्तान ? तू स्वार्थ से ऊपर उठ त्याग और बलिदान का सम्बल लेकर आगे बढ़। व्यक्तिगत सामाजिक और राष्ट्र विरोधी कार्यों को त्याग कर संसार को आर्य बना और सुख ऐश्वर्य से भरपूर कर। खेद है कि आज हमारे बहुत से भाई जो अपने को ऋषि भक्त कहने में गौरव अनुभव करते हैं वे स्वार्थवश पदलोलुपता और महन्ताई के मोह में पड़े हुए राष्ट्र अहितकारी कार्यों में योगदान कर रहे हैं। समस्त भारत में आज विदेशी ईसाई आर्य जाति के अपठित भोले-भाले ग्रामीण भाईयों को लोभ लालच के सब्ज बाग दिखाकर धर्म भ्रष्ट कर रहे हैं तो दूसरी ओर दो नेशन थ्यूरी के सिद्धान्त को

मान कर जिस मुसलिम लीग ने भारत माता के अंग भंग कराये उसी मुसलिम लीग को भारत में केवल अपनी गद्दियो की रक्षार्थ फलने फूलने का अवसर दिया जा रहा है जिसके कटु फल जबलपुर अलीगढ़, मेरठ चन्दोसी आदि में हुई घटनाओं के फलस्वरूप चखने पड़े हैं और यही धर्म निरपेक्ष यदि सरकार की नीति रही और ऋषि भक्त आर्य मौन देखते रहे तो न जाने और क्या कटु फल चखने को मिलेंगे। अतः मैं ऋषि के परम भक्त श्रद्धालु आर्यों की सेवा में निवेदन करता हूं कि वे आज के पावन दिवस आत्म निरीक्षण कर अपना कर्तव्य निर्धारण करें कि भविष्य में उन्हें क्या करना है। यदि हमें संसार तो बहुत दूर की वस्तु है अपने देश को आर्य बनाना है एवं ईसाईयों के चंगुल से आर्य सन्तान की रक्षा करनी है तथा मुसलिम लीग जैसी साम्प्रदायिकता और पक्षपात पूर्ण जमात को यहां फलने फूलने से रोकना है तो उन्हें आज दृढ़ प्रतिज्ञा हो कर यह प्रतिज्ञा लेनी होगी कि वैदिक धर्म प्रसार एवं वैदिक ज्योती जगाने के हेतु मुझे सभ्यता के आदि केन्द्र ग्रामों में अपनी शक्ति लगानी होगी। व्यक्ति गत रूप से अथवा सामहिक रूप से हमें शहरों का मोह त्यागना होगा। सच्ची नागरिकता, सच्ची सेवा वृत्ति का दर्शन आज भी जब कि गांव उजड़ रहे हैं ग्रामों में ही दृष्टि गोचर हो रही है। आर्य समाज के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े उत्सव जो आज शहरों में होते हैं यदि ग्रामों में भी किये जावें तो शक्ति कम और लाभ महान प्राप्त हो होगा। एक समय था जब हमारे ग्राम दूध, दही व घृत की नदी बहाने वाले सरोवर समझे जाते थे किन्तु आज स्वतन्त्र भारत के ग्राम राग, द्वेष, छल कपट कूटनीति, स्वार्थान्धता के गढ़ बनते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सचमुच यदि इस समय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के आदि केन्द्र ग्रामों की ओर आर्य समाज के नेताओं ने ध्यान न दिया तो हम अपने हाथ ने अपने जीवन से एक ऐसा विष वृक्ष आरोपित कर जायेंगे जिसका काटना हमारी भावी संतान को न केवल कठिन वरन् सर्वथा असम्भव होगा। आज हमारे ग्राम धार्मिकता और जातियता के भाव के कारण सत्यता, त्याग बलिदान स्नेह आदि सद्गुणों से रहित हो क्रूरता, दुष्टता, असहिष्णुता राग, और द्वेष घर बनते जा रहे हैं।

अतः ऋषि निर्वाण के पावन पर्व पर प्रत्येक आर्य नेता विद्वान सन्यासी महात्मा युवक वृद्ध को प्रतिज्ञा और प्रण करना चाहिए कि उस की वह शक्ति जो धर्म प्रचार से सम्बन्धित है वह ग्रामों में ही लगेगी। आज नगरों में जो उत्सव सम्मेलन और बड़े बड़े यज्ञ हो रहे हैं यदि उनका चतुर्थांश भी ग्रामों में हो तो मेरा विश्वास है कि न केवल आर्य समाज की समस्याएं किन्तु हमारी राष्ट्रीय सरकार की भी बहुत सी वे समस्याएं जो उस की मैशिनरी को सर्वदा चिंतित बनाये रखती हैं सर्वथा के लिए समाप्त हो जाएंगी। क्या मैं आशा करूं कि हमारे आर्य भाई मेरे इस सुझाव पर दृष्टिपात करेंगे।

'स्वामी दयानन्द जी'

पिशोरीलाल खुराना 'प्रभाकर'

स्वामी जी स्वर्ग से आए थे,
वेदों के नगाड़े आकर बजाए।
अविद्या के दीप बुझा कर के
विद्या के दीप जलाए थे।
भारत की डुबती नैया को,
लेकर पार लगाया था।
छूतछात के बन्धन तोड़,
एकता का राग अलपाया।
असत्य को मिटा कर के,
सत्य का पथ दिखाया।
भूले भटके इस जग को,
नया मार्ग दर्शाया।
पतितोद्धार करा कर के
नीचों को गले लगाया।
मिटती हिंदू जाति को,
फिर से दृढ़ बनाया।
दुख की आग बुझा करके,
योग का पवित्र जल छिड़काया।
भूले भटके जग बटोहियो को,
एक नया स्वर्ग मार्ग दिखाया।
हिंसा को झूठ बता करके,
अहिंसा का झंडा फहराया।
बग्घी एक हाथ से रोक करके,
ब्रह्मचर्य बल जग को दिखलाया।
पाठ निस्वार्थता का पढ़ाया,
स्वार्थ से जग को बचना सिखाया।
लक्ष्य यही जीवन का बनाया,
भारत को गुरु जगत बनाया।
कहे पिशोरी दीवाली आई'
स्वामी जी की स्मृति लाई।
सारे समाज में यही वार्ता छाई,
दीपाली की सुन्दर बहार आई।

कृण्वन्तो ॥ ओ३म् ॥ विश्वमार्यम

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर

वदोद्धारक—महान् सुधारक

आर्य जगत् का

वेदांक नंबर



महर्षि दयानन्द सरस्वती

अधिष्ठाता प्रो. श्री डा० वेदीराम जी

मूल्य ५० पैसे

सम्पादक—श्री त्रिलोकचन्द्र शास्त्री

ओ३म्

आर्य जगत्

का

वेदांक नंबर

११ अगस्त १९६८, सन् २०२५

वर्ष २८] ४ तथा ११ अगस्त १९६८, २८ श्रावण २०२५ का सम्मिलित अंक ३०-३१

वेदामृत

वेद : परमोधर्मः

एकस्य वर्षस्य अनन्तरं वेद सप्ताहः समायातः। सर्वत्र समारोहः भविष्यति वेद कथा च। वेद-निष्ठां मनसिकृत्वा 'वेदगायन पंचकम्' इदं पञ्चभिः श्लोकैः कृत्वा आर्यजगत् विशेषांके दीयते। वेदः परमोधर्मः। मालिनी छन्दः। —स०

निगम निहित ज्ञानं सर्वश्रेष्ठञ्च पूर्णं,
निखिल मनुजहेतोः सृष्टुरादौ प्रदत्तम्।
नमयति नरवंशं धर्ममार्गे सदैव,
पठनमननयोग्यं वन्दितं सर्व लोकैः ॥ १ ॥

भाव—वेद का ज्ञान सर्वोत्तम और पूर्ण है। प्रभु ने सृष्टि आरंभ में मानवहित के लिए दिया है। मानव समाज को धर्मपथ पर चलाता है। यह पढ़ने व मनन करने के योग्य है। सब से वन्दनीय है।

इदमपि शुभकार्ये गेयमास्थापरीतैः,
रविकिरणविकीर्णे यन्निशाभ्यागमेच।
मधुर रससमेतैः मन्त्रपाठैः श्रुतिज्ञैः,
परमरससुधाया दिव्यस्रोतोऽनुरूप. ॥ २ ॥

भाव:—प्रत्येक शुभकार्य में प्रातःसाय वेद का निष्ठापूर्वक गायन करना चाहिए। इस परमरस का पान भी करना चाहिए।

जगति विविधकार्यं श्रूयते मानवानां,
परमनिधिरनूप. वेद रूपा सुरूपः ।
श्रुतिपठनपरो यो मानवो विश्ववन्धः
निजपथपरिमार्ग-प्राप्त ज्योतिस्तथायम।

भाव: —अनेक कार्यो मे वेद परमधर्म, परमनिधि है। वेदपाठी पूज्य होता है। उसे ज्योति पथ पर चलते सदा ज्योति मिलती रहती है।

भवविषय विशीर्ण जीवित मानवानां,
इहजगति समन्ताद दृश्यते कष्टमेतत्।
निगमपठनकार्यं रुद्धनेत्रा मनुष्या,
अत इदमभिञ्च दु खजाल प्रकीर्णम ॥४।

भाव—विषयभोगो में लगे लोग वेद का पढ़ना पढ़ाना त्याग बैठे हैं। वेद पठन से आखे बन्द किए हैं यह बड़ा ही दुःख का विषय है।

भवत भात चार्या वेदधर्मानुशीलाः,
निगमरस सुधाया वर्षका मेघकल्पा।
निखिलजगति शीघ्रं वेदविस्तारकःस्यात,
प्रति वसनामिदानीं वेदगीतानुगीतम॥५॥

भाव:—आर्यो! मेघ बन कर वेद की वर्षा करते रहो। सारे विश्व में वेद का प्रचार हो तथा प्रति घर वेदगायन से भरपूर हो जाए।

–त्रिलोक चन्द्र शास्त्री सम्पादक

ब्रह्म वो गृहे

भगवान का आदेश है कि आप सब के घरो मे वेद हो। जीवन मे वेद हो। ज्ञान की ज्योति से प्रत्येक परिवार एव जीवन चमकता हो। यह प्रभु का कितना सुन्दर आदेश है। वेद के बिना घर भी क्या घर है, परिवार कैसा परिवार है? मानव जीवन यदि वेद से रहित है तो ऐसा जीवन किस काम का? इसी आदेश की पालना करते हुए ही हमारे पुरातन ऋषियो ने, आर्य जाति के समस्त अगो ने वेद का बड़ा मान किया था। वेद की प्रतिष्ठा मे किसी प्रकार की कमी नही रही। प्रतिदिन परिवारो मे भगवती श्रुति का गायन-श्रवण, पठन पाठन, मनन चिन्तन लगातार चलता था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वेद ही वेद था। समाज हो या राष्ट्र-सर्वत्र वेद की प्रतिष्ठा थी। वेद के निन्दक को नास्तिक की सज्ञा दी जाती थी। वेद का विरोधी ज्ञान का विरोधी माना गया था। वेद, जीवन हो या समाज—सब का केन्द्र था। वेद के बिना परिवार कगाल था, समाज खाली था, समूचा राष्ट्र- सूना-सूना सा था। धर्म मे, अर्थ व्यवस्था में, राजनीति मे तथा धर्म मे सर्वत्र वेद को प्रमाण मान कर निर्णय किया जाता था। वेद परम-धर्म था, परम कर्त्तव्य था, परम रस तथा परम धन था। व्यक्ति और समाज की सबसे बड़ी यही सम्पत्ति था। सारा व्यक्ति एव राष्ट्र विश्व सब प्रकार से सुखी थो, सम्पन्न था। समय बदला। जीवन मे वेदनिष्ठा कम हो गई। जीवन-परिवार मे वेद का पठन-पाठन जाता रहा प्रकृति के पदार्थो की भरमार होने लगी। वेद के ज्ञान की ज्योति मन्द व बन्द होती गई—उसका परिणाम यह निकला कि जीवन का सुख-शांति समाप्त हो गया। सारा वातावरण बदलता गया। समाज कुछ बन गया।

आर्यो! वेद सप्ताह मे हम वेदप्रचार का सदा व्रत लेते है। वेद का पढना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना परम धर्म मानते हैं। वेदसप्ताह फिर आ गया है। अपने व्रत को फिर दुहराना होगा। जीवन मे, परिवार-परिवार में वेद की प्रतिष्ठा करानी होगी। आज सब कुछ है, किंतु वेद नही है। उसके प्रचार का सकल्प लेना होगा। यह सप्ताह इसी व्रत का स्मरण कराने आता है। देव दयानद ने आर्यसमाज की स्थापना ही वेदप्रचार के महान् मिशन निमित्त की थी। हम दिन वेद पढ़े, स्वाध्याय करें तथा वेद पथ पर चले।

—त्रिलोकचन्द्र

वेद और उसका प्रचार तथा प्रसार

[श्री प्रिंसीपल भीमसेन जी बहल मन्त्री प्रधान]

आर्य सभ्यता में वेद का बहुत ऊंचा स्थान है। इस पुण्य पवित्र भारतवर्ष में सदा से ही वेद को ऊंचा माना गया है। सृष्टि के आरम्भ में चार आदि ऋषियों के हृदय में वेद ज्ञान की अनुभूति हुई। इसके उपरांत यह पुस्तक आकार रूप में जनता के सामने आये। प्राचीन काल में वेदों का पठन-पाठन निरन्तर चलता रहा। प्रत्येक व्यक्ति वेदानुकूल अपना जीवन व्यतीत करता था।

महात्मा मनु जी महाराज ने वेदों को सनातन चक्षु कहा है। (सर्वं वेदात प्रसिद्धयति) जीवन का सभी कुछ वेदों से मिलता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमें वेदों से शिक्षा मिलती है चाहे वह जीवन का कोई भी क्षेत्र हो इस लिए हमें (वेद दनम ब्रह्म गायत) परमात्मा के लिए वेद का गायन करना चाहिये। क्योंकि सर्व कर्तव्य बताने वाले वेद ही धर्म है मूल है। वैदिक धर्म ही एक सच्चा धर्म है। शेष तो सभी मत हैं, धर्म नहीं। भारत की संस्कृति में सभीने ही वेदके प्रति पूरी निष्ठा और सम्मान प्रकट किया है। मध्यकाल में विशेषकर महाभारतके युद्ध के उपरान्त भारत से वेदों का पठ पाठन और स्वाध्याय धीरे-धीरे कम हो गया और हम धीरे धीरे वेद से दूर होते गए। हम वेद ज्ञान को भूलकर, वेद का नाम लेकर कई प्रकार के अनर्थ भी ढाने लगे। ऐसे समय में आर्य समाज के महान प्रवर्तक देव दयानन्द ने लोगो का ध्यान वेदो की ओर फिर से दिलाया और आप रात दिन एक करके वेद प्रचार में जुट गए। विदेशियो ने वेद मन्त्रो के अर्थों का अनर्थ कर रखा था। जिससे लोगो की श्रद्धा वेदों से उठती चली जा रही थी। महर्षि का ध्यान सर्व प्रथम इस ओर गया और स्वामी जी महाराज ने वेदो का शुद्ध भाष्य करने के लिए कलम उठाई।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने सभी ग्रन्थो मे वेदों की बड़ी महिमा गाई। उन के सारे कार्यों का आधार वेद ही थे। उन्होंने वेद को परम धर्म कह कर पुकारा और आर्य समाज के नियम लिखते समय तीसरा नियम यही बनाया कि (वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना, सब आर्यों का परम धर्म है) स्वामी जी महाराज ने अपना सारा जीवन वेद प्रचार में ही लगा दिया। वेदो के प्रति उनकी बड़ी निष्ठा थी। स्वामी जी और सभी कुछ छोड़ सकते थे। परन्तु परमात्मा तथा उसकी अमरवाणी वेद को नहीं छोड़ा।

इस वेद के पथ पर चलते हुए, स्वामी जी महाराज ने अनेको कष्ट उठाए, अनेको बाधाएं मार्ग में आईं। लोगों से ईंटे और पत्थर भी खाए, अनेको यातनाएं सहन की, कई बार विषपान भी किया और अन्त में अपने प्राणों की भेंट भी चढ़ा गए परन्तु वेद के पथ से तिल भर नहीं डगमगाए उनकी वेद में दृढ निष्ठा थी। इसके बारे उन्होंने किसी से कोई समझौता नहीं किया। बड़े बड़े प्रलोभन हथियार और मार्ग की रुकावटें उस देवता को इस मार्ग से विचलित नहीं कर सकी।

महर्षि दयानन्द वेदो के उद्धारक थे। वेद भक्त और वेदप्रचारक थे, वेदो के भाष्यकार थे, और वेद के महान् विद्वान् थे। स्वामी जी चाहते थे कि एक बार मैं चारों वेदो का भाष्य कर जाऊं और वह इस कार्य में लगे भी निरन्तर रहे, परन्तु सम्भवतः विधाता को यह स्वीकार न था।

वेद के प्रचार और प्रसार के लिये उन्होंने आर्य-समाज की स्थापना की कि वेद का प्रचार निरन्तर चलता रहे इस में किसी प्रकार की बाधा न आये। महर्षि के बाद महात्मा हंसराज जी प० गुरुदत्त एम. ए., स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, प० लेखराम जी आदि-आदि अनेको महारथियो ने, लेखो के रूप में,

व्याख्यानो के रूप में, वेद के प्रचार की तीव्रगति दी। अनेकों उपदेशकों और गायकों ने स्थान स्थान पर वेदों का डंका बजाया। वेद का सन्देश भारत में ही नहीं विदेशों में भी सुनाया। आर्य प्रादेशिक सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा आर्य सार्वदेशिक सभा रात दिन वे सभी वेद प्रचार में लगी हुई है। आर्य प्रादेशिक सभा निरन्तर इस कार्य में लगी हुई है। सभा के उपदेशक तथा भजनोपदेशक रात दिन वेद के प्रचार और प्रसार में लगे हुए हैं। वेद संदेश को अधिक से अधिक फैलाने के लिए हमें जनता के सहयोग की आवश्यकता है। तभी पूर्ण सफलता मिलेगी आओ वेद के अनुसार आचरण करते हुए सब मिलकर चारों दिशाओं में वेद प्रचार का डंका बजा दें। महर्षि दयानन्द और महात्मा हंसराजजी के अधूरे कार्यों को पूर्ण करने का इस श्रावणी के शुभ अवसर पर व्रत लें। तभी हमारा जीवन सफल होगा।

वेद-ज्ञान का महत्व

[श्री डा० वेदी राम जी एम० ए० पी० एच-डी० सभा मन्त्री]

यह पुण्य पवित्र भारतवर्ष सदैव से ही धर्म भूमि और यज्ञीय भूमि रहा है। क्योंकि धर्म का आदि स्रोत यहीं से उद्बुद्ध हुआ। वैदिक ज्ञान की "प्रभा" का उदय भी इसी पुण्यभूमि के नगाधिराज हिमालय में, त्रिविष्टप देश में हुआ। इसी पर सर्वप्रथम सृष्टि उत्पन्न हुई इसी भूमि पर मुक्तात्माओं में चार आदि ऋषियों के हृदयों में वेद ज्ञान की अनुभूति जागृत हुई —

अग्नि वायुरविभ्यस्तु,
त्रय ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थं,
ऋग्यजुः साम लक्षणम्। —(मनुः)

प्रश्न होता है, वेद-ज्ञान का जागरण क्यों हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में वेद ज्ञान का माहात्म्य अपेक्षित है। इस माहात्म्य वर्णन हेतु कई विद्वानों का कथन है कि —

"भगवान ने अग्निविज्ञान के बोध कराने में ऋग्वेद, वायु विज्ञान के लिए यजुर्वेद, सूर्य-विज्ञान के लिए सामवेद की सृष्टि की।

इस कथन का अभिप्राय है कि इस विराट जगत् के ज्ञान कराने के लिए ही वेद-ज्ञान प्रकट हुआ।

वैशेषिक दर्शन के वचनानुसार 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्—वेद - ज्ञान माहात्म्य के दो कारण माने जा सकते हैं — एक तो "तद्वचनात्' अर्थात् तेन ईश्वरेण वचनात्—क्योंकि यह ईश्वर प्रणीत है इसलिए इस ज्ञान का महत्व है और दूसरी बात यह है कि —"तद्वचनात्"— इस में पूर्ण धर्म का प्रतिपादन किया है।

आज तक ऋषि, मुनि, महात्मा, ब्रह्मवादी और शास्त्रकार सभी चाहे अन्य बातों में कितने ही मत-भेद क्यों न रहते हों किन्तु जब वेदों का नाम समक्ष आ जाता है तो सभी हाथ जोड़ देते हैं - और मानने लगते हैं कि —

'शब्दश्च आह तदस्माकं प्रमाणम्'

—महाभाष्य—

अर्थात्- वेदों का एक-एक शब्द हमारे लिए प्रमाण स्वरूप है नैयायिक विद्वान तो यहां तक कह देते हैं कि—

'मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्य,

आप्त प्रामाण्यात।'—न्याय

धर्म शास्त्रकार तो स्मृति-ग्रन्थों को वेदानुकूल होने पर ही प्रामाणिक मानते हैं—मनुस्मृतिका वचन है कि—

'सर्वं वेदे प्रतिष्ठिम।'

सब कुछ वेदमें ही है।

'सर्वं वेदात प्रसिद्ध्यति'

सब कुछ वेदसे ही सिद्ध होता है।

'वेद एव परो धर्मः'

वेद ही परम उत्कृष्ट धर्म है।

— इस प्रकार के महत्व के साथ-साथ वेद ज्ञान की एक अन्य विशेषता यह भी है कि वह ऐसे ज्ञान का दाता भी कहा गया है जिसका किसी मानव को ज्ञान नहीं होता— किसी भाष्यकार ने कहा है कि—

'अधिगतार्थ गन्तु'—

वेद अज्ञात् अर्थों को भी प्रकट कर देता है। जैसे लोक, परलोक, सृष्टि विज्ञान या देवताओं का परिज्ञान आदि। मनु ने भी ऐसे ही कहा है कि—

'चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोका:
चत्वा रश्चाश्रमा: पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च,
सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति ॥ मनु०

अर्थात्—चारों वर्णों की बात, तीनों लोकों की—(पृथ्वी, अन्तरिक्ष, सूर्यलोक की बात), मनुष्य समुदाय को किस प्रकार अपनी आयु को चार आश्रमों में विभक्त कर जीवन व्यतीत करना चाहिए इत्यादि बातें। भूत, भविष्यत् और वर्तमान सबका ज्ञान वेदों से ही होता।

वेद का ज्ञाता सेनापति बन सकता है, राज्य चला सकता है, दण्ड नीति द्वारा राज्य संचालन कर सकता है। यही नहीं अपितु समस्त लोकों का अधिपति भी बन सकता है—

सैनापत्यं च राज्यञ्च,
दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्व लोकाधिपत्यञ्च,
वेद शास्त्र विदर्हति। —मनु०

वेद के सम्बन्ध में उपर्युक्त मान्यता सदा अक्षुण्ण रही है। काल प्रभाव से भारत पर नाना वर्गों, नाना मत-मतान्तरों और विविध शासनों का अधिकार रहा। वेदों की प्रतियों के ढोल और भांड, धूर्त और निशाचरों के कहाए हुए भी बताया गया। किन्तु इन कुचक्रों में ग्रस्त रहते हुए भी भारतीयों की आत्मा से कोई भी आततायी वेद-ज्ञान के प्रकाश को नष्ट न कर सका।

आज स्वराज्य मिल जाने पर हमें वेद सर्वकल्याण-कारी ज्ञान के प्रसार की बड़ी आशाएं थीं किन्तु धर्म-निरपेक्षता की बाढ़ में आज चिर प्रतीक्षित वह सभी आशाएं भी धूमिल सी नजर आने लगी हैं।

वर्तमान स्वराज्य एक प्रकार से पचमेल भाण्ड है। यह अपनों का राज्य तो है किन्तु इसमें हमारा 'स्व' कहीं भी दिखाई नहीं देता। 'स्व हीन' होने के कारण इसमें भारतीय आत्मा का सत्व भी विद्यमान नहीं। अपना तो कहना मात्र ही है, वास्तव में तो सभी कुछ पराया सा लग रहा।

इस पराए पन को एक ही प्रकार 'स्व' में परिणत किया जा सकता है कि भारत वासियों में वेद ज्ञान के प्रति वह आस्था उत्पन्न कराई जाए कि—

वेद प्रणि हितो धर्मः
अधर्म स्तद्वि पर्ययः॥'

वेद में जो विहित है वही धर्म है। उसके विपरीत सभी कुछ अधर्म है। अपना स्वराज्य वेद प्रणिहित दण्ड नीति पर आधारित होना चाहिए। कोरे भौतिकवाद अध्यात्म शून्य विज्ञान वाद पर आधारित राज्य कल्याण की नींव सदा खोखी ही रहेगी।

अतः आज केवल 'अपरा' (भौतिक ज्ञान) ही नहीं (आत्मिक ज्ञान) के वैदिक तत्व को भी समझना आवश्यक है। वेद ही 'परा' और 'अपरा' विद्याओं का भण्डार है। वही सम्पूर्ण सृष्टि का प्रकाश नेत्र है। इसके बिना व्यक्ति अन्धा है और संसार में सदा असफल रहता है।

वेदों में विज्ञान

[श्री स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, रोपड़ (पंजाब)]

पहले आप पढ़ चुके हैं कि समस्त विज्ञान का मूल 'वेद' में निहित है—महर्षि दयानन्द जी ने अपने वेद भाष्य में स्पष्ट रूप से अनेक स्थलों पर यह विस्तार के साथ वर्णन किया है। प्रस्तुत लेख में इसी विषय पर विद्वान लेखक के विचार पढ़े।

—संपादक

(ख) वैदिक प्राण (**Energy**) — ऋग्वेद के ११वें कांड चौथे सूक्त में इस प्राण का वर्णन है तो लिखते हैं—

'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥१॥
नमस्ते प्राण: क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥२॥
प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राण सर्व उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमा प्राणमाहु प्रजापतिम् ॥३॥

इस सूक्त का देवता या विषय 'प्राण' है। इन मन्त्रों में कहा गया है कि इस प्राण का यथोचित सम्मान या प्रयोग करना चाहिए क्योंकि सब कुछ प्राण के ही वश में है, वह सबका ईक्षण (**Control**) करने वाला है और सब कुछ उसी में स्थित है वा उसी के आश्रय ठहरा हुआ है। सर्वत्र प्राण का ही साम्राज्य छाया हुआ है।

दूसरे मन्त्र में प्राण के चार रूप कहे गये हैं जो सर्वथा आज के विज्ञान के अनुकूल हैं। मन्त्र कहता है कि प्राण का एक रूप है, क्रन्द (**Flow**) वा गतिप्रवाह निरन्तर तरंगें जो अन्तरिक्ष या समुद्रर्णव रूप में दोलायमान हैं। 'क्रन्द' धातु समस्त अर्थ में होती है अर्थात् सतत् गति में होना। प्राण का यही रूप समस्त ब्रह्माण्डान्तर्गत पदार्थों को निरन्तर गतिशील बनाये हुए है जिस से पदार्थ परिवर्तनशील है। प्राण का दूसरा रूप स्तनयित्नु (**Thunder**) है जो प्राण मेघ मण्डल वा अन्य वस्तुओं के संघर्षण, टकराव से गड़गड़ाहट या धमाके के रूप में शब्द रूप में परिणित हो सुनाई पड़ता है। आज के विज्ञानानुसार भी प्राण (**Energy**) शब्द (**Sound**) के रूप में परिवर्तित की जा सकती है और महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वती जी ने तो 'पाणिनीय शिक्षा' को प्रकाशित कराके इस तथ्य को वर्णोच्चारण सीखने वाले प्रारम्भिक विद्यार्थियों के समक्ष ही खोलकर रख दिया है—

आत्मबुद्धया समेत्यार्थान्मनोयुङ्क्ते विवक्षया।
मन: कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्॥

अर्थात आत्मा जब शब्द बोलना चाहता है तो प्रथम बुद्धि से विचार कर मन से युक्त होता है, मनजठराग्नि को पीड़ित करता है, जठराग्नि प्राण वायु को प्रेरित करती है और यही प्राण वायु हृदय की ओर मन्द गति से सञ्चरण करतेहुए शब्द उत्पन्न करताहै वैदिकर्षियोंका यह सदासे सिद्धान्तचला आताहैकि प्राण शब्द रूपमे परिवर्तित या रूपान्तरित हो जाता है। वेदों में तो अनेक स्थलों पर ऐसा वर्णन मिलता है। तीसरा विद्युत अर्थात प्रकाश, प्रकाश भी प्राण का ही रूपान्तर है। 'विशेषण द्योतक' इति 'विद्युत' विशेषतया प्रकाशित, चमकने वाले पदार्थ को ही विद्युत कहा जाता है (**Light is energy**) ऐसा आधुनिक विज्ञान वेत्ता स्वीकार करते ही हैं इस में सन्देह नहीं है।

प्राण का चौथा रूप बड़े महत्व का है। वेद में इसका नाम वर्षत कहा है। वर्षत्—वर्षा का पानी। पानी रसायनों के संघात का रूप है। वर्षा को हम रसायनिक संघात (**Chemical synthesis**) इस लिए कहते हैं कि पानी दो विभिन्न गैसों आक्सीजन

(Oxygen) तथा हाइड्रोजन (Hydrogen) की विद्युत् रूप प्राण शक्ति द्वारा (atomic force) संगठन या सहति होती है, तब बनता है। बिना विद्युत् प्राण के इन में संघात नहीं हो सकता। देखा जाए तो वेद मे ससार के सभी रासायनिक क्रियाओं और पदार्थों को वर्षा रूप में एक ही वर्ग मे एकत्रित कर दिया है या ऐसा कहे कि वर्षा जल ससार के सभी रासायनिक पदार्थों का प्रतिनिधित्व करता है।

सूक्त के १५ मन्त्र मे विस्तार से बता दिया है कि यह प्रगट विश्व (Manifest World) प्राण ही है। सूर्य चन्द्र आदि दिव्य पदार्थ भी प्राण का ही रूप है, ससार की सब वस्तुए इस प्राण के सब हो कार्य करते हैं। यह भी कहा गया है कि जड जगम का पालन पोषण सविधान (प्रजापति) भी प्राण का ही रूप होकर प्राण ही कर रहा है। प्रजापति नाम यज्ञ का है। यज्ञ का अर्थ ऋतु है, इसी के सहारे विश्व स्थित है।

(ग) ऋत (Rotation) अर्थात गतिः—

वेद का यह सुस्पष्ट ज्ञान है कि जड़ प्रकृति मे जब ऋत (rotation) गति को अविच्छिन्न किया जाता है। तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है 'ऋतञ्च सत्यञ्चा ऽ भिद्धात्तपसो ... ।' वही भ्रमर गति (rotation) सूक्ष्म रूप मे परमाणु के अन्दर विद्युत कणों (electrons) के रूप मे और वही सूर्यादि महाकणों के चारो ओर घूमते हुए नक्षत्रो के मध्य कार्य कर रही है। ये सब सूक्ष्म एव महाकण इस ऋत गति के कारण ही परस्पर बंधे हुए हैं। इसी के आधार पर विश्व रचना की आधार शिला रखी गई। वेद का यह ज्ञान सब पश्चिमी विद्वान स्वीकार करते हैं। देखो 'आईनस्टाईन (Einstein's theory of relativity) का पारस्परिक गति का सिद्धान्त यही कहता है कि सब नक्षत्र घूम रहे हैं। कोई भी स्थिर नहीं है।

ऋग्वेद (१०।६१।३) का मन्त्र कहता है:—

"य ऋतेन सूर्य मारो हयन दिव्य पृथयन पृथ्वीं मातर वि।"

अर्थात्—इस ऋत गति के आधार पर ही सूर्य का बीज बोया गया और उससे उसकी दिव्य शक्ति माता को ओर फैलाता है। सूर्य की किरणे भी इस ऋतगति से ही पृथ्वी तक आती हैं। इस वेद के ज्ञान का अभी पश्चिमी विद्वानों को नहीं पता। वह कहते हैं कि यह लहरें हैं। वेद उसे घूमती हुई (Rotations) का रूप दे रहा है। यह विषय पृथक ही विस्तार से उल्लेखनीय है।

अथर्व वेद (५।१७।२) मे "सलिलो...प्रथम जा ऋतस्य।"

अर्थात् ब्रह्म (विश्व) जाया अर्थात विश्व की उत्पत्ति के विषय मे बताया गया कि ऋत से प्रथम में सलिल उत्पन्न हुआ। सलिल कहते हैं गति मति शक्ति को।

(घ) आकर्षण शक्ति (Force of gravitation) :—

यजुर्वेद (१७।३०) में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है :—

'अजस्य नाभावध्येक मर्पितं यस्मिन्विश्वानि तस्थुः।' अर्थात अज=गति (अज गतौ) के नाभिः (न हरति बध्नाति इति नाभिः) बन्धन मे ही सब कुछ आधारित है व अर्पित किया हुआ है, अर्थात अपनी परिधियों (Orbits) के अन्तर्गत सब लोक चक्कर लगा रहे है और अपनी परिधि से कभी विचलित नहीं होते। उसी बन्धन में (gravitation) सारे भुवन=लोक स्थित हैं। किसने स्पष्ट शब्दों अज—शक्ति=आकर्षण शक्ति (Force of gravitation) के सिद्धान्त का वर्णन वेद में किया है। विशेष देखना चाहे तो स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में पाठक पढ़ सकते हैं हम ने तो निर्देशन मात्र किया है। (ङ) धनात्मक एवं ऋणात्मक केन्द्र (Positve and Negative Poles) वेदों में एक अन्य वैज्ञानिक सिद्धांत का वर्णन

एक ही मन्त्र द्वारा जो ऋक् १०।८१।३ तथा यजु:(१७।१९) दोनों स्थानों में किया है। मन्त्र यह है :—

"स बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमि जनयन्देव: एक:" इस मन्त्र में एक बड़े महत्वपूर्ण सिद्धात का प्रदर्शन किया है। वह महती शक्ति द्यावा और भूमि (पृथ्वी) रूप दो दो बाहुओं (शक्ति के केन्द्र) को रच कर अति गतिशील, पतत्रों (पतनशील) अर्थात अनेक प्रकार की किरणों व तरंगो द्वारा (संधमति) संसार को परिपूर्ण व पुष्ट कर रही हैं। (धमतिप्रापयित)। सर्वप्रथम दो केन्द्र बनाए जिन्हें विज्ञान वेत्ता अपने पोल्स (**Poles**) कहतेहैं, जैसे बैट्री के एक गर्म, एक ठण्डा और वह महान् केन्द्र विश्व को बांधे हुए है। द्युलोक में सूर्यादि गर्म पोल हैं और पृथ्वी आदि नक्षत्र ठण्डे पोल हैं। यह दोनों पोल कई प्रकार की किरणों द्वारा बन्धे हुए हैं परस्पर कार्य कर रहे हैं। यद्यपि ये दोनो केन्द्र विश्व में अनेकों रूप में व्यवहारित हो रहे हैं और अनेक वस्तुओं में कार्य कर रहे हैं। बिजली के दो पोल्स वा केन्द्र होते हैं। सब बिजली वाले जानते हैं कि एक गर्म तार और दूसरा ठण्डा तार होता है। इन्हें वैज्ञानिक धनात्मक (**Positive**) तथा ऋणात्मक (**Negative**) भी कह देते हैं तब ही बिजली यन्त्र चलते हैं। चुम्बक (**Magnet**) में भी दो केन्द्र उत्तर ध्रुव (**North pole**) तथा दक्षिण ध्रुव (**South pole**) के नामों से पुकारे जाते हैं वहां से भी एक केंद्र से किरणें तरंगें निकल कर दूसरे केन्द्र या पोल में प्रवेश कर जाती हैं, इधर-उधर नहीं जाती। बैटरी के दोनों केन्द्रों को **Anode** वा कैथोड **Cathode** भी कहा जाता है। इसी प्रकार वेद के द्यावा, पृथ्वी—भूमि, रोदसी आदि पारिभाषिक शब्द इसी सिद्धांत का वर्णन करते हैं। प्राणियों में भी यही दो केन्द्र काम करते हैं जो पुरुष तथा स्त्री के रूप में हैं। वेद में द्यौ को पिता एवं पृथ्वी वा भूमि को माता कहा गया है। इनमें भी एक गर्म तथा दूसरा ठण्डा है। पुरुष अर्थात पुरुष गर्म अग्नि, स्त्री जल या ठण्डी है। शतपथ ब्राह्मण में 'अग्निर्वै पुमान्यायो व योषा' अर्थात् पुरुष अग्नि है और स्त्री जल है स्पष्ट कहा है। तात्पर्य यह कि इन दोनो केन्द्रों या बाहुओं से ही सब कार्य पूरे हो रहे हैं। उपनिषद में महर्षि पिप्पलाद ने इस विषय का प्रतिपादन करते हुए इन दोनों अन्यतों बाहुओं व केन्द्रों की संज्ञाएं क्रमश: प्रमाण देकर सोदाहरण विस्तृत वर्णन किया है कि यह दोनो केन्द्र परस्पर विरुद्ध भिन्न होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति आकर्षण रखते हैं। इनका विश्व रचना में महत्वपूर्ण हाथ है इस मन्त्र ने इस सिद्धांत का प्रदर्शन किया है यह सर्वथा ठीक है।

ऊपर के प्रमाणों से पाठक यह स्वयं अनुभव करेंगे कि पश्चिम के विद्वान कोविद सदियों के इतने परिश्रम के पश्चात् आज जिन निश्चयों पर पहुंचे हैं, वेद यहां अरबों वर्षों से इनका वर्णन करता आया है। कितना अच्छा होता कि यदि इन लोगों ने वेद पढ़े होते वह भी इसी ढंग से तो दोनों का उद्धार हो गया होता उनका भी और वेदों का भी। ★★★

सन्त-वचनामृत

★ओ३म् और गायत्री आदि मन्त्रों का अर्थ समझते हुए जप करके, योगी होकर अर्थात चित्त की वृत्तियों को रोक कर, मन को एकाग्र कर, परमात्मा को सर्व व्यापक समझते हुए ध्यान लगाकर, अपनी आत्मा में परमात्मा का अनुभव, ज्ञान और साक्षात्कार करना और परमात्मा की शक्ति का अनुभव करके उसकी आज्ञानुसार सारे प्राणियों की भलाई करने का नाम ही परमेश्वर की पूजा है।

★जन्म और मृत्यु के बन्धन से छूटकर दुःखों से मुक्ति हो जाती है और परमेश्वर का परम आनन्दमिलता है जिसे वाणी से नहीं कहा सकते।

★ गुण दूसरों के और दोष अपने देखिए।

शिक्षा का वैदिक आदर्श

[श्री धर्मदेव विद्यामार्तण्ड जी प्रधान अखिल भारतीय स्नातक मंडल आनन्द कुटीर ज्वालापुर उ. प्र.]

वेदों में शिक्षा की आधार शिला ब्रह्मचर्य को बताया गया है और ब्रह्मचारी के नाम से विद्यार्थी को पुकारा गया है। ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ ब्रह्म-परमेश्वर में विचरण करना और ब्रह्मवेद का अध्ययन करना है ब्रह्मचर्य मे पूर्ण जितेन्द्रियता, संयम और पवित्रता तथा वीर्यरक्षा का भाव ओत-प्रोत है वेदो मे ब्रह्मचर्य की महिमा अनेक सूक्तो में प्रतिपादित है, जिनमें से अथर्ववेद का कांड ६, ११ सूक्त विशेष रूपसे प्रसिद्ध है। इस सूक्त में तथा अन्यत्र गुरुओं को आचार्य के नाम से पुकारा गया है, जिसका मुख्य अर्थ निरुक्त नामक वेदाङ्ग के कर्ता यास्काचार्यने 'आचार ग्राहयति इत्याचार्यः' (निरु. १, ४,३) इस निर्वचन को करते हुए उत्तम आचार का ग्रहण कराने वाला ही बताया है। जिसने ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्य के व्रत का अच्छी प्रकार पालन किया हो, गृहस्थ में पति-पत्नी-व्रत रहकर संयमपूर्वक जीवन व्यतीत किया हो और वानप्रस्थाश्रम मे पुनः ब्रह्मचर्य का व्रत धारण किया हो, वही सच्चे ब्रह्मचारियों की इच्छा करता और उनका मार्ग-प्रदर्शन कर सकता है इस बात को वेद में आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते' (अथर्व ११,६, १७) इस महत्वपूर्ण शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि आचार्य अपने ब्रह्मचर्यत्व द्वारा ही विद्यार्थियों को सच्चा ब्रह्मचारी बनाने की इच्छा करता तथा उसके लिए प्रयत्नशील होता है। जिसने स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन नही किया, जो स्वयं सदाचारी और ब्रह्म मे विचार करने वाला ज्ञानी नही है, वह शिष्यों को कैसे ब्रह्मचारी बना सकता है? आचरण द्वारा दी हुई शिक्षा का ही स्थायी प्रभाव पड़ता है, आचरणहीन मौखिक शिक्षा का नही! इसीलिए ऋग्वेद ८. २. १५ १८०६ में कहा है कि 'शिक्षा शचीवः शचीभिः' अर्थात हे उत्तम वाणी, कर्म और बुद्धि सम्पन्न आचार्य, अपने कर्मो अथवा द्वारा तुम शिष्योंको शिक्षादो। मन्त्र में शची शब्दका प्रयोग है, जिसके निघण्टु मे शचीति वाङ्नाम निघ. १, ११) शचीति कर्म नाम (निघ. २. १) शचीति प्रज्ञा नाम (निघ. ३,९) वाणी, कर्म और बुद्धि ये तीन अर्थ किए गए हैं। इसलिए हमने 'शचीव का अर्थ उत्तम वाणी, कर्म और बुद्धि सम्पन्न आचार्य किया है। सच्चे आचार्य व शिक्षक को उत्तम सत्य और प्रियवाणी, कर्म तथा बुद्धि से सम्पन्न होना ही चाहिए अन्यथा वह आदर्श शिक्षक कभी नही बन सकता। अन्त के शचीभिः पद का अर्थ हमने 'शचीति कर्म नाम' (निघ. २, १) के अनुसार कर्म वा आचरण किया है, जिसके द्वारा वेदों ने इस महत्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि सच्ची शिक्षा केवल वाणी के द्वारा नही अपितु कर्म वा आचरण द्वारा दी जानी चाहिए। मन्त्र के पूर्वार्ध में बताया गया है कि ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति (अथर्व ११, ६, १७)। अर्थात राजा भी राष्ट्र की विशेषरूप से अथवा भली-भांति रक्षा ब्रह्मचर्य (जितेन्द्रियता, संयम और पवित्रता) और तप (शीतोष्ण, सुख दुःख, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वों के सहन) के द्वारा ही कर सकता है। इसलिए सच्चा राजा बनने के लिए भी ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन अत्यावश्यक है। इसी वेद मन्त्र के भाव को लेकर मनु महाराज ने अपनी स्मृति मे कहा है कि 'जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः। (मनु. ७, ४) अर्थात जितेन्द्रिय राजा ही निश्चय से प्रजाओं को अपने वश मे (रखने मे समर्थ होता है। ब्रह्मचर्य की महिमा बताते हुए सूक्त मे कहा गया है कि —

ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण, देवेभ्यः स्वराभरत्॥
(अथर्व ११. ५. १९)

अर्थात ब्रह्मचर्य और तप के द्वारा ही सत्यनिष्ठ

ज्ञानी लोग मृत्यु पर भी 'विजय प्राप्त कर लेते हैं। जीवात्मा ब्रह्मचर्य से ही इन्द्रियों को सुख से परिपूर्ण कर लेता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही मनुष्यों के प्राण, अपान, व्यानादि तथा वाणी मन, हृदय, ज्ञान, मेधा (धारणावती शुद्ध बुद्धि) सब का पूर्ण विकास होता है और सब दिव्य गुणों का ब्रह्मचारी के अन्दर निवास होता है, वह ब्रह्मचारी अपने में प्रकाशमान ब्रह्म-परमेश्वर वा वेद को धारण करता है, इस बात को इसी सूक्त के २४वें मन्त्र में बताया गया है जो निम्न प्रकार से है—

ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद् बिभर्ति
तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं
वाचं मनो हृदयं ब्रह्ममेधाम् ॥

इसके अर्थ का ऊपर हमने निर्देश कर ही दिया है। इस प्रकार जिस ब्रह्मचर्य के द्वारा समस्त शक्तियों का विकास होता है, उसे शिक्षा का आधार बताना सर्वथा उचित ही है। उस ब्रह्मचर्य का सच्चरित्र निर्माण से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। सच्चरित्र-निर्माण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। इन बातों को वेदों में अनेक बार बताया गया है। उदाहरणार्थ यजु० ६, १४ में आचार्य के मुख से शिष्य को सम्बोधित करते हुए बतलाया गया है —

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि। नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि। (यजु० ६,१४)

अर्थात् मैं उत्तम शिक्षा के द्वारा तेरी वाणी, प्राण, चक्षु, कर्ण, नाभि, उपस्थेन्द्रिय, मलद्वार—इन सब को पवित्र करता हूं। मैं तेरे चरित्र को पवित्र बनाता हूं। तात्पर्य यह है कि शिक्षकों का कर्त्तव्य केवल पुस्तकीय शिक्षा देना नहीं, अपितु उत्तम उपदेश और आचरण द्वारा विद्यार्थियों के सब अंगों को पवित्र बनाना और उन्हें सदाचारी बनाना है। वेदों में इस चरित्र निर्माण पर अधिक बल दिया गया है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वेदों के अनुसार शिक्षा का सबसे मुख्य उद्देश्य चरित्र-निर्माण है। जो शिक्षा चरित्र निर्माण की ओर विशेष ध्यान नहीं देती, वह वस्तुतः शिक्षा नहीं कहला सकती। यह बड़े खेद की बात है कि वर्तमान काल में अंग्रेजों की प्रसारित शिक्षा-प्रणाली के अनुसार प्रचलित शिक्षा सदाचार निर्माण और ब्रह्मचर्य की ओर कोई ध्यान नहीं देती, जिस के कारण विद्यार्थियों में उच्च आदर्शों तथा सच्चरित्रता की प्रायः कमी पाई जाती है। इस ओर अति विशेष ध्यान देने से ही राष्ट्र का उत्थान हो सकता है। वैदिक धर्मोद्धारक शिरोमणि स्वनामधन्य आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी ने उपर्युक्त शिक्षा के वैदिक आदर्श को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का लक्षण निम्नलिखित अत्यन्त महत्वपूर्ण शब्दों में किया—

शिक्षा—जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय-तादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं (सत्यार्थप्रकाश स्वमन्त-व्यामन्तव्य प्र.)। महात्मा गांधी जी ने भी इस विषय में विचार प्रकट करते हुए लिखा है—

'शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षा वही है जिसके द्वारा साहस का विकास हो, गुणों में वृद्धि हो और ऊंचे उद्देश्यों के प्रति लगन जागे।' (महात्मा गांधी का सूक्तियां पृ० ५)।

इसके साथ यह बात भी बड़ी महत्वपूर्ण है कि वेद में शिक्षा का उद्देश्य सच्चे मनुष्य का निर्माण बताया गया है जिससे वैदिक शिक्षाओं की उदात्तता और सार्वभौमता का भी परिचय मिलता है। वैदिक आदर्शानुसार क्योंकि शिक्षक लोग छात्रों के लिए पिता के समान होते हैं और अनुभवी ज्ञानवृद्ध भी (अधिकतर वानप्रस्थाश्रमी) होते हैं, अतः उन्हें 'पितरः' इस पद से सम्बोधित करते हुए यजुर्वेद २, ३३ में कहा गया है कि—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् ।
यथेह पुरुषोऽसत् ।।　　(य. २. ३३)

अर्थात् हे पिता के समान ज्ञान द्वारा रक्षा करने वाले अनुभवी ज्ञानियों ! आप कमलमालाधारी सुन्दर शिक्षार्थी कुमार को अपने गुरुकुल रूपी गर्भ में ऐसे धारण करो, जैसे माता गर्भ को बड़ी सावधानता और प्रेम से धारण करती है जिससे वह सच्चा पुरुष बन सके और उसके अन्दर मानवोचित सब उत्तम का विकास हो सके।

इस मन्त्र के द्वारा जहां ऐसी शिक्षा पर बल दिया गया जो सच्चा आदर्श पुरुष बना सके, वहां उपमा के द्वारा यह भी स्पष्टतया सूचित किया गया है कि गुरुजनों को न केवल पिता अपितु विद्यार्थियों के लिए माता के समान प्रेममय कोमल स्वभाव का भी होना चाहिए।

शिक्षा और सम विकास

वेदों के अनुसार जहां शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र निर्माण है, वहां उसका ध्येय सम विकास अर्थात शरीर, मन, वाणी और आत्मा की शक्तियों का विकास भी है।

यजुर्वेद ६,१५ में इस विषय को गुरु की शिष्य के प्रति निम्नलिखित उक्ति द्वारा स्पष्ट किया गया है।

मनस्त आप्यायतां वाक्त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां श्रोत्रं त आप्यायताम् । यत् ते क्रूरं यदास्थितं तत् त आप्यायतां निष्ट्यायतां तत् ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसी ।　　(य. ६,१५)

अर्थात् हे शिष्य ! मेरी दी हुई शिक्षाओं और सत्कर्मानुष्ठान से तेरे मन, वाणी, प्राण, चक्षु, कर्णादि की शक्ति बढ़े। तेरे स्वभाव में जो क्रूरता है वह (निष्ट्यायताम) बाहर निकल जाए, वह शुद्ध हो जाए, धुल जाए। जो तेरे अन्दर स्थैर्य धैर्य आदि है, वह वृद्धि को प्राप्त हो। सदा के लिए तुझे सुख शांति प्राप्त हो। गुरुपत्नी गुरु को ओषधि के नाम से सम्बोधित करती है, जिसका तात्पर्य एक तो औषधिवत् दोष निवारक है और दूसरा (ओषो विज्ञानं धीयतेऽस्मिन् सः तत् सम्बुद्धौ अर्थात्) ज्ञानियों में श्रेष्ठ अध्यापक महोदय ! आप इस शिष्य की ज्ञान द्वारा भलीभांति रक्षा करें। गुरु अपनी विदुषी धर्मपत्नी को स्वधिति के नाम से सम्बोधन करता है, जिसका अर्थ आत्मशक्ति को धारण करने वाली विदुषी अध्यापिका है। उसे इस सम्मान सूचक पद से सम्बोधित करते हुए गुरु कहता है कि तुम भी अपनी शिष्या कन्या की ज्ञान द्वारा सदा रक्षा करो ? कभी इसकी (मा हिंसी:) हिंसा मत करो। इस प्रकार इस मन्त्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द सरस्वती ने भावार्थ इन शब्दों मे दिया है—

'सत्कर्मानुष्ठानेन सर्वस्योन्नतिर्भवत्यतः सर्वैर्मनुष्यैर्गुरुशिक्षया समस्तकर्मानुष्ठेयम् । दम्पतीपरस्परमुपदिशेतां हे पते ! भवनयं शिष्यो यथा सद्यो विद्वान् स्यात् तथा प्रयतताम् । हे धर्मपत्नि ! भवती यथेयं कन्या पूर्णं विदुषी भवेत् तथा विदधातु इति ।

तात्पर्य यह है कि गुरु शिष्यों को सब प्रकार से उन्नत करने तथा उनकी प्राण, वाणी, मन आंख, नाक, आदि इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाने के लिए सदा प्रयत्न करते रहें। अध्यापिकाएं भी अपनी शिष्यों के प्रति इसी कर्तव्य का पालन करें। इस प्रकार समस्त शक्तियों के सम विकास को यहां शिक्षा का एक प्रधान ध्येय बताया गया है। इन उद्देश्यों की पूर्ति गुरु शिष्य के निकटतम (माता-पिता और पुत्र व समान) सम्बन्ध से ही हो सकती है, अतः वेदों में उसका प्रतिपादन है। शिक्षा के उच्च वैदिक आदर्शों को क्रियात्मक रूप देने का सब शिक्षा संस्थाएं जितना प्रयत्न करेंगी उतना उनके द्वारा छात्र-छात्राओं का वास्तविक कल्याण होगा। यह सच्ची राष्ट्र सेवा होगी।

★★

वेद-आर्यसमाज और अनुसन्धान

[श्री प्रा. भद्रसेन जी, अनुसन्धान केन्द्र, घरोण्डा (करनाल)]

आर्य समाज कोई धर्म या सम्प्रदाय नही है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश मे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि हमारा धर्म—वैदिक धर्म है, वेदो अर्थात वैदिक धर्म के प्रचार के लिए ही आर्य समाज की स्थापना की गई थी। अतएव आर्य समाज के तृतीय नियम मे विधान किया है कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है, वेद का पढना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यो का परम धर्म है।' महर्षि की दृष्टि मे वेद की विचार धारा से ही ससार का कल्याण, विकास एवं ससार मे सुख, शान्ति और समृद्धि हो सकती है। वेद महर्षि के जीवन और कार्य के प्राण थे, इसीलिए ही मैक्समूलर ने महर्षि को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था। महर्षि का प्रत्येक सिद्धान्त और विश्वास वेद के अनुकूल था। वेदो के स्वत: प्रमाणत्व का उद्घोष कर महर्षि ने वेदो को सर्वोच्च स्थान दिया।

वेद के इस महत्व को समक्ष रख कर ही वेदो के प्रसार के लिए आर्य समाज की स्थापना की गई। महर्षि के निर्वाण के पश्चात आर्य समाज ने इस दिशा मे सराहनीय कार्य किया और वेद का स्वरूप, भाष्य और परिचय की दिशा मे विविध प्रयास किए गए। वेद की विशालता और महर्षि की भावना को देखते हुए इस प्रयास को पर्याप्त और पूर्ण नहीं कहा जा सकता। और न ही इस कार्य से वेद का सारा स्वरूप इतना स्पष्ट हो पाया है कि जिस को पढ़ने के पश्चात यह कहा जा सके कि इस क्षेत्र में कार्य की और आवश्यकता नही है तथा प्रत्येक शका का समाधान हो गया है। वेद की गरिमा, विपुलता और तत्सम्बन्धी प्रचलित धारणाओं को देखकर उसे नगण्य या सीमित ही कहा जा सकता है।

सब से अधिक विचारणीय बात यह है कि आज विज्ञान का युग है। प्रत्येक क्षेत्र मे बहुत प्रगति हो रहीहै। शिक्षा क्षेत्रमे तुलनात्मक, परीक्षणात्मक और विचारात्मक बहुत सारा उत्कृष्ट कोटी का साहित्य प्रकाशित हो रहाहै। प्रत्येक विश्वविद्यालयमे पर्याप्त छात्रवृत्ति देकर अनुसन्धानात्मक कार्यको प्रोत्साहन दिया जा रहाहै। व्यक्तिगत रूप से भी पी.एच.डी., डी. फिल और डी. लिट आदि उपाधियों की प्राप्ति के लिए उत्कृष्टतम साहित्य का सृजन हो रहा है। जिससमय महर्षि तथा आर्य समाज ने प्रारम्भ मे कार्य का श्री गणेश किया था, उस समय न तो इतने सहायक ग्रन्थ उपलब्ध थे और न ही तुलनात्मक अध्ययन की सुविधाए प्राप्त थी। इस दिशा में आर्य समाज में जोप्रशस्यतम कार्य हुआ, उसमेसे बहुत कमही अनुसन्धान स्तर का है अधिकतर सिद्धात की भावना मे और सामान्य जनता मे प्रचार के लिए लिखा गया।

अनुसन्धान की महत्ता और उपयोगिता का ध्यान रखते हुए कई बार संगठित रूप मे अनुसन्धान केन्द्र खोलने के प्रयास हुए, परन्तु कोई भी मूर्त रूप में समक्ष नही आया। कुछ तो योजनाओं के गर्भ मे ही समा गए और टंकारा का कार्य दो चार मास पश्चात् ही दिशा बदल कर खड़ा हो गया।

आर्यसमाज का चतुर्थ नियम है 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए' और अष्टम नियम मे विधान है कि 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए' इन नियमों की चरितार्थता के लिए अर्थात सत्य-असत्य एवं विद्या-अविद्या के विवेक के लिए एक अनुसन्धान केन्द्र की अत्यन्त आवश्यकता है। आर्यसमाज एक बुद्धिजीवी संस्था है, बुद्धि जीवियों के लिए आज विज्ञान के युग में अनुसन्धानात्मक कार्य की अत्यन्त अपेक्षा है, इस के बिना उनका एक पग भी आगे नही बढ़ सकता। परन्तु आज

परिस्थितियों को देखते हुए यहां अनुसन्धान का अभाव-सा दिखाई देता है। सार्वदेशिक और प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं का यह कार्य था कि इस अत्यन्त आवश्यक कार्य की ओर गम्भीरता से ध्यान देते, परन्तु प्रतिनिधि सभाओं की गतिविधियों और विवादों को देखते हुए इस की आशा करना भी कठिन प्रतीत होता है। क्योंकि उनको उस उधेड़बुन से ही अवकाश नहीं मिलता।

अतः आर्य जनता से प्रार्थना है कि महर्षि की भावनाओं और उनके कर्तव्य को सामने रख कर सोचें और एक बहुत विशाल, चिरस्थायी सुदृढ़ अनुसन्धान केन्द्र बनाने का दृढ़ निश्चय करें तथा इस विचार को साकार रूप देकर आर्यसमाज के इतिहास की एक बहुत बड़ी कमी को पूर्ण करें। वेद सप्ताह और श्रावणी के पवित्र पर्व पर इसके सम्बन्ध में विचार करें और इसकी पूर्ति का दृढ़ निश्चय करें।

★★

त्रय तापों से तप्त विश्व का वेदों में है त्राण।

(श्री विजय 'निर्बाध' अडीटर इन्चार्ज पंजाब केसरी)

जीवन का सुखसार मनोरम अमृतमय, रसखान !
त्रय तापों से तप्त विश्व का वेदों में है त्राण ॥

मनुज मात्र को मानवता के पुण्य मार्ग दर्शाते !
कर्म भावना से ऊपर हैं वेद हमें बतलाते !!

बाधाओं से चलो खेलते विघ्नों को ठुकराओ !
कर्म करो पर फल की इच्छा मन में ही मत लाओ !!

वेदों की यह सीख सुपावन सब चिन्ताएं हरती !
तन नश्वर है मर सकता है, नहीं 'आत्मा' मरती !!

स्वाभिमान से जीना सीखो दैन्य भावना त्यागो !
क्रूर काल से टकरा कर भी सुख सत्य अनुरागो !!

सदा तुम्हारे रोम-रोम में अतुलित पौरुष जागे !
किसी मूल्य पर झुके नहीं यह शीश अन्य के आगे !!

कहां अहिंसा परम धर्म है यथा शक्ति स्वीकारो !
आक्रामक को अगर सदा ही बढ़कर तुम संहरो !!

आज तुम्हारी सीमाओं पर आग लगी है भारी !
दुष्ट दस्यु कर रहा युद्ध की रैन दिवस तैयारियां !!

उठो वीर तुम वेदों को आज पुनः दोहराओ !
दयानन्द के दिव्य मार्ग पर निर्भय बढ़ते जाओ !!

क्या आप जानते हैं ?

[श्री वेद प्रकाश जी विद्यावाचस्पति आर्यसमाज हिसार]

कि—

वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

वेद नित्य हैं।

वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद

उस परम पिता परमात्मा ने ऋगादि का ज्ञान क्रमशः अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषि को दिया।

इन चारों ऋषियों ने ब्रह्मा को और ब्रह्मा ने सर्वसाधारण को वेदोपदेश किया।

वेद के पढ़ने का अधिकार सभी को है।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

वेद शब्द विद् ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विद्लृ लाभे और विद विचारणे इन चार धातुओं से सिद्ध होता है।

वेद केवल मन्त्र संहिताओं का ही नाम है।

वेद का दूसरा नाम श्रुति है।

ऋग्वेद में दस मण्डल हैं।

ऋग्वेद में आठ अष्टक और प्रत्येक अष्टक में आठ आठ अध्याय हैं। इस प्रकार कुल मिला कर चौसठ अध्याय हैं।

पहले अष्टक में २६५, दूसरे में २२१, तीसरे में २२५, चौथे में २५०, पांचवें मे २३८, छठे में ३३१, सातवें में २४८ और आठवें २४६ वर्ग हैं।

ऋग्वेद का विभाजन दो प्रकार से है—एक मण्डल, सूक्त और मन्त्र। दूसरा मण्डल, अष्टक, अध्याय, वर्ग और मन्त्र।

प्रथम मण्डल में २४ (चौबीस) अनुवाक, १९१ (एक सौ इक्यानवे) सूक्त और १९७६ (एक हजार नौ सौ छियत्तर) मन्त्र हैं।

दूसरे मण्डल में ४ (चार) अनुवाक, ४३ (तेतालीस) सूक्त और ४२९ (चार सौ उन्तीस) मन्त्र हैं।

तीसरे में ५ (पांच) अनुवाक, ६२ (बासठ) सूक्त और ६१७ (छः सौ सत्तरह) मन्त्र हैं।

चौथे में पांच अनुवाक, ५८ (अट्ठावन) सूक्त और ५७९ (पांच सौ नवासी) मन्त्र हैं।

पाचवे में छः अनुवाक, ८७ (सतासी) सूक्त और ७२७ (सात सौ सताईस) मन्त्र हैं।

छठे में छः अनुवाक, ७५ (पचत्तर) सूक्त और ७६५ (सात सौं पैंसठ) मन्त्र है।

सातवें में छः अनुवाक, १०४ (एक सो चार) सूक्त और ८४१ (आठ सौ इकतालीस) मन्त्र हैं।

आठवे में दस अनुवाक, १०३ (एक सौ तीन) सूक्त और १७२६ (एक हजार सात सौ छब्बीस) मन्त्र हैं।

नवें में सात अनुवाक, ११४ (एक सौ चौदह) सूक्त और १०९७ (एक हजार सतानवे) मन्त्र हैं।

और दसवें मण्डल में बारह अनुवाक, १९१ (एक सौ इक्यानवें) सूक्त और १७५४ (एक हजार सात सौ चौवन) मन्त्र हैं।

दसों मण्डल में पचासी अनुवाक, १०२८ (एक हजार अट्ठाईस) सूक्त और १०५८९ (दस हजार पाच सौ नवासी) मन्त्र हैं।

ऋग्वेद में मन्त्र निकालने की सरलतम विधि मण्डल सूक्त और मन्त्र है।

यजुर्वेद में चालीस अध्याय और १९७५ (एक हजार नौ सौ पचत्तर) मन्त्र हैं।

यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ईशोपनिषद के नाम से विख्यात है।

यजुर्वेद का सोलहवां अध्याय रुद्राध्याय के नाम से प्रसिद्ध है।

सामवेद के तीन भाग हैं—पहला-पूर्वार्चिक-छन्दार्चिक दूसरा-महानाम्न्यार्चिक और तीसरा उत्तरार्चिक।

पूर्वार्चिक का क्रमशः प्रपाठक, अर्ध प्रपाठक, दशति और मन्त्र के रूप में विभाजन है।

उत्तरार्चिक का प्रपाठक अर्ध प्रपाठक, दशति और मन्त्रों के रूप में विभाजन है।

दूसरा विभाजन अध्याय, खण्ड और मन्त्रों के क्रम से है।

पूर्वार्चिक में छः अध्याय, ६४ (चौसठ दशति और ६४० (छः सौ चालीस) मन्त्र हैं।

उत्तरार्चिक में इक्कीस (२१) अध्याय और १२२३ (बारह सौ तेईस) मन्त्र हैं।

सामवेद में कुल १८७३ (अठारह सौ तिहत्तर) मन्त्र हैं।

अथर्व वेद में बीस काण्ड, ७३१ (सात सौ इकतीस) सूक्त और ५९७७ (पांच हजार नौ सौ सतत्तर) मन्त्र हैं।

अथर्व वेद का विभाजन दो प्रकार से है—एक कांडात्मक, दूसरा—प्रपाठकात्मक। काण्डात्मक के फिर दो भाग हैं—एक काण्ड, सूक्त और मन्त्र। दूसरा काण्ड, अनुवाक, सूक्त और मन्त्र।

चारों वेदों में कुल १९७६४ (उन्नीस हजार सात सौ चौसठ) मन्त्र हैं।

आधुनिक वेद भाष्य कर्त्ताओं में महर्षि दयानन्द का वेद-भाष्य सर्वोत्कृष्ट है।

प्राचीन वेद भाष्य कर्त्ताओं में सायण, महीधर और उव्वट प्रसिद्ध हैं। पर इनके भाष्य निम्न कोटि के हैं।

पाश्चात्य विद्वानों में प्रो. मैक्समूलर, विलसन और ग्रिफ्थ आदि प्रसिद्ध हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने अपने भाष्य में सायणाचार्य का अनुकरण किया है जिससे वे वास्तविक अर्थ से कोसों दूर रह गए हैं।

हम कल्याण के मार्ग पर चलें

[श्री धर्मदेव जी आर्य व्यवस्थापक आर्यजगत]

परम पिता परमात्मा ने यह सारी सृष्टि रचि असंख्य योनियों को रच उनमें सबसे सर्वश्रेष्ठ मनुष्य योनि को रचा। जहां मनुष्य के लिए अन्य वस्तु बनाई, वहां मनुष्य के जीवन कल्याण के लिए वेद ज्ञान की सृष्टि के आरम्भ में दिया। वेद में मनुष्य के जीवन व्यतीत करने के लिए शिक्षा दी है। जिससे हमें प्राणी मात्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस बात का पता चलता है। हमें जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए, जीवन में कौन-कौन से कर्म करने अति आवश्यक हैं। किन कर्मों को हमें छोड़ देना चाहिए।

चोरी, जारी, जुआ और पापाचरण से भगवान ने हमें बचाने के लिये वेद में शिक्षा दी है, शुभ कर्म कौन-कौन से हैं। कल्याण का मार्ग कौन-सा है। कौन से मार्ग पर चल कर हम अपने जीवन को सफल बना सकते हैं। इन सभी का वर्णन वेद में किया है।

स्वस्ति अर्थात् कल्याण के मार्ग पर चलने के लिए भगवान् ने हमारे सामने उदाहरण भी रखे हैं। ऋग्वेद का एक मन्त्र है।

स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता सगमेमहि ॥

(सूर्याचन्द्रमसौ-इव) सूर्य और चन्द्रमा की भांति हम (स्वस्ति) कल्याणमय (पन्थां) मार्ग का (अनुचरेम) अनुसरण करें (पुनः) और उसके लिये (ददता) दानशील (अघ्नता) हिंसा न करने वाले, किसी का अधिकार न छीनने वाले (जानता) ज्ञानी की (सं‍ग) संगति (इमहे) प्राप्त करें।

इस मन्त्र में भगवान का आदेश है कि सूर्य और चन्द्रमा की भांति कल्याण के मार्ग पर चलो। सूर्य और चन्द्रमा जिस प्रकार नियम में रहते हैं। मनुष्यों को भी

नियमबद्ध होना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य, चन्द्र के अनियमित होने से संसार में प्रलय आ जाती है। संसार का नाश हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य के भी नियम पूर्वक न रहने से मनुष्य समाज का ह्रास और नाश हो जाता है।

सूर्य और चन्द्र का अपना कोई स्वार्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं, केवल दूसरों को प्रकाश देते हैं। जीवन देते हैं। स्वार्थ रहित नियमबद्ध होकर चमकते रहते हैं। स्वयं प्रकाशमान होने से दूसरो को प्रकाशमान करते रहते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य स्वार्थ रहित होकर केवल शुद्ध परोपकार की भावना हृदय में रखता हुआ, लोक-हित के कार्यों में अग्रसर होता हुआ, स्वयं ज्ञान प्राप्त करके दूसरों को ज्ञान का मार्ग बताता है। उसी का जन्म सफल समझो। इस कल्याण पथ पर चलने के लिए निरन्तर सत्संग की आवश्यकता है। वह सत्संग दानी, ज्ञानी जो श्रेष्ठ हो, देने का ही व्रत जिन्होंने धारण कर लिया हो, ऐसे मनुष्यों का अनुसरण करता रहे।

भगवान ने हमें जीवन यात्रा में एक एक पाव सावधानी से विचार कर चलने का आदेश दिया है। हम सूर्य आदि देवों का अनुकरण कर सब के कल्याण की कामना रखते हुए, सभी को एक समान समझते हुए। कल्याण के पथ पर चलते रहे। हम एक-दूसरे को चाहने वाले हो, प्रेम करने वाले हों, हमारा किसी से वैर न हो, हम किसी से द्वेष न करें। प्राणीमात्र को एक समझें प्राणीमात्र से प्रेम करें। तभी संसार में सुख और शांति की वर्षा हो सकती। भगवान का आदेश है कि :—

सहृदयं सांमनस्यम् विद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

हे मनुष्यो तुम सब के परस्पर समान हृदय हों, तुम सब के मनों की अवस्था भी एक-सी हो, तुम्हारे में कभी भी द्वेष न हो। तुम एक-दूसरे को ऐसा चाहो जैसे गौ अपने नव बछड़े को चाहती है।

परस्पर प्रेम का कितना सुन्दर उदाहरण वेद माता ने हमें दिया है। गाय का अपने बछड़े से निस्वार्थ, शुद्ध निष्कपट प्रेम होता है! मनुष्यों को भी एक-दूसरे से स्वार्थरहित शुद्ध निष्कपट प्रेम करना चाहिए शुद्ध व्यवहार ही कल्याण का मार्ग है।

इस संसार में जिस व्यक्ति ने प्रेम से सभी को समान समझते हुये रहना सीख लिया, उस ने समझो अपने जीवन को सफल बना लिया। सफलता के लिये लोकव्यवहार का समझना आवश्यक है। उन्नति की इच्छा रखने वाले लोगों को आवश्यक है कि वह दूसरो का आदर करना सीखें, सदा मीठी वाणी का प्रयोग करें, भगवान वेद ने आदेश दिया है। कि।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट
संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मैवल्गु वदन्त एत
सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि॥

बड़ों का आदर, सम्मान करने वाले, विचार शील इकट्ठे हो कर कार्य सिद्धि करने वाले, और एक धुरा के नीचे हो कर चलने वाले, तुम लोग कभी भी एक-दूसरे से अलग मत होवो, आपस में कभी भी विरोध मत करो, एक-दूसरे से मधु वचन कहते हुए, मीठी वाणी का प्रयोग करते हुए, सदा आगे ही आगे बढ़ो। अन्त में भगवान कहते हैं मैं तुम सब को, समान गति वाला और उत्तम मन वाला करता हू।

भगवान वेद का आदेश है कि हमें एक होकर, जिस प्रकार एक ही धूरे से (जुवे मे) जुते हुए बैल, एक साथ चलते हैं तथा परोपकार में लगे रहते हैं। इसी प्रकार हमें भी एक-दूसरे के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर सदा परमार्थ के (कल्याण के) मार्ग पर चलते रहना चाहिये। सूर्य चन्द्र आदि देवताओं की भान्ति हमारा सभी कुछ दूसरों के कल्याण के लिए हो। संसार के सभी जीवों को (मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे) मित्र की दृष्टि से देखते हुए, वेद भगवान का आदेश मानते हुए कल्याण के मार्ग पर चलते रहें। ★★

वेद और आरण्यक

[श्री आचार्य देवव्रत जी शास्त्री]

वेद समस्त सत्य विद्याओं के आकर हैं। वस्तु, उपाङ्ग और अन्य विद्या ग्रन्थों का उद्गम इन्हीं से हुआ है। वेदों के गूढ़ार्थ और विशेषतः यज्ञ प्रक्रिया सम्बन्धी वेदार्थ को बताने वाले ब्राह्मण ग्रन्थ हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद के बहुत विषयों पर उत्तम प्रकार प्रकाश डाला गया है। आरण्यक ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों के ही बहुधा भाग हैं। इन में वानप्रस्थाश्रम के कर्तव्य और यज्ञादि कर्मों का वर्णन है। आरण्यक नाम भी इसी बात का द्योतक है। उपनिषदें अधिकतर आरण्यकों के ही भाग हैं।

अब तक ब्राह्मण ग्रन्थों का पता पूर्णतया नहीं चलता तब तक यह कहना कठिन है कि आरण्यकों की संख्या कितनी है अभी तक बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। हो सकता है कि इन में भी आरण्यक भाग रहा हो। तैत्तिरीय ब्राह्मण आदि जो उपलब्ध हैं उन में कई के आरण्य पाये जाते हैं। इस से यह अनुमान करने का अवसर मिलता है कि अन्य लुप्त ब्राह्मणों के भी कोई आरण्यक रहे होंगे जो उन्हीं के साथ अनुपलब्ध हैं।

कुछ लुप्त ब्राह्मण

कुछ लुप्त ब्राह्मणों का उल्लेख किन्हीं-किन्हीं ग्रन्थों में मिलता है परन्तु वे काल चक्र से अब कवलित हो चुके हैं। उन के नाम ये हैं—

चरक ब्राह्मण—यह यजुर्वेदीय चरक शाखा का ब्राह्मण था। इस के आरण्यक का हस्त लेख लाहौर के डी० ए० वी० कालेज के पुस्तकालय में उपलब्ध रहा है श्री पं० भगवद्दत्त जी ने इसका उल्लेख किया है।

श्वेताश्वतर ब्राह्मण—यह यजुर्वेदीय ब्राह्मण है। श्वेताश्वतर आरण्यक इसका रहा होगा—यह प्रतीत होता है क्योंकि श्वेताश्वतर उपनिषद् जो इस आरण्यक का ही भाग रही होगी वह समुपलब्ध है।

काठक ब्राह्मण—परिपाटी के अनुसार तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ अन्तिम भागों को भी लोग काठक ब्राह्मण कहते हैं। परन्तु यह ब्राह्मण स्वतन्त्र था। वैदिक कोष की भूमिका के लेखक विद्वान् ने ऐसा लिखा है कि इसके आरण्यक का कुछ भाग हस्तलेख रूप में योरप के पुस्तकालयों में विद्यमान है।

इसी प्रकार भाल्लवेय ब्राह्मण, मैत्रायणी ब्राह्मण, जाबाल ब्राह्मण, पैंगी ब्राह्मण शाट्यायन ब्राह्मण, ककति ब्राह्मण, कौषम ब्राह्मण, कालबवि खाण्डिकेय ब्राह्मण, आह्वरक, औखेय ब्राह्मण, हारिद्रविक, ब्राह्मण, तुम्बरु ब्राह्मण, और आरुणेय ब्राह्मण-आदि अनुपलब्ध हैं।

उपलब्ध आरण्यक

तैत्तिरीय, ऐतरेय ब्राह्मणों के आरण्यक उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राह्मण का आरण्यक बृहदारण्यक उपनिषद के नाम से प्रसिद्ध है। शाङ्खायन आरण्यक नाम से भी एक ग्रन्थ उपलब्ध है। इसका ब्राह्मण और गृह्य सूत्र दोनो छप चुके हैं। जैसा पूर्व कहा गया है इन आरण्यको में वानप्रस्थ के कर्तव्यों का बहुधा वर्णन है। परन्तु बीच-बीच में इनमें कुछ वैज्ञानिक और अध्यात्मिक विषय भी आ गए हुए हैं। तैत्तिरीय आरण्यक में एक स्थल पर लिखा है कि सारे मूर्त पदार्थों की जो मूर्तता है वह ऋक् है और समस्त गतियां याजुषी तथा सारे तेज सामसमाविष्ट हैं। इसी प्रकार जब बृहदारण्यक को उठाते हैं तो उससे ब्रह्मविद्या के भी उच्च उपदेश पाए जाते हैं यह आरण्यक उपनिषद् से भी मिश्रित है। यद्यपि इसका नाम आरण्यक है। ऐसे ही स्थल स्थल पर तैत्तिरीय और ऐतरेय आरण्यकों में भी अध्यात्मिक चर्चा मिल जाती है। छान्दोग्य ब्राह्मण की उपनिषद् छान्दोग्य प्रसिद्ध है। इसका भी आरण्यक होना चाहिए। छान्दोग्य के पाठों और वर्णनों को देखकर यह ज्ञात होता है कि इसमें भी आरण्यक का विषय मिश्रत है।

वेदार्थ और आरण्यक

आरण्यकों के विषयों का परिज्ञान वेदार्थ की तह में पहुंचने के लिए सहायक और आवश्यक है। परन्तु ये सीधे वेदार्थ नहीं हैं। इन आरण्यकों में कई वेद मन्त्रों का भी उद्धरण है और प्रक्रिया के अनुसार कहीं-कहीं पर कुछ भाव भी दिया गया है। परन्तु यह ब्राह्मणोक्त है। सीधे तौर पर उन्हें वेदार्थ कहने का कोई कारण उपलब्ध नहीं होता है वेदार्थ में सीधे सहायक हों यह भी नहीं कहा जा सकता है ऐसे स्थल इनमें बहुत ही स्वल्प हैं जिनसे सीधे किसी वेद मन्त्र की व्याख्या की जा सके।

आरण्यक ब्राह्मणों के भाग होने से वैदिक सिद्धांतों के परिपोषक तो हैं ही। वानप्रस्थाश्रम के कर्तव्य और यज्ञ आदि वैदिक ही कर्म हैं। साथ ही अध्यात्म या ब्रह्मविद्या भी वैदिक सिद्धांत के अन्तर्गत हैं। इनका प्रतिपादन करना है। बृहदारण्यक भी तो आरण्यक ही है। उसकी अध्यात्म विद्या की संगति इतनी उत्तम है कि पढ़ते और देखते ही बनता है।

एक उदाहरण पर्याप्त होगा। 'कश्यप' एक वैदिक पद है। इसकी व्याकरण बनावट दृश् धातु से होती है। पश्यतीति पश्यकः। जो देखता है। इन पश्यक अक्षरों का आद्यन्त विपर्यय होकर कश्यप बनता है। इसका परमेश्वर अर्थ है। परन्तु तैत्तिरीय इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहता है—कश्यपः पश्यति भवति सौक्ष्म्यात्—अर्थात् जो सूक्ष्मता से समस्त पदार्थों का द्रष्टा है वही कश्यप शब्द का अभिधेय है। यहां पर वैदिक सिद्धांत की पुष्टि कितने सुन्दर ढंग से कर दी गई—यह देखने योग्य है।

जो आरण्यक उपनिषद् गर्भित है उनमें तो अनेकों बातें पाई जाती हैं जो वैदिक सिद्धांतों की पुष्टि करती हैं। गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में कई प्रमाण जो अन्यत्र नहीं पाए जाते हैं वे बृहदारण्यक में मिलते हैं।

अन्न गौ आदि ऐश्वर्य की प्रार्थना।

[वेदों में अनेकों मन्त्रों द्वारा भगवान से अन्न, धन, पशुधन और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिये प्रार्थना की गई है। अब सत्प्रकाशक अनन्य परमात्मा, प्रभु सविता और सर्वशासक प्रभु से, धन आरोग्य, वायु, प्रकाश (तेज) सुख और ज्ञान की प्राप्ति के लिए यजुर्वेद के कुछ मन्त्रों द्वारा विनय करें, जिनका अर्थ श्री स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती जी महाराज ने इस प्रकार किया है। —व्यवस्थापक]

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवः स्थ, देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्टतमाय कर्मण, आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वः स्तेन ईशत माऽघश ँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥१॥ यजु० १।१।★

पदार्थ—हे परमेश्वर! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिए (त्वा) आप को (ऊर्जे त्वा) बलादिकों की प्राप्ति के लिए आश्रयण करते हैं। हे जीवो! (वायवः) तुम वायु रूप (स्थ) हो। (सविता देवः) जगत् उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय कर्मणे) उत्तम कर्म के लिए (वः) तुम सब को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे, उस उत्तम कर्म द्वारा (इन्द्राय भागम्) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त ऐसे उत्तम पुरुष के भाग को (आप्यायध्वम्) बढ़ाओ, यज्ञादि कर्मों के सम्पादन के लिए (अघ्न्या) न मारने योग्य (प्रजावतीः) बछड़ों वाली (अनमीवाः) साधारण रोगों से रहित, (अयक्ष्माः) तपेदिक आदि बड़े रोगों से रहित, गौएं सम्पादन करो। (वः) आप लोगों के बीच जो (स्तेनः) चोर हो, वह उन गौओं का (मा ईशत) स्वामी न बने, और (अघशंसः)

★ इन दोनों अकों से तात्पर्य क्रमानुसार यजुर्वेद के अध्याय और मन्त्र है।

पाप चिन्तक भी (वा) उनका स्वामी न बने। ऐसा प्रयत्न करो जिससे (बह्वीः ध्रुवाः) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौएं (अस्मिन् गोपतौ) इस दोष रहित गो-रक्षक के पास (स्यात) बनी रहें। प्रभु से प्रार्थना है कि (यजमानस्य)यज्ञादि उत्तम कर्म करने वालेके (पशून् पाहि) पशुओं की हे ईश्वर ! रक्षा कर।

भावार्थ—हे परमेश्वर ! अन्न और बलादिकों की प्राप्ति के लिये आप की प्रार्थना उपासना करते हुए आप का ही हम आश्रय लेते हैं। परम दयालु प्रभु जीव को कहते हैं, कि हे जीव ! तुम वायुरूप हो। प्राणरूपी वायु से ही तुम्हारा जीवन बन रहा है। तुम को मैं उत्तमकर्म देव, शुभ कर्मों के करने के लिए प्रेरणा करूं, यज्ञादि उत्तम कर्मकर्ताओं के लिए श्रेष्ठ गौओं का संग्रह करना आवश्यक है। प्रभु से प्रार्थना है कि, हे ईश्वर ! यज्ञादि श्रेष्ठ कर्म करने वाले यजमानके गौ आदि पशुओं की रक्षा करें॥१॥

तेज:स्वरूप आदि प्रभु को नमस्कार

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे
अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः, पावको
अस्मभ्यं शिवो भव ॥२॥ ३६।२०॥

पदार्थ—(हरसे) पापों को हरने वाले (शोचिषे) पवित्र करने वाले और (अर्चिषे) अर्चा, पूजा सत्कारकरने योग्य आप परमात्मा को (नमः ते नमः ते) बारम्बार हमारा नमस्कार (अस्तु) हो। (ते हेतयः) आप के वज्र (अस्मत् अन्यान्) हमारे से भिन्न, हमारे शत्रुओं (दुष्टों) को (तपन्तु) तपाते रहें। (पावकः) पावन करने वाले आप जगदीश्वर (अस्मभ्यम्) हम सब के लिए (शिवः भव) कल्याणकारी होवो।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! आप अपने भक्तोंके पापोंऔर कष्टोंको दूर करने वाले,अर्थात पापोंसे बचाते हुए उनके अन्त:करण को पवित्र और तेजस्वी बनाने वाले हैं, आप भक्तवत्सल भगवानको हमारा प्रणाम हो। हे दयामय दयाशील ! ऐसा समय कभी न आवे कि, हम आप की आज्ञा के विरुद्ध चल कर आप के दण्ड के भागी बनें। किन्तु हम सदा आप की आज्ञा के अनुकूल चल कर, आप की कृपा के पात्र बनते हुए, सुख और कल्याण के भागी बनें।

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥३॥
३६।२१॥

पदार्थ—(विद्युते) विशेष प्रकाश तेजः—स्वरूप (ते) आप के लिए (नमः अस्तु)नमस्कार हो।(स्तनयित्नवे) शब्द करने वाले (ते नमः) आपको नमस्कार हो। हे (भगवन) ऐश्वर्य सम्पन्न जगन्नियतः ! (ते नमः अस्तु) आप को प्रणाम हो, (यतः) जिससे (स्वः)सब को आनन्द करने के लिए (समीहसे) आप सम्यक चेष्टा करते हैं।

भावार्थ—हे सकल ऐश्वर्ययुक्त समर्थ प्रभो ! आप विशेष प्रकाशस्वरूप और किसी से भी न दबने वाले महातेजस्वी हो, आप को हमारा नमस्कार हो। आप शब्द करने वाले अर्थात वेदवाणी के दाता हो, आप सदा आनन्द में रहते हो अपने प्रेमी भक्तों को सदा आनन्द में रखते हो। आप की जो जो चेष्टाएं हैं, वे सब को आनन्द देने के लिए हैं, अतएव हम आप को बारम्बार नमस्कार करते हैं॥३॥

प्रभो ! अभय प्रदान करो

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥४॥
३६।२२॥

पदार्थ—(यतः यतः) जिस-जिस स्थान से वा कारण से (सम् ईहसे) आप सम्यक् चेष्टा करते हो (ततः) उस-उस से (अभयम्) अभय दान (कुरु) करो। (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाओं के लिये (शम् कुरु) शान्ति स्थापन करो। (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिये

(अभयम् कुरु) अभय प्रदान करो।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! जिस जिस स्थान से वा कारण से आप कुछ चेष्टा करो, उस-उस से हमें निर्भय करो। हमारी सब प्रजाओं को और हमें शान्ति प्रदान करो। संसार भर की सब प्रजाएं आपस में प्रीति पूर्वक वर्ताव करती हुई सुखपूर्वक रहें और अपने जन्म को सफल करें। आपस में लड़ना झगड़ना कोई बुद्धिमत्ता नहीं, एक दूसरे से प्रेमपूर्वक रहना, मिलना-जुलना ही सुखदायक है। अतएव आप प्रभु से प्रार्थना है कि, दयामय! हम सब को शान्ति प्रदान करो और हमारे गौ अश्वादि उपकारक पशुओं को भी अभय प्रदान करो ॥४॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे
चतुष्पदे ॥५॥ ११।८३॥

पदार्थ—हे (अन्नपते) अन्न के स्वामिन्! (नः) हमें (अन्नस्य) अन्न को (प्रदेहि) प्रकर्ष से दो, (अनमीवस्य) जो अन्न रोग करने वाला न हो, (शुष्मिणः) बलकारक हो। (प्रदातारम्) अन्नदाता को (प्रतारिष) तृप्त कर (नः द्विपदे) हमारे दो पग वाले (मनुष्य) तथा (चतुष्पदे) चार पग वाले गौ अश्वादि पशुओं के लिये (ऊर्जम्) पराक्रम को (धेहि) धारण कराओ।

भावार्थ—हे अन्नादि उत्तम पदार्थों के स्वामिन्! आप कृपा करके रोगनाशक और बलवर्धक अन्न हम को दो और अन्नदाता पुरुष का उद्धार करो। हमारे दो पग वाले भ्रातृगण मनुष्य और चार पग वाले गौ अश्वादि पशु, जो सदा हम पर उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही परोपकार के लिये है, इन में भी पराक्रम धारण कराओ।

आयु और तेज दो

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा
अग्नेऽस्यायुर्मे देहि। वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो
मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म
आपृण ॥६॥ ३।१७॥

पदार्थ—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमात्मन्! आप (तनूपा असि) हमारे शरीरों की रक्षा करने हारे हैं, (मे तन्वम्) मेरे शरीरों की (पाहि) रक्षा करो। हे (अग्ने) परमेश्वर! (आयुर्दा असि) आप आयु-जीवन के दाता हो, (मे आयु देहि) मुझे जीवन प्रदान करो। हे (अग्ने) पूज्य प्रभो! (वर्चोदा असि) आप तेजदाता हैं (मे) मुझे (वर्चः देहि) तेज प्रदान करें। हे (अग्ने) परमेश्वर (यत् मे तन्वा) जो मेरे शरीर में (ऊनम्) न्यूनता हो (मे) मेरी (तत्) उस न्यूनता को (आपृण) पूर्ण कर दो।

भावार्थ—हे सर्वरक्षक जगदीश! आप सब के शरीरों की रक्षा करने वाले और आयु प्रदान करने वाले हैं अतः आपके पुत्र जो हम हैं, इन की रक्षा करते हुए लम्बी आयु वाला बनाओ। हम पाप और दुराचारों में फंस कर कभी नष्ट-भ्रष्ट न हों। दयामय भगवन्! अविद्या आदि दोषों को दूर करने वाला वर्चस जो ब्रह्म तेज है, उसके दाता भी आप ही हो, हमें भी वह तेज प्रदान करो, जिस से हम अपना और अपने स्नेहियों का कल्याण कर सकें। भगवन! आप सर्वगुण सम्पन्न हो, हमारी न्यूनता दूर करके हमें अनेक शुभ गुण सम्पन्न करो, ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना को स्वीकार करें ॥६॥

बृहस्पति त्रुटियों को दूर करें

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातिः
तृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु
भुवनस्य यस्पतिः ॥७॥ ३६।२॥

पदार्थ—(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र (हृदयस्य) हृदय (मनसः) और मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र वा त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णम्) अति पीड़ित वा व्याकुलता है (तत्) उस (मे) मेरे दोष को (बृहस्पतिः) सब बड़े बड़े लोक लोकान्तरों का स्वामी

परमेश्वर (दधातु) ठीक करे। (यः) जो (भुवनस्य) सारे जगत का (पतिः) स्वामी है वह (नः) हम सब का (शम्) कल्याणकारक (अस्तु) होवें।

भावार्थ—हे सब बड़े-बड़े ब्रह्माण्डों के कर्त्ता-हर्त्ता और नियन्ता परमात्मन् ! जो मेरे नेत्र, हृदय, मन,वाणी, श्रोत्रादिकों का छिद्र, अर्थात तुच्छता, निर्बलता और मन्दत्वादि दोष हैं, इन को निवारण करके, मेरे सब बाह्य इन्द्रियें और अन्तःकरण को सत्य धर्मादिकों मे स्थापना करें जिससे हम सब आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए, सदा कल्याण के भागी बनें। हे सारे भुवनो के स्वामिन् ! हम आपके पुत्र हैं अपने पुत्रो पर कृपा करते हुए हमें सब का कल्याण करें।।७।।

प्रकाशस्वरूप ! प्रकाश दो

स्वयं भूरसि श्रेष्ठों रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ।।८।। २।२६।।

पदार्थ—हे जगदीश्वर ! आप (स्वयंभूः असि) अजन्मा अनादि हैं (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशसनीय, (रश्मिः) (प्रकाशमान (वर्चोदा,) विद्या वा प्रकाश लेने वाले (असि) हैं, वर्चो मे देहि) मुझे विद्या वा प्रकाश दो। (सूर्यस्य) चराचर जगत के आत्मा जो आप भगवान वा इस भौतिक सूर्य के (आवृतम) आवरण को मैं (अनु आवर्त्ते) स्वीकार करता हू।

भावार्थ—हे अजन्मा सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप विज्ञानप्रद परमात्मन ! आप बड़े-बड़े ऋषि महर्षियों को भी वैदिक ज्ञान और आत्मज्ञान के देने वाले हैं, कृपया हमे भी ब्रह्म-ज्ञानरूप वर्चस देकर श्रेष्ठ बनावें। चराचर जगत के आत्मा सूर्य जो आप, उस आपकी आज्ञा का पालनकरते हुए हम, सबको उपदेश देकर आपका सच्चा ज्ञावी और प्रेमी-भक्त बनावें। यह भौतिक सूर्य जैसे अन्धकार का नाशक और सबको उपकार कर रहा है, ऐसे हम भी अज्ञानरूपी अंधकार का नाश करते हुए सब के उपकार करने मे प्रवृत्त होवें ।।८।।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।९।। १७।२७।।

पदार्थ—(यः) जो परमेश्वर (नः पिता) हम सबका पालन करने वाला (जनिता) जनक (यः विधाता) जो सब सुख और मुक्ति सुख का भी सिद्ध करने वाला है, (विश्वा भुवनानि) सब लोक-लोकान्तरो तथा (धामानि) स्थिति के स्थानो को (वेद) जानता है। (यः देवानाम्) जो भगवान दिव्य शक्ति वाले सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवो के (नामधा) नामो को धारण कर रहा है वह (एकः एव) एक ही अद्वितीय परमात्मा है। (तम् सम्प्रश्नम) उसी जानने योग्य परमेश्वर को आश्रय करके (अन्या भुवना यन्ति) अन्य सब लोक-लोकान्तर गति कर रहे हैं।

भावार्थ—जो परमेश्वर हम सब का रक्षक, जनक और हमारे सब कर्मो का फल प्रदाता है, वही भगवान् सब लोक लोकान्तरो का ज्ञाता और अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण, मित्र, वसु, यम, विष्णु, बृहस्पति, प्रजापति आदि दिव्य देवो के नामो को धारण करने वाला एक ही अद्वितीय अनुपम परमात्मा है, उसी परमात्मा के आश्रित होकर, अन्य सब लोक गतिशील हो रहे हैं। दुर्लभ मानवदेह को प्राप्त होकर, इसी परमात्मा की जिज्ञासा करनी चाहिए। इसी के ज्ञान से मनुष्य देह सफल होगी अन्यथा नही।।९।।

अपने ज्ञान में मुझे दृढ़ करें

दृते दृꣳह मा ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ज्योक्ते। सदृशि जीव्यासम् ।।१०।। ३६।१९।।

पदार्थ—हे (दृते) अविद्या रूपी अन्धकार के विनाशक परमात्मन् ! (मा) मुझ को (दृꣳह) दृढ़ कीजिए, जिस से मैं (ते) आप के सदृशि) यथार्थ ज्ञान मे (ज्योक्) निरन्तर

(जीव्यासम्) जीवन धारण करूं, (ते) आप के (संदृशि) साक्षात्कार में प्रवृत्त हुआ बहुत समय तक मैं जीता रहूं।

भावार्थ—मनुष्य को योग्य है कि, ब्रह्मचर्यादि साधन सम्पन्न होकर युक्त आहार विहार पूर्वक औषध आदि का यथार्थ ज्ञान अवश्य सम्पादन करे, क्योंकि परमात्मज्ञान के बिना बहुत काल तक जीना भी व्यर्थ ही है। अतएव इस मन्त्र मे प्रभु से प्रार्थना की गई है कि हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! आप कृपा करें कि, मैं दीर्घकाल तक जीता हुआ आप के ज्ञान और सच्ची-भक्ति को प्राप्त हो कर अपने मनुष्य-जन्म को सफल करूं ॥१०॥

उत्पादक, अगम्य परमात्मा

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि,
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥
॥११॥ ३२।२॥

पदार्थ—(वद्युतः) विशेष प्रकाशमान (पुरुषात्) सर्वत्र पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेषाः) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि क्रियाएं (अधिजज्ञिरे) उत्पन्न होती हैं। कोई भी (एनम्) इसको (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से (न तिरछे (मध्ये) न बीच में से (परिजग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है।

भावार्थ—जिस सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रकाशमान् पूर्ण परमात्मा से क्षण, घटिका, दिन, रात्रि आदि काल के सब अवयव उत्पन्न हुए हैं और जिस से सारे जगतों की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय नियमनादि होते हैं उस जगत्पिता परमात्मा को, कोई भी नीचे ऊपर, बीच में से वा तिरछे ग्रहण नहीं कर सकता। ऐसे पूर्ण जगदीश परमात्मा को योगाभ्यास, ध्यान, उपासनादि साधनों से ही जिज्ञासु पुरुष जान सकता है, अन्यथा नहीं ॥११॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥
॥१२॥ ३२।१॥

पदार्थ—(तत्) वह ब्रह्म (एव) ही (अग्निः) अग्नि है। (तत्) वह (आदित्यः) आदित्य, (तत वायु) वह वायु, (तद् उ चन्द्रमाः) वह निश्चय चन्द्रमा है।(तत् एवं शुक्रम्) वह ही शुक्र, (तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म है। (ताः आपः) वह आपः (स प्रजापतिः) वह ही प्रजापति है।

भावार्थ—उस परब्रह्म के यह अग्नि आदि सार्थक नाम हैं, निरर्थक एक भी नहीं। अग्नि नाम परमात्मा का इसलिए है कि वह सर्वव्यापक, स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब का अग्रणी नेता और परम पूजनीय है। अविनाशी होने से और सारे जगत का प्रलयकर्त्ता होने से उसका नाम आदित्य है। अनन्त बलवान् होने से उसको वायु कहते हैं। सब प्रेमी भक्तों को सानन्द देता है, इसलिए उस जगत्पति का नाम चन्द्रमा है। शुद्ध पवित्र ज्ञानस्वरूप होने से शुक्र, और सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वत्र व्यापक होने से आपः, सब प्रजाओं का स्वामी, पालक और रक्षक होने से उस जगत्पिता को प्रजापति कहते हैं। ऐसे ही सब वेदों मे, परमात्मा के सार्थक अनन्त नाम निरूपण किए हैं, जिनको स्मरण करता हुआ पुरुष कल्याण को प्राप्त हो जाता है ॥१२॥

पूषा के व्रत में सुख

पूषन् तव व्रते वयं न रिष्येम कदाचन ।
स्तोतारस्त इह स्मसि ॥१३॥ ३४।४१॥

पदार्थ—हे (पूषन्) पुष्टिकारक परमात्मन्! (तव) आपके (व्रते) नियम में रहते हुए (वयम्) हम लोग (कदाचन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित वा दुःखी न हों। (इह) इस जगत मे (ते) आपके (स्तोतारः) स्तुति करते हुए हम सुखी (स्मसि) होते हैं।

भावार्थ—हे सबके पालन-पोषण करने वाले परमात्मन्! आपके अटल सृष्टि नियमों के अनुसार अपना जीवन बनाने वाले हम आपके सेवक, इस लोक वा परलोक में कभी दुःखी नहीं हो सकते, इसलिए आप-

की प्रेम पूर्वक स्तुति करने वाले हम, सदा सुखी होते हैं। आप परम पिता हम पर कृपा करें कि हम आपकी श्रद्धा-भक्ति पूर्वक उपासना, प्रार्थना और स्तुति नित्य किया करें ॥१३॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता, धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥१४॥ ३०।१०॥

पदार्थ—(सः) वह परमेश्वर (नः) हम सबका (बन्धु) भाई के समान मान्य और सहायक है। (जनिता) जनयिता अर्थात हमारे सब के शरीरों का उत्पन्न करने हारा है। (स विधाता) वही जगदीश सब पदार्थों का और सबके कर्मों का फलप्रदाता है (विश्वा) सब (भुवनानि) लोक लोकान्तरों और (धामानि) सबके जन्मस्थान और नामों को (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवाः) विद्वान लोग (अमृतम) मोक्ष सुख को (आनशानाः) प्राप्त होते हुए (तृतीय) जीव प्रकृति से विलक्षण तीसरे (धामन) आधाररूप जगदीश्वर में रमण करते हुए (अध्यैरयन्त) अपनी इच्छा पूर्वक सर्वत्र विचरते है।

भावार्थ—जो जगत्पति, हम सबका बन्धु और सब का जनक, सब के कर्मोंका फलप्रदाता सब लोक-लोकान्तरों को और सब के जन्मस्थान और नामों को जानता है, वह जीव और प्रकृति से विलक्षण है। उसी परमात्मा में विद्वान लोग, मुक्ति सुख को अनुभव करते हुए, अपनी इच्छा पूर्वक सर्वत्र विचरते हैं ॥१५॥

गुहानिहित और ओत प्रोत

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहासद्यत्र विश्वंभवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥१५॥ ३२।८॥

पदार्थ—(वेनः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (तत्) उस ब्रह्म को जो (गुहानिहितम) बुद्धि रूपी गुफा में स्थित तथा (सत्) तीन कालों में वर्तमान नित्य है, उसको (पश्यत्) प्रत्यक्ष अनुभव करता है, (यत्र) जिस ब्रह्म में (विश्वम्) सारा संसार (एक नीडम) एक आश्रय को (भवति) प्राप्त होता है, (तस्मिन) उसी ब्रह्म में (इदम् सर्वम्) यह सब जगत (सम् एति) च) प्रलयकाल में संगत होता अर्थात लीन होता है। और उत्पत्ति काल में (वि एति च) पृथक-पृथक स्थूल रूप को भी प्राप्त होता है। (सः) वह जगदीश (विभूः) विविध प्रकार से व्याप्त हुआ (प्रजासु) प्रजाओं में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है!

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी पुरुष उस ब्रह्म को अपनी बुद्धि रूपी गुफा में स्थित देखता है, जो ब्रह्म सत्य होने से नित्य त्रिकालों में अबाध्य और सारे संसार का आश्रय है, यह सब जगत्, प्रलय काल में जिसमें लीन होता और उत्पत्ति काल में जिस से निकल कर स्थूल रूप को प्राप्त होता है, और बने हुए सब जगत् में व्यापक, वस्त्र में ताने पेटे के समान सर्वत्र भरा हुआ है। ऐसे ब्रह्म को ब्रह्मज्ञानी जानता और अनुभव करता हुआ कृतार्थ होता है ॥१५॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥३४।५८॥

पदार्थ—हे (ब्रह्मणः पते) ब्रह्मांड के स्वामिन् वा वेद रक्षक प्रभो! (देवः) वेदवेत्ता विद्वान (यत्) जिस को (विदथे) पठन पाठनादि व्यवहार में (अवन्ति) रक्षा करते हैं। और (यत्) जिस (बहुत) बड़े श्रेष्ठ का (वयम्) सुवीराः) हम उत्तम वीर पुरुष (वदेम) कहे (अस्य सूक्तस्य) अच्छे प्रकार कहे इस वेद के (त्वम्) आप (यन्ता) नियम पूर्वक दाता हैं, (च) और (तनयम्) अपने पुत्र तुल्य मनुष्य मात्र को (बोधि) बोध करावें, (तत्) उस (भद्रम्) कल्याण-मय वेदामृत से (विश्वम्) सब संसार को (जिन्व) तृप्त कीजिए।

भावार्थ —हे सकल संसार के और वेद के

रक्षक परमात्मन् ! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले होवें । सारे संसार के मनुष्य जो आपके ही पुत्र हैं, उनके हृदय मे वेदो में प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न कर, जिस से वेदो को पढ़ सुन कर, उनके कल्याणमय वैदिक ज्ञान से तृप्त हुए सारे संसार को तृप्त करें।

बिजली, जल आदि का निवास

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिमन्त्र वदत्युक्थ्यम् । यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥१७॥ ३४।५७॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस परमेश्वर मे (इन्द्र) बिजुली वा सूर्य (वरुण) जल वा चन्द्रमा (मित्र) प्राण अपानादि वायु (अर्यमा) सूत्रात्मा वायु (देवा) ये सब उत्तम गुण वाले (ओकांसि) निवासो को (चक्रिरे) किये हुए हैं वह (ब्रह्मण पति) सारे ब्रह्माण्ड का और वेद का रक्षक जगदीश (उक्थ्यम) प्रशसनीय पदार्थों मे श्रेष्ठ (मन्त्रम) वेद रूप मन्त्र भाग को (नूनम) निश्चय कर (प्रवति) अच्छे प्रकार कहता है।

भावार्थ—जिस परमात्मा में, कार्य कारण रूप सब जगत और जीव निवास कर रहे है, उन जीवों के कल्याण के लिये, जिस दयामय परमात्मा ने मन्त्र भाग रूपी वेद बनाये, उन वेदो को पढते पढ़ाते सुनते सुनाते हम लोग इस जगत्पिता परमात्मा को जान कर और उसी की भक्ति करते हुए, कल्याण के भागी बन सकते हैं अ यथा कदापि नहीं।

जिन का सखा प्रभु है

गर्भो देवानां पिता मतीनां पति प्रजानाम् । संदेवो देवेन सवित्रा गत सं सूर्येण रोचते ॥१८॥ ६७।१४।

पदार्थ—जो परमेश्वर (देवानाम विद्वानो और पृथ्वी आदि तेंतीस देवो के (गर्भ) गर्भ की नाई उत्पत्ति स्थान (मतीनाम्) मनन शील बुद्धिमान मनुष्यों के (पिता) पालक (प्रजानम) उत्पन्न हुए पदार्थों का (प्रति, रक्षक स्वामी, (देव) स्वप्रकाशस्वरूप परमात्मा (सविता) सब संसार के प्ररक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (सं रोचते) सम्यक प्रकाश कर रहा है, उसको हे मनुष्यो ! (सम् गत) आप लोग सम्यक प्राप्त होवो।

भावार्थ—जो जगत्पिता परमात्मा, सब का उत्पादक, पिता के तुल्य सब का और विशेष कर विद्वानों का पालक, सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक, सर्वत्र है व्यापक जगदीश्वर है, उसी पूर्ण परमात्मा की हम सब लोग, सदैव प्रेम से उपासना किया करें, जिस से हमारा सब का कल्याण हो। ॥१८॥

धन और आरोग्य दे

सवर्चसा पयसा स तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन । त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमाष्टुं तन्वो यद्विलिष्टम् ॥१९॥ २।२४॥

पदार्थ—(वर्चसा) वेदो के स्वाध्याय और योगाभ्यास करने से प्राप्त जो ब्रह्मतेज (पयसा) पुष्टि कारक दुग्ध घृतादि (तनूभि) नीरोग शरीर और (शिवेन मनसा) कल्याणकारी पवित्र मन से (सम अगन्महि) सम्यक संयुक्त रहें। (सुदत्र) श्रेष्ठ पदार्थों का दाता, (त्वष्टा) जगत उत्पादक प्रभु हमें (राय) अनेक प्रकार का धन (विदधातु) प्रदान करे। (तन्व) हमारे शरीर में (यत) जो (विलिष्टम) विपरीत अनिष्ट, उपघातक पदार्थ हो उसको (अनुमाष्टुं) शुद्ध करें वा दूर करें।

भावार्थ—हे जगत् पिता अनेक उत्तम पदार्थों के प्रदाता परमेश्वर ! अपनी अपार कृपा से हमें वेदों के स्वाध्यायशील, शरीर की पुष्टि करने वाले अनेक खाद्य पदार्थों के स्वामी, नीरोग शरीर वाले और कल्याणकारी शुद्ध मन से युक्त बनावें। हे सकल ऐश्वर्य के स्वामी प्रभो! हम कभी दरिद्री दीन मलीन पराधीन रोगी न हों। किन्तु

सुखी रहते हुए उत्तम-उत्तम पदार्थों के स्वामी हों ॥

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः। पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥२०॥ १८।३६॥

पदार्थ—हे परमात्मन्! आप कृपा करके (पृथिव्याम्) पृथिवी के (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित करें। ऐसे ही (ओषधीषु) औषधियों में (दिवि) द्युलोक में, और (अन्तरिक्षे) मध्यलोक में (पयः धाः) पौष्टिक रस स्थापित करें (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिए (पयस्वतीः) पौष्टिक रस से पूर्ण (सन्तु) होवें।

भावार्थ—हे सबके पालन-पोषण कर्ता जगदीश्वर! आप, अपने पुत्र हम सब पर कृपा करें कि आपकी नियम-व्यवस्था के अनुसार जहां-जहां हमारा निवास हो, वहां-वहां हम, अन्नादिकों के पौष्टिक रस से पुष्ट हुए, आपके स्मरण और उपासना में तत्पर रहें। पृथिवी में, द्युलोक व मध्यलोक में और पूर्व पश्चिमादि सब दिशाओं में रहते, आपकी प्रेमपूर्वक भक्ति, प्रार्थना उपासना करते हुए सदा आनन्द में रहें।

सब का कल्याणकर्त्ता

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥२१॥ ३३।८॥

पदार्थ—(इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य) सब चर और अचर जगत् को (राजति) प्रकाश करने वाला और सब का राजा स्वामी है। (नः) हमारे (द्विपदे) दो पाव वालों के लिए और (चतुष्पदे) चार पाव वालों के लिये भी (शम् अस्तु) कल्याणकर्त्ता होवे।

भावार्थ—हे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर! आप सब चर और अचर जगत् के राजा और स्वामी हैं। आप की दिव्य ज्योति से ही सूर्य, चन्द्र, बिजली आदि प्रकाशित हो रहे हैं। आप सब जगतों के प्रकाशक हैं। भगवन्! हमारे सब मनुष्यादि दो पांव वाले और गौ अश्वादि पशु चार पाव वाले जो हम पर सदा उपकार कर रहे हैं, जिनका जीवन ही पर उपकार के लिये है इनके लिए भी आप सदा सुख और कल्याणकर्त्ता होवें।

सुख की वर्षा हो

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥२२॥ ३६।१२।

पदार्थ—हे परमात्मन्! (देवी आपः) दिव्य गुण युक्त जल, महात्मा लोग, वक्ता विद्वान्, आप्त पुरुष, श्रेष्ठ कर्म और ज्ञान (नः अभिष्टये) हमारे अभिलषित कार्यों के सिद्ध करने के लिये (शम् नः) हमें शांति दायक हों और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन रक्षण के लिये भी हों। वे ही (नः) हम पर (शंयोः अभिस्रवन्तु) शांति सुख के सब ओर से वर्षण करने और बहाने वाले हों।

भावार्थ—हे जगदीश्वर! हम पर आप कृपा करें कि, दिव्य गुण वाले जलादि पदार्थ, आप्त वक्ता विद्वान महात्मा लोग, श्रेष्ठ कर्म, ज्ञान और आप ईश्वर हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करते हुए, हमें शांति दायक हों। ये ही हमारा पालन पोषण करके हम पर सब ओर से शांति सुख की वर्षा करने वाले हों।

शं वातः शं हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः। शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभिशूशुचन् ॥२३॥ ३।५।८॥

पदार्थ—हे जीव! (वात) वायु (शम) सुखकारी हो। (ते) तेरे लिए (घृणि) सूर्य (हि) भी (शम) सुखकर हो। (ते) तेरे लिए (इष्टकाः) वेदी में चयन की हुई ईंटें अथवा ईंटों से बने हुए स्थान (शम) सुखप्रद (भवन्तु) हों। (ते) तेरे लिए (पार्थिवासः अग्नयः) इस पृथ्वी की अग्नि और बिजली आदि (शम भवन्तु) सुखकारक हों। ये सब अग्नि वायु, सूर्य, बिजली आदि पदार्थ (त्वा) तुम को (मा) (अभिशूशुचन्) न दग्ध करें, न सतावें, दुःख और शोक के कारण न हों।

भावार्थ—दयामय परमपिता परमात्मा हम सबको वेद द्वारा उपदेश करते हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो! आप सबको चाहिए कि आप लोग ऐसे अच्छे धार्मिक काम करो और मेरी भक्ति,प्रार्थना उपासनामे लगजाओ, जिससे अग्नि, बिजुली, सूर्यादि सब दिव्य देव आपको सुखदायक हों। प्यारेपुत्रो! ये सब पदार्थ आप लोगो को सुख देने के लिए ही मैंने बनाए हैं, दुःख देने के लिए नहीं। दुःख तो अपनी अविद्या, मूर्खता, अधर्माचरण करने और प्रभु से विमुख होने से होता है। आप, पापो को छोड़ कर प्रभु की शरण मे आकर सदा सुखी हो जाओ।

मेरी वाणी आपकी महिमा गावे

इमा उत्वा पुरूवसो गिरो वर्द्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैर-
नूषत।२८॥ ३३।८१॥

पदार्थ—हे (पुरूवसो) बहुत पदार्थों मे वास करने वाले परम-पिता परमात्मन्! (याः इमाः) जो ये (मम गिरः) मेरी वाणियें (उ) निश्चय करके (त्वा वर्द्धन्तु) आप को बढ़ावें [आप की महिमा का प्रचार करें] (पावक वर्णाः) अग्नि के तुल्य वर्ण वाले महा तेजस्वी (शुचयः) पवित्र हृदय (विपश्चित) विद्वान जन (स्तोमैः) स्तुति वचनो से (अभि अनूषत) प्रशंसा करें।

भावार्थ—हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामिन प्रभो! हम सब की वाणियें आपकी महिमा को बढावें। सब विद्वान पवित्र हृदय, महातेजस्वी, महात्मा लोगो को भी चाहिये कि, आपकी प्रेमपूर्वक उपासना प्रार्थना और स्तुति करने मे लग जावें। क्योंकि आपकी भक्ति से ही हम सब का जन्म सफल हो सकता है आपकी भक्ति के बिना, विद्वान हो चाहे अज्ञानी, किसी का भी जन्म सफल नही हो सकता। इसलिए हम सब को योग्य हैं कि हम सब लोग उस दयामय अन्तर्यामी जगदीश्वर की, पवित्र वेद-मन्त्रोंसे प्रार्थना उपासना और स्तुति किया करें।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे सूर्य्याय त्वा।
ऊर्ध्वो अध्वरं दिवि देवेषु धेहि॥२५॥
३७।१९॥

पदार्थ—हे जगदीश! (हृदे त्वा) हृदय की चेतनता के लिए आपको, (मनसे त्वा) ज्ञानयुक्त अन्तःकरण की प्राप्ति के लिए आपको, (दिवे त्वा) विद्या के प्रकाश व बिजुली-विद्या की प्राप्ति के लिये आपको (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोको के ज्ञान की प्राप्ति अर्थ आपको हम लोग ध्यावें [आपका ध्यान करें] (उर्ध्वः) सब से ऊंचे अर्थात् उत्कृष्ट आप (दिवि) उत्तम व्यवहार और (देवेषु) विद्वानो मे (अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ का (धेहि) स्थापन करें।

भावार्थ—हे दयामय जगद्रक्षक परमात्मन्! आप कृपा करें, हमारा हृदय चेतन स्फूर्ति वाला हो, और अन्तःकरण ज्ञान युक्त हो, आत्मविद्या का प्रकाश हो। बिजली, अग्नि, सूर्य, वायु आदि विद्याओं की प्राप्ति के लिए सदा आप का ही ध्यान धरें। आप सारे संसार के विद्वानो मे अहिंसामय यज्ञ का विस्तार कर रहे हैं, अहिंसक प्राणी की कोई हिंसा न करे। सारे संसार मे शान्ति का राज्य हो, कोई किसी को दुःख न देवे। मनुष्यमात्र सब एक दूसरे के मित्र बन कर, एक दूसरे के हित करने मे प्रवृत्त हो, कोई किसी की हानि न करे। ★★

श्रावणी पर्व—रक्षा बन्धन

[श्री गुरमुखसिंह जी आर्य, सबीलपुर जाटान् अम्बाला,]

श्रावणी पर्व अपने भारत देश मे प्राचीनकाल से चला आ रहा है। इसका आरम्भ कब हुआ। इस बात का निश्चित पता चलना बड़ा कठिन है। आज भी यह पूर्व की भांति भारत देश के घर-घर मे उसी प्रकार उत्साह से मनाया जा रहा है प्रत्येक पर्व का अपना कुछ न कुछ महत्व होता है रक्षा बन्धन पर्व भी अपना बड़ा

महत्व रखता है। इस दिन बहनें देश की रक्षा के लिए तथा अपनी रक्षा के लिए भाई के हाथ मे प्रेम के धागो की तारो से बनी रखड़ी को प्रेम और उल्लास मे भरकर प्रसन्नवदन होकर बाधती है। भाई भी अपनी प्यारी बहन को उस प्रेम की तुच्छ भेट मग्न हृदय से देता है।

भाई उन स्नेह की तारो मे बधा हुआ अपनी इच्छानुसार बहन को धन देता है और बहन उस भेंट को लेकर फूली नहीं समाती, 'रक्षा बन्धन के दिन जब एक बहन ने मा से कहा था। मा मैं भी राखी बाधूगी ? मा रो रही थी. बेटी राखी भाई के बाधी जाती है। काश के तुम्हारा भाई होता? क्या करूणा मिश्रित दृश्य था मैं देख कर हैरान रह गया। क्या राखी भाई को ही बांधी जाती है। मैंने बड़ा भोली बच्ची रो नही ला राखी और बाध दे भाई के हाथ मे, वह दोनो बार-बार मेरे मुह की ओर देखने लगी। वह छोटी-सी बच्ची कह उठी मा कहती है। राखी भाई के ही बाधी जाती है। आप मेरे भाई नही हैं।' इसके बाद क्या हुआ उसे लिखने का कोई लाभ नही लिखने का भाव यह है कि राखी भाई के ही बाधी जाती है। ऐसी भावना लोगो के हृदयो मे भरी हुई है।

आज राखी पुरोहित भी अपने यजमानो के हाथो मे बाधते हैं और इस प्रकार उनसे कुछ धन प्राप्त करते हैं।

आज देश पर चारो ओर से आपत्ति के बादल उमड़ते आ रहे हैं। ऐसे समय मे बहनो को देश की रक्षा के लिए, भाईयो को तैयार करना पड़ेगा। इस पवित्र पर्व पर इन स्नेह की तारो को हाथो मे बाधते हुए, कहना पड़ेगा। भईया! इस देश की रक्षा का भार तुम्हारे कन्धों पर है।

आज देश को अन्दर और बाहिर दोनो ओर के शत्रुओ से खतरा पैदा हो गया है। उन शत्रुओं का मुंह तोड़ उत्तर देने के लिए सावधान हो जाओ। देश की रक्षा मेरी रक्षा है। प्राण-प्रण से देश रक्षा में जुट जाओ। मै यह राखी तुम्हारे हाथो मे बाधती हू। देश की रक्षा के लिये तैयार हो जाओ।

अगर बहनो ने यह शुभ सन्देश भाईयो को दिया तो यह पर्व मनाना सफल हो सकता है। अन्यथा इस स्नेह पाश का वह महत्व नही रहेगा। आओ बहनों और भाईयो मिल कर देश के अन्दर और बाहिर के शत्रुओं से रक्षा के लिये पग उठाए देश को इतना बाहिर के शत्रुओ से खतरा नही जितना अन्दर के शत्रुओ से है। जो भारत मे रहते हुए भारत का अन्न, जल खाते-पीते हुए भी शत्रु बने बैठे है। देश के गद्दारो से सावधान हो जाओ।

एक प्रश्न उठता है? क्या यह पर्व पूर्वकाल मे भी ऐसे ही मनाया जाता था? हा इसका रूप कुछ भिन्न था। यह श्रावण के महिने मे मनाया जाता है। इसी लिये इसे श्रावणी भी कहते हैं। और यह वर्षा ऋतु काल है। मनुष्य अपनी दिनचर्या प्राय: ऋतुओ के अनुसार ही बनाता है। ग्रीष्म और शरद ऋतु में मनुष्य अपनी सुविधा के अनुसार अपना करो बार कर सकता है। परन्तु वर्षा ऋतु मे कई बार बहुत-सी वर्षा हो जाने से बहुत-सा काम ठप्प-सा हो जाता है। आज तो विज्ञान के साधनो से वर्षा ऋतु में भी सभी कार्य उसी प्रकार चलते रहते हैं। परन्तु पूर्व काल मे इतने साधन नहीं थे।

केवल कारोबार ही करना, मनुष्य जीवन को सफल नही कर सकता। बड़े-बड़े कारोबार वाले भी आत्मिक शान्ति प्राप्त नही कर सकते। भौतिक शरीर के पालन-पोषण के साथ-साथ आत्मिक शान्ति और मानसिक सन्तोष का होना भी आवश्यक है।

भारत आध्यात्म प्रधान देश है। इन दिनो में अर्थात श्रावण के महीने मे भारत के लोग स्वाध्याय करते थे। साधु, महात्मा, विद्वान् लोगों को बुला-बुला कर उनकी स्थान-स्थान पर कथाएं करवाते थे। आत्मिक शान्ति प्राप्त करने के लिये विद्वानो की शरण में आश्रमो में जाते थे। उनसे वेदोपदेश, कथा सुनते थे।

श्रावणी के दिन वृहद यज्ञ रचाते थे। इस दिन सभी आर्य यज्ञोपवीत बदलते थे। आज भी आर्य भाई इस दिन पुराना यज्ञोपवीत उतार कर नया धारण करते हैं, वेदो का पाठ करते है। स्थान-स्थान पर वेदोपदेश, कथाए करवाते और सुनते हैं। स्वाध्याय करते हैं।

इस दिन यज्ञ के उपरान्त मनुष्य अपने हृदयो को टटोलते थे। अपने जीवन की बुराईयो का निरीक्षण करते थे। अगर कोई कमी या बुराई उन्हे अपने अन्दर दृष्टि पड जाती थी, तो उसे उस यज्ञमण्डल मे बैठ कर शुद्ध मन से छोडने का व्रत लेते थे।

प्राचीनकाल मे इन दिनो मे इसी प्रकार उपदेश, कथाए और स्वाध्याय चलता रहता था। इन दिनो मे ऋषि, मुनि बनो से नगरो और ग्रामो के समीप, आश्रमों मे आ जाते थे। क्योकि जगल मे रहना भी कठिन हो जाता था तथा साधारण जनता को जो ग्रामो और नगरो मे निवास करती है। आत्मा, परमात्मा के विषय मे तथा जीवनोन्नति के विषय मे उपदेश देना भी आवश्यक था।

इस प्रकार इस पर्व का अपना बडा महत्व है। इन दिनो मे किसी विद्वान को बुला कर प्रत्येक, नगर, ग्राम की समाजो मे वेद कथा सुननी चाहिए। जो लोग पढ़ नही सकते, अनपढ हैं या नेत्र हीन हैं, वृद्ध हैं, वह सभी इन कथाओ से लाभ उठा सकते हैं। इसलिए आओ यह पर्व धूम-धाम से मनाये।

ओङ्कार महिमा

[श्री स्वामी अमृतानन्द जी सरस्वती वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर]

[स्वामी जी महाराज ने प्रार्थना के मन्त्रो का अर्थ स्तोत्र रूप मे गान किया है जो निम्न प्रकार है .—]

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्र तन्नासुव ।।

अर्थ—हे सकल जगत् के उत्पत्ति कर्ता ऐश्वर्य युक्त शुद्ध स्वरूप सब सुखो के दाता परमेश्वर ! आप कृपा करके हमारे सब दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखो को दूर कर दीजिए और जो कल्याण कारक गुण कर्म स्वभाव और पदार्थ है वह हमे प्राप्त कराइये।

स्तोत्र

दया कर, दयाकर, प्रभु हर घड़ी ।
करे पल मे,हल तू ही मुश्किल अड़ी ॥
तेरा नाम उत्तम है इक ओमकार।
कि है जिसमें वर्णन तेरे गुण अपार ॥
तू ही इस जगत का प्रभु है आधार।
है कुदरत तेरी हरजा अमृत भरी ॥
दयाकर, दयाकर, प्रभु हर घड़ी।
करे पल मे हल तू मुश्किल अड़ी ॥



ऋषि तेरी भक्ति मे आते है जो।
सदा 'ओ३म्'ही ओ३म्'गाते हैं वोह ॥
कि है ओम् मे उनको श्रद्धा बड़ी।
दयाकर, दयाकर, प्रभु हर घड़ी ॥
करे पल मे हल तू मुश्किल अड़ी।



नही नाड़ीओर नस के बन्धनमे आता।
नही जन्म लेता नही दुःख उठाता ॥
सकल विश्वकर्ता तू घट-घट समाता।
है शक्ति से जग भर की रचना करी॥
दयाकर, दयाकर, प्रभु हर घडी ।
करे पल मे हल तू मुश्किल अड़ी ॥



महादेव देवो का तू देव स्वामी,
तेरे आश्रय जड व चेतन तमामी।
तू है पूर्ण ज्ञानी नही कोई खामी।
है बे अन्त शक्ति व कारगरी।
दया कर, दया कर, प्रभु हर घडी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

★

है बेअन्त महिमा व बेअन्त नाम,
नही मेरी शक्ति बखानू तमाम।
परन्तु अधिक सबसे हो 'ओम् नाम'।
अनादी से इसको मिली बरतरी।
दयाकर, दयाकर, प्रभु हर घड़ी।
करे पल मे हल तू मुश्किल अडी।।

★

हुए जग मे लाखो करोडो स्याने।
ज्ञानी, ध्यानी जिन्हे जगत माने।
गये हार सारे नही भेद जाने।
हुए देख हैरान रचना तेरी।
दया कर, दया कर, प्रभु हर घडी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अडी।।

★

तू बे अन्त सागर कठिन तेरा तरना,
असम्भवहै सागर का लोटे मे भरना।
जिकर बहुत मुश्किलहैवाणीसे करना,
है बे अन्त कहने मे ही बेहतरी।
दया कर, दया कर, प्रभु हर घडी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

★

बिना तेरे दाता है किस की यह शक्ति
कि ससार सागर से देव जो मुक्ति।
शिवा ओम् भक्ति नही कोई युक्ति,
तेरी गोद केवल हैं आनन्द भरी।
दया कर दया कर प्रभु हर घड़ी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

मन्त्रार्थ स्तोत्र

सकल जगत को पैदा है तुमने किया,
दिया हम पे सुखो का दरिया बहा।
तू शुद्ध रूप परमेश्वर है सदा,
तू निर्मल, नही मैल तुझ मे जरी।
दया कर दया कर प्रभु हर घडी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

★

करो दूर दुर्गुण हमारे प्रभु,
बुरे कर्म और पाप सारे प्रभु।
रहे हम कुसगत से नयारे प्रभु,
रहे नाम की तेरे मस्ती चढी।
दयाकर दयाकर प्रभु हर घड़ी।
करे पल हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

★

दया की करो ईश हम पर नजर,
करे तेरी आज्ञा मे जीवन बसर।
सदा नेक कामो पे बाधे कमर,
भरी नेकियों से हो जीवन लडी।
दयाकर दयाकर, प्रभु हर घडी।
करे पल मे हल तू ही मुश्किल अड़ी।।

★ ईर्षा बहुत बुरी है इस से बढ कर मनुष्य की अन्य कोई पाप प्रवृत्ति नही हो सकती, यह सारी बुराइयो की जड़ है। यदि किसी व्यक्ति का मन ईर्षा से भरा हुआ है तो वह सच्चे सुख का लेशमात्र भी अनुभव नही कर सकता। हृदय ईर्षा से जल रहा हो, तब भला मन मे शान्ति कैसे रह सकती है इस से तो मन सदा जलता ही रहेगा।

आस्तिक-जीवन

[श्री पण्डित जगतकुमार जी शास्त्री 'साधु सोमतीर्थ', देहली]

मनाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु, वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्त्रः, त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥ अथर्व० ५।३।१

शब्दार्थ:—(अग्ने) हे ज्योतिः स्वरूप ! (विहवेषु) विविध प्रकारके युद्धो, शास्त्रार्थो, सघर्षो और वार्तालापो में (मम) मेरा (वर्च.) उत्कर्ष (अस्तु) हो। (वयम्) हम (त्वा) तुझे (इन्धाना:) उपासनेवाले, अराधनेवाले (तन्वम्) अपने-अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करे। (चतस्र.) चारो (प्रदिशः) दिशाए (मह्यम्) मेरेलिए (नमन्ताम्) झुकनेवाली और अन्न देने वाली हो। (त्वया) तेरी(अध्यक्षेण)अध्यक्षता से तेरी अध्यक्षता मे (पृतनः) सब प्रकार के पापो और कष्टों को (जयेम) हम जीते।

भावार्थ:—हे सबके जीवनाधार ! बौद्धिक और शारीरिक सभी प्रकार के विवादो मे हमारी विजय हो। आपकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हुए हम अपने-अपने शरीर को पुष्ट करें। सब दिशाए हमारे लिए धन-धान्य और स्वागत-सत्कार से युक्त हों। आपकी कृपा से हम सभी प्रकार की विपत्तियो से सुरक्षित रहे।

प्रवचन

साधारण सिद्धात तो यही है कि लडाई-झगड़ा कोई अच्छी चीज नही है। गाली-गुफ्तार या हाथा-पाई तो भारी विलज्जता की बात है। जो शास्त्रार्थ किसी तत्व का निर्णय करने के लिए नही, अपितु पाण्डित्य-प्रदर्शन, मनोरजन अथवा दूसरो को चिढ़ाने और उनका दिल दुखाने के लिए किए जाते हैं,वे भी अनुचित हैं। इसी प्रकार जो युद्ध केवल मात्र पाशविक भावो की सतुष्टि, पर-पीड़न, पर-स्वत्वापहरण आदि के लिए किए जाते हैं, वे भी अपराध हैं। परन्तु न्याय, तत्व-निर्णय,दोष-निवारण,दुर्बलो के संरक्षण, आत्म-सम्मान की रक्षा और अपने अधिकारियो की प्राप्त के लिये जो-जो शास्त्रार्थ तथा युद्ध किये जाते है, वे तो उचित और कर्तव्य ही हैं। वह ज्योति.स्वरूप परमपिता परमात्मा, हमे ऐसी शक्ति और योग्यता प्रदान करे, जिस से सघर्ष के प्रत्येक प्रसग मे हमारा ही उत्कर्ष प्रमाणित हो, हमारा ही वर्चस्व स्थापित हो, हमारी ही विजय हो।

किसी को पराजित कब होना पड़ता है ? उचित प्रश्न है। जब कोई मनुष्य छल, कपट, धोका-धड़ी, पर-पीड़न, पर-स्वत्वापहरण शिष्ट मर्यादाओं का उल्लघन और अभिमान अथवा अज्ञान के वश मे होकर कोई काम करता है, तब उसे प्राय: लज्जित होना पड़ता है। लज्जा भी तो पराजय ही है। जब कोई काम क्रोध, मद, मोह, लोभ और अहकार आदि मनोविकारो के वशमें होकर किसी कार्य को करता है, तब वह अवश्य ही पराजित और अपमानित होता हुआ देखने में आता है। आत्म-ग्लानि भी पराजय है, पापो से समझौता भी पराजय है और अपनी ही दृष्टि मे अपने सम्मान का न होना अथवा कम होना भी पराजय है। लोगो ! उन बातो से बचो, जिनसे लज्जित, अपमानित और पराजित होना पड़ता है।

ईश्वराराधना, सन्ध्या, पूजा, यज्ञ, नाम-स्मरण, प्रभु-गुण-कीर्तन, योगाभ्यास आदि-आदि कृत्योके द्वारा आत्मिक-ज्योति को प्रदीप्त करो। भगवान् के पवित्र नामका संसार मे विस्तार करो। ससार में आस्तिकता का प्रचार करो। जब मनुष्य अपने व्यावहारिक जीवन में ईश्वर की सत्ता का बहिष्कार कर देता है, तब उसके नास्तिक होने में किसी को क्या सन्देह हो सकता है ? नास्तिकता तो एक बहुत बड़ा अभिशाप है। इस पर भी हम देखते हैं कि आजकल तो सर्वत्र नास्तिकता का ही बोल बाला है।

आजकल के तथाकथित आस्तिक वास्तव में तो नास्तिक ही हैं। उनकी बातों पर मत जाओ, उनके कामों से उनकी परीक्षा करो।

रात-दिन मन्दिर-ओ-मस्जिद के हैं झगड़े रहते।
दिल में ईंटें हैं भरी, लब पै खुदा रहता है॥

और

शोके मय ने रग-ओ-रोगन शेख का चमका दिया।
लोग समझे जिक्रे हक से शक नूरानी हुई॥

बहुत-से लोग खाओ, पियो, विवाह और मौज-मजे करो, का सिद्धान्त बनाकर चल रहे हैं। वे मोटे-ताजे और चिकने-चुपड़े भी कुछ कम नहीं हैं, परन्तु उनके जीवन में ईश्वरीय प्रेरणा, ईश्वरीय-छाप, ईश्वरीय-भाव, आस्तिकता, सत्यासत्य-विवेक, शुद्धाशुद्ध विचार, सरल और सात्विक व्यवहार कुछ थोड़ा-सा भी दृष्टिगोचर नहीं होता। तन के सुन्दर, मन के काले, ऐसे हैं, वे जन मतवाले। एवमेव-

मन मलीन तन सुन्दर कैसे ?
विष-रस भरे कनक-घट जैसे॥

हे प्रभो ! हमारी रक्षा करो। भरण-पोषण तो हम भी चाहते हैं, परन्तु हम चाहते हैं कि हमारे पोषण में भी हमारे प्रत्येक कर्म में, हमारे शरीर के कण-कण में, आप की पवित्र ज्योति सदा ही जगमगाती रहे। किसी भी अवस्था में हम आप का परित्याग न करें। जीवन के किसी भी प्रसंग में हम आप का विस्मरण न करें। आप की पवित्र सत्ता और महत्ता में हमारा दृढ़ विश्वास सदा ही बना रहे।

हे नाथ ! चारों दिशायें हमारे लिये धन-धान्य से परिपूर्ण हों। अपने शुभ गुणोंके प्रभाव से सर्वत्र ही हमारा आदर हो। हमारा निरादर कभी भी न हो। हम कभी भूलकर भी कोई ऐसा काम न करें, जिससे कि कभी कहीं हमको निरादर का पात्र बनना पड़े। अपमानों, लाछनों, उपालम्भों, प्रताड़नाओं, धमकियों, झिड़कियों, अभावों और विविध प्रकार की प्रतिकूल वेदनाओंसे परिपूर्ण जीवन भी कोई जीवन है ? ऐसे निकृष्ट जीवन से मौत ही भली है। हे प्रभो ! हमें यश और जीवन को सुखी, शान्त एवं सन्तुलित बनाने के लिए सब प्रकार के सात्विक ऐश्वर्य प्रदान करो।

यदि कोई कठिनाई आती है, तो आए। हम उसका सामना करेंगे। हे ज्योतिःस्वरूप ! जब तू हमारे साथ है, तब हमारे लिए चिंता का कोई भी कारण नहीं है, तेरी कृपा का सहारा पाकर, पर्वतों को चूरकरना, सागरों को मथ डालना, आकाशको विदीर्ण करना, दुर्गम घाटियोंको लांघजाना, औरभी सबप्रकारकी विभीषिकाओंको पछाड़ना हमारे लिए कुछ भी बड़ी बात न होगी। बस तू, हमारा पथ-प्रदर्शक, सब देशों, सब कालों और सब अवस्थाओं में बना रहे। देव ! आस्तिकता की ज्योति हमारे पथ को प्रकाशित करती रहे।

हम अपनी विजय चाहते हैं। हम अपनी शारीरिक पुष्टि तुष्टि की कामना करते हैं हम अन्न चाहते हैं, धन चाहते हैं। लौकिक स्वागत-सत्कार भी हम चाहतेहैं, परन्तु अपने ज्ञान और विज्ञान, बल और वैभवका कोई अभिमान हमें नहीं है। हम चाहते हैं कि जीवन के सभी प्रसंगो में ईश्वर हमारा पथ-निर्देश करता रहे। ईश्वर की सत्ता और महत्ता का परित्याग करने के लिए हम किसी भी अवस्था में तैयार नहीं हैं। किसी बड़ी से बड़ी सफलता के लिए भी अशिष्ट और अनीतिपूर्ण साधनों का अवलम्बन हम नहीं करेंगे। ससार के नामी और नीति निपुण लोग चाहे जो कहें, हम तो यही समझते हैं कि निन्दित कर्मों और निन्दित साधनों से जो भी सफलता प्राप्त होती है, वह चिरस्थायी और यश-प्रदायिनी एवमेव कल्याण-कारिणी कभी हो ही नहीं सकती।

ओ हमारे सनातन सारथे ! हमारा रथ हांक। हमें सत्पथ पर ले चल। चल, हम पापों की छावनी पर धावा बोलेंगे और विजयी होकर ही लौटेंगे। हां, अब तो हम विजयी होकर ही लौटेंगे।

शोक ! शोक ! अतीव शोक !

आर्य प्रादेशिक सभा के प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री मेला राम जी रेडियोसिंगर के नौजवान पुत्र श्री सत्य पाल का देहान्त हो गया। श्री सत्य पाल जी पंजाब रोडवेज में इन्सपेक्टर थे। नवांशहर के पास होने वाली बस दुर्घटना मे सख्त जख्मी हो गये, तुरन्त जालन्धर के सिविल होस्पीटल मे लाये गये। पूरा २ प्रयत्न करने पर भी उन को बचाया न जा सका २५/७/६८ की साय को वह नश्वर शरीर छोड़ कर सदा के लिये चले गये। दाह संस्कार २६/७/६८ को साय ४ बजे किया गया। जिस में हजारों व्यक्ति सम्मिलित हुये। उस दिन सभा का कार्यालय यह समाचार पाते ही बन्द कर दिया गया। सभा का सारा स्टाफ तथा श्री डा. वेदो राम जी एम ए. पी. एच. डी सभा मन्त्री तथा सभी आर्य समाजों के मन्त्री प्रधान और सदस्य इस अवसर पर पहुंचे। पंजाब रोडवेज के चण्डीगढ, लुधियाना, पठानकोट, जालन्धर, अमृतसर के सभी कर्मचारी सम्मिलित हुये सभी स्त्री पुरुष श्मशान में खड़े थे। इस मृत्यु का सभी को दुःख हुआ। दुःख ही नही, महान दुख हुआ। अन्त्येष्टि संस्कार श्री भीमसिंह जी पुरोहित ने पूर्ण वैदिक रीति से कराया। सभी ने उनकी सद्गति के लिए भगवान से प्रार्थना की कि उस महान आत्मा को सद्गति प्रदान करे तथा श्री मेलाराम जी और उनके परिवार को इस महान दुख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

वेद प्रचार के लिए

हम कहते बहुत हैं किन्तु उस के लिए करते बहुत थोड़ा है। आर्य समाजो के पास बड़े बड़े शानदार भवन हैं। धूमधाम से समारोह भी होते हैं—किन्तु वेद प्रचार मे उनका कितना भाग है—यह तो सभी जानते हैं। वर्ष के बाद आर्य समाजो के मान्य प्रतिनिधि एकत्रित होकर सभा के अधिवेशन मे आते हैं। सब कुछ सुनते और सुनाते हैं। सारा विवरण का चित्र उनके सामने होता है। फिर वर्ष भर अपने स्थानो पर रहते हैं। कई तो सभा को भूल ही जाते हैं। हमारी सभा आर्यप्रादेशिक सभा प्रभु कृपा से अपना एक विशाल परिवार रखती है। कितने बड़े बड़े नेता शिक्षा विशारद तथा धनीमानी इस परिवार के स्तम्भ हैं। बड़ी बड़ी छावनियां इस के साथ हैं। समाजे हैं। किन्तु सभा के वेदप्रचार की ओर यदि सारे मिलकर पूरा पूरा ध्यान देवे तो कमी किस बात की है ? अब वेद सप्ताह आया है। समाज का सब से बड़ा सप्ताह। जिस के लिए सब कुछ है—वह यही वेद सप्ताह है। इन दिनो सभा को वेद प्रचार के कार्य के लिए प्रत्येक समाज, संस्था परिवार बहुत २ धन देवे। यदि हम वेदप्रचार के लिए भी सभा को नही दे सकते तो और किस केलिए देगे ? इस बार सभा की झोली भर दीजिए।

—सम्पादक



मुद्रक व प्रकाशक श्री डा० वेदोराम जी एम० ए० पी० एच डी० मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पजाब द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत् कार्यालय महात्मा हसराज भवन निकट कचहरी बाहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पजाब जालन्धर

महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी, जालन्धर

इस विभाग की स्थापना पूज्य महात्मा हंसराज जी के निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति मे लाहौर में की थी। आर्य सज्जनो से प्रार्थना है कि पूज्यवर जी के इस पुण्य स्मृति विभाग को उन्नत करने में सहयोग दें। आर्य जनता से प्रार्थना है कि अधिक से अधिक साहित्य मगाकर धर्म लाभ उठाने के साथ साथ इस विभाग को उच्च शिखर पर ले जाने मे सहयोग देकर कृतार्थ करे।

उपयोगी पुस्तकों की सूची :—

१.	**सामवेद भाष्य** (आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री)	२०.००
२.	**वैदिक गुरमत** (प्रो० धर्म अनन्त सिंह)	१०.००
३.	**महात्मा हंसराज-मोडर्न पंजाब के निर्माता** लें० प्रि० श्रीराम जी शर्मा **M. A** (अंग्रेजी मे)	१.५०
४.	**सन्ध्या पर व्याख्यान** ले०—महात्मा हंसराज जी	१ ००
५.	**Dayanand His Life and Work** ले० प्रि० सूर्य भानु जी **M. A.**	१.५०
६.	**महात्मा हंसराज जी सचित्र** (ले० आनन्द स्वामी जी महाराज,	२.५०
७.	**प्रभु दर्शन** (आनन्द स्वामी जी महाराज)	२.५०
८.	**महर्षि दर्शन** (ले०—प्रि० दीवान चन्द जी **M. A**)	२.००
९.	**स्वाध्याय सग्रह** (ले० प्रि० साईदास जी **M. A**)	० ५०
१०.	**नवीन प्राचीन समाजवाद** (ले० नारायण स्वामी जी)	१.००
११.	**सत्यार्थ प्रकाश भाग प्रथम समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M. A.**)	० ५०
१२.	**सत्यार्थ प्रकाश भाग द्वितीय समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M. A**)	०.५०
१३.	**मुडक उपनिषद्** (ले० प्रि० दीवान चन्द जी **M. A**)	०.३७
१४.	**राधा स्वामी मत आलोचन** (ले० स्वामी सोमानन्द जी) उर्दू मे	०.३७
१५.	**षड्दर्शन समन्वय** (ले० बुद्धदेव जी मीरपुरी)	१ २५
१६.	**सीता** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० ३७
१७.	**पद्मिनी** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	०,३१
१८.	**पार्वती** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० २५
१९.	**Teachings of Ish Upnished** (ले० प्रि० दीवानचन्द जी **M.A**) अंग्रेजी मे	१ २५

आज ही आर्डर भेजिए और सभा की सहायता कीजिये, आर्य समाजें, स्कूल, कालिज, पुस्तकालयो के लिये मगाने की कृपा करें। नियमोनुसार कमीशन दिया जायेगा।

पुस्तकें मिलने का पता :— महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, निकट कचहरी जालन्धर।

आर्य जगत्

का

महात्मा हंसराज विशेषांक

★
ओ३म्
कृण्वन्तो
विश्वमार्यम्
अपघ्नन्तो
ऽराव्णः ।
★



पूज्य महात्मा हंसराज जी

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, जालंधर

★ ओ३म् ★

आर्य जगत्

का

—महात्मा हंसराज अंक—१९६८

१४ अप्रैल १९६८ तदनुसार २ वैशाख २०२५

वर्ष २८] ७, १४ अप्रैल १९६८, २६ चैत्र, २ वैशाख २०२५ [अंक १३,१४

वेदामृत का पान

उत्तिष्ठत सन्नह्यध्वमुदाराः केतुभि सह ।

सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत । अथर्व

अर्थ—हे वीरो (उत्तिष्ठत) उठो और (सन्न ह्यध्वम्) अपनी कमर कस लो तैयार हो जाओ (उदाराः) ऊंचे विचार वालो वीर नरो! (केतुभिः) झण्डों पताकाओं के (सह) साथ तैयार हो जाओ ताकि जो (सर्पाः) सर्प बने हुए हैं और जो (इतरजनाः) पराये शत्रु हैं (रक्षांसि) जो राक्षस बन चुके है। तथा जो (अभित्रान) घोर विरोधी शत्रु हैं। उन सब के (अनुधावत) पीछे दौडो, उन पर धावा कर दो ताकि राष्ट्र को या विश्व को ऐसे शत्रु हानि न पहुंचा सके।

भाव—समाज मे राष्ट्र या विश्व मे जो साप बन कर विष फैला कर मौत का प्रचार करते हैं। जिनकी सांप के समान दो जीभे हैं। कभी कुछ करते है और कभी कुछ बोलते है और कभी कुछ बोलते हैं जिनके जीवन में वैरी-पन भरा है और दूसरो को खा जाना ही जिनका स्वभाव बन चुका है जो दूसरो को हानि पहुचाने की ही रात-दिन सोच-विचार करते हैं। जो मनुष्यता, मित्रता, स्नेह, सहानुभूति से दूर है। सर्वदा कठोर है शुष्क है। हे राष्ट्र के वीर लोगो, उठो से दुष्टो पर हाथो मे पताका लेकर, कमर कस कर, धावा बोल दो, दूर भगा दो, उन्हें नष्ट कर दो, ताकि उत्पाती विश्व मे अशान्ति न फैला सके। अपनी शक्ति से इनको दबा दो। —सम्पादक

अडिग सेनानी महात्मा हंसराज

[पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी का दिव्य संदेश]

एक खेवट मिला था जगमगाती नैया को। नैया के सवारों ने उसे नदी में धकेल दिया। नदी में सागर की लहरें नैया को खाने के लिए बढ़ रही हैं। आतंक फैल गया। निराशा उभरने लगी। चिन्तित जाति सोचने लगी अब क्या होगा? तब दयानन्द की ज्योति से प्रकाश पा एक युवक ने इस निराशा को चीर नैया की पतवार थामने का निश्चय किया इस निश्चय की पूर्ति में उसे अपना जीवन बलिदान कर देना पड़ा।



महात्मा हंसराज चाहते तो अन्य सांसारिक लोगों की तरह उच्च पद प्राप्त कर लाखों की सम्पत्ति जुटा लेते। लेकिन जाति की दुरवस्था ने उन्हें बलिदान के इस मार्ग पर बढ़ने को प्रेरित किया। उन्हें कई प्रलोभन दिये गये। देश के नेतृत्व का स्वर्ण जाल फैलाया गया। प्रबल राजनैतिक आंदोलन के समय उन्हें कहा गया कि यदि आप इस में शामिल हो जायेंगे तो सारे देश के नेता बन जायेंगे। तब महात्मा जी ने केवल इतना ही कहा—मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं, रचनात्मक कार्य में लगा हूं और इसी में लगा रहूंगा। उनका सारा जीवन तप और त्याग का जीवन है। महात्मा जी के जीवन का एक ही उद्देश्य था। ऋषि का मिशन सफल हो ताकि हिन्दू जाति में नया जीवन आये इसके लिए उन्होंने उपयुक्त साधन बरते। दयानन्द कालेज की निस्वार्थ एवं निष्काम सेवा, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना, महिला विद्यालय की स्थापना इसी कार्यक्रम की कड़ियां थी। महात्मा जी दृढ़ ईश्वर विश्वासी थे। इस विश्वास का प्रमाण लोगों ने तब देखा जब कि दिल्ली षड्यन्त्र केस में उनका बेटा कैद था। इतना बड़ा मुकद्दमा चला। घर में फूटी कौड़ी न थी। धर्मपत्नी मृत्युशय्या पर थी। तब एक स्त्री ने कहा—मालूम होता है कि ईश्वर कोई नहीं। यह सुनते ही महात्मा जी को क्रोध आया और कहने लगे—सावधान! फिर ऐसा न कहना। भगवान् है। वही हम सब के सच्चे हितैषी हैं जो करेंगे अच्छा करेंगे।

जीवनभर उन्होंने कठिन तपस्या की। अपनी प्रणपूर्ति के लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग दिया। एकदम मर जाना आसान है पर आजन्म पग-पग पर अपनी भावनाओं, उमंगों और लालसाओं को रौंदते रहना और अपने पथ से विचलित न होना सब से बढ़ कर वीरता और साहस की बात है।

आर्य समाज, बजवाड़ा में म० हंसराज जन्म-दिवस

'आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से १९ अप्रैल को आर्य समाज के कर्णधार व डी. ए. वी. संस्थाओं के जन्मदाता महात्मा हंसराज जी का जन्ममहोत्सव धूमधाम से मनाया जा रहा है। कार्यक्रम इस प्रकार से है—१७-१८-१९ को प्रातः ७ से ९ बजे तक यज्ञ, उपदेश दोपहर १२ से २ बजे तक तथा जलूस २ से ५ तक आर्य नेता प्रि० रलाराम जी की अध्यक्षता में सम्मेलन होगा। जिस में बड़े-बड़े विद्वान और गायनाचार्य पधार रहे हैं। सब सज्जन पधार कर कर लाभ उठावें।

सम्पादकीय–

देवता की याद

महात्मा हंसराज जी देवता थे। आज करोड़ों नर-नारी उन के जीवन के गुणों का पूजा करते हैं। उनकी तपस्या अनुपम थी, त्याग सब के लिए मनन योग्य था। जो महान् व्रत जीवन में धारण किया, उसे पूरा किया। जिस पथ पर चले, उसी पर चलते रहे। कोई भी प्रलोभन सत्ता की लिप्सा, आकर्षण, भय, दबाव, स्वार्थ साधना उनको तनिक भी तो विचलित न कर सका। उपसर्ग से लेकर अपवर्ग तक, आरम्भ से अन्तिम अवस्था तक देव थे और देव ही बने रहे। समाज के लिए सब कुछ दे दिया। समाज के लिए आए एवं समाज के लिए ही गए। जो उनके अन्दर था वही बाहर था। इसी लिए वह देवता थे। आज की विशाल संस्थाओं के इस महान् रूप में उनका ही त्याग दिखाई देता है। दयानन्द कालेज के आदि आचार्य थे। जीवन बड़ा व्यस्त था—पर प्रति सप्ताह रविवार वह तपोमूर्ति आर्यसमाज के सत्संग में बैठी दिखाई देती थी। उनका धर्म-प्रेम व समाज-प्रेम अतुलित था। उनकी व्यष्टि समष्टि में लीन हो गई थी। उनका व्यक्तिगत तो कुछ भी नहीं था—सब कुछ समष्टि बन गया था। दयानन्द कालेज जैसी विशाल धारा के वही आदि स्रोत थे। आर्य प्रादेशिक पंजाब के भी वही सूत्राधार थे।

प्रति वर्ष उनका दिवस आता है। कितनी संस्थाएं और समाजें मनाती हैं? हम देव पूजा के पवित्र कर्तव्य से दूर जा रहे हैं। आज तो धन-पूजा, जनपूजा, सत्ता महत्ता पूजा, नीति प्रीति पूजा चलती है—देवपूजा का अध्याय समाप्त होता जाता है। आज उस स्वर्गीय देवता की स्थापित ये विशाल जनसेना है, पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले भी हैं। किन्तु रविवार के समाजों के सत्संगों में महात्मा हंसराज जी के जीवन-पथ पर चलते हुए कितने आते हैं? हम ने सब कुछ सरकारमय बना दिया है। सरकार भी तो धर्म मन्दिरों में जाने से किसी को भी मना नहीं करती। भारत के मान्य राष्ट्रपति डा० जाकिर-हुसैन जी अपनी ईद की नमाजें पढ़ने जामा मस्जिद में जाते हैं। धर्म-भावना को कौन रोकता है? हां अपना मन बेईमान न हो जाए। महात्मा हंसराज ने अपने जीवन में प्रभु को, वेद को तथा दयानन्द प्रेम को कायम रखा था। उन्होंने संस्थाओं में बाहर नामपद पर भी और अन्दर वातावरण में भी दयानन्द देवता को बनाए रखा था। आज सब कुछ है किंतु दयानन्द देव तथा हंसराज जी की आत्मा दिखलाई नहीं देती। यदि हम में ये नहीं तो फिर है क्या? आज के महात्मा हंसराज जी के दिवस पर बैठे हुए गम्भीर विचार करके उस देव के जीवन पथ पर चलने का संकल्प लेवें। देवासुर-संग्राम करना ही होगा। —त्रिलोकचन्द्र

महात्मा हंसराजगुणगानाष्टकम्

[ले०—त्रिलोकचन्द्रः शास्त्री सम्पादक]

द्रुत-विलम्बित छन्दोबद्धम्

वयसि येन कृतं सुचिरं तपः।
तपसि येन वृतं व्रतमुत्तमम्॥
यतिवरेण धृता धृतिरात्मदा।
जयति हंसपरो जननायकः॥१॥

भाव —जिसने प्रथम आयु में बड़ा तप किया और उत्तम व्रत धारण किया। जिस यतिवर ने बल देने वाला धैर्य रखा। वह लोकनायक हंसराज सदा जीवित है।

हृतमशेषमदः प्रियजीवितम्।
भवसुखाय कदापि न मुक्तधीः।

सरति तस्य यशो भुवि मंगलम् ।
जयति हंसयुतो नरनायकः ॥२॥

भाव :—जिस ने अपना सारा जीवन आहुत कर दिया। लोक सेवा से कभी मुख न मोड़ा। जिसकी मंगल कीर्ति सर्वत्र फैलती है। वह नरराज हंसराज जीवित है।

तमसि ज्योदिरिव विततं शुभम् ।
मनुज ज्ञानकरं ननु भारते।
स तु महाधन एव प्रसारकः।
जयति हंसयुतो जननायकः ॥३॥

भाव—जिस ने शिक्षा को शुभ ज्योति फैलाई। मनुष्य को विद्या पढाई। वही महाधन हंसराज सदा जीवित है।

विपदि येन मनो न विचालितम् ।
तमसि ज्योतिरथापि सुभालितम् ॥
व्रतमशेष शिवञ्च सुपालितम् ।
जयति हंसपरः श्रुतिगायकः ॥ ४ ॥

भाव—जिस का मन विपत्ति मे विचलित नही हुआ। जिसे अन्धकार मे प्रकाश मिला। जिसने मंगलकारी व्रत पालन किया। उस आचार्य हंसराज की जय हो।

धनचयाय परं न हि यौवनम् ।
सुखभराय गतो न च यौवनम् ॥
निजगये गरिमाभरितो व्रती ।
जयति साधुवरो मुददायकः ॥ ५ ॥

भाव—जिस ने जवानी धन में नहीं लगाई। अपने मुक्तिसुख के लिए जो वन में नहीं गया। अपने घर पर ही जो सच्चा साधु था। उस महात्मा की जय हो।

श्रुतिपरं मुनिमत्र हृदिस्थितम् ।
जनकुले स्मृतिकार्यमनुत्तमम् ॥
व्रतम वाप्य चकार श्रुतालयम् ।
जयति ज्ञानं प्रदान रतो महान् ॥ ६ ॥

भाव—जो स्वामी दयानन्द के नाम काम का श्रद्धालु बन कर उसके स्मारक रूप व्रत को लेकर विद्यालय दयानन्द स्कूल, कालेज खोलने मे लगा रहा। उसे शिक्षा के महान् गुरु की सदा जय हो।

सरिदियं ननु पूतजला शुभा।
धरणि लोक सुखाय प्रवर्तते॥
मुनिवरस्य प्रियस्य सुनामभा।
जयतु वर्षशतानि सुमंगला ॥७॥

भाव—यह स्कूल कालेज रूप विद्या की सरिता जो उस प्रिय ऋषि दयानन्द सरस्वती के शुभ नाम से प्रवाहित है चिरकाल तक चलती रहे।

न रचितं भवनं निजवासदम् ।
न च समार्जितमत्र महद्धनम् ॥
सरणिमेव प्रियाः ननु सज्जनाः ।
अनुसरन्तु सदैव महात्मनः ॥८॥

भाव—उस महात्मा ने अपने रहने का कोई भवन नही बनाया तथा न ही अपने लिए धन ही कमाया। सज्जनो! उस देवता त्यागी महात्मा हंसराज के त्याग—सेवा मार्ग पर सदा चलते रहो।

आवश्यक निवेदन :— यह अंक ७ तथा १४ अप्रैल तथा अंक संख्या १३,१४ का सम्मिलित अंक है। पाठकबन्धु नोट कर लें, इस से अगला अंक अब २१ अप्रैल को निकलेगा। लेखक महोदय नराज न हों, मैटर समय पर न मिलने से, कुछ गड़बड़ रही, जिन महानुभावों के लेख इस अंक में न आ सके वह अगले अंक में छाप दिये जायेंगे। लेखकों से निवेदन है लेख कागज के एक तरफ लिखा करें, दोनो ओर लिखे लेख को प्रेस वाले बड़ी मुश्किल से कम्पोज करते हैं। यही नम्र निवेदन है। —धर्मदेवार्य व्यवस्थापक

सरस्वती के वरद पुत्र महात्मा हंसराज

[श्री भीमसेन जी बहल एम.एस.सी., सभा प्रधान जालन्धर]

संसार में प्रत्येक मनुष्य का एक ही लक्ष्य माना जाता है कि वह पहले मनुष्य बने और उसके उपरान्त देवत्व की ओर बढ़ चले किन्तु देवत्व प्राप्त कैसे हो? वेद भगवान ने देव बनने के अनेक साधन बताये हैं। ऋषियों ने भी उनका अनुकरण करके मनुष्यों को मनुष्य कोटि से ऊपर उठाकर देव-दिव्य गुण युक्त बनने के कई विधि-विधान लिखे हैं। ऋग्वेद दशम् मण्डल के सत्रहवें सूक्त के सातवें मन्त्र में आता है। 'सरस्वती देवयन्तो हवन्ते' सरस्वती को देवत्व की कामना करने वाले (मानव) बुलाते हैं। इसका सीधा भाव यही है कि जो सरस्वती की पूजा (विद्या का आदर) करते हैं। वे देव कोटि में पहुंच जाते हैं।



इसीलिए भारत में विद्यादान सभी दानों और कर्मों में श्रेष्ठ समझा जाता है। आचार्य का सम्मान राष्ट्र में ईश्वर से दूसरे स्थान पर माना जाता है। क्योंकि आचार्य ही शिष्य में वह बौद्धिक और सामर्थ्य पैदा करता है कि जिससे वह इस समस्त संसार को अपने ज्ञान से पार करता हुआ देव श्रेणी मे पहुंच अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

इसी आचार्य परम्परा में पंजाब प्रदेश मे जिला होशियारपुर के बिजवाड़ा कस्बे में १९ अप्रैल १८६४ ई० को प्रातः उषाकाल के पुनीत समय में देव श्रेणी को गौरवान्वित करने वाले स्वनामधन्य श्री पूज्य महात्मा हंसराज जी ने जन्म धारण किया। बचपन मे ही उनमें दिव्य गुण अपनी प्रखर किरणों से चारों ओर के वायु मण्डल को प्रकाशमान किये रहते थे। विद्यादान का पुनीत कार्य वह आरम्भ से ही दूसरों की सहतार्थ करते थे। एक बार का प्रसग है कि जब महात्मा जी प्राइमरी कक्षा मे पढते थे। उस समय एक वृद्धा ने उन्हे एक पत्र पढने के लिए दिया। महात्मा जी की माता जी ने बीच मे ही रोक कर कहा दूसरो के ही खत पढ़ा करता है। अपनी पढाई की ओर ध्यान क्यो नही देता ? उस समय महात्मा जी ने विनम्रतापूर्वक कहा था।

'माता जी। फिर पढने का लाभ ही क्या है? अगर किसी के काम न आवे। यह देवतत्व का वास्तविक लक्षण।

महात्मा जी के जीवन को यदि एक वाक्य में कहना हो तो उपर्युक्त वेद मन्त्र के अनुसार कहा जा सकता है कि वे आयु पर्यन्त सरस्वती (विद्या) की पूजा करते और कराते रहे हैं। उन्ही की अपूर्व कृपा का फल आज है कि पंजाब भारत में विद्या और शिक्षा की दृष्टि से किसी भी अन्य प्रान्त से पीछे नही अपितु यदि मैं सर्वोपरि भी कह दूं तो अत्युक्ति न होगी।

प्रत्येक दृष्टि से महात्मा जी वर्तमान पंजाब के निर्माता थे। महात्मा जी के जन्म के समय पंजाब एक पिछडा हुआ प्रांत था बंगाल ही शिक्षा का केन्द्र था, समाजिक सुधार आंदोलन (ब्रह्म समाज और देव समाज के रूप मे) उसी प्रात मे आरम्भ हुआ। भारत मे सर्व-प्रथम विलियम कालेज कलकत्ता भी बगाल मे ही खुला था।

१८८३ मे महात्मा हंसराज जी के साथ केवल २० ग्रेजुएट पंजाब यूनिवर्सिटी से पास हुए थे। माध्यमिक

कक्षा का सारा प्रबन्ध भी राजधानी में ही था। उस समय की पंजाब यूनिवर्सिटी की सीनेट में एक भी व्यक्ति आर्य समाजी न था। साथ ही भविष्य में भी कोई ऐसी आशा न की जा सकती थी कि आर्य समाज भी कभी शिक्षा के कार्य में भाग लेगा।

किन्तु ५० वर्षों में पंजाब की काया पलट गई, यह सब पूज्य महात्मा हंसराज जी के पुनीत पुरुषार्थ का ही फल है। दयानन्द कालेज लाहौर की स्वर्ण जयन्ती की रिपोर्ट में लिखा गया था कि—"१८८६ में जो एक छोटा-सा बीज बोया गया था, वह आज एक महान् वट वृक्ष का रूप धारण कर चुका है। जिसकी पुनीत छाया में लाहौर में ५००० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। इस के अतिरिक्त ५०,००० लाहौर से बाहिर की आर्य शिक्षण संस्थाओं में शिक्षा पा रहे हैं, जिसके लिए लगभग ३००० अध्यापक नियुक्त हैं। १९३६-३७ में डी. ए. वी. कालेज लाहौर और उससे सम्बद्ध संस्थाओं का वार्षिक व्यय ४,५०,००० रुपए था। इसके अतिरिक्त अन्य स्थानों पर स्थापित स्कूलों, कालिजों व गुरुकुलों का कुल वार्षिक व्यय लगभग १५,०००,००० रुपए था। अकेली लाहौर की दयानन्द कालेज सोसाइटी के साथ सम्बद्ध सम्पत्ति का अनुमान १२,००,००० रुपया था।

सोसाइटी को गर्व है कि उस समय तक डी. ए. वी. कालेज लाहौर ने ही अकेले २५८९ ग्रेजुएट निर्माण किए जालन्धर और कानपुर के ग्रेजुएटों की संख्या १०९३, इससे पृथक थी। और आयुर्वेदिक कालेज तथा टेक्नीकल कालेज के विद्यार्थियों की संख्या भी इससे पृथक थी।

यही नहीं डी. ए. वी. संस्थाओं के अपने प्रांत में जन्मे, पले और पढ़े विद्यार्थियों को सारे भारतके उच्च से उच्च पदों पर जाने का सुअवसर प्रदान किया। बड़े-बड़े डी. ए. वी. के छात्र इंजीनियर, जज, मैजिस्ट्रेट, पुलिस आफिसर सभी कुछ बने हैं। कहां तक गिनाऊं उस महान् देव, महान् ऋषि, महान् आचार्य, महात्मा हंसराज जी की तपस्या का फल आज हम सभी भोग रहे हैं। वह पंजाब के गौरव थे, महान् मनीषी थे। वह पंजाब के कण-कण में विराजमान हैं। पंजाब ही नहीं समस्त भारत उनके उपकार को भूल न सकेगा। आज उनके जन्म-दिवस पर हम उन्हें शत-शत प्रणाम करते हैं।

महात्मा हंसराज—एक आदर्श सुधारक

[प्रो० श्री दयानन्द आर्य, साधु आश्रम, होशियारपुर]

स्वनामधन्य महात्मा हंसराज जी का नाम कौन नहीं जानता? भारतियों के हृदयों में उनके त्याग व तप की धाक है। सारा जीवन एक ही बार बलिदान कर देना सुगम है, परन्तु एक ही उद्देश्य के लिए तिल-तिल करके जीवन लगा देना बड़ी कठिन बात है। यह कठिन कार्य किया तो हंसराज ने, फिर हंसते हुए स्वयं ऋषि दयानन्द के पुनीत कार्य में बीज बन कर अपने को स्वाहा कर दिया। उसका अपना प्रभाव हुआ। डी०ए०वी० संस्थाओं का जाल बिछ गया। परन्तु उनका मुख्य लक्ष्य था कि इन संस्थाओं का निर्माण करके विद्यार्थियों का वेदोक्त धर्म का अनुयायी बनाना। वे स्वयं धर्म-शिक्षा पढ़ाते थे। वेद-प्रचार के कार्य में यथासमय लगे रहते थे। इतने बड़े शिक्षा के जटिल कार्य को भारत में अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव रूपी नाक को नीचे करना इस बात का द्योतक है कि वे कितने महान् थे। फिर ऐसा सब कुछ किया, तो तप-त्याग के बल पर। उन्होंने आर्यसमाज का भव्य रूप देश के सामने रखा। वे ऊपर से नीचे तक ऋषि के दीवाने थे। उनकी आर्यसमाज के प्रति तड़प को सांसारिक पैमानों से मापा नहीं जा सकता। हमारा यह परम कर्त्तव्य बनता है कि जिस वेद प्रचार के लक्ष्य

को लेकर वे चलते थे, हम उसे भूल न जाए। लोग उनके दर्शनों से प्रभावित होते थे, मानो उन्हें एक सच्चा आर्य-रत्न मिल गया था। उनके गुणों का चिंतन करना हमारे कल्याण का प्रमुख कारण है। वे एक सुधारक थे। आर्यसमाज के महान् कार्य को करना, इसे फैलाना ही उनका जीवन था। हम उनके चरण-चिन्हों पर चलें। यही आर्य मार्ग है। अकाल-पीड़ितों की सेवा करने में तत्पर रहते थे। नव-युवकों को ढूंढ-ढूंढ कर आर्यसमाज में लाते थे। आज कहां है प्रध्यात्मा महात्मा हंसराज। समय पुकार रहा है। हम उनकी आर्यसमाज-मय भावना को अपनाएं।

कर्मशील महात्मा हंसराज जी

[श्री डा० वेदी राम जी शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०, सभा मन्त्री]

प्रसिद्ध विद्वान् एंगिल्स ने अपने एक निबन्ध— **"From upto man"** में विद्वत्तापूर्ण ढंग से प्रतिपादित किया है कि मनुष्य को कर्म शक्ति ने ही मानव बनने की क्षमता प्रदान की है। मनुष्य ने कर्म का निर्माण किया और कर्म ने मनुष्य को बनाया। मानव के अतिरिक्त इस संसार में अन्य कोई भी प्राणी ऐसा दिखाई नहीं देता जो कर्म के स्वरूप और महत्व को समझ कर कर्म करता हो। गीता के अनुसार भी कर्म का सम्बन्ध आत्मा से ही माना गया है—



कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोधव्यं गहनो कर्मणो गतिः॥

कर्म की गति बड़ी गहन है। इसी की सहायता से आत्मा रूपी बीज शरीर रूपी क्षेत्र को प्राप्त होकर उस में अपनी जड़ें मजबूती से जमा लेता है। जो प्राणी कर्म की इस गहनता में प्रवेश कर कर्मशील बनने की ओर अग्रसर होता है उसे ही "आत्मवान" जानना उचित है। स्वनामधन्य महात्मा हंसराज जी ऐसे ही आत्मवान, कर्मशील महामानव थे। उनका समस्त जीवन तप और त्याग से परिपूर्ण था। धन दौलत, सुख-सम्पदा, भोग-ऐश्वर्य सभी का त्याग कर केवल आत्मा में लीन हो, दु:खी जनों को सुख की दिशा में बढ़ा दिया। उनके मन में कभी भी नेता बनने की कामना न आई वे तो सदा कार्यकर्ता ही बने रहने के अभिलाषी रहे। उनके ही शब्दों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाएगी। नेतागिरी की उपेक्षा करते हुए उन्होंने कहा था—"मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं, रचनात्मक कार्य में लगा हूं और इसी में लगा रहूंगा।

महात्मा जी के इन शब्दों में उनकी निश्छल आत्मा बोलती दिखाई दे रही। अपने एक भाषण में उन्होंने अपनी इसी कर्मशीलता को और सुन्दर शब्दों में स्पष्ट करते हुए कहा था—

'मनुष्य जीवन का एक ध्येय होना चाहिए एक केन्द्र जहां पहुंच कर वह अपना जीवन कुर्बान कर सके, अपने धन-दौलत और बाल-बच्चों को सुविधा से छोड़ सके। एक स्थान होना चाहिए जहां पहुंच कर गर्व के साथ कह सके कि चाहे प्राण चले जाएं, चाहे सब ओर नाश-विनाश नाचने लगे तो भी वह लौटेगा नहीं—पीछे हटेगा नहीं। ऐसे स्थान पर ही मनुष्य का वास्तविक चरित्र और उसका वास्तविक मूल्य ज्ञात होता है।

उपर्युक्त शब्द महात्मा जी के जीवन की साक्षात तस्वीर हैं। डी० ए० वी० को ध्येय चुन कर तथा आर्य समाज को अपना केन्द्र मान कर, देवदयानन्द के सन्देश को जन-जन तक पहुंचाने में ही अपना समस्त जीवन आहुत कर दिया। १८८५ से १९११ तक दयानन्द कालेज के कार्य को चार चांद लगा कर अन्य लोगों को अपने कर्मशील-यात्रा का यात्री बनाने के हेतु एक एकदम त्याग, लोकसेवा और वेद-ज्ञान प्रसार में तल्लीन हो गए।

आर्य प्रादेशिक सभा का काम अपने हाथ में लिया। दुःखी-पीड़ितों की सेवा में दिन-रात एक कर भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक देव दयानन्द की दुन्दुभि बना डाली। जब सभा का कार्य चलाने के लिए काफी कार्यकर्ता निर्मित कर दिए तो इससे भी त्याग पत्र दे अपने आपको स्वतन्त्र रूप में सभा की सेवार्थ अर्पित कर इसी के साथ अन्त तक सम्बन्ध बनाए रहे। वस्तुतः महात्मा जी ने अपने जीवन में महात्मा श्री कृष्ण के इस वचन को कि—'कर्मण्येवाधि कारस्ते

मा फलेषु कदाचन।'

'कर्म करो और फल की कामना न करो' को अपने जीवन में चरितार्थ कर लिया था। यही कर्मशीलता उनके अनुयायियों को सदा आकर्षित करती रही। भगवान हमें शक्ति दे कि हम महात्मा जी के चरण चिन्हों पर चलते हुए इस कार्यक्षमता से सदा प्रेरित होते रहें।

आर्यसमाज का मानसरोवर को

व्यथा सन्देश

[रचयिता—श्री प० दौलतराम जी शास्त्री अमृतसर]

तुम ब्रह्मा के मानस सुत हो—भारत पर उपकार तुम्हारा।
दयानन्द का मैं मानस सुत—मैंने जग का कुष्ठ निवारा ॥ १ ॥
तुम पर मोहित राजहंस—मोती खा परम यशस्वी बनते।
मुझ पर मोहित हंसराज हो—चुने चुनाय तपस्वी बनते ॥ २ ॥
तुम ने जन्म दिया सरितों को—जिन का निर्मल सलिल पवित्र।
मैंने श्रद्धानन्द बनाए जिनका अद्‌भुत दिव्य चरित्र ॥ ३ ॥
तुम से निकले महानदों ने—सकल देश की प्यास मिटाई।
मुझ से शिक्षित विद्वानों ने—देश देश को सुधा पिलाई ॥ ४ ॥
मुक्त हुए योगी सन्यासी—तुझ पर करी तपस्याओं से।
मुक्त किये मेरे वीरों ने—लाखों जटिल समस्याओं से ॥ ५ ॥

खेद एक (पहेली)

खेद एक हम दोनों ही की, पावनता में त्रुटियां आईं।
पड़ गई आपाधाप रहा जब, सिर पर न कोई खसम गुसाईं ॥ ६ ॥
नहरें निकली—हुई सिंचाई, लाईट फैली, गया अन्धेरा।
इष्ट हो गया अर्थ कामना, परम अर्थ का उजड़ा डेरा ॥ ७ ॥
मैली करी समाज जाह्नवी, कपड़ों का गन्दा मल पड़ कर।
भैंसों का गोबर पड़ पड़ कर, सब कुकड़ों के पत्ते सड़ कर ॥ ८ ॥

महात्मा हंसराज के—

त्याग का लक्ष्य

[श्री प्यारेलाल जी बेरी, एम०ए०बी०टी० प्रिंसिपल साईंदास हा०स० स्कूल जालन्धर]

महापुरुषों का हृदय उदार होता है, जिसमे देश, जाति और धर्म की उच्च भावनाएं भरी होती हैं और वे साहनुभूति से पूर्ण होने के कारण इनकी हानि को सहन नहीं कर सकते अत: जब कभी वे देश, जाति और धर्म की दुरवस्था देखते हैं तो तड़प उठते हैं और धर्म की दुरवस्था देखते हैं तो तड़प उठते हैं और सभी स्वार्थों को लात मारकर देश, जाति और धर्म की उन्नति के लिए जीवन अर्पित कर देते है तथा इस मार्ग के विघ्न-बाधा रूपी काटो से तनिक भी विचलित नही होते।



महात्मा हंसराज जी ने जिस समय अपनी शिक्षा समाप्त की उस समय उन्होने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार जहां भारत में शिक्षा का प्रचार कर रही है, वहां हमारी प्राचीन संस्कृति तथा वैदिक धर्म की जड़ो पर कुठाराघात भी कर रही है। ईसाइयत के प्रचार के फलस्वरूप हमारे नव-युवक अपनी संस्कृति तथा धर्म से घृणा करने लगे हैं और दिन-प्रतिदिन उनपर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ता चला जा रहा है। यह देखकर तत्कालीन आर्य नेताओं ने एक पंथ दो काज की नीति को अपना कर महर्षि दयानन्द के स्मारक के रूप में एक ऐसी संस्था खोलने का निश्चय किया जिसमें अन्य विषयों की शिक्षा के साथ-साथ धर्म की शिक्षा को मुख्य स्थान दिया गया। उस संस्था का का नाम श्रीमद्दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज रखा गया, इस नाम से ही संस्था का उद्देश्य भली-भांति प्रकट होता है। आर्य नेताओ ने यह माध्यम मार्ग इसलिए अपनाया कि अंग्रेजी शिक्षा उस युग की मांग थी, अत: उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती था। पर उनका वास्तविक उद्देश्य तो नव-युवको में अपने धर्म के प्रति रुचि और श्रद्धा पैदा करना था।

इस कार्य के लिये जहां धन की आवश्यकता थी, वहां ऐसे कार्यकर्ताओं की भी आवश्यकता थी, जो स्वार्थ का त्याग कर इस पुनीत कार्य के लिये जीवनदान कर सके। देश के सौभाग्य से ऐसा व्यक्ति भी कार्यक्षेत्र मे आ गया, वह था ला० हंसराज, जिसने लक्ष्मी और सरकारी उच्च नौकरी की परवाह न करके इस संस्था को जीवन अर्पित कर दिया और पच्चीस वर्ष तक एक पैसा लिये बिना तन, मन से इस की सेवा की। उनके बड़े भाई श्री मुल्कराज जी भल्ला अपनी आधी तनख्वाह अर्थात् चालीस रु० प्रतिमास उनको दे दिया करते थे, जिस से बड़ी सादगी का जीवन बिताते महात्मा जी कालिज की सेवा में संलग्न रहे। यह सब कुछ उन्होने धार्मिक प्रेरणा से प्रभावित होने के कारण किया, उन्होने यह मान लिया था कि धार्मिक शिक्षा के शिक्षा के बिना अन्य विषयो की शिक्षा अधूरी है। पाठक जानते ही हैं कि आज स्वतन्त्र होने के इक्कीस वर्ष पश्चात भी यदि देश में अनुशासन-हीनता आदि देश द्रोही तत्त्व हमारी उन्नति में बाधक हैं तो इस का मुख्य कारण धार्मिक शिक्षा का अभाव है। हमारी सरकार ने भी अब अनुभव

किया है कि धार्मिक शिक्षा के बिना विद्यार्थियों अर्थात देश के भावी नागरिकों में देश भक्ति और अनुशासन की भावना आ ही नहीं सकती, अतः वह इस के लिये प्रयत्नशील है।

आज पूज्य महात्मा हंसराज जी का जन्म-दिवस मनाते समय हमें यह सोचना है कि क्या हमारी सन्तान को धर्म शिक्षा मिल रही है। यह एक गम्भीर प्रश्न है जिसका उत्तर यदि 'न' में मिले तो उससे बढ़ कर

मूक तपस्वी हंसराज

[रचयिता—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु डी. ए. वी. कालेज अबोहर]

घोर निशा में ज्ञान उजाला करने वाला
जय हो दीन दुखी की पीड़ा हरने वाले
जय हो निर्जीवों मे जीवन भरने वाले
जय हो पर हित तिल तिल जलने मरने वाले
मुनि ऋणी हम तेरे तेरा गौरव गायें।
श्रद्धायुक्त हिये से तुझ को शीश झुकायें॥

तूने वेद अनादि का सन्देश सुनाया
तुम ने ऋषिवर की राह पर सर्वस्व लुटाया
तूफानों से हिम्मत साहस से टकराया
धीरजधारी दृढ़ता से पग सदा बढ़ाया
लिए हिये मे प्यार तुम्हारी याद मनायें—

मूक तपस्वी तूने ऐसी आग लगाई
तुझ से अगणित नवयुवकों ने ज्योति पाई
तेरे कारण तरुणाई ने ली अगड़ाई
गोराशाही यह सब कुछ लखकर घबराई
गिन गिनकर उपकार तेरी जयकार गुंजाये—

हंसराज की जय जय गाने वालो आओ
मातृभूमि के आज सकल सन्ताप मिटाओ
आओ मिल कर दिल के सब दुर्भाव भगाओ
एकवाद का भारत भर को पाठ पढ़ाओ
राष्ट्र भवन के शिल्पीका ऋण आज चुकायें—

वेद सुधा का हर प्राणि को दान कराओ
पिछड़े बिछड़े भाइयों को सब गले लगाओ
शुद्धि का वह चक्र सुदर्शन खूब चलाओ
जीने का है राज यही सब को समझाओ
हंसराज का स्वप्न सभी साकार बनायें—

दुर्भाग्य की कोई बात नहीं हो सकती। धर्म शिक्षा न मिलने का ही यह फल है कि विद्यार्थी अपने गुरु को गुरु नहीं समझता पिता-माता को उचित सम्मान नहीं देता और अपनी शिक्षा संस्था से उसे लगाव नहीं है। व्यापारी भी यदि ब्लैक करता है, तो उसे धर्म के प्रति आस्था नहीं। सरकारी कर्मचारी भी धार्मिक वातावरण से दूर रहने के कारण कर्तव्य का पालन नहीं करते और अपने उत्तरदायित्व को जानते हुए भी उसे निभाने की आवश्यकता नहीं समझते। यही हमारी अधोगति का मूल कारण है। सो आज यदि हम यह निश्चय कर लें कि धार्मिक शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए हम भरसक यत्न करेंगे तो महात्मा जी का जन्म-दिवस मनाना सार्थक हो सकता है अन्यथा प्रथापालन का कोई लाभ नहीं।

महात्मा हंसराज जी का संक्षिप्त जीवन कार्य

[श्रीराम पथिक छुटकलपुर]

जन्म—१९ अप्रैल १८६४ बजवाड़ा होशियारपुर तथा १८७४ में पिता की छत्रछाया से रहित होना तथा संकटों का पहाड़ टूट पड़ना।

१८७९ में लाला साईंदासका सत्संग प्राप्त।

१८८० में इण्टर की परीक्षा मिशन स्कूल लाहौर से पास किया।

१८८२ में आर्यवर्त्त अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र का प्रारम्भ किया।

१८८३ में महर्षि दयानन्द के निर्वाण से आप पर अति प्रभाव तथा ऋषि मिशन के प्रचार प्रसार सोच विचार।

१८८४ मे बी. ए. फ़स्ट डविजन में पास किया।

१८८५ में ऋषि की स्मृति में दयानन्द ऐंग्लो कालेज को निशुल्क जीवन अर्पण।

१८८६ में डी. ए. वी. हाई स्कूल लाहौर के हैड मास्टर बने।

१८८८ मे कालेज की कक्षायें आरम्भ की तथा प्रिंसीपल बने।

१८८९ में ला० साईंदास के निधन पर आर्य प्रतिनिधि सभाके प्रधान बनाये गये।

१८९० में आपके विरुद्ध स्वार्थियों ने अनेक षड्यन्त्र किये व विरुद्ध प्रचार किया परन्तु महात्मा जी ने सब से विशालता, महानता का परिचय दिया सब स्वयं शान्त हुए।

१८९२ मे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना।

१८९३ में विरोधी प्रचार शुरू हुआ। परन्तु आप अपनी धुन मे लगे ठोस कार्य करते रहे। जिसका सब पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा।

१८९५ मे आर्य गजट के सम्पादक पंजाब केसरी ला० लाजपत राय के साथ कार्य शुरू किया।

१८९५ मे अकाल पीड़ितो की बीकानेर में सहायता।

१९०८ में डी० ए० कालेज लाईफ मेम्बर की बुनियाद।

१९०९ में जिला कांगड़ा भूकम्प में महान् कार्य।

१९१० मे प्रिंसीपल पद से त्याग।

१९१२ मे वेद प्रचार का तीव्र कार्य।

१९१३ मे आर्य दयानन्द कालेज मैनजमैंट कमेटी में प्रधान बनाये गये।

१९१४ में आपके पुत्र बलराज स्वतन्त्रता युद्ध मे पकड़े गये। आपकी धर्म पत्नी का देहान्त एवं अन्य कठिनाइयां परन्तु आप पर इनका कोई प्रभाव नही पड़ा।

१९१८ में गढवाल के कहत में महत्वपूर्ण कार्य।

१९१९ में कार्य कमेटी से प्रधान पद से त्याग।

१९२० में उडीसा के कहत पर हजारों रुपए सहित कर्मठ कार्यकर्ता भेजे।

१९२१ मई में पंजाब में कैहत सहायता फण्ड आरम्भ किया।

१९२३ अप्रैल में मलकाना शुद्धि का महत्वपूर्ण कार्य किया।

१९२४ में आपको आल इण्डिया आर्यन सभा का प्रधान बनाया गया।

१९२५ कोहाट और मुजफ्फरगढ़ के पीड़ितों की भारी सेवा की।

१९२६ स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान पर आर्यजगत को संगठन किया।

१९२८ में आल इंडिया आर्यन कांग्रेस की प्रधानता कर महत्वपूर्ण कार्यों पर प्रकाश डाल कार्यक्रम बनाए।

१९२८ मई मे महिला महाविद्यालय लाहौर प्रारम्भ किया।

१९२९ में मुजफ्फरगढ़, जेहलम, गुजरात और झंग में पीड़ितों की सेवा अन्न-वस्त्र आदि पहुंचाया।

१९३२ जम्मू-काश्मीर सहायता को भेजा।

१९३४ बिहार भूकम्प में हर प्रकार की सेवा सहायता की।

१९३५ कोहाटा भूकम्प में बड़ा कार्य करवाया।

१९३६ मे मोहन आश्रम हरिद्वार पर विशेष ध्यान दे आर्यों को सेवा का मौका दिया।

१९३७ में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से त्याग पत्र दिया।

१५-१०-१९३८ की महिला विद्यालय में बी. टी. कक्षा प्रारम्भ की।

२३-१०-१९३८ को अंतिम उपदेश आर्यसमाज अनारकली लाहौर में दिया।

२९-१०-१९३८ को स्नान करते हुए रुग्ण हुए तो १५-११-१९३९ को रात्रि ११-५ बजे ओ३म् का जाप करते हुए हम से सदा के लिये जुदा हो अपना आदर्श जीवन आर्य जगत एवं विश्व को निष्काम सेवा कम में अर्पण कर गये।

हंस महिमा

[हरिश्चन्द्र 'निस्तन्द्र' साईं दास स्कूल जालन्धर]

हंस बलिदान तेरा देश मे रङ्ग लाया है।

(१)

क्लेश कठिनाई बी. ए. पास किया उस युग में,
ग्रेजुएटों का था सम्मान बहुत जिस युग में,
नौकरी होती थी सरकारी सुलभ जिस युग में,
तूने जीवन का किया दान अहो! उस युग में।
हंस बलिदान तेरा चार सू रङ्ग लाया है।

(२)

आज शिक्षा ने जो घर-घर में जगह पाई है,
ज्ञान की तूने अमर जोत यह जगाई है।
तूने अज्ञान अविद्या की जड़ मिटाई है,
तेरा तप, त्याग है और तेरी ही कमाई है।
हंस बलिदान तेरा हर सू रङ्ग लाया है॥

(३)

प्रेरणा आप के जीवन से अगर हम लेवें,
देश की सेवा में तन मन यह तनिक दे देवें।
तब तो निश्चय ही ऋषिऋणसे उऋण हो लेवें,
सिर उठा गर्व से 'निस्तन्द्र' यही कह देवें,
हंस बलिदान तेरा देश में रङ्ग लाया है।

१६-१०-३८ को रावी के तट पर आपको अन्त्येष्टि में हजारों नर-नारियों ने हार्दिक श्रद्धांजलि दी, आप से सेवा का गुण ग्रहण किया। ★★

★ कल्याण का साधन तुरन्त आरम्भ कर दीजिये, समुद्र के स्नान करने वाले को लहरों के स्तब्ध होने की कदापि प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये।

★ आप स्वयं ही शोक एवं चिन्ता के जगत् का निर्माण करते हैं, कोई व्यक्ति उसे आप के ऊपर नहीं लादता।

तपस्वी और त्यागी महात्मा हंसराज

[श्री प्रिंसीपल विद्यावती आनन्द हंसराज महिला महा-विद्यालय जालन्धर]

हंसराज का जन्म १९ अप्रैल १८६४ को होशियारपुर जिला के ग्राम बजवाड़ा में एक सम्मानित परन्तु निर्धन



परिवार में हुआ था। जब माता गणेशदेवी ने इस नन्हे बालक का नाम हंसराज रखा था तो उसको क्या मालूम था कि उसका बेटा संसार में इतना नाम कमाएगा। गणेशदेवी घर की निर्धनता के कारण अपने लाडले हंसराज को कोई सुख सुविधा नहीं दे सकती थी। जब बालक हंसराज अपने गांव से चार-पांच मील की दूरी पर स्थित स्कूल में नंगे पांव पढ़ने जाता था तो माता मन मसोस के रह जाती थी। गर्मियों की चिलचिलाती धूप से तथा शीतकाल की बर्फानी हवाओं में उसका हंस नंगे पांव और नंगे सिर पढ़ने जाता था। वह उसे जूता नहीं खरीद के दे सकती थी। सर्दियों में ठंड से बचने के लिए उसके लिए कोट नहीं सिलवा सकती। जब दूसरे बच्चों को मावा खाते देख बालक हंस खाजन के लिए मचलता था तो वह अपने दिल पर पत्थर रख लेती थी और कहती थी मेरा बेटा एक दिन राजा बनेगा। १२ वर्ष की आयु में ही हंसराज के सिर से साया उठ गया था।

हंसराज का बचपन तप का जीवन था। उसने निर्धनता का तप तपा, मुश्किलों तथा कठिनाइयों से जूझ कर बी०ए० की परीक्षा १८८५ ई० में बहुत ऊंचे अंक लेकर पास की। उन दिनों बी०ए० पास की बहुत कीमत थी। चारों ओर से उच्च नौकरियों के लिए उनकी मांग होने लगी। धन का लालच उनके चारों ओर मंडराने लगा। परन्तु हंसराज तो एक दूसरे ही रंग में रंगे जा चुके थे। उनपर महर्षि स्वामी दयानन्द का रंग चढ़ चुका था। अब तक उन्होंने जो गरीबी का तप तपा था वह गरीबी उनकी बुलाई हुई नहीं थी। उसने जो निर्धनता के कष्ठ देखे थे उस के कारण अब हंसराज को धन से प्यार हो जाना चाहिए थे। परन्तु ऐसा हुआ नहीं। हंसराज किसी और ही मिट्टी के बने थे। अब उन्होंने गरीबी को वरण किया। स्व प्राप्त निर्धनता में जीवन व्यतीत करना सब से कठोर तपस्या है। इसी कठोर तपस्या को दुर्बल शरीर युवक हसराज ने २१ वर्ष की आयु में अपनाया और अन्तिम श्वास तक अपनाये रखा। हंसराज की जवानी और बुढ़ापा भी तप, त्याग और पर उपकार केलिए समर्पित हुआ।

महर्षि दयानन्द देहावसान के बाद आर्यसमाज की ओर से ऋषि का उपर्युक्त स्मारक बनाने का निश्चय किया गया। फैसला हुआ कि महर्षि का स्मारक दयानन्द ऐंग्लो वैदिक स्कूल तथा कालेज के रूप में बनाया जाये। युवक हन्सराज ने, जिस का अभी २ बी. ए, का नतीजा निकला था, इस स्मारक को सिरे चढ़ाने के लिए अपना जीवन दान दे दिया। वह दयानन्द ऐंग्लो वैदिक तथा स्कूल लाहौर के अवैतनिक हैडमास्टर नियुक्त हुए। बाद

में जब दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज खोला गया तो वह इसके अवैतनिक प्रिंसीपल नियुक्त हुए। २५ वर्ष तक उन्होंने हैडमास्टर तथा प्रिंसीपल के रूप में सेवा की परन्तु स्कूल व कालेज कोष से एक पैसा नहीं लिया। उन का तथा उन के परिवार का निर्वाह हंसराज के बड़े भाई मुल्कराज द्वारा अपने ८० रु० मासिक के वेतन में से दिये हुए आधे वेतन में होता था। प्रिंसिपल के पद से निवृत होने के बाद लाला हंसराज ने अपनी सेवा का क्षेत्र और बड़ा बना लिया।

जिस डी. ए. वी. आंदोलन के पौधे को महात्मा हंसराज ने अपना जीवन दान दे कर रोपा था और अपनी तपस्या तथा त्याग से सींचा था आज उसने बढ़कर एक बहुत बड़े वृक्ष का रूप धारण कर लिया है। अब इस की शाखाएं देश के कोने कोने में फैल गई हैं।

क्या इन संस्थाओं में त्यागी, तपस्वी महात्माहंसराज की महान आत्मा की झलक कहीं दिखाई देती है! कहीं हम आपने मार्ग से भटक तो नहीं गए! यह भूल तो नहीं गए कि महात्मा हंसराज हमारे लिए क्या आदर्श छोड़ गए थे। क्या हम स्वयं महात्मा हंसराज के सच्चे नाम-लेवा है। क्या हम में वह अग्नि है जो महात्मा हंसराज में थी। क्या हम अपनी अग्नि से और ज्योतियां जला रहें।' यह प्रश्न बार-बार मेरे मन में उठता है और

हंस राज ? राज हंस

[रचयिता श्री पं० सत्यपाल जी शास्त्री धाम अमृतसर]

अज्ञता कुहू में कहीं सोमसुत संनिविष्ट
गोपित हुआ था बार-बार न दिखा रहा,
बिलों में पड़े थे बिलखाते जा रहे बराक
शोषनाथ शोषनो से शोषन हटा रहा।
दयाकर दयोद्रेक द्वारा एक अंध्रयनुग (अध्रयनुग)
उदित हुआ था उदयास्त को मिला रहा,
उदित हुआ था उदयास्त को मिला रहा,
दयानन्द ज्ञानपीठ ऋक्षमाला नायक जो
वही हस हंस रूप जगती हंसा रहा।
आज मुसकान कैसी ? ज्ञान के शृङ्गार की है
कहां से मिली है ? ज्ञान पारावारागार से
कौन सा बताओ ? धाम ! वेद वेदोद्धार का
नुयायी शारदा विमानीभूत हंस सार से।
धाम ज्ञान धाम रत्न मुट् सदा मानस मे
धारण किये था जा, श्वेत बक धार से,
हंस ! हंस सङ्ग हंसी आनन भरी है मैंने
आभा सुधास्वन्दिनी शारदी मेघ मारस्त से।

उत्तर पाए बिना ही रह जाता है। शायद उत्तर वह नहीं

देश मे डी. ए. वी. स्कूलों तथा कालेजो का जाल सा बिछ गया है। इन स्कूलों तथा कालजों में से पढ़ कर प्रति वर्ष हजारो छात्र निकलते है। महात्मा जी ने स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया और लाहौर में उस समय एक महिला विद्यालय की स्थापना की जब भारत की जनता अपनी बेटियो को शिक्षा के गहने से सुसज्जित करना पाप समझती थी।

डी. ए. वी. संस्थाओ में पढे हुए छात्र तथा छात्राए देश विदेश में ऊंचे पदो पर आरूढ़ हैं। आने वाले वर्षों में भी इन संस्थाओ के छात्र ऊंची २ पदवियां प्राप्त करेंगे और देश विदेश में नाम कमाएंगे। यह सब देख कर मुझे खुशी होती है। परन्तु साथ ही, मन में एक प्रश्न उठताहै 'क्या हमारी यह संस्थाए महात्मा हंसराज के दिखाए हुए मार्ग पर चल रही हैं।

जो मैं चाहती हू और इसी लिए मैं अपने प्रश्न का उत्तर दे कर अपने आप को एक भुलावे में डाल रही हू। मैं चाहती हूं कि मेरे साथ मेरे पाठक भी इस प्रश्न का उत्तर अपने मन मे टटोलें और यदि उत्तर वह नहीं जो होना चाहिए तो इस का कोई हल ढूढें।

आर्यसमाज का विशाल रूप

[श्री आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम०ए० वेदभाष्यकार अध्यक्ष वेद रिसर्च विभाग सार्वदेशिक सभा देहली]

आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम ए. आर्यजगत के महान् विद्वानो मे प्रसिद्ध विद्वान हैं। आप रिसर्चस्कालर तथा अनेक वेद विषयक ग्रन्थों के लेखक हैं। आपका सामवेद भाष्य तो एक अनुपम कृति है। आजकल सार्वदेशिक सभा नई देहली के रिसर्च विभाग के अध्यक्ष हैं। सस्कृत, हिंदी और इगलिश के भी आप विद्वान् हैं। इस अवसर पर आपका समाज को दिया यह लेख सन्देश चेतना भरने का काम करता है। —स.

वर्तमान समय में आर्यसमाज के नेतृत्व की भारत के प्रत्येक क्षेत्र मे आवश्यकता तो है ही,परन्तु इसके धार्मिक, दार्शनिक विचारो तथा वेद सम्बन्धी भगवत् दयानन्द की धारणाओं के प्रचारार्थ विश्व का नेतृत्व करने की आवश्यकता है। आर्यसमाज का इतिहास जीवनकाल से बतलाता है कि भारत में कोई भी जागृति का क्षेत्र ऐसा नहीं कि जिसमें आर्यसमाज का अनुपम योगदान न रहा हो। आर्यसमाज ने जनतामे आत्माभिमान व आत्मापमान की भावना समाप्त कर आत्माभिमान की भावना जागृत की। किंतु कभी-कभी खेद का अनुभव होता है कि समाज में भी ऐसे तत्व आ रहे हैं, जो आत्मापमान के मरज से पीड़ित हैं। वे कह देते हैं कि आर्यसमाज समाप्त हो गया। उनको जानना चाहिए कि आर्यसमाज जीवित है। इस रूप में तो इसकी आवश्यकता और भी बढ़ गई है। यदि हम जीवित हैं तो समाज मर गया—यह कहना वचनामात्र हैं। आर्यसमाज के सिद्धान्त विशेषत: उसके नियम सार्वभौमिक रूप रखते हैं।

भगवान दयानन्द की सबसे बड़ी देन यह है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद परम धर्म है। आर्यसमाज यदि अपनी शक्ति को इस दिशा मे लगाये विश्व का महान उपकार होगा। अभी तक हमारे कार्य की दिशा अधिकतया सामाजिक सुधार रही है। यही कारण है कि कई लोग आर्यसमाज के प्रवर्त्तक का मूल्यांकन करते हुए उसे सोशल सुधारक ही कह कर सन्तुष्ट होते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद विषद्ध में आर्यसमाज को जो धरोहर दी है, यदि उसे हम विस्तृत नही करते तो आर्यसमाज का कार्य पूरा नहीं होगा। हमारी समाजों, सभाओं, विद्वानो, शिक्षा शास्त्रियों व जनता को इस वेद की दिशा मे अधिक कार्य करना

चाहिए। इससे ही हमारा जीवन द्रुतगति से बढ़ता जाएगा। आज के वातावरण में इसकी बड़ी आवश्यकता है। आर्य बन्धु और बहिनें अपने इस विशाल रूप को पहिचान कर आगे बढ़ते रहें।

श्रद्धांजलि

दिवंगतो महात्मा हंसराजः

[श्रद्धाञ्जलि समर्पको धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः—आनन्दकुटीरम् ज्वालापुरम्]

१. योग्यो भृशं किन्तु समाज सेवा—व्रत समादाय चकार कार्यम्।
आजीवनं साधु महान् मनीषी, श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्यः॥

२. स्व जीवित यः सरलं नितान्त, विद्या प्रसारेऽर्पित वित्तवित्तम्।
चक्रे समाजस्य हितेऽनुरक्तं, श्री हंसराजः सोऽभिनन्द्य.॥

३ कष्टापहारे भुवि पीड़िताना, धर्म प्रचारे च कृत प्रयत्नः।
तत्कारणाल्लब्ध यशा मनस्वी, श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्यः॥

४. मांसाशनं वेद विरुद्ध मेतत्, तथा दयानन्द मते निषिद्धम्।
इत्थं जुघोषेह हि यो महात्मा। श्री हंसराजः किल सोऽभिनन्द्य॥

भाषानुवाद—

१. जो बहुत योग्य थे किन्तु जिन महान बुद्धिमान ने समाज सेवा का व्रत धारण करके जीवन पर्यन्त उत्तम सेवा कार्य किया, वे महात्मा हंसराज जी अभिनन्दन करने योग्य हैं॥

२. जिन्होंने अपने अत्यन्त सादे जीवन को विद्या प्रचार में तथा तन मन धन लगा कर समाज के कल्याण में ही प्रीतियुक्त बना दिया, वे महात्मा हंसराज जी निश्चय से अभिनन्दनीय हैं॥

३. इस भूमि पर पीड़ित लोगो के कष्ट दूर करने और धर्म के फैलाने के लिए जिन्होंने सदा प्रयत्न किया और इस के कारण जिन्हे यश मिला ऐसे विचारशील महात्मा हंसराज जी निश्चय से अभिनन्दनीय हैं॥

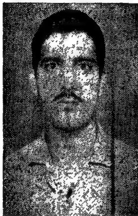
४. मांसाहार करना वेद के विरुद्ध और महर्षि दयानन्द जी के विचार में भी निषिद्ध है, जिस महात्मा ने ऐसी स्पष्ट घोषणा अन्त में की वे महात्मा हंसराज जी निश्चय से प्रशंसनीय हैं॥

तप–त्याग तथा निरभिमान की साक्षात् मूर्ति–

महात्मा हंसराज

[ले०—श्री धर्म देव जी आर्य व्यवस्थापक आर्य जगत्]

१९ अप्रैल १८६४ का वह पवित्र दिवस भारत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा, यह वह शुभ तिथि है जब की त्याग-मूर्ति म०हंसराज जी का जन्म बजवाड़ा जिला होशियारपुर में हुआ था। साधारण से घर में जन्म लेकर, कुछ समय के बाद यह उस घर की आशा



के बिन्दु बने, मां को अपने लाल पर आशा थी कि एक दिन यह इस घर का दीपक इस घर के निर्धनता रूपी अन्धकार को दूर भगा इस सारे आंगन में प्रकाश की छटा बखेर देगा। उन्नति के पथ पर चलते हुए इस तपस्वी ने बी०ए० की परीक्षा पास की, उन्हीं दिनों डी०ए०वी०हाई स्कूल की स्थापना लाहौर में हुई। आवश्यकता थी किसी त्यागी-तपस्वी मुख्याध्यापक की, कौन आगे आता वहां धन का अभाव था।

उस समय इस नवयुवक ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं अवैतनिक रूप से यह कार्य करने के लिए तैयार हूं। इस नौजवान के त्याग को देख कर सभी दांतों तले उंगली दबा गए, उस समय बी० ए० गिने चुने व्यक्ति ही पास करते थे। अगर आप चाहते तो अंग्रेज सरकार की बड़ी से बड़ी नौकरी भी मिल सकती थी, परन्तु इस परवाने ने उस समय न घर की गरीबी देखी, न परिवार की चिन्ता की, सारा जीवन लोक-सेवा के लिए आर्यसमाज को अर्पण कर दिया, महर्षि दयानन्द की मृत्यु के बाद यह सब से पहला और महान बलिदान था, ऐसे जीवन के बाद तपस्या आवश्यक है, दूसरों ने तो क्या अपनों ने भी कष्ट दिये, इस त्यागी तपस्वी ने सभी कुछ हंसते हुए सहन किया, सारे जीवन में कहीं भी लेश मात्र भी कहीं पर अभिमान नहीं पाया जाता।

इस महापुरुष के जीवन का एक-एक पहलु आज हमारे लिए पथ-प्रदर्शक बनकर प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहा है। उनका जीवन एक सागर है जिस में गोता मार कर अनुपम मोती प्राप्त होते हैं। उन्होंने अंग्रेजों की शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त की थी, वह जानते थे कि विदेशी किस प्रकार भारत की संस्कृति तथा सभ्यता को मिटा कर ईसाईयत का प्रचार कर रहे हैं, उन्होंने भाषा, संस्कृति तथा जातीयता की रक्षा के लिये आर्य शिक्षण संस्थाओं का प्रचार और प्रसार किया, वह इस डी० ए० वी० संस्था रूपी वृक्ष के माली बने, उसे पानी सींचा, बढ़ाया, और आंधियों से भी इसकी रक्षा करते रहे परन्तु वह इतना कुछ करने के बाद भी इस वृक्ष के फलों के भी लोभी नहीं थे।

आज वही पौधा एक विशाल वट वृक्ष के रूप में चारों ओर फैलकर समस्त भारत के कई लाख नवयुवकों को अपनी सुन्दर छाया देता हुआ, विद्या-शिल्प और दूसरे अनुपम मीठे फल भेंटकर रहा है। यह सब महात्मा जी के तप, त्याग और संस्कृति की रक्षा के लिए अपने आपको अर्पण करने का फल है। जब वह आरम्भ में दयानन्द कालेज के प्रिंसिपल नियुक्त हुए, तब आपस में

बड़ा विरोध बढ़ा क्योंकि कुछ लोग श्री गुरुदत्त एम० ए० को प्रिंसिपल बनाने के पक्ष में थे। परन्तु उस त्यागी ने किसी बात की चिन्ता नहीं की, विरोध होने पर भी दिल लगा कर काम करते रहे क्योंकि वह तो अपना सभी कुछ आर्यसमाज के अर्पण कर चुके थे।

महात्मा हंसराज जी ने अपने निर्वाह की भी चिन्ता नहीं की धन्य हो उनके बड़े भाई को जिस ने भ्रातृप्रेम की जनता के समक्ष रखते हुए अपने भाई की प्रतीज्ञा की पूर्ति में हाथ बटाते हुए उनका सारा खर्च भार अपने ऊपर ले लिया था एक कालेज के प्रिंसिपल, सिर पर

श्रद्धांजली—महात्मा हंसराज जी के प्रति

[रचयिता—हरवंशलाल 'हंस' आर्य गायक ११-९ भार्गव नगर, जालन्धर शहर]

त्याग तप में बिता करके जीवन सकल।
जिन्दगी को कमल सम बसर कर गया॥
एक दीपक से लाखों को ज्योति मिली।
खुद अमर होके उनको अमर कर गया॥

सादगी तेरे जीवन का अंग हो गई।
पूरी उस महर्षि की उमंग हो गई॥
हां अवैदिक विचारों से जंग हो गई।
धर्म वैदिक का दिवकर प्रखर कर गया॥१॥

हस मोती रहा ढूंढता उम्र भर।
देवी चन्द, साईं दास जैसे बशर॥
जिन्होंने बांधी तेरे कथन पर कमर।
तेरा हर शब्द उन पर असर कर गया॥२॥

डी० ए० वी० पर धरा धन धाम लुटा
नाम तूने गुंजाया दयानन्द का॥
वेद विद्या के प्रसार की लगन में
देश देशांतरों में सफर कर गया॥३॥

आपदाएं तुझे न अभय कर सकी
लोभ लालच से दामन अछूता रहा॥
झूठ पाखण्ड का उन्मूलन किया
सत्यता का सुहाना प्रहर कर गया॥

पद चिन्हों पर चला तू ऋषिराज के
और अविद्या जहालत का शत्रु था तू॥
रूढ़ीवादी जो डरपोक थे डर रहे
उनको प्रिय 'हंस' निर्भय निडरकर गया॥५॥

फटी सी पगड़ी खद्दर का पाजामा, खद्दर का कोट तथा कमीज, साधारण सा ४ रुपए मासिक किराए का मकान कितना त्याग था उनके त्याग को देखकर नवयुवक उनके कालेज की ओर आये आते थे। वह युवकों मे से भी युवक चुनकर उन्हें देश भक्ति का विशेष पाठ पढ़ाते थे। देश पर मर मिटने की शिक्षा देते थे और अपने विद्यार्थियो से प्रेम भी बहुत करते थे। उनके जीवन के एक एक पहलु का दिनचर्या की एक एक क्रिया का विद्यार्थियो पर प्रभाव पड़े बिना रह ही नहीं सकता था।

एक दिन कालेज में एक सज्जन आये महात्मा जी से मिलने, दर्शन करके बड़े हैरान हुए कि क्या यही कालेज के प्रिंसीपल हैं। सर्दी की मौसम थी महात्मा जी का कम्बल भी फटा हुआ था वह व्यक्ति तभी उठा और बाजार से दो कम्बल खरीद कर चरणों मे रख कर चल दिया। महात्मा जी ने पता क्या किया, उसी समय दो गरीब लड़कों को बुला उन्ही के सामने कम्बल उन्हे सौंप दिये, व्यक्ति हैरान था। पूछा महाराज यह तो मैंने आपके लिये दिये हैं। इन को कहो तो मैं और दे दूंगा, बोले भाई मेरे गुजारे के लायक कम्बल है। मुझे इन कीमती कम्बलों की आवश्यकता नही है। एक नही ऐसी-ऐसी कितनी ही घटनाएं उनके जीवन से सम्बन्धित है। उनके कपड़ों को देख कर कई लोग तो हंस देते थे। लेकिन वह सादगी के अवतार किसी बात की भी चिन्ता नहीं करते थे।

अभिमान तो उन्हें कभी छू तक भी नही गया उन्होने कभी अपने त्याग का वर्णन तक भी नही किया, क्या जीवन था उस योगी का और धन्य है उस पत्नी को जिसने पति के सुख मे सुखी और दुःख में दुःखी रह कर जो भी मिलता था उसी में निर्वाह किया और जीवन भर पूरा सहयोग दिया। क्या आज की नारी भी इतनी सादगी से निर्वाह कर सकती है। आज तो फैशन की भरमार है। मैंने एक समय ८० वर्ष की वृद्धा को देखा जो 'टैरालीन' का सूट पहन रही थी, नौजवान लड़की को तो खद्दर कहां से अच्छा लगेगा, आज तो बूढी भी शृंगार का शिकार बन चुकी है। आज के इस महंगाई के युग में हम जितनी शिक्षा उस दम्पति से प्राप्त कर सकते हैं। इतनी अन्य कही से नही, नवयुवक महात्मा जी के सादगी भरे जीवन से शिक्षा लेकर महानता को पा सकते हैं।

उनकी श्रद्धा, उनका उत्साह, उनका निष्कामभाव अब भी वास्तव में हमारी समाजो व सस्थाओ मे विद्यमान है। परन्तु हम फिर भी आज अधर्म की ओर खिंचते जा रहे हैं जिस से उन्होंने हमे निकाला था।

आओ आज उनके जन्म दिवस पर उनके पथ पर चलने की प्रेरणा ले। ऐसी उस भारत की विभूति, त्यागी, तपस्वी, साहसी अथवा परिश्रमी और निरभिमानी, सदा खुश रहने वाले महात्मा के चरणो मे मेरी श्रद्धाजलि हो, इसके आदर्श जीवन से आओ हम आर्य नर-नारी अपना जीवन भी सफल बनावे। ✶✶

क्या विचित्र विह्वलता लेकर तुम आये थे

[श्री प्रो० उत्तमचन्द जो शरर एम. ए. पानीपत]

दीपक पर जलते पतंग को भी देखा है।
हंस तेरी उमग को भी देखा है।
वह जलता है पर जैसे कुछ सोच सोच कर
दीपक के चहु दिस मंडरा, साहस बटोर कर
पर तूं तो सीधा दीपक लौ से टकराया
तेरी विह्वलता को रुकना तनिक भी न भाया
क्या अरमान हृदय में जलने के पाये थे क्या विचित्र...

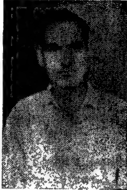
विह्वलता तेरी जो रुकी न सघर्षों से जूझ कर।
किया निमन्त्रित आपदाओ को जानबूझ कर।
जिसके वश हो विकल हृदय कुछ सोच न पाया
हसते-हंसते अन्धकार मे कदम बढाया
हृदय रक्त से सीच दिया उजड़े उपवन को।
मृतक मे जीवन फूका दे निज जीवन को।
प्राणो मे अगार धधकते से पाये थे क्या विचित्र...

पुत्र मोह जिस से दशरथ को मरते देखा।
पुत्र मोह मानव मन की कोमलतम रेखा।
छोड़ न पाये थे प्रताप भी जिस ममता को
हसराज तूने जीता उस दुर्बलता को।
धन्य धन्य कहता है जग तेरी श्रद्धा पर
दयानन्द के सच्चे सैनिक तुम आये थे विचित्र...

राष्ट्र सेवी महात्मा

(सत्य प्रिय शास्त्री सिद्धान्त शिरोमणि: उपाचार्य:—दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार)

महर्षि दयानन्द तथा आर्य समाज से पूर्व विदेशी शक्तियां अपने कूट नीति पूर्ण उपायों का शिक्षा क्षेत्र में सफल प्रयोग कर भारतीयोंकोसदियों तक अपने मानसिक दासता के जाल में आबद्ध करने का उपक्रम कर चुकी थीं। उन को इस षड्कारी का उस युग में सर्वप्रथम सफलप्रतिरोध डी. ए. वी. कालेज की



स्थापना के साथ ही हुआ। महर्षि दयानन्द जैसे प्रखर राष्ट्र वादी के नाम पर स्थापित संस्था भी उन्हीं के अनुरूप हो इसके लिए सर्वाधिक प्रयास उक्त संस्था के नि:स्वार्थ आचार्य म० हंसराज जी ने किया। उस युग में जब कि चारों ओर भारतीयों पर अंग्रेज तथा उन की भाषा का आंतक एवं अंग्रेजी के प्रति अन्धा प्रेम छाया हुआ था, तब उक्त संस्था के पाठय क्रम में भारतीय वैदिक साहित्य को प्रमुख स्थान दिया था। उस काल में उक्त पाठय क्रम में छात्रों के अन्त:करण पर राष्ट्र निष्ठा की एक गहरी मोहर लगाई थी, जो आगे चल कर उन के राष्ट्रीय आन्दोलनों में बढ़ चढ़ कर भाग लेने के रूप में हमारे सम्मुख प्रकट होती है।

इस संस्था की प्रबन्ध कारिणी-समिति में विदेशिता का किंचित भी प्रभाव नहीं था, जब कि तिलक के नाम से चलने वाले स्कूल एवं कालेजों की समितियों में उक्त अंश विद्यमान था। अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी तो अंग्रेजों के कन्धों पर चढ़कर ही इस अवस्था तक पहुंची है। सर्व-प्रथम डी.ए.वी. स्कूल की मैट्रिक कक्षा का परिणाम विश्वविद्यालय से सम्बन्धित सभी संस्थाओं से सारे प्रांत में उत्तम रहा, इसीलिए जब एक विशिष्ट शिक्षाधिकारी ने म० हंसराज जी को बधाई का पत्र लिखा तो महात्मा जी ने उत्तर में धन्यवाद पत्र लिख दिया। सरकार ने महात्मा जी के उसी पत्र को आधार बनाकर डी०ए०वी० स्कूल को सरकारी मान्यता प्रदान कर दी थी, यह है स्कूल का विश्वविद्यालय से सम्बन्धित होने का गौरवपूर्ण इतिहास। पाठकों को ध्यान रहे कि स्कूल उससे पूर्व विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त न था। यह थी उस महात्मा की राष्ट्रनिष्ठा को मान्यता प्राप्ति के लिए प्रार्थना-पत्र देना राष्ट्रीय अपमान समझा था। उस समय इन संस्थाओंका लगभग सम्पूर्ण कार्य हिन्दीमें ही होता था, सरकार से सहायता लेते कतराते रहे। हां महात्मा जी के कार्यनिवृत्त हो जाने पर तो अधिकारी राजकीय सहायता के लिए ताकने लग गए थे। महात्मा जी स्वयं छात्रों को इतिहास का विषय पढ़ाया करते थे, क्योंकि उस समय अंग्रेज हमारे गौरवशाली इतिहास को तोड़ मरोड़ कर भारतीयों को देश-भक्ति से शून्य बना देने की गहरी चालें चल रहे थे। वे छात्रों के सामने अपने देश का वास्तविक स्वरूप चित्रित किया करते थे। महात्मा जी स्वयं भी तथा उनके सहयोगी स्वदेशी वस्त्रों का दृढ़ व्रत लिए हुए थे। कांग्रेस में खादी वस्त्र का प्रचलन सर्वप्रथम १९२० के अहमदाबाद के वार्षिक अधिवेशन से आरम्भ हुआ था। महात्मा जी के आशीर्वाद तथा निर्देश से एक आर्यसमाजी सज्जन ने १९०६ में लाहौर के आर्यसमाज अनारकली में सर्व-प्रथम स्वदेशी वस्त्र की दुकान चलाई थी।

एक बार डी० ए० वी० कालेज के छात्रावास में कोई विदेशी साबुन कम्पनी का एजेण्ट आया और छात्रों

में मुफ्त साबुन बांट कर अपनी साबुन का प्रचार करने लगा। जब वहां की आर्य सभा के अधिकारियों को पता लगा तो उन्होंने स्वयं वे साबुन फेंक दी तथा अन्यों से भी फिकवादी और स्वदेशी साबुन पैसों से खरीद कर कार्य चलाया। पाठकगण ! क्या यह राष्ट्र सेवी महात्मा हंसराज की देश निष्ठा का मधुर फल नहीं था ? यही कारण था कि १९१९ के मार्शल ला के अवसर पर अंग्रेजी सरकार का सर्वाधिक कोप इसी संस्थाके प्राध्यापक तथा छात्रों पर उतरा था। महात्मा जी ने डी० ए० वी० संस्थाओं की समृद्धि के लिए 'जीवन सदस्य' की पद्धति का आविष्कार किया था, क्योंकि उस समय हमारे योग्य अंग्रेजी सरकार के पुरजे बनते थे और उनकी विद्या तथा योग्यता अंग्रेजी राज्य की जड़ें भारत में दृढ़ करने का हेतु बनती थी। महात्मा जी ने 'लाईफ मैम्बर' पद्धति चलाकर वहां राष्ट्रवादी संस्थाओं का मार्ग प्रशस्त किया वहां भारत में हठमूल होते जा रहे अंग्रेजी राज्य की जड़ों पर सशक्त एवं सफल कुठाराघात किया और उन शिक्षित योग्य युवकों की प्रवृत्ति को राष्ट्र के अभ्युदयोन्मुखी बनाया। इसी कालेज के छात्र जब लाईन बनाकर समाज के सत्संग में जा रहे थे, तब एक अंग्रेज युत्र ने अपना घोड़ा दौड़ाते हुए आकर पंक्ति भंग कर दी तब एक स्वाभिमानी आर्य युवक छात्र ने अपना जूता कस कर उसके मुख पर जमा दिया, जिस से जूते की नाल का अर्धचन्द्राकार उसके कपोल पर चिह्न बन गया। उसके बाद महात्मा जी के प्रिय सखा ला० लाजपत राय जी ने समझौता कराया, जिस में इस कालेज के छात्र ने उस अंग्रेज युत्र को यह लिख कर दिया, "मुझे खेद है कि मैंने अपने देसी जूते से आप पर प्रहार किया" क्या भारत के इतिहास में ऐसा स्वाभिमानिता का उदाहरण अन्यत्र कहीं है ? तभी आर्यसमाज की इन्हीं संस्थाओं ने भगत सिंह, सुखदेव, भाई बाल मुकन्द, भाई परमानन्द जैसे राष्ट्र सेवकों को उत्पन्न किया है, क्योंकि इन में उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने वाला हंसराज जैसा निस्पृह निःस्वार्थ एवं वीतराग राष्ट्र सेवी व्यक्तित्व बैठा हुआ था।

जब महात्मा जी के सुपुत्र बलराज पर बम केस चला था। तब भी वे अधीर नहीं हुए। यहां तक कि पुत्र के दर्शन केलिए तड़पती बलराज की मां मर जाती है। उधर पुत्र को फांसी का दण्ड मिल जाता है। इतने पर भी स्थित प्रज्ञ बने रहे। बलराज को क्षमा केलिए एक शब्द भी न कहा और न ही उसे बचाने का कुछ प्रयास किया। उनके जीवन का प्रत्येक व्यवहार राष्ट्र निष्ठा से पूर्ण है। अपने जीवन भर युवकों में राष्ट्रीयता भरने का वे भरसक प्रयास करते रहे। उनके जन्मदिवस पर आज हमें आत्म निरीक्षण करना होगा, हम उनके उद्देश्यों से दूर होते जा रहे हैं। आज तो हम उनके उत्तराधिकारी अपने पुत्रों के विवाह संस्कार पर अंग्रेजी में निमन्त्रण पत्र छाप कर गौरव समझते हैं। क्या महात्मा जी की राष्ट्रीय मनोवृत्ति का हम जीवन में इतना भी पालन न कर सकेंगे ? उनका जीवन हमें आज स्वदेशी, स्वभाषा, स्वसंस्कृति एवं सादगी का संकेत कर रहा है। क्या हम उनके जीवन से इन बातों की प्रेरणा लेकर वास्तविक रूपेण अपने को उनका सच्चा अनुयायी सिद्ध कर सकेंगे ?

आर्यसमाज लारेंस रोड अमृतसर की ओर से एक हजार रुपये सभा वेदप्रचार में

आर्यसमाज लारेंस रोड अमृतसर सभा से सम्बन्धित समाजों में प्रसिद्ध समाज है। सभा का बड़ा ध्यान रखती है। इस के मान्य अधिकारी तथा सदस्य सभा के प्रेमी हैं। सभा के वेद प्रचार में समय-समय पर काफी राशि भेजते रहते हैं। इस समय भी समाज की ओर से इस के मान्य मन्त्री श्री पं० रामनाथ जी शर्मा ने एक हजार रुपये सभा के मान्य प्रधान श्री प्रिंसिपल भीमसेन जी को [illegible] में भेजे हैं—धन्यवाद

महात्मा हंसराज जी का अपूर्व त्याग

[श्री डा. भवानी लाल जी भारतीय, एम. ए., पी. एच. डी.]

आर्यसमाज की कीर्ति पताका को दिग्दिगन्त व्यापिनी बनाने वाले जिन महापुरुषों ने अपने सम्पूर्ण जीवनकी आहुति दे दी उनमें महात्मा हंसराज का नाम अग्रगण्य है। प्रत्येक व्यक्ति युवावस्था में कुछ निराले स्वप्न देखता है, ऐश्वर्य और वैभव प्राप्तिकी कामना करता है,विभिन्न सांसारिक सुखोप



भोगों को प्राप्त करने और भोगने का विचार करता है, परन्तु महात्मा जी ने तरुण जीवन के प्रारम्भ में ही अभूतपूर्ण त्याग द्वारा गृहस्थ में ही वैराग्य धारण करने का उदाहरण प्रस्तुत किया। जिस वर्ष उन्होंने बी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण की उसी वर्ष लाहौर में महर्षि दयानन्द के स्मारक के रूप में डी०ए०वी० स्कूल की स्थापना हुई और युवक हंसराज ने इस सस्था के लिये अपना जीवन दान कर दिया। ऐसे त्याग के उदाहरण संसार में बहुत कम मिलते हैं। हंसराज, लाजपतराय तथा मुंशीराम जैसे युवक वर्ग को आर्यसमाज मे प्रविष्ट होते देखकर लाहौर के आर्य नेता वयोवृद्ध लाला साईंदास का हृदय अत्यन्त पुलकित हो उठा था। उस समय उन्होंने यह अनुभव किया कि महर्षि के उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो युवक दल आगे आया है, वह सर्वस्व न्योछावर करके भी अपने ध्येय की पूर्ति अवश्य करेगा।

पच्चीस वर्ष तक निरन्तर महात्माजी ने डी. ए. वी. कालेज के प्रिंसिपल पद पर निष्ठा पूर्वक कार्य किया। सरल जीवन, सर्वथा सीधा सादा रहन-सहन घोर परिश्रम तथा लक्ष्य पूर्ति के लिए अपूर्व लगन आदि गुणों के द्वारा महात्मा हंसराज आधुनिक पंजाब के निर्माता के रूप में स्मरण किए जाएंगे। आर्य समाज के शैक्षणिक कार्यों मे तो उनका योगदान रहा ही वेद प्रचार के क्षेत्र में भी वह पीछे नही रहे। दुर्भाग्यवश आर्य समाज के शैशवकाल मे ही सर्वनाशिनी फूट ने अपना पैर आर्य समाज में जमाया और गुरुकुल तथा कालेज के नाम से आर्य समाज दो विरोधी शिविरो मे बंट गया। संयोगवश कालेज दल का नेतृत्व महात्मा जी के सुदृढ़ हाथों में आया। उन्होंने प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का संगठन किया और पंजाब के अतिरिक्त सिंध, सीमा प्रान्त बिलोचिस्तान तथा काश्मीर जैसे सुदूर प्रान्तों में वैदिक धर्म का विजय घोष किया।

हंसराज जी के आचार्य काल मे दयानन्द कालेज की अपूर्व उन्नति के हुई। उसमें विभिन्न ज्ञान विज्ञानो की शिक्षा की व्यवस्था हुई। छात्रगण आश्रमों में रह कर अपने जीवन को नियमित और संयत ढंग से व्यतीत करने लगे। उन में आर्योचित आचार विचार तथा व्यवहार का समावेश हुआ। डी० ए० वी० कालेज की स्थापना का उद्देश्य केवल पाश्चात्य विज्ञान और अंग्रेजी भाषा एवं साहित्य की उच्चकोटि की शिक्षा की व्यवस्था करना ही नहीं था अपितु प्राचीन वैदिक तथा संस्कृत साहित्य विषयक अध्ययन तथा अनुसंधान को भी प्रोत्साहित करना था। फलतः डी० ए० वी० कालेज के तत्वावधान में वैदिक अनुसन्धान विभाग की स्थापना हुई जिस मे पं० भगवद्दत्त जी जैसे विद्वानों ने वैदिक गवेषणा के क्षेत्र में अद्वितीय कार्य किया। डी० ए० वी०

का लाल चन्द पुस्तकालय अपनी विशिष्टता के कारण शोध और अनुसन्धान के विद्वानो का प्रमुख आकर्षण बन गया था।

प्रादेशिक सभा के प्रधान के नाते महात्मा जी ने दक्षिण भारत के मालाबार प्रांत मे रहने वाले हिन्दुओं को मोपला मुसलमानों के अत्याचारों से बचाने तथा दक्षिण में वैदिक धर्म के प्रचार को सुदृढ़ करने के लिए महात्मा खुशहाल चन्द जी (वर्तमान महात्मा आनन्द स्वामी) तथा कतिपय अन्य कार्यकर्ताओं को भेजा। इसी प्रकार मलकानो की शुद्धि के कार्य में वे स्वामी श्रद्धानन्द के सहयोग तथा सम्पर्क में कार्य करने लगे तथा सहस्रो विधर्मियों को आर्य धर्म में दीक्षित किया। दुर्भिक्ष बाढ़ भूकम्प आदि दैवी विपत्तियो से पीड़ित देशवासियो की सेवा में आर्य समाज के सेवको सहित उपस्थित होकर उनकी सेवा में तत्पर रहना महात्मा जी की मानव मात्र के प्रति विशेष सहानुभूति का द्योतक है।

महात्मा जी डी. ए. वी. कालेजो का सचालन आर्य समाज के सिद्धान्तो तथा मर्यादा का पूर्ण संरक्षण करते हुए ही किए जाने के पक्षपाती थे।

जिस समय देश में महात्मा गांधी द्वारा प्रसारित असहयोग की लहर चली और छात्रो ने गांधी जी की प्रेरणा से सरकारी विद्यालयो का बहिष्कार कर दिया, उस समय लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेताओ ने महात्मा हंसराज को भी परामर्श दिया कि वे शिक्षा का कार्य छोड़ कर राजनीति के क्षेत्र मे आ जावे तथा जनता का मार्गदर्शन करे, परन्तु महात्मा जी की दूरदर्शिता पूर्ण बुद्धि पूर्व ही यह अनुभव कर चुकी थी कि असहयोग की यह आंधी क्षणस्थायी है अत: भावावेश में आकर स्थायी कार्यक्रम से विचलित नहीं होना चाहिए। वस्तुत: महात्मा जी का सोचना ही सत्य निकला क्योंकि असहयोग आन्दोलन के समाप्त होते-होते स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार का आन्दोलन और उत्साह भी ठण्डा पड़ गया।

आज महात्मा जी के जन्म दिवस पर आर्यसमाज की शैक्षणिक प्रवृत्ति का सूत्र सचालन करने वालों के लिए आत्म निरीक्षण करने का अलभ्य अवसर है। आज यह देखना अत्यन्त आवश्यक है कि क्या हमारी डी० ए० वी० सस्थाओ में आर्यसमाज के सिद्धातों के प्रचार और प्रसार में यथेष्ठ सहायता मिल रही है या नही अथवा वे हमारे लिए केवल भार स्वरूप ही सिद्ध हो रही हैं। क्या हम डी० ए० वी० संस्थाओं को उन्ही आदर्शों पर सचालित कर रहे हैं जो महात्मा हंसराज द्वारा स्थापित किए गए थे। तथा उनमे पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विज्ञानो की समन्वित शिक्षा प्रणाली को स्वीकार किया जा रहा है, अथवा वे सरकारी शिक्षण सस्थाओ की कार्बन कापियें मात्र हो रह गई हैं जिनकी व्यवस्था और सचालन में हमारी अशेष शक्ति तथा अपरिमित धन व्यय हो रहा है। यदि हम उस महापुरुष के जन्म दिन पर कुछ ठोस आत्मचिन्तन कर अपना लक्ष्य निश्चित कर सके तो हमारा यह जन्मदिवस मनाना सार्थक सफल होगा।

आर्यसमाज स्थापना दिवस

(मन्त्री आर्यसमाज माडल टाऊन जालन्धर)

आर्यसमाज माडल टाऊन जालन्धर २९ मार्च शुक्रवार के दिन श्री प्रो० वेदप्रकाश जी मलहोत्रा जी की अध्यक्षता में रात्रि को ८ बजे से १० बजे तक मनाया गया सर्व-प्रथम श्री मेलाराम जी रेडियो सिंगर ने भजनों द्वारा ऋषि दयानन्द के उपकारो का वर्णन करते हुए उनकी महत्ता को दर्शाया।

श्री प. भीमसिंह शास्त्री जी ने स्वामी जी से पूर्व देश की दशा का वर्णन करते हुए बताया कि सबसे बड़ा

उपकार स्वामी जी ने अछूतों और स्त्री जाति पर किया, ऋषि ने कहा 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' जहां नारी का मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। आज के दिन ऋषि ने वैदिक सिद्धातो की रक्षा के लिए समाज की स्थापना की थी।

श्री धर्मदेव जी आर्य व्यवस्थापक 'आर्य जगत' ने कहा कि आज से १२३ वर्ष पूर्व १८७५ में महर्षि ने इस पौधे को लगाया, जो आज देश-विदेश में फैलता जा रहा है, आज आर्यसमाज की पहले से भी अधिक आवश्यकता है, इस पौधे की रक्षा और वृद्धि के लिए हमें प्रयत्नशील रहना चाहिए तभी स्थापना दिवस मनाना सफल होगा।

श्री पं. खुशीराम जी महोपदेशक ने ऋषि से पूर्व के बहु ईश्वर वाद का वर्णन करते हुए कहा कि स्वामी जी ने हमे एक निराकार ईश्वर की पूजा सिखाकर भटकने से बचा दिया, जब तक हम स्वामी जी के बताए मार्ग पर नहीं चलेंगे, तब तक हम उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते।

श्री मा० टेकचन्द जी ने कहा कि आर्यसमाज की स्थापना के बाद भी आज बुराईयां बढ़ती जा रही हैं। मालूम होता है कि हमारे हृदयों में समाज की स्थापना अभी तक नहीं हुए, इस ओर ध्यान देते हुए हमें आर्यसमाज की राजनीति से रक्षा करनी चाहिए।

श्री पूज्य देशराज जी महाजन ने कहा कि शिक्षा ग्रहण करने के दो साधन हैं, विद्वानों द्वारा लिखा उत्तम साहित्य और महापुरुषों के जीवन, महर्षि के जीवन से हमें, तप, त्याग सत्यता और वेद निष्ठा की शिक्षा मिलती हैं। इसी प्रकार प० लेखराम, स्वामी दर्शनानन्द, म० हंसराज प्रि० साईदास जी आदि के जीवन भी हमारे लिए पथ प्रदर्शक हैं।

अन्त में प्रधान श्री प्रो० वेदप्रकाश जी ने कहा कि वेद प्रचार के जितने साधन हमारे पास आज हैं। इतने स्वामी जी के समय में नहीं थे। आवश्यकता है आज हमारे मिलकर काम करने की हम स्वयं समाज में आएं और दूसरों को प्रेरणा दें। दूसरो की बुराईयो का ध्यान न करते हुए, अपनी बुराईयो को दूर करें। कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करते चले जाए, तभी यह दिवस मनाना सफल होगा। अन्त में मैं अपने सभी वक्ताओ और आये हुए सज्जनों का हृदय से धन्यवाद करता हूं।

अन्त में शांति पाठ के बाद कार्यवाही समाप्त हुई।

१९ अप्रैल जिनका जन्म दिवस है—

श्रेयमार्ग के आजन्म पथिक—महात्मा हंसराज जी

[श्री दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार, देवनगर नयी दिल्ली]

जो लहरों से लड़-लड़कर पतवार हाथ में थामे।
जो वक्ष चीर सागर का, खड़ा उस तूफानी वेला में॥
जब फफाके फोके थे, उन्माद भरा था सागर।
मुंह फाड़े तकते थे जब लहरों के भूखे अजगर॥
जिसके अदम्य साहस ने डरकर मुंह जरा न मोड़ा।
जिसने अपनी नौका का, पल भर भी साथ न छोड़ा॥
उस नाविक को तकती हैं, मेरी यह आज निगाहें।
औ' अन्तराल से बरबस निकल पड़ती हैं आहें॥

'दैनिक मिलाप' सम्पादक श्री यश के ये हार्दिक उद्गार महात्मा हंसराज जी के जीवन पर अक्षरशः घटते हैं। वस्तुतः, महात्मा जी का समूचा जीवन त्याग, तपस्या और निष्काम सेवा से ओतप्रोत था। उनके पुनीत जीवन ने अनेक युवकों को प्रेरणा दी और राष्ट्र व धर्म की सेवा के लिए उन्हें अवसर किया। जिन दिनों महात्मा जी ने बी. ए. पास किया था, उस समय यह असाधारण बात थी। महात्मा जी अगर चाहते तो कोई बढ़िया और ऊंची सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकते थे। क्या उनके सहपाठियों में कई उच्च सरकारी पदों तक पहुंच नहीं गये थे ? इस युवक के सामने भी यह आकर्षण था। कठ उपनिषद में यम ऋषि ने अपनी दिव्य दृष्टि से नचिकेता को उपदेश देते हुए, संसार में पग-पग पर आने वाले प्रलोभनों का लाखों वर्ष पहले ही अनुमान कर लिया था। नचिकेतात्ता की परीक्षा के लिए यम ऋषि ने सांसारिक ऐश्वर्यों और समृद्धि को मुंह मांगे देने के लिए यहां तक कह दिया कि—

'कामानां त्वा कामभाजं करोमि'

जितनी कामना चाहे मैं तेरी पूर्ण कर सकता हूं। नचिकेता अपने निश्चय पर अटल रहा और प्रेम मार्ग के इन क्षणिक आकर्षणों से उद्वेलित न हो सका।

जो घर फूंके आपना

हंसराज युवक के सम्मुख भी ऐसी ही परीक्षा की घड़ी आयी। जिस प्रकार प्रेम ऋषि के सत्संग से नचिकेता श्रेय मार्ग का यात्री बन गया, इसी प्रकार यह युवक महर्षि दयानन्द के दर्शन, सत्संग और उनकी शिक्षाओं से प्रभावित हो उपनिषदकार के शब्दों में, दृढ़ स्वर से कह उठा—

जानाम्यहं शेवधि रित्यनित्यं,
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते ही ध्रुवंतत् ॥ कठ उप. २।१०

मैं जानता हूं कि यह सांसारिक वैभव और सम्पत्ति, अनित्य हैं। जो वस्तुएं स्वयं 'अध्रुव' (अनित्य) है, उनके सहारे भला 'ध्रुव' (नित्य) की प्राप्ति कैसे हो सकती है?'

इस मार्ग पर चलाने के लिए हिमालय सदृश दृढ़ता और समुद्र जैसा गाम्भीर्य चाहिए। क्या यह सहज मार्ग है ? नहीं। यह तो सतत जागरूक रहा, अगाध श्रद्धा अटूट आस्था और अर्जुन की तरह लक्ष्य की ओर एकाग्र दृष्टि इन सबका समवेत पथ है। कबीरने ठीक कहा है—:

कबीरा खड़ा बाजार मे लुकाटी लिये हाथ।
जो घर फूंके आपना, सो चले हमरे साथ॥
प्रेम पियाला जो पिये, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का लेय॥

महात्मा हंसराज अपना घर फूंककर धर्म और राष्ट्र प्रेम के इस मार्ग पर अपने सिर की दक्षिणा देकर आजन्म चलते रहे। गीता के निष्काम कर्मयोग का कोई साकार रूप आज के युग में देखना हो तो वह महात्मा जी का जीवन है।

जन्म और प्रारम्भिक शिक्षा

महात्मा हंसराज जी का जन्म १९ अप्रैल १९६४ को पंजाब के जिला होशियारपुर के अजाति बजवाड़ा

ग्राम अपील-नवीस ला० चूनीलाल के घर हुआ। माता का नाम हरदेवी था। एक बड़ा भाई था, नाम मुल्कराज। आर्थिक दृष्टि से परिवार सामान्य था। अभी छोटी आयु के ही थे कि पिता की मृत्यु हो गयी। इससे आर्थिक दशा अधिक कमजोर हो गयी। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब लगभग दो मील स्कूल से घर वापस आते, तब पाव मे जूता न होने के कारण गर्मी में तपश से बचने के लिए बार-बार अपनी तख्ती को पांव तले रखकर कदम-कदम चलते। गरीबी होते हुए भी अपने सह-पाठियो और पड़ोसियो ने साथ बालक का व्यवहार उदारता और परोपकार का ही होता।

ईसाई मुख्याध्यापक का विरोध

बड़े भाई मुल्कराज ने मैट्रिक पास कर लाहौर मे नौकरी कर ली। हंसराज भी वहा जाकर मिशन स्कूल में पढने लगे। वहा पढते हुए भी निर्भयता के साथ मुख्याध्यापक द्वारा कक्षा मे कहे गये इन शब्दो का कि 'प्राचीन आर्य सूर्य तथा अन्य जड पदार्थों के पुजारी थे।' खंडन किया और दृढता से कहा कि 'प्राचीन आर्य केवल निराकार ईश्वर की ही पूजा करते थे।।' साथ ही, हंसराज जी ने ईसाई मत की आलोचना कर डाली। इसके फलस्वरूप, उन्हे बेंत खाने पड़े और स्कूल से निकलना भी पड़ा। हंसराज तो होनहार छात्र थे। मुख्याध्यापक ने स्वय ही उन्हे पुनः बुलवा लिया।

आर्यसमाज में प्रवेश

मैट्रिक पास करने के बाद हंसराज जी सरकारी कालेज में प्रविष्ट हुए। आपके सहपाठियो मे ला० लाजपतराय, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी और राजा नरेन्द्रनाथ थे। आजन्म से इनके घनिष्ठ मित्र रहे। इन्ही दिनों १८७७ मे महर्षि दयानन्द लाहौर पधारे और आर्यसमाज की स्थापना हुई। ला० साईंदास की प्रेरणा से हंसराज जी आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए। १८८२ में आर्यसमाज के विचारो का प्रचार करने के लिए लाहौर से अंग्रेजी और उर्दू में पत्र प्रकाशित किये गये। अंग्रेजी पत्र का नाम 'रिजेनेरेट आफ आर्यावर्त' था। युवक हंसराज ने अवैतनिक रूप से इस पत्र के सम्पादन और प्रबन्ध का काम संभाला। उस समय के इनके लेखों से पता चलता है कि कितना गहरा प्रेम इनका आर्यसमाज के साथ था।

युवक हंसराज का शिव-संकल्प

३० अक्तूबर १८८२ को स्वामी दयानन्द जी के स्वर्ग के बाद आर्यसमाज के तत्कालीन नेताओं ने उनकी स्मृति मे कालेज स्थापित करने का निश्चय किया। इसके लिए ८ लाख रु० इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। दिसम्बर १८८३ तक केवल दस हजार रु० एकत्र हुए। काम बहुत धीमी गति से चल रहा था। २७फरवरी १८८६ तक २४,८८६ रु० इकट्ठे हो सके। इस नैया को पार करने के लिए एक कुशल, उत्साही, स्थिरमति और ओजस्वी खेवट की आवश्यकता थी। युवक हंसराज ने अपने अद्भुत मानसिक साहस से यह कमी पूरी कर दी।

राम-लक्ष्मण—दो भाई

यह युवक अपने बड़े भाई ला० मुल्कराज के पास गया। कालेज के लिए अपना जीवन अर्पित करने की बात कही और यह भी कहा कि आपकी सहायता के बिना यह काम सम्भव नही है। इस कलि युग में भी राम-लक्ष्मण सदृश भाई हैं—यह इन दोनो भाईयों के जीवन से पता लग जाता है। बड़े भाई का हृदय छोटे भाई की त्याग और सेवा की भावना से गद्-गद् हो गया। ला. मुल्कराज को उस समय ८० रु० मासिक मिलता था। घर की आर्थिक दशा कोई विशेष अच्छी नही थी। फिर भी बड़े ने कहा—यदि तुम धर्म के लिए इतना त्याग कर सकते हो तो मैं भी तुम्हे प्रति मास ४० रु० देता रहूंगा। मुल्कराज जी के इस भ्रातृ प्रेम और उदारता ने न केवल हंसराज जी को किन्तु सारी आर्य जाति को निश्चिन्त कर दिया।

डी. ए. वी. की बागडोर संभाली

१ जून १८८६ को आर्य समाज भवन में हंसराज जी

के मुख्याध्यापकत्व मे डी. ए. वी. स्कूल खुल गया। स्कूल ने इतनी शीघ्रता से उन्नति की कि १८८९ मे कालेज की कक्षाएं चालू कर दी गयी और हस राज जी डी, ए. वी. कालेज के प्रथम प्रिंसिपल नियुक्त किए गए। महात्मा जा के परिश्रम से अब कालेज कोष मे १ लाख ५६ हजार रु० जमा हो गया था।

कालेज के एक निष्ठ आचार्य

कालेज के प्रिंसिपल (आचार्य) के रूप मे महत्मा जी का जीवन एकदम आदर्श रूप था। १८८६ से १९११ तक पूरे २५ वर्ष वे इस पद पर रहे। कालेज से वे एक पैसा भी नही लेते थे। व्यवहार मे इतने शुद्ध और कड़े थे कि अगर कोई पत्र व निजी काम करता तो वह कालेज के घंटो के बाद और अपनी निज की पैन्सिल व कलम-दवात से करते थे। कालेज की किसी छोटी से छोटी वस्तु का भी निजी व्यवहार के लिए प्रयोग वे कभी न करते थे। कालेज मे ठीक समय पर आना और जाना, कालेज से कम से कम छुट्टी लेना और अधिक से अधिक काम करना, दिन रात कालेज की उन्नति के उपाय ही सोचते रहना—यही उनका जीवन था। भाई से मिलने वाले ४० रु० मासिक मे से ४ रु० मासिक मकान भाड़ा देकर बाकी ३६ रु० मासिक मे परिवार का पालन-पोषण करते थे। उनका घर कालेज से मील डेढ़ मील दूर था। कैसा भी मौसम हो, वे पैदल ही आते जाते थे। १९०९ की उनकी डायरी मे अंकित है कि जुराबो के प्रभाव के कारण पावो में छाले पड गए थे। अत: नगे पांव ही कालेज आते जाते थे।

लोभ के लवलेश से सदा दूर

अनेक ऐसे अवसर आए, जब उनके भक्त उन्हे कोई मूल्यवान वस्तु भेंट देने आते। पर महात्मा जी कभी न लेते। एक बार लाहौर की सर्दी मे महात्मा जी को पुराना कम्बल ओढ़े देख धनी भक्त अगले दिन पशमीने के दो शाल भेंट रूप ले आया। उन्होंने स्वीकार करने से इन्कार कर दिया पर भक्त किसी हालत में मानता नही था। तब महात्मा जी ने दोनो शाल बिकवा कर प्राप्त धन राशि कालेज कमेटी को दे दी। आर्य समाज के पैसे को प्रत्यक्ष सावधानता से खर्च करते थे। आर्य समाजो के उत्सवो पर जाते हुए उसी दर्जे मे जाते जिस मे अन्य उपदेशक यात्रा करते थे।

धैर्य की जीवन्त प्रतिमां

पारिवारिक सकटो मे भी महात्मा जी का धैर्य अनुपम था। १९१४ मे उन के बड़े पुत्र बलराज को सरकार षडयन्त्र के आरोप मे पकड लिया। इस 'अपराध की सजा फासी तक थी। महात्मा जी को पत्नी ठाकुरदेवी को तो इतना गहरा सदमा लगा कि वह पुत्र मुख का दर्शन किए बिना स्वर्गवास हो गयी। महात्मा जी चाहते तो तनिक सिफारिश व खेद प्रकट कर लडके को छुड़ा सकते थे। पर महात्मा जी का यही उत्तर था यदि बलराज अपराधीहै तो उसे दड मिलना ही चाहिए और यदि निर-पराधहै तो सरकार को उसे स्वय मुक्तकर देनाहोगा।' बलराज पर जब मुकद्दमा चला तब कई भक्तो ने मुकद्दमे का खर्च देने के लिए धन अर्पित किया पर महात्मा जी ने किसी से कुछ नही लिया। इन दिनो, एक ओर लड़के पर मुकद्दमा और दूसरी ओर पत्नी की भयकर बीमारी—पर महात्मा जी इन दोनो सकटो मे एक क्षण के लिए भी अस्थिर नही हुए। अपने सारे कार्यक्रम और आर्य समाज की सेवा नियमित रूप चलाते रहे।

कालेज की रजत जयन्ती . कुर्सी का त्याग

सन् १९११ मे महात्मा जी के कालेज सेवा के २५ वर्ष पूरे हो गए। इस समय डी. ए. वी. कालेज न केवल पजाब किन्तु समस्त भारत मे एक आदर्श सस्था थी। सरकार से एक पैसा भी सहायता लिए बिना, उस समय २२०० से अधिक छात्र इसमें पढते थे, आर्टस कालेज के आयुर्वेदिक कालेज, हाथ उद्योग स्कूल इत्यादि सस्थाएं भी चल रही थी। ६६ हजार रु० वार्षिक व्यय था और ८ लाख ३१ हजार रु० स्थिर कोष मे जमा थे। कालेज की रजत जयन्ती मनायी गई। इसके तत्काल बाद ही, महात्मा जी ने प्रिंसीपल पद से त्यागपत्र दे दिया।

सेवा के विशाल क्षेत्र में

महात्मा जी का सेवा क्षेत्र अब कालेज की चारदीवारी से निकल कर सारे भारत में व्याप्त हो गया था। अब आपने वैदिक धर्म के प्रचार और सेवा कार्य की ओर विशेष ध्यान दिया। आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान पद को सम्भाला। राजपूताने के १८९५ और १८९९ के अकालों, १९०५ में कांगड़ा के भूकम्प, १९०७-८ में अवध, १९१८ में गढ़वाल, १९२० में उड़ीसा और छत्तीसगढ़ तथा १९२१ के पंजाब के दुर्भिक्ष—इन सब में महात्मा जी ने आर्य समाज के सेवा कार्य का नेतृत्व सम्भाला। १९३४ में बिहार भूकम्प और १९३५ में क्वेटा भूकम्प में सेवा के अतिरिक्त महात्मा जी ने १९२१ में मालाबार में मोपले मुसलमानों द्वारा बलात् मुसलमान बनाये गए हिन्दुओं की शुद्धि १९२३ में आगरा के मलकानों की शुद्धि—दोनों को सफलता के साथ अपने हाथ में लिया। आर्य समाज के लिए उपदेशक तैयार करने और वैदिक साहित्य के प्रचार के लिए महात्मा जी की प्रेरणा से लाहौर में दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय की स्थापना की गई जिसके प्रथम आचार्य प० विश्वबन्धु थे। इस प्रकार १९११ से १९३८ तक २७ वर्ष तक लगातार महात्मा जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान कार्य के लिए समस्त देश में भ्रमण कर वैदिक सिद्धांतों का सन्देश सुनाते रहे।

आनन्दधाम की ओर महाप्रस्थान

१९३८ में महात्मा जी का स्वास्थ्य बिगड़ना शुरू हो गया था। पेट में, सम्भवतः, फोड़ा हो गया था। योग्यतम डाक्टरों ने चिकित्सा की। अक्तूबर में रोग बढ़ गया और १५ नवम्बर १९३८ की रात के ११ बजे वेदमन्त्रों का पाठ करते हुए इस नश्वर शरीर को छोड़ मोक्षधाम की ओर महाप्रस्थान कर दिया। अगले दिन सारे लाहौर शहर में शोक छा गया और सब कारोबार बन्द रहा। लाखों नर-नारियों ने शवयात्रा में सम्मिलित हो अपने इस महात्यागी तपस्वी आर्यऋषि के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित की। महात्मा जी की यह यात्रा आनन्द धाम की ओर हो थी। कबीर के शब्दों में :—

आठ कंवल दल चरखा डोलै,
पांच तत्त गुन भीनी चदरिया।
साईंको सीयत मास दस लागै,
ठोक-ठोक के बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी,
ओढी के मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी,
ज्यों-की-ज्यों धरि दीनी चदरिया॥

महात्मा हंसराज और आर्य समाज

[श्री मथुरा दास तथा कोट, अमृतसर]

आर्य समाज के आरम्भ काल के ज्योतियों में से एक विशाल ज्योति श्री पूज्य महात्मा हंसराज जी भी थे, महात्मा हंसराज आर्यसमाज थे और आर्यसमाज महात्मा हंसराज था आप एक जीता जागता पतंगा थे जो आयुभर वैदिक धर्म की ज्योति पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करता रहा और अंत में एक ऐसी ज्योति विद्या रूपी कालेजों आदि की जला गया जिससे अब सारे भारतवर्ष ही नहीं किंतु संसार भर में उस के उजाले से मनुष्य मात्र प्रकाश प्राप्त कर रहा है।

उस महान व्यक्ति के जन्म पर अपने कुछ श्रद्धा के फूल उन की भेंट करने में अपना सौभाग्य समझता हूं अनेक बार लाहौर में उन के दर्शन करने का और अपने नगर में, प्रचारार्थ उन को ले आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, आप की सादगी, मितव्ययता, सरल, स्वभाव, मीठी वाणी, योग्यता, दिव्य मूर्ति अब भी उसी प्रकार सामने है उन का जीवन इतना कर्मशील था कि जो भी आदमी उनके एक बार दर्शन कर लेता वह उन का हो जाता औरआर्य बन जाता इसप्रकार की अनेक घटनाएं है।

रावलपिण्डी से एक सनातनधर्मी सज्जन अपने लड़के को कालेज में प्रविष्ट कराने के लिये लाहौर लाते हैं उन दिनों लाहौर मे दो ही कालेज थे एक ईसाइयो का और दूसरा डी० ए० वी० कालेज जिस के प्रिंसीपल महात्मा हंसराज जी थे वह सनातन धर्मी महाशय इस सोच में थे कि आर्य कालेज मे लड़के को प्रविष्ट कराया तो लड़का आर्य हो जाएगा उस समय आर्य शब्द से भी लोगो को घृणा थी यदि कोई आर्य बन जाता था तो साधारण जनता उसे समझती थी कि यह अब अछूतों से भी गया गुजरा हो गया है, उन महाशय जी का दूसरा विचार यह था कि ईसाइयों के कालेज मे प्रविष्ट कराने से ईसाई हो जायेगा इन्ही विचारो को लेकर वह लाहौर पहुचा तो उसके मन मे विचार आया कि पहले डी० ए० वी० कालेज जाकर पता करू कि वहा के क्या हालात हैं यदि मन न माना तो फिर ईसाई कालेज मे जाकर पता करूगा। वह महाशय डी० ए० वी० कालेज पहुचे मन मे विचार था कि इतने बड़े कालेज के प्रिंसीपल से मिलना है चपड़ासी बाहर होगा चिट अन्दर भेजू गा देखू समय मिलता है या नही यदि मिलता है तो कितनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ती है आदि-आदि बड़ी कोठी आदि के विचार लेकर जब कालेज पहुच गया तो बाहर एक सेवक से पूछा तो उसने कहा कि आगे चले जाइए और महात्मा जी के कमरे की ओर संकेत करके कहा कि उस ओर चले जाइये प्रात:काल का समय था, वह आगे गए तो एक कमरे में एक दाढ़ी वाला पुरुष भूमि पर एक दरी पर बैठा कुछ पढ रहा है, महाशय जी ने पूछा कि मुझे कालेज के प्रिंसीपल से मिलना है पता बता दीजिए।

महात्मा जी ने उनको अन्दर बुला लिया, और बैठने को कहा परन्तु उन महाशय जी ने कहा कि मुझे तो आप से काम नही मुझे तो प्रिंसिपल महोदय से मिलना है उसके उत्तर में महात्माजी ने कहा कि मैं ही प्रिन्सीपल हूं और मेरा नाम ही हंसराज है, इस पर वह महाशय बहुत ही चकित हुए क्योंकि उनके विचार में तो प्रिंसिपल की कोठी,कमरा,सोफे सेट तथा विशाल भवन और अनेक सेवकों वाला आदि कई चीजें घूम रही थी और यहा केवल एक दरी भूमिका आसन और प्रात:काल के हवन की सुगन्धी तथा धार्मिक पुस्तक का स्वाध्याय नजर आया न कोई सेवक न मिलने मे रुकावट न पूछने की आवश्यकता, उसका मन बहुत प्रसन्न हुआ कुछ समय तक बातें करता रहा और फिर अपने लड़के को प्रविष्ट कराने का विचार जो बताया तब महात्मा जी ने सहर्ष स्वीकार किया। उस महाशय को इतना सन्तोष मिला कि वह लिखता है कि महात्मा हन्सराज जी के कमरे मे प्रविष्ट होने से पहले मैं कटर सनातन धर्मी था परन्तु कमरे से बाहर निकला तो कट्टर आर्य समाजी था। यह था उनके क्रियात्मक जीवन का प्रभाव।

एक बार हमने अपने नगर के जलसे पर उन्हे बुलाया उन दिनो हमारे नगर बद्दोमल्ली (स्यालकोट) पाकिस्तान) रेल नहीं जाती थी और जाने वालो को अमृतसर के रास्ते अजनाला से होकर जाना पडता था, प्रोग्राम के अनुसार महात्मा जी ने लिखा कि महात्मा जी तथा कालेज के दो प्रोफैसर तीन आदमी आवेंगे हम ने अपने नगर से तीन घोड़े उनके लिए अजनाला भेज दिए ताकि अजनाला से वह घोड़ो पर हमारे पास आ सके। घोड़े अभी अजनाला नही पहुचे थे कि महात्मा जी अपने दो साथियो के साथ अजनाला पहुच गए उन्होने पता किया तो उनको घोड़े न मिले साथियो ने कहा कि महात्मा जा यहा से घोड़े कराए पर ले लिये जावें परन्तु महात्मा जी ने कहा कि समाज का पैसा इस प्रकार व्यय नही किया जा सकता ६-७ मील का सफर है आओ मेरे साथ बिस्तरा कन्धे पर उठाया और चल पड़े, साथी भी साथ चले तो सही परन्तु बड़ी दुविधा में कि ६-७मील बिस्तरा कन्धे पर उठाकर कैसे चलेंगे परन्तु महात्मा जी का साहस तथा सस्था का व्यय का ध्यान रखते हुए आप चल पड़े कोई आध मील गए तो घोड़े मिल गए। यह थी उनकी प्रचार की लगन और मितव्ययता जो आजकल के आर्य पुरुषों में नहीं मिल रही।

उस समय उनके कार्य पर रुपया ही रुपया मिलता था परन्तु कार्य भी इस प्रकार होता था कि कहीं थोड़ा-सा भी कष्ट मानव जाति पर आया नहीं और महात्मा जी ने आर्य समाज को झंजोड़ा नहीं और उसी समय आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं को भेज दिया जिन्होने जाकर बिना भेद-भाव के मनुष्य जाति के कष्ट मिटाये जिस की धाक विपक्षियों पर भी बैठ जाती रही। उनका लक्ष्य केवल आर्यसमाज का प्रचार था, कालेज द्वारा प्रादेशिक सभा द्वारा जिस प्रकार भी हो सका उन्होने किया। एक बार कुछ उनके मित्रो ने विचारा कि यदि महात्मा जी को कौंसल का मैम्बर बना दिया जावे तो यह देश तथा जाति के लिये बहुत ही कार्य कर सकेंगे, परन्तु जब उनके पास गए तो उन्होने एक ही उत्तर मे उनकी सतुष्टि कर दी कि 'मैंने जो मार्ग अपना रखा है मेरे लिये यही ठीक है इसके अतिरिक्त मुझे और कोई मार्ग प्यारा नही।'

परन्तु आज का हाल आप देख रहे हैं महात्मा जी के जीवन के और भी अनेक उदाहरण हैं परन्तु आज बिलकुल उसके विपरीत नजर आ रहा है लिखने की आवश्यकता नहीं अब तो हमे उनके जीवन को समक्ष रखकर उनके चरण चिन्हों पर चलना चाहिए ताकि अब जो आर्यसमाज मे निराशावाद फैल रहा है वह दूर हो यदि हमारे नेतागण तथा स्कूलो कालेजो के प्रिंसीपल प्रोफैसर, अध्यापक और समाजो के अधिकारी आदि उनके जीवन को पढकर अपने जीवन मे उन जैसा गुण धारण करने का यत्न करे तो आर्यसमाज का ही नहा हिन्दू जाति का कल्याण होगा।

अन्त में एक बात जो मुझे बड़े दिनो से खटक रही है वह भी लिख दूं कि यह आर्यसमाज वह है जिसने यदि कहीं भी अकाल, अग्निकांड, भूकम्प तथा हिंदुओं पर अत्याचार आदि कोई भी दुर्घटना हुई तो आर्यसमाजा संस्थाए, सभाए, सबकी पूरे यत्न से तन मन धन से उसकी सेवा मे जुट जाती चाहे वह देश के किसी भा भाग में होता।

परन्तु

पिछले दिनो दक्षिण मे कूयना नगर मे भूकम्प आया जिस से कितनी जाने गई माल आदि की हानि हुई, जहा तक समाचार पत्रो मे पढा है किसी भी आर्य सभा ने या सस्था ने आवाज तक न उठाइ। प्रश्न उत्पन्न होता है कि कहा वह महात्मा हंसराजजी का आर्य समाज जो कि सुनते ही व्याकुल हो उठता था और स्थान स्थान पर घूम कर कार्य करते थे अभी दूर की बात नही बगाल मे आवश्यकता पड़ी काफी सहायता की पिछलेवर्ष युद्धपीड़ितों की सहाहता आर्य समाज ने की परन्तु यह प्रथम अवसर है कि आर्य समाज चुप रहा है इस का परिणाम यह होगा कि अब आगे के लिए दुखियो की सेवा का कार्य आर्य समाज में से समाप्त हो जावेगा।

एक मंजिल के दो पथ

[विशेष कुमार शर्मा **Bsc III yr** महामन्त्री आर्य युवक समाज डी. ए. वी. कालेज जालन्धर]

आर्य युवको, सावधान !

मन में सन्देह, निराशा, असहनशीलता व आत्म-असमर्थता के दुर्विचार पैदा हो सकते है क्योकि यह उसका स्वभाविक गुण है लेकिन आज अमर जोत महात्मा हंसराज का अमर संदेह हमे पुकार-पुकार के कहता है कि हमें आत्म-विश्वास पैदा करके अपनी युवावस्था को इस सांचे में ढालना होगा जिस से न केवल हम, बल्कि हमारा परिवार, समाज, देश और सारी जाति सन्तुष्ट हो। हमें पतंगे की तरह नहीं जलना है जो जल-भुन कर राख हो जाए बल्कि उस दीपक का उदाहरण पैदा करना है जो जल कर के स्वय भी प्रकाशित होते हैं और इर्द-गिर्द के वातावरण को भी प्रकाशित करते हैं इस में अन्तर केवल इतना ही है कि पतंगा ईर्ष्या व द्वेष की अग्नि में जलता है।

दीपक अपनी अन्तानि से। आजकल हमें पतंगे स्थान-स्थान पर नजर आएगे लेकिन दीपक ढूंढने पर भी नही। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज अपनी अन्तराग्नि में जले अत: उनकी ज्वाला का प्रभाव जब युवक हसराज के हृदय पर अंकित हुआ तो उन्होने स्वयं अपनी हृदय अग्नि से ऐसी ज्वाला प्रज्वलित की कि सारा राष्ट्र आलोकित हो गया।

एक तरफ वह फूल जो परिवार की आर्थिक दीनता के कारण-वश ज्येष्ठ मास की कड़कड़ाती हुई धूप मे नगे पांव चलता है, यहां-यहां भी विदेशी स्कूलो में भारतीय सभ्यता का तिरस्कार हुआ प्रोटेस्ट करता है और दयानन्द के अमर सन्देश को अपने पवित्र तथा निष्कलंक जीवन में स्थिर स्थान देता हुआ बलिदानोन्मुख ,बनाता है और अपनी सच्ची परीक्षा मे उस समय सफल होता है। जब आर्य समाज की उस इच्छा को पूर्ण किया जिस मे दयानन्द की स्मृति मे शिक्षा-संस्था खोलने के हेतु धन की अपील के साथ २ किसी सुयोग्य, तपस्वी त्यागी महात्मा की मांग की गई थी आप ने अपने आप को अवैतनिक आजीवन सेवा के लिए पेश कर के इस जटिल समस्या को हल किया। आप ने शिक्षा के केन्द्र में जो महत्व-पूर्ण काम पहले से किया वह था स्कूलों व कालेजो मे शिक्षा के साथ साथ दीक्षा का भी प्रबन्ध करना अर्थात आप चाहते थे कि हमारे युवक आधुनिक सभ्यता से वंचित न रहे और प्राचीन सभ्यता को खो न बैठे अत: आप ने संस्थाओ में आर्य युवक समाजो का निर्माण भी कर दिया यहां नये २ विद्वान अपनी वाणी द्वार ऋषि दयानन्द के अमर वेद-सन्देश की व्याख्या करते। सैंकड़ो नवयुवक इस से प्रभावित हो कर के आजीवन सदस्य बन गये और उन्होने देश में ही नही विश्व भर मे स्कूलों व कालेजों का जाल बिछा दिया।

घर वालों की आशाएं, सम्बन्धियों की उमंगे, दौलत का चाव हंसराज को सांसारिक रंगीली व सजीली बेड़ियों में न फंसा सका अत: इस प्रकार कांटों से निकला हुआ यह फूल समाज के वातावरण को सुगन्धित कर गया।

दूसरी तरफ वह कागजी फूल जो सुगन्धि भरे वातावरण मे रह कर यह दावा करता है कि सुगंधि फैलाने का श्रेय मेरे पर है जिनके आत्मा में विद्या और अविद्या, सत्य और असत्य का स्वरूप अभी स्पष्ट नही हुआ है।

अगर हम राजनीति की दृष्टि डालते हैं तो वह एक विधवा का रूप धारण कर चुकी है क्योंकि उसमें धर्म को कोई स्थान नही दिया गया है। वहा सब पतगे ही पतगे नजर आ रहे हैं जो ईर्ष्या व द्वेष की अग्नि में जल के राख बनते जा रहे हैं। अगर हम समाज की ओर दृष्टिगोचर होते हैं तो विद्या के धनी क्रियाहीन हो कर वेद-वाणी के सन्देश को हसराज की तरह अपने जीवन मे चरितार्थ किए बिना ही धर्म का उज्जवल आदर्श पेश करने का प्रयास करते हैं और यह सब चारो ओर फैले हुए अन्धकार का कारण बन चुका है। छोटे से लेकर बड़े तक जो धर्म च दावेदार बने हुए हैं इस योजना से चलते हैं कि धर्म मेरे सिवा सबके जीवन का आवश्यक अंग होना चाहिए।

यही कारण है कि एक आर्यसमाजी घराने का लड़का पवित्र रूप मे आर्य नही बन पाता और साधारण मानवीय दुर्बलताओ का शिकार होकर अनार्यों जैसे काम करता है।

आज हमे वह दीपक नजर नही आता जो हमारे अन्त:करण को जागृत कर सके। अत: इसका एक मात्र उपाय यही है कि हम इन पतगो से ही शिक्षा लेकर महात्मा जी की आवाज को सुनते हुए अपने आपको तप और त्याग की भट्टी मे ढालकर स्वयं भी प्रकाशित हो और दूसरो को भी करें युवावस्था का आगमन हो चुका है मानो बसन्त ऋतु का आगमन हो चुका है। विचारों मे पतझड़ की हवा आएगी ही। अत: मुझे आशा है कि युवक भाई जलने के दो रास्तों मे से वही रास्ता अपनाएगे जो श्रेयस्कर सिद्ध हो।

★★

आर्यसमाज बुर्ज अम्बाला में वार्षिक यज्ञ तथा उत्सव समारोह पूर्वक सम्पन्न

१८-३-६८ से २४-३-६८ तक आर्यसमाज बुर्ज का उत्सव अम्बाला मंडल की ओर से समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ। इस उत्सव में सभा की ओर से श्री पं० ओ३म् प्रकाश जी महोपदेशक सम्मिलित हुवे। यज्ञ उनकी अध्यक्षता में सायं प्रातः चलता रहा। श्री ठा० यशवन्तसिंह जी तथा उनके सुपुत्र न० धर्मसिंह जी तथा श्यामसिंह जी वा अन्य सभी ग्राम वासियों ने पूरी श्रद्धा भक्ति से इस यज्ञ में भाग लिया देवियो का सहयोग विशेष अनुकरणीय था।

यज्ञ में दोनों समय भी जगत राम जी व सत्य पाल मण्डलियों के भजनो पदेश होते रहे। जिन का जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। रात्रि का प्रचार कार्य प्रतिदिन ८॥ से ११ तक निरन्तर होता रहा। ग्राम तन्दवाल, बनौन्दी, सलौला श्री पुर सादकपुर शहजाद पुर और बिलास पुर के भाई बहिन भी यथा समय भाग लेते रहे। सभा के वेद प्रचारार्थ १५१ रुपए प्राप्त हुए। ६ रुपए आर्य जगत का चन्दा और २० रुपए श्री प० ओ३म प्रकाश जी का मार्ग-व्यय भी प्राप्त हो गया।

इस सारे कार्य को सफलता के लिए श्री न० यशवंत सिंह जी बधाई के पात्र है। उत्सव में श्री पं अमर सिंह जी मण्डलाध्यक्ष अपनी दोनों भजन मण्डलियों सहित सारे कार्यक्रम में संलग्नता के साथ भाग लेते रहे। अन्तिम दिन श्री पं. गौतम देव जी आर्य भी उत्सव में भाग लेने पहुंच गए। इनका सहयोग भी सराहनीय रहा। मिस्त्री छज्जु राम जी यज्ञ कार्य से इतने प्रभावित हुए कि २४-३-६८ को प्रातः सारे मण्डल को रोक कर अपने गृह पर यज्ञ और उपदेश कराया। ★★



मुद्रक व प्रकाशक श्री प्रो० वेद प्रकाश मलहोत्रा आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित साप्ताहिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

* ओ३म् *

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पञ्जाब का साप्ताहिक विचारपत्र

महात्मा

आर्य जगत् का



त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी

हंसराज अंक

सम्पादक—त्रिलोकचन्द्र शास्त्री
महापदेशक सभा

मूल्य २५ नए पैसे

अधिष्ठाता—संतोषराज
मंत्री सभा

ओ३म्

आर्य जगत्

का

—महात्मा हंसराज अंक—

१६ अप्रैल १६६२ तदनुसार ७ वैशाख २०१६

वर्ष २२] १५-२२ अप्रैल १९६२ ३-१० वैशाख २०१९ [१५, १६ का सम्मिलित अक

वेदामृत

ओ३म् समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥

अथर्व काण्ड. ३ सूक्त ३० मन्त्र ६

सारे संसार से अशान्ति समाप्त होकर शान्ति का राज्य फैल जाये, उसके लिए वेद का कितना प्यारा सन्देश है—कि हे लोगो ! आप सब की जल आदि पीने की शाला एक समान हो। उस में ऊंच नीच, छोटे बड़े, गोरे का किसी प्रकार का भेद न हो। सब के लिए खाने पीने का स्थान भी एक समान हो। वहां पर किसी के प्रवेश पर भी किसी विचार की पाबन्दी न लगी हो। सारे लोग बिना किसी भेदभाव और छूतछात के एक ही केन्द्र मे समान रूप से मिल कर काम करते रहें। भिन्न २ कार्य करने से कर्म भेद हो जाये तो हो जाये, किंतु इस कार्य भेद से जीवन का भेद न होने पाये। मनुष्यपन के नाते सब समान हैं। किसी के लिए भी शुद्ध पवित्र होने पर कुआं, तालाब, भोजनशाला, सभा स्थान आदि पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जावे। जिस प्रकार रथ के अरे मिल कर एक ही नाभि=केन्द्र के चारों ओर घूमते रहते हैं उनका केन्द्र बिन्दु एक समान होता है। उसी प्रकार सारे लोग एक ही समान साधन को केन्द्र बना कर जीवन का कार्य करते जाये। सब का इष्ट भगवान एक हो। उपासना का प्रकार एक समान हो। उपासकों का उपास्यदेव भी एक ही हो। पूजा मन्दिर भी एक हो। जब खाने पीने में भेद आ जाये। जीवन के केन्द्र अलग-अलग हो जाये चलने की दिशा एक न होवे। भान्तर के विचार, भान्त-भान्त की बोलियां बोलने लगे। भान्त २ के उपास्य देव बना कर भिन्न २ प्रणाली से पूजन होने लगे। वर्गभेद, वर्णभेद, जन्मभेद आ जाये वहां अशान्ति होती है—जहां प्रेम, समानता, एकता, शिष्टता आजाये वहां वह पर शान्ति का राज्य होता है।

—सम्पादक

महादानी की देन

जीवन के दो रूप हैं। विनाशी और अविनाशी। शरीर से सम्बन्धित सारे अंग नश्वर हैं शरीर पंचभूतों का बना होने से नाशवान है। आत्मा सदा अमर है। लोग भी दो प्रकार से जीते हैं— शरीर से और आत्मा से। शरीर से प्रायः सारे जीते हैं किन्तु आत्मा से विरले महात्मा ही जीवन बिताते हैं। शरीर आने जाने वाला होने से शरीर जीवियों का शारीरिक जीवन भी आने जाने वाला है। करोड़ों व्यक्ति पैदा होते, कुछ समय बाद चल देते हैं। उनका नाम भी कोई नहीं जानता। किन्तु महात्मा हंसराज सरीखे देवता आत्मिक जीवन से जीते हैं तभी अमर कहलाते हैं। उनका जीवन आत्मिक है आत्मा अमर होने से ऐसे देव भी अमर कहलाते हैं। इनकी पूजा होती है।

महात्मा हंसराज जी महादानी थे। वैसे तो मानव अपने जीवन मे अनेक विध वस्तुओं का दान करता रहता है। ये मन्दिर, धर्म शालाएं, सरोवर, कूप, शालाएं आदि दानियों का स्मरण कराती हैं परन्तु जीवनदानी महादानी होता है। जीवन को समाज के लिए भेट कर देना वह भी यौवन में दे देना कितना महान दान है।

महात्मा जी ने अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। समिधा बना कर स्वाहा कर दिया। आज उनके उसी अमर जीवन की पूजा होती है। महादानी के दान की महिमा गाई जाती है। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज द्वारा लिखित अपूर्व पुस्तक (महात्मा हंसराज) को पढ़कर कौन इस महान जीवनदानी का स्तवन नहीं करेगा। इस देवता ने अन्य दानों के साथ आर्य समाज, राष्ट्र को कितने युवक निर्माण करके दिये। आज जितने भी और जिस क्षेत्र में भी आर्य समाज के महारथी कार्य करने वाले दिखलाई देते हैं। इनके जीवन का निर्माता वही देवता था। डी० ए० वी० कालेज के प्रिंसिपल काल में आर्य समाज में प्रति सप्ताह जाते हुए कितने नवयुवकों को समाज में जाने की प्रेरणा देते थे तथा अपने साथ ले जाते थे। किसी भी आर्य महारथी से पूछो सब यही कहते हैं कि हमारे जीवन निर्माता, प्रेरक, पथ-दर्शक वही महादानी हंसराज हैं। आज उनका गुण हम में आ जाये। हरेक सज्जन कम से कम एक-एक युवक को अपना बना कर युवक शक्ति में चेतना भरे। उस के पवित्र दिवस मनाने का सब से बड़ा यही लाभ है।

—त्रिलोकचन्द्र

आवश्यक निवेदन

आगामी अंक २९-४-६२ का बंद रहेगा। अतः ६-५-६२ के अंक की प्रतीक्षा करें।

—व्यवस्थापक

आदर्श तपस्वी के जीवन संस्मरण

स्वर्गीय पूज्य महात्मा हंसराज की जीवन कथा जिस ललित भाषा में भावविभोर होकर जिस सुन्दर शैली पर महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने लिखी है। वह अपने ढंग से अनूठी पुस्तक है। आर्य प्रादेशिक सभा द्वारा प्रकाशित हुई है। इसमें आदर्श तपस्वी महात्मा हंसराज जी के जीवन संस्मरण भी दिये हैं। आर्यजगत् के प्रेमी पाठकों को यह दिव्य प्रसाद भी दिया जा रहा है। सं०

जीवन की चिन्ता नहीं

दयानन्द कालेज को जीवन अर्पण कर देने के बाद महात्मा हंसराज जी को इतना काम करना पड़ा कि स्वास्थ्य गिरने लगा। शरीर दुर्बल हो गया। रंग पीला। हलका-हलका बुखार भी रहने लगा। एक दो डाक्टरों ने यहां तक कहा कि यदि यही अवस्था रही तो कुछ ही दिनों में तपेदिक हो जाने का भय है। महात्मा जी के मित्रों और सम्बन्धियों ने जब यह सुना तो उन्हें चिन्ता हुई। पहले अलग २ फिर इकट्ठे उन्होंने उन से कहा कि वह कुछ महीनों के लिए कालेज का काम छोड़ कर किसी पहाड़ पर चले जायें। महात्मा जी ने अपने परामर्शदाताओं की सब युक्तियां मानीं, परन्तु उत्तर दिया—इसके बाद भी मैं अपना जीवन बचाने के लिए किसी पहाड़ पर नहीं जा सकता। अपने काम को छोड़ नहीं सकता। क्योंकि यह जीवन तो मेरा है नहीं। मैं तो पहले ही इसे दयानन्द कालेज को सौंप चुका हूं। अब यह रहे या न रहे। मेरा इस से कोई सम्बन्ध नहीं।

हंसमुख स्वभाव

महात्मा जी कितने हंसमुख थे, इसकी एक साधारण सी झांकी इस घटना में झांकिये। स्वर्गीय लाला लालचन्द जी का देहांत हो गया। महात्मा जी को उन से बहुत प्रेम था। किसी ने पूछा—लाला लालचन्द जी की मृत्यु का कारण क्या है ? महात्मा जी बोले—वह हंसते न थे।

आतिथ्य सत्कार

महात्मा जी को अपने विद्यार्थियों से बहुत प्यार था। गरीबी के दिनों में भी वह इन लड़कों को अपने घर बुलाते। उन्हें आर्य समाज का सन्देश सुनाते। जब अतिथि सत्कार का समय आता तो और कुछ न होने पर उबले आलू ही नमक लगा २ कर खिलाया करते।

सिनेमा नहीं देखा

महात्मा जी ने अपनी लम्बी आयु में एक वार भी सिनेमा नहीं देखा। एक वार बलराज जी ने उन से कहा—अगर आप को भीड़भाड़ में सिनेमा देखने में झिझक हो तो मैं प्रबन्ध करासकता हूं कि केवल आप के लिए ही एक शो करवा दूं। महात्मा जी ने सदा की तरह इन्कार करते हुए कहा—सिनेमा में चलती फिरती तस्वीरें ही तो होती हैं। जब मैं आप लोगों को चलते फिरते देखता हूं तो फिर सिनेमा देखने की जरूरत क्या है ?

परमतपस्वी व त्यागी

पण्डित नानक चन्द जी बैरिस्टर जब पढ़ते थे तो महात्मा जी की निर्धनता और सादगी देख कर उन के आश्चर्य की सीमा न रही। एक दिन पण्डित जी महात्मा जी को मिलने उन के घर गये तो देखा कि आधी फटी हुई परन्तु बिल्कुल साफ धुली हुई कमीज़ पहने खड़े हैं।

इसी तरह एकवार उन की आंख पर चोट लगी भाई परमानन्द वहीं थे। डाक्टर आया। पट्टी बांधने के लिए थोड़ा कपड़ा मांगा तो महात्मा जी के घर से फटे कपड़े का टुकड़ा तक नहीं मिला।

प्रभु के परमविश्वासी

जब कभी महात्मा जी कहीं जाने लगते थे तो घर के बाहर मोटर में बैठते समय ओम् विश्वानि-देव सवितर्दु रितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव। मन्त्र पढ़ा करते थे जब कभी आप का कोई बन्धु कहीं बाहर जाने लगता तब भी आप उसे मोटर में बिठाते समय इसी मन्त्र को बोला करते थे।

सेवा में आगे ही आगे

महात्मा जी जब आर्य समाज के प्रधान थे तो हर एक सभासद से निजी परिचय और सम्पर्क पैदा किया करते और प्रत्येक दुःख सुख में शामिल होते। जब कोई आर्य समाज का सदस्य बीमार होता या उसका कोई सम्बन्धी बीमार होता तो महात्मा जी स्वयं खबर लेने जाते और उन्होंने जो सेवक मण्डली कायम की हुई थी उनके सदस्यों की ड्यूटियां लगा दिया करते।

पांच सकार

सिख गुरुओं ने जिस प्रकार पंचककार का अपने सिखों में प्रचार किया और उन को अपने जीवन में घटाने का उपदेश किया। उसी प्रकार महात्मा जी पंच सकार का प्रचार किया करते और समस्त आर्य जनता को उन्हें अपने जीवन में घटाने का उपदेश किया करते। ये पंच सकार ये हैं—१—संध्या, २—समाज, ३—स्वदेश, ४—स्वाध्याय, ५—सेवा।

युवक जीवन निर्माण

महात्मा जी ने अपने कुछ सुयोग्य कालेज विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देकर एक सभा चलवाई, जिसका नाम 'आत्मोन्नति सभा' रखा गया। मास्टर बरकतराम जी, श्री रामसहाय जी, भाई देसराज जी, लाला बलराज जी तथा प्रिंसिपल मेहरचन्द जी आदि इस सभा के सभासद थे। इनका सायंकालीन सन्ध्या में सम्मिलित होना अनिवार्य था। इस सभा के कुछ सभासद सायंकाल को आप के स्थान पर सत्यार्थ प्रकाश तथा संस्कार विधि पढ़ने को जाया करते।



वेदों का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना
सब आर्यों का परम हितकर कर्त्तव्य है



बलिदान के मार्ग पर

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज)



महात्मा हंसराज चाहते तो अन्य सांसारिक लोगों की तरह उच्च से उच्च पद प्राप्त कर लाखों की सम्पत्ति जुटा लेते। लेकिन जाति की दुरावस्था ने उन्हें बलिदान के इस मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने बढ़ता हुआ एक तूफान देखा और रुक न सके। कूद पड़े। सारी आयु निर्धनता, तपस्या और त्याग में बिताते हुए संसार के कल्याण के लिए धर्म, देश और जाति की सेवा का प्रण लिया। होश सम्भालने से लेकर के अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने हर श्वास के साथ देश से अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्हें कई प्रलोभन दिये गये। देश के नेतृत्व का स्वर्णजाल फैलाया गया। प्रबल राजनैतिक आन्दोलन के समय उन्हें कहा गया कि यदि आप इस में शामिल हो जायेंगे तो सारे देश के नेता बन जायेंगे। तब महात्मा जी ने केवल इतना ही कहा—'मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं, रचनात्मक कार्य में लगा हूं और इसी में लगा रहूंगा।'

त्याग की साक्षात मूर्ति, सरलता एवं सादगी का सजीव चित्र, निरभिमानता के आदर्श हंसराज का जीवन अनुकरणीय है। रहने का एक छोटा-सा कमरा, लकड़ी का तख्त पोश, दो टूटी हुई कुर्सियां और बस। कपड़े मोटे २ शुद्ध स्वदेशी। सीधा-सादा पाजामा, बन्द गले का कोट, ऊबड़ खाबड़-सी पगड़ी—यह उनका वेश था। उन्नत विशाल मस्तक, श्वेत वर्ण, लम्बे चेहरे पर भव्य दाढ़ी, ऐसे लगता था, मानो कोई प्राचीन काल का देवता हो।

दयानन्द कालेज की निस्स्वार्थ एवं निष्काम सेवा, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना, महिला महाविद्यालय की स्थापना आदि सब इसी कार्यक्रम की कड़ियां थीं। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए जहां कहीं भी भारतीयों पर कष्ट आया उन्होंने वहां ही आर्य सेवक भेजे, स्वयं भी वहां पहुंचे। शुद्धि आंदोलन, अछूतोद्धार, हरिजनों की उन्नति आदि सब का यही प्रयोजन था। इस ध्येय के पीछे एक विचार था जो महात्मा जी के इस वाक्य में झलकता है—आप से यही कहना चाहता हूं कि महर्षि दयानन्द के बताये मार्ग पर दृढ़ता से कायम रहें।



हंस खे गये नाव हमारी

रचयिता : श्री वेद प्रकाश जी B. A. प्रभाकर, आर्य हा० सै० स्कूल लुधियाना

हंसराज थे राज हंस था, परम पिता प्रभु के आलोक।
नीर छिर कर दिया पृथक था, मिटा दिया भारत भूशोक ॥
कौन विवेकी धीर उद्यमी, कौन हुआ उनसा विद्वान ।
रग रग तड़प रही हो जिसकी, करने को विद्या का दान ॥
पीने को अभिशाप विश्व के, करने को जग का उत्थान ।
वेद धर्म वारिज विकसान, सौरभ भरने बीच जहान ॥
दयानन्द के परम पूजारी, पुंज आब की सच्ची आब ।
दम्भ कीट हर वर दिनकर की, कौन सका ला अब तक ताब ॥
ओज तेज मेधा गुण आकर, दीन हितैषी परम दयाल ।
दुखी अनाथों विधवाओं औ, विह्वल गौओं के रक्षपाल ॥
सरल सभ्य वर्चस्वी त्यागी,- अनथक साहस के भण्डार ।
हंस खे गये नाव हमारी, वेदों की कर ले पतवार ॥
स्वार्थ हीन परमार्थ लीन वे, वेद धर्म के थे आधार ।
परम अनूठे मिलें अगर फिर, हम पीएं पद पद्म पखार ॥

हाय ! हंस तो विदा हो गये,
हम से कौओं की भरमार ।
तज सेवा कर्त्तव्य भावना,
छीनें पग पग पर अधिकार ॥

[७]

अपूर्व त्याग का जीवन

(महान् दार्शनिक प्रिंसिपल दीवानचन्द जी एम० ए० कानपुर)



महात्मा जी के जीवन में प्रमुख बात यह थी कि जो उद्देश्य उन्होंने अपने लिए निश्चित किया उसके लिए उनके मन में अगाध श्रद्धा थी भगवद् गीता में कहा है कि मनुष्य श्रद्धामय ही है। महात्मा जी ने आर्यसमाज को कल्याण और दूसरों की सेवा का साधन बनाया। जिस मार्ग पर उन्होंने चलना आरम्भ किया उसी पर वह चलते रहे। लाला साईं दास जी ने एक बार कहा कि जब कभी महात्मा जी के पास गये हैं, कहीं से बातचीत आरम्भ करें। आध घण्टे के अन्दर आर्यसमाज इस का विषय बन जाता है। महात्मा जी और मैं एक बार शिमला में मालवीय जी से मिलने गये। उन दिनों राजनीति का विशेष जोर था। मालवीय जी ने कहा—हंसराज जी! आप राजनीति में आइये जरूर आइये। महात्मा जी बोले—कि मार्ग तो निश्चित हो चुका है। मालवीय जी ने कहा—केवल ६ मास के लिए आ जाइये अधिक नहीं। महात्मा जी तो समझते ही थे। मैं भी समझता था कि जो गया सो गया। नमक की कान में पहुंच कर सब कुछ नमक ही बन जाता है। हम में से बहुतेरे अनुभव नहीं करते कि महात्मा जी को 'हिरण्यमय पात्र' से दूर रहने में कितना परिश्रम करना पड़ा।

एक उद्देश्य उन के सामने था। हालात ने उन्हें इस योग्य बना दिया कि वह अपना सारा समय इस उद्देश्य की पूर्ति में लगा दें। उनके समय का कोई भाग उनका अपना समय न था, सारा समय सेवा के लिए था। लाला मुल्कराज की आर्थिक दशा ने जो मामूली रकम उनके लिए नियुक्त की उसको महात्मा जी ने पर्याप्त समझा और अपना सारा जीवन गरीबी में गुजार दिया। गरीबों की संख्या हमारे देश में बहुत बड़ी है इसकी कोई कीमत नहीं, परन्तु अपनी गरीबी त्याग कहलाती है। महात्मा जी का जीवन अपूर्व त्याग का जीवन था। वह कालेज के प्रिंसिपल थे और चार रुपये मासिक किराये के मकान में रहते थे। शेष जीवन भी इसी स्तर पर था। यह त्याग उन के अपूर्व आत्मिक बल का चिन्ह था। उनका ज्ञान उच्च कोटि का था। जो गुण उन्हें एक विशेष श्रेणी में रखता था वह उनका आत्मिक बल था। यह बल अपने आप को दो रूपों में व्यक्त करता है एक यह कि मनुष्य पर कष्ट आयें और वह टूट न जायें। दूसरा यह कि प्रलोभनों के सामने सीधा खड़ा रहे। कठिनाईयां तो जीवन में सब को आती हैं। महात्मा जी के जीवन में भी आईं।

महात्मा जी के काम का असर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूपों में हुआ। प्रत्यक्ष रूप में सारे पंजाब में स्कूलों और कालेजों का जाल बिछ गया। परीक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने किया वह उनके समय में किसी अन्य एक पुरुष ने नहीं

अमर महान् नेता

(श्री प्रिंसिपल सूर्यभानु जी एम० ए० प्रधान सभा)



संसार के सभी धर्मों तथा मतों के लोग समय २ पर अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं। भारत का इतिहास इस बात की पूरी तरह से पुष्टि करता है कि अशोक के समय में बौद्धमत का प्रचार कुछ इस मात्रा में बढ़ा कि जनसाधारण भौतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं में संतुलन न रख सके। आश्रमों और मठों में लोग अपनी आत्मिक पिपासा को शांत करने के लिए जाते, परन्तु सांसारिक और राष्ट्रीय जीवन की बहुत कुछ अवहेलना की गई। वैराग्य और तटस्थता की लहर इतनी बढ़ी कि राष्ट्र के संगठन का काम पीछे पड़ गया ऐसी अवस्था में बाहर से देश पर आक्रमण होने लगे। इन परिस्थितियों का मुकाबला करने के लिए महान नीतिकार चाणक्य कार्यक्षेत्र में आए। चाणक्य की महानता इसी में थी कि उन्होंने देश से निराशा

किया। आधुनिक पंजाब के बनाने वालों में उनका स्थान प्रमुख था! अप्रत्यक्ष असर उस श्रद्धा में व्यक्त हुआ जो उनके कारण युवकों में धर्म और समाज सेवा के लिए पैदा हो गई। उनका अपना हृदय उमंग और उल्लास से भरा था। उनके अनेक मिलने वालों में हरेक को उसकी इच्छा के अनुसार उस अमूल्य भण्डार से भाग मिल जाता था।

महात्मा हंसराज अब कहां हैं? सुकरात की मृत्यु का समय निकट आ पहुंचा तो उसके शिष्यों ने उससे कहा—गुरु! हम तुम्हें कैसे दफन करें? सुकरात बोला—यदि मुझे पकड़ सको तो अपनी इच्छा के अनुसार दफन कर देना। परन्तु मैं तो चल दूंगा, मेरा शरीर तुम्हारे पास होगा।यदि महात्मा हंसराज से यह प्रश्न पूछा जाता तो उनका उत्तर सुकरात के उत्तर से भिन्न होता। वह कहते—मेरे शरीर का दहन तो कहीं ही हो जायगा, मैं आप जब तक तुम चाहोगे, तुम्हारे साथ रहूंगा। मुझे रह रह कर विचार आता है कि क्या महात्मा जी अभी हमारे साथ हैं या इन थोड़े से वर्षों में ही हम से जुदा हो गये हैं? इसका उत्तर प्रत्येक मनुष्य अपने लिये दे सकता है। क्या उनकी श्रद्धा उनका त्याग, उनका उल्लास,उनका निष्काम भाव अब भी वास्तव में हमारी समाजों व हमारी संस्थाओं में विद्यमान है। या फिर हम उसी अधम अवस्था की ओर सरकते जाते हैं। जिससे खींच कर उन्होंने हमें निकाला था। गति तो जीवन में होती है। हमारे लिए प्रश्नों का प्रश्न यह है कि क्या हमारी गति प्रगति है या अधोगति है। महात्मा हंसराज के जन्म दिन पर, जब हम उनसे आत्मिक भेंट करते हैं, हम उन्हें प्रसन्नचित्त मिलते हैं या लज्जित सिर को झुकाये हुए मिलते हैं?

और उदासी : के भावों को उखाड़ कर परे फैंक दिया। फिर इ . इतिहास में ऐसा समय आया जब कि लोग आ क तथा राजनैतिक संघर्ष में पड़ कर आध्यात्मि और नैतिक मार्ग को छोड़ बैठे। आम लोग भी उन्हीं का अनुकरण करते हुए नैतिक। जीवन से बहुत दूर जा पड़े थे। लोक और पर लोक का यह संतुलन अंगरेजी राज्य की स्थापना के साथ फिर बिगड़ने लगा। ऐसे अवसर पर महर्षि दयानंद ने राष्ट्र का पथप्रदर्शन किया। ऋषि ने धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति पर जोर देने के साथ २ राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक सुधारों की भी चर्चा की। उन्हों ने अपने तप और बलिदान से एक क्रान्ति मचा दी। सुधार का आंदोलन ऋषि के पश्चात् उन नेताओं पर निर्भर था जो दयानंद के उपदेशों के अनुसार आगे बढ़ना जानते थे। इन नेताओं में महात्मा हंस राज सब से आगे थे।

अंगरेजी राज्य न केवल एक राज नैतिक परिवर्तन था बल्कि यह वह पड़ाव था जहां पूर्व और पश्चिम की सभ्यताओं का मेल है। महात्मा हंसराज भारतीय सभ्यता की आध्यात्मिक ज्योति को पहिचानते थे। परन्तु साथ ही साथ वह इस बात को भी समझते थे कि पाश्चात्य सभ्यता ने विज्ञान, राजनीति तथा अर्थशास्त्र में विशेष उन्नति तथा आविष्कारों द्वारा मानव जाति को एक ऐसे, स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है जहां पाश्चात्य सभ्यता की अवहेलना करना आत्मघात से किसी प्रकार भी कम नहीं था। भारत के युवकों का भविष्य, विशेष कर भौतिक भविष्य तभी उज्ज्वल हो सकता था यदि वे अंगरेजी भाषा और वैज्ञानिक आविष्कारों में आगे बढ़ सकते। इसके बिना हमारा भौतिक जीवन बहुत पीछे रह जाने की सम्भावना थी।

महात्मा हंसराज धर्म सुधारक थे और वे इस बात से भली-भांति परिचित थे कि धर्म लोक और परलोक दोनों की एक साथ व्यवस्था करता है। इस लिए एक ओर वे वेद और वैदिक धर्म के अनथक प्रचारक तथा अग्रगण्य कार्यकर्ता थे और दूसरी ओर वे पश्चिम की भौतिक उन्नति को भी विस्मृत न कर सके। इस दोहरी वृत्ति के परिणाम स्वरूप महात्मा जी ने अपने आप को उस आंदोलन के साथ बांध दिया, जिस ने नये पंजाब में जागृति और क्रांति की भावनाओं को जन्म दिया। यह महान् आंदोलन डी. ए. वी. आंदोलन था। बाहर से देखने में यह एक महाविद्यालय तथा स्कूल का शिला विन्यास था परंतु इस में बिजली की सी एक शक्ति थी। डी. ए. वी. संस्थाओं ने ऐसे नेताओं को जन्म दिया जो अपने जीवन में शुद्ध रूप में भारतीय थे परन्तु वे विदेशी विचार धाराओं से भी अपरिचित न थे। यही कारण है कि वे लोग ब्रिटिश राज्य से सफल टक्कर ले सके थे। महात्मा हंसराज का अपना जीवन एक फकीर और संत का जीवन था! वे अपने शरीर के भोगों से उदासीन थे। परन्तु वे नेतृत्व उन विद्यार्थियों का करते थे जिन के हाथ में आने वाले भारत का निर्माण था। उनका स्थान डी. ए. वी. आंदोलन की लम्बी और दिलचस्प कहानी में नायक का है। उनकी मानसिक शक्ति से इस आंदोलन को शक्ति मिलती थी। उनके त्याग से इस में क्रियाशीलता उत्पन्न होती थी। वह अर्थ और मोक्ष

त्याग मूर्त्ति महात्मा हंसराज जी की
पुण्य स्मृति

(ले०—महामना श्री देवीचन्द्र जी प्रधान द० सा० मिशन हुशियारपुर)



संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि समय २ पर जो महा पुरुष देश, धर्म तथा जाति की रक्षा के लिए उत्पन्न होते रहे हैं उन्हें हम महात्मा, सन्त, आचार्य गुरु तथा नेता स्वीकार करते रहे हैं। उनका त्याग अपूर्व था उनकी तपस्या महान थी। उन्होंने जिस समय बी० ए० पास करने के पश्चात शिक्षा के प्रसार का व्रत धारण किया उस समय ग्रेजुएट विरले ही देखने को मिलते थे। यूनिवर्सिटि की बी० ए० की डिग्री प्राप्त होते ही ब्रिटिश सरकार उन्हें उच्च पदों पर आरूढ़ कर देती थी। राज्य मे उन्हें विशेष सम्मान प्राप्त होता था परन्तु नवयुवक हंसराज पर महर्षि दयानन्द के उपदेशों का रंग चढ़ चुका था। आर्यसमाज के प्रति उनके हृदय मे अगाध श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी थी। यही कारण था कि उन्होंने बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होते ही आर्यसमाज की सेवा का कड़ा व्रत धारण किया और डी० ए० वी० कालेज कमेटी लाहौर को अपना जीवन दान दे दिया।

२५ वर्ष पर्यन्त वह डी० ए० वी कालेज लाहौर के प्रिंसिपल रहे और एक पाई भी वेतन के रूप मे कालेज कमेटी से प्राप्त नहीं की। इतने दीर्घकाल पर्यन्त अवैतनिक आर्यसमाज की अनथक सेवा के फल स्वरूप ही ला० हंसराज जी महात्मा हंसराज जी के पवित्र नाम से सुप्रसिद्ध हुए। उन्होंने केवल डी० ए० वी० कालेज लाहौर तक ही अपने कार्य को सीमित नहीं रखा प्रत्युत पंजाब के अन्य अनेक स्थानों पर भी डी० ए० वी० स्कूलों की स्थापना की।

वह यह समझते थे कि जब तक देश मे विद्या का प्रचार नहीं होगा और उस के साथ धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी देश की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति असम्भव है। इसी कारण उन्होंने स्थान २ पर स्कूलों का जाल बिछा दिया। लड़कों के स्कूलों के साथ२ कन्या पाठ शालाओं का भी जाल बिछ गया। महात्मा जी ने शिक्षा के प्रसार में जो महान कार्य किया है उसे हम कैसे भुला सकते हैं। उस की पवित्र स्मृति प्रत्येक पंजाबी के हृदय में बनी रहेगी।

इस अवसर पर जबकि भारत स्वतन्त्र हो चुका है हमारा यह प्रथम कर्त्तव्य है कि हम प्रातः स्मरणीय पूज्य महात्मा हंस राज जी द्वारा स्थापित

दोनों की महत्ता को स्वीकार करते थे। वे जानते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्ग एक दूसरे के सहायक हैं। उन मे मूल विरोध का अभाव है। ऐसे महान् नेता इतिहास में सदैव अमर रहते हैं।

शिक्षा संस्थाओं की रक्षा करें। यह हमें उन की पुण्य स्मृति दिलाती हैं। उन की यह पवित्र देन आर्य्य समाज को प्रगति शील बनाती है। हमारे अंदर जीवन का संचार करती है इन संस्थाओं को सरकार के हाथ में देने का स्वप्न में भी अपने हृदय में विचार नहीं लाना चाहिये। यह संस्थायें वैदिक धर्म प्रचार का साधन रही हैं। यदि उन में आज कल के धर्म निरपेक्ष युग में कुछ शिथलता आ गई है तो इस का उत्तर दायित्व उन के प्रबन्धकों पर है। आज जबकि हम पूज्य महात्मा हंसराज जी की पवित्र जयन्ति मना रहे है प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम ऋषि दयानंद के नाम पर स्थापित की गई संस्थाओं को न केवल जीवित रखने का प्रयन्त करेंगे वल्कि उन्हें पूर्ण रूप में वैदिक धर्म के प्रचार का साधन भी बनाने की चेष्टा करते रहेगे।

महात्मा हंस राज जी कालज की प्रिंसिपली के उत्तर दायित्व को निभाते हुए वह तथा उन के आधीन कार्य करने वाले प्राध्यापक तथा अध्यापक वर्ग प्रांत भर में आर्य समाजों के उत्सवों पर प्रचार के लिए जाते थे। अनेकों ने महात्मा जी का अनुसर्ण करते हुए कालजों तथा सकूलों को अपने जीवन दान दिए और केवल निर्वाह मात्र कुछ शुल्क ले कर सेवा का प्राण लिया और उन महानुभावों ने आर्य समाज के नाम को चार चांद लगाए। यह आवश्यकता वर्तमान युग में भी है। क्या मैं यह आशा कर सकता हूं कि आज भी ऐसा नव युवक सद ज्ञान के प्रसार तथा वैदिक धर्म के प्रचार में अग्रसर हो कर अपने जीवनों की आहुतियां देते हुए ऋषि के मिशन को आगे ले जाने में प्रयत्नशील होंगे।?

शत् शत् प्रणाम

(ले० श्री 'शरर' जी M.A. आर्य कालिज पानीपत)

ओ सद्गृहस्थ, ओ वानप्रस्थ, ओ तप: पूत ओ पूर्णकाम्।
यतिवर
जीवन तेरा क्या सरल सरल, मानस तेरा क्या विमल विमल
निश्चय मे अडिग हिमालय सम्, शीतल पावन ज्यों गंगा जल
ओ श्वेत वस्त्रधारी साधु, तेरा पथ क्या सुन्दर ललाम्
तेरे प्रयत्न सब सफल हुए, चहू दिश विद्या के स्रोत बहे
तेरे आवाहन पर कितने वीरो ने जीवन दान दिये
तू शांत महासागर समान, तूफानों का भी केन्द्र धाम
तू सत्य अहिन्सा में विलीन, सर्वथा पापमय से विहीन
ऋषि भक्ति का सागर महान तू उस सागर का मुक्त मीन
तेरा चरित्र महिमा मण्डित प्रेरणा स्रोत हृदयाभिराम्।
यतिवर तुझ को शत् शत् प्रणाम

महात्मा हंसराज के प्रति

(कु. सुशीला देवी आर्या एम० ए० विद्यावाचस्पति, नरवाना)

धन्य धन्य हे हंस, कि जिसने हंस हंस जीवन वार दिया,
तन, मन, धन, बलिदान किया निज, ऋषि-ऋण सकल उतार दिया।
नीर क्षीर का सही विवेकी, हंसराज था सचमुच हंस,
प्रिय पंजाब का जीवनदाता, आर्यों का गौरव अवतंस ।
मान के मानसरोवर में ही जीवन भर सुख से खेला,
जब तक परम हंस से नही हंस का हुआ जोड़ मेला ।
वैदिक संस्कृति का बन हस (सूर्य) हंसराज जब आय था,
ऋषि के दिखलाये पथ पर नूतन आलोक फैलाया था ।
धन पाया विद्या का यश का और नही धन भाया था,
सत्य सरलता और सादगी से जीवन सर साया था ।
दयानन्द की दिव्य देन वैदिक विद्या के सदन को,
रहे बांटते वे जीवन भर पथ से भटके जन जन को ।
एक बार जो कदम बढ़ाया पीछे नही हटाये हटा,
जीवन के संग्राम क्षेत्र में सीना ताने रहा डटा ।
चुने 'हंस' ने मोती ही सीपी घोंघों का काम नहीं,
चमके मां की मणिमाला में शोभा बने हृदय की ही ।
जीवन का आदर्श यही था सादा जीवन उच्च विचार,
कंटक कुल में सुमन सदृश खिल किया सुयश-सौरभ प्रसार ।
आज कुशिक्षा के चक्कर में पडा हुआ है देश महान,
आर्यो, एक हमी से संभव है इसका होना निर्माण ।
झीना तंतु आशा का यह चटका कर देना मत तोड़,
अपनी शिक्षा संस्थाओं को देना हमने नूतन मोड़ ।
श्रद्धांजलि यही है उनको, यह कर्त्तव्य हमारा है,
महात्मा का जन्म-दिवस लाया सन्देश यह प्यारा है ।

महात्मा हंसराज का आत्मरस
युवक—जागरण

(ले०—प्रो० वेदीराम जो शर्मा एम० ए०, डी० ए० वी० कालिज जालन्धर)



विश्व में होने वाले जिस महापुरुष पर भी दृष्टि डालें हमें यही ज्ञात होगा कि उनके जीवन व कार्य के पीछे एक अनुपम साधना कार्य कर रही थी। इसी साधना के कारण वे जन सामान्य से ऊपर उठकर महा मानव की कोटि में आए। इसी प्रकार की विशेषताओं के कारण ये आत्माएं जनता में पूजी जाती हैं—आदर व सत्कार प्राप्त करती हैं। ये विशेषताएं मनुष्य को पूर्ण रूपेण बदल देती हैं। गुरुदत्त जैसे नास्तिक को आस्तिक बनाने में महर्षि दयानन्द जी की ईश्वर भक्ति महात्मा गांधी को बनाने में श्रवण कुमार की पितृ भक्ति, राजा हरिश्चन्द्र की सत्य भक्ति ही मुख्य कारण थे! इसी प्रकार महात्मा हंसराज को, दयानंद का त्याग मय जीवन व अखण्ड पाण्डित्य ही शिक्षा प्रसार की प्रेरणा दे सका।

जैसे महर्षि के साथ आर्यसमाज रवीन्द्र के साथ शांति निकेतन, श्रद्धानन्द के साथ गुरुकुल और महामना मालवीय के साथ काशी विश्व विद्यालय का नाम अमर है, उसी प्रकार महात्मा हंसराज जी के साथ डी० ए० वी० कालेज का नाम शाश्वत रहेगा।

८ नवम्बर १८८३ ई० को लाहौर में दयानन्द के भक्त कुछ युवकों ने महर्षि के मिशन को सर्वत्र फैलाने के लिए स्मारक रूप में डी० ए० वी० कालेज और स्कूल खोलने का निश्चय किया। उनके हृदय में यह दृढ़ संकल्प था कि :—

'हम एक ऐसी संस्था स्थापित करना चाहते हैं जिसमें वर्तमान शिक्षा प्रणाली के अवगुणों को त्याग कर केवल गुणों को ही ग्रहण किया जायगा। संस्कृत और हिन्दी की शिक्षा द्वारा शिक्षित और अशिक्षित वर्ग का मिलाप कराया और ऋषियों के ग्रन्थ पढ़ा कर परमात्मा और आत्मा की उलझनें सुलझाई जायेंगी। शिल्प का भी प्रबन्ध किया जायेगा।'

इसी उद्देश्य से दयानंद कालिज स्थापित करने का निश्चय किया गया। जहां पाश्चात्य विद्या के साथ पूर्वी ज्ञान और विशेष कर वेदों की शिक्षा दी जा सके।

कारण ?

सारे देश में ईसाई पादरी शिक्षा की आड़ में देश की युवक शक्ति को शरीर और आत्मा दोनों से ईसाई बना रहे थे। कलकत्ते में विलयम कालेज बड़ा केन्द्र था और इसी केन्द्र से देश व्यापी प्रचार का सुयोजित प्रबन्ध हो रहा था डी० ए वी० संस्था अपना समस्त जीवन देने वाले महात्मा हंसराज जी ने ईसाई विद्यालय में पढ़ कर इस बात को अच्छी प्रकार अनुभव कर लिया था।

दूसरी ओर मुसलमानों की गर्दन भी अलीगढ़ में Beck साहिब के हाथ में थी। इन के पश्चात Archibold ने उनका स्थान लिया। इतिहास साक्षी है कि Beck ने अलीगढ़ कालेज में कार्य करते हुए अंग्रेजी सामराज्य वाद के हितो की रक्षा करते हुए उसको भारतीय युवकों के मस्तिष्क में पुष्ट किया सुरक्षित किया। इतिहास के पृष्ठ आज भी पुकार २ कर घोषणा कर रहे है कि Minto Moreley Reforms के रूप में जो हिन्दू और मुसलमानों के मध्य परस्पर भेद भाव की प्रचण्ड भट्ठी प्रज्वलित की गई इस मे भी अलीगढ के इन्हीं Beck और Archibold का भारी हाथ था। सर सय्यद अहमद खा को अराष्ट्री बनाने वाले भी Beck साहिब ही थी।

बाद मे सिक्खों ने भी अपने जो कालेज प्रारम्भ किए, उन में भी अंग्रेजी शिक्षकों को ही स्थान मिला। उन अंग्रेज प्रोफेसरों ने हिन्दू सिखो मध्य फूट के बीज बोए। मकालिफ ने क्या कुछ नहीं किया ? यह आज स्पष्ट हो चुका है।

किन्तु धन्य हैं ऋषि दयानंद के वे मस्ताने युवक जिनका नेतृत्व महात्मा हंसराज जी जैसे निर्भीक सेनानी के हाथ मे था। स्वनाम धन्य महात्मा हंसराज ने किसी भी विदेशी विषैले सर्प रूप शिक्षक को दयानंद की इस पवित्र संस्था के निकट न आने दिया। आर्य समाज के विद्या दान यज्ञ के यजमान भारतीय लाल ही थे और ब्रह्मा तो आर्य संस्कृति के मानसरोवर के राजहंस हंस राज थे।

शिक्षा के इस महा यज्ञ ने 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का मन्त्रोच्चारण कर आगे कदम बढ़ाया। चारों ओर प्रकाश फैलता चला गया। छात्र डी० ए० वी० कालेज मे पढ़ना एक गौरव की चीज समझते थे। आज भी अच्छे २ सरकारी पदों पर या राज्य सरकारों के स्थानों पर आसीन महानुभाव बड़ी शान से कहते मिलेंगे कि हम भी डी० ए० वी० कालेज मे पूज्य महात्मा हंसराज जी के चरणों में पढे है। यह था उस कालेज का महत्व पूज्य महात्मा जी वेद पाठ का कार्य स्वयं करते थे। 'आर्य युवक समाज' की स्वयं देख भाल करेत थे।

आर्य समाज के यह विद्या उजागर-विद्या सागर एक कर्मठ और दूर दर्शी नेता थे। सदाचार उनका भूषण था। उनके इन गुणो पर अनेक युवक न्योछावर होने को तैयार रहते थे।

उनके द्वारा स्थापित आर्य युवक समाजे आज भी कार्य कर रही हैं। आज भी कालेजों मे वेद पाठ की कक्षाए हैं। आज भी धर्म शिक्षा का स्थान और समय नियत है किन्तु महान दुःख है कि उस दूर दर्शी नेता की यह इच्छा समाप्त हो रही सी नजर आ रही है। आज के शिक्षक धर्म शिक्षा-वेदपाठ या युवक समाजों में जाना कुछ हेय कार्य समझते हैं। दुःख है कि जो प्रोफेसर छात्रों मे इस प्रकार की चर्चा करने का साहस भी करता है उसे भी कुछ समय पश्चात अनुत्साहित ही देखा गया है।

किन्तु आज इस परिस्थिति मे भी यदि हम महात्मा हंस राज जी का आदर्श अपने सामने रक्खें और इन बाधाओं की चिन्ता न करते हुए अपने मार्ग पर बढ़ते चले जाएं तो शीघ्र ही सफलता मिल सकती है। इस वर्ष जालन्धर कालेज में इस का प्रयोग किया गया। धर्म शिक्षा का धुआंधार प्रचार प्रसार रक्खा गया। आर्य साहित्य

[१६]

सादगी की दिव्य मूर्ति

(श्री पं० दयाराम जी शास्त्री एम० ए० मन्त्री आर्यसमाज अनारकली देहली)

यह वह युग था जब कि अंग्रेजी शासन का सारे देश में चक्र चल रहा था। अंग्रेजी भाषा का बड़ा भारी मान होता था। पंजाब विश्वविद्यालय से बहुत ही थोड़े इने गिने युवक डिगरी परीक्षा में उत्तीर्ण होकर निकलते ; ऐसे छात्रों को उस समय की जनता देखने आया करती। उनके पत्रों में चित्र निकलते, भारी स्वागत सम्मान होता। उनके दूसरों की ओर से समारोह जुटाये जाते। ऐसे युग में ही स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने अपनी बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। सम्भवतः उस वर्ष तीन चार छात्र ही बी० ए० कर के आये। सारे परिवार तथा सम्बन्धियों के हर्ष का क्या ठिकाना रहा। बड़े प्रसन्न थे कि युवक हंसराज ने अब अपनी शिक्षा समाप्त कर ली है। अब उच्च सेवा कार्य में लगकर सारे संकटों को काट देगा सुख सुविधा का पथ प्रशस्त हो जायगा। किन्तु युवक के मन में तो कुछ और विचार काम कर रहे थे। महर्षि दयानंद सरस्वती के पवित्र स्मारक के रूप में खोले जाने

मुफ्त बांटा गया। एक परीक्षा भी धर्म सम्बन्धी रक्खी। मूसला धार वर्षा में छुट्टी के दिन भी दूर २ से विद्यार्थी परीक्षा के लिए कालेज में आए। विद्यार्थियों ने अपनी उत्तर पुस्तकों में मांस न खाने स्वाध्याय करने, सिगरेट न पीने की प्रतिज्ञा लिख कर की।

इस प्रकार के कुछ युवक यदि प्रत्येक कालेज में निकल आवें तो कार्य सुगम होने में कोई भी कठिनाई नहीं। विद्यार्थी प्यासा है किन्तु पानी पिलाने वाले बन्धु अपने हाथ में जलपात्र सम्भाले खड़े हैं, लज्जा वश पिलाते हुए शर्माते हैं कि कहीं हमें कोई यह न कह दे कि हम एक प्यासे छात्र की प्यास बुझा रहे हैं।

कैसी विडम्बना है ? क्या बेहोशी आ गई है हमें ? हम कहां से कहां जा रहे हैं ?

अतः आओ ! आज इस पुनीत दिवस पर यह निश्चय करें कि महर्षि दयानंद की इस पुनीत वाटिका को हरा भरा रखने के हेतु, पूज्य महात्मा हंसराज ने अपनी आत्मा का जो रस इसकी नींव में सींचा था, आज वह पुनः इसी प्रकार के आत्म रस की आवश्यकता अनुभव कर रहा है, हम अपना रस उसे पिलावेंगे, उसे सदा हरा भरा रक्खेंगे, युवक शक्ति को अपने प्रायापन से जागृत करेंगे, ऐसी उत्कट आकांक्षा आज हमारे हृदय में जागृत होनी चाहिए तभी हमारा कल्याण होगा। महात्मा हंसराज की जयन्ति मनानी तभी सफल हो सकती है।

—o—

वाले डी. ए. वी. स्कूल कालेज के लिए जीवन समर्पित करने वाले की परम आवश्यकता थी। तभी यह काम चल सकता था। किन्तु यह जीवन भेंट कौन करे? ऐसा करना क्या सरल था। हर वस्तु का जीवन को देना आसान होता है पर अपने को अर्पण कर देना बड़ा ही कठिन है। उस समय उस युवक ने अपनी आहुति देने का संकल्प ही नहीं किया अपितु इस धारणा को क्रियात्मिक रूप दे कर अपने जीवन का मेध कर दिया। ऐसे समय में सर्वमेध करने की गम्भीर घोषणा पर सारे समाज में जितना उल्लास हुआ उस को याद कर के कौन आत्मविभोर नहीं हो जाता। महात्मा हंसराज जी डी. ए. वी. स्कूल के मुख्याध्यापक बने, फिर डी. ए. वी. कालेज लाहौर के सर्वप्रथम प्रिंसिपल बने सारे भारत में यह शिक्षा सस्था पहली राष्ट्रिय संस्था थी जिस के द्वारा संस्थान संचालन का सफल सूत्रपात किया गया। आर्यसमाज के अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए के पवित्र नियम को क्रियात्मिक रूप मिल गया। इस का सर्वप्रथम श्रेय स्वर्गिय महात्मा हंसराज जी के त्याग और तप को है। शिक्षा की नौका इस दूरदर्शी नाविक द्वारा चल पड़ी। महात्मा हंसराज जी इतने विद्वान होते हुए तथा भारत के सब से पहले राष्ट्रिय दयानन्द कालेज जैसे महान संस्थान के प्रिंसिपल जैसे उच्चासन पर आसीन होने पर भी कितने सादा और सरल थे। वह उन के सारे जीवन के महान ग्रन्थ को देखने तथा पढ़ने से पूरा परिचय मिल जाता है। उन का वेश सब के सामने है। कितनी कमाल की सादगी उनके जीवन और पहरावे में थी। युवा अवस्था में मनुष्य क्या कुछ नहीं चाहता। इस आयु में तो सुन्दर २ वेशों को पहिरने के भिन्न २ प्रकार के चाव होते हैं। शरीर को बनाने सजाने के पथ पर चल देते हैं। आज के भारत का चित्र अभी सामने है। जब कि अंगरेज़ चला गया किंतु अवस्था क्या है? किंतु महात्मा हंसराज के युग में तो इंगलिश परिधान का चारों ओर ही बोल बाला था। सारे प्रवाह में बहते थे। परन्तु महात्मा जी के जीवन पर इस वातावरण का तनिक भी प्रभाव न हुआ। वही पगड़ी, पाजामा और बन्द गले का कोट उनका परिधान बना रहा। देश में नाना परिवतन हुए। कई हवाएं, धाराएं चलीं। लोगों के विचार बदले। पर इस तपस्वी के परिधान की सादगी में तनिक सा भी परिवर्तन न हुआ, निरन्तर उसी सादगी के पथ पर ही चलते रहे। कोई भी पथ से विचलित न कर सका। सचमुच सादगी की चेतन प्रतिमा थे। इस सादगी के सामने देशी विदेशी अपने बेगाने सारे मस्तक झुका देते थे।

हम उनका दिवस मनाने चले हैं। कुछ सीखें, जीवन में धारण करें। आज के विचित्र वातावरण में महात्मा जी की उच्च विचारधारा तथा वेश की सादगी का पाठ जीवन में पढ़ने की आवश्यकता है। यही सबसे बड़ी श्रद्धांजलि होगी।

'वैदिक धर्म की खातिर हंसराज हो गए बलिदान'

(कु: अरुण जी आर्या प्रभाकर, टोहाना)

मना रहे है जिनका जन्म दिवस हम आज.
वो थे पर—उपकारी महात्मा हंसराज
आर्य जाति सेवा ही था उनका मुख्य काज,
खादी वस्त्र, देशी जूती ही था उनका साज,
इन्होंने रखी देश और जाति की आन।
वैदिक धर्म की खातिर हसराज हो गए बलिदान ।।

शिक्षा की खातिर इन्होने दिया था जीवन दान,
प्रीत रीत के गीत का किया था उन्होंने गान,
देश भक्ति-रस सुधा का किया था उन्होने पान,
उनकी दृष्टि मे, थे धनी गरीब समान,
तजे जाति के लिए सभी अपने सुख अभिमान।
वैदिक धर्म की खातिर हसराज हो गए बलिदान ।।

अगणित विधर्मियो को था पथ दर्शाया,
सत्य धर्म का था उनको पाठ पढ़ाया,
भेद भाव का था अश बिल्कुल मिटाया,
विधवा दल के कष्टो का किया सफाया,
इसीलिए ससार मे है उन का तेज और मान।
वैदिक धर्म की खातिर हसराज हो गए बलिदान् ।।

'देश धर्म पर जो होते हैं कुर्बान,
गुणगान करता है उनका जहान।
जीवन बन जाता है उनका महान,
'अरुण' जो तजे धर्मपर अपने प्राण।।'

'महात्मा हंसराज को शतशः धन्यवाद"

(कु अरुण जी आर्या प्रभाकर, टोहान)



जिस प्रकार भवन का निर्माण करने के लिए, उस को दृढ़ और स्थायी बनाने के लिए अगाध और परिपक्व नींव तथा उस के लिए उचित सामग्री की आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी भी राष्ट्र एवं देश की प्रगति उस के महापुरुषों की जीवन आहुतियों से हुआ करती है। और उन से भी अधिक वे वीर पुरुष अपने देश को उन्नत और महा शक्तिशाली बनाते हैं जो धर्म क्षेत्र में अपना सर्वस्व अपितु अपने जीवन का ही बलिदान दे देते हैं। वास्तव में प्रत्येक देश की पृष्ठभूमि उस के वीर पुरुषों के बलिदानों से ही सुन्दर बना करती है। और किसी भी धर्म एवं संस्था की सफलता का अनुमान ही इस बात से लगाया जाता है कि उस के धर्म के अनुयायियों ने किस स्तर तक त्याग, सेवा और कुरबानी का परिचय दिया है। जिस देश तथा जाति के वीर पुरुषों ने स्वयम् को खून देने वाला मजनू नहीं बनाया, वह जाति कभी भी उन्नत नहीं हुआ करती। दूध पीने वाले मंजनू तो सदा देश के लिए हानिकारक सिद्ध होते हैं।

यदि स्वामी दयानंद धर्म के लिए अपने जीवन को समर्पण न करते तो आज देश में आर्य समाज की आवाज को कौन सुनता। उन की मृत्यु के पश्चात् आर्यसमाज रूपी दीपक को पं. गुरुदत्त, पं. लेखराम, शेरे पंजाब लाला लाजपतराय और महात्मा हंसराज जी ने अपने जीवन रक्त रूपी तेल से उसे जगमगाते रखा।

महात्मा हंसराज जी का जन्म १६ अप्रैल १८६४ ई. को हुआ। इन का जीवन प्रारम्भ से मृत्यु पर्यन्त त्याग, तपस्या और कठोर साधना में व्यतीत हुआ। परम श्रद्धेय महात्मा हंसराज जी ने सुख सम्पदा, धन दौलत, भोग ऐश्वर्य और सुख समृद्धि को सर्वथा त्याग कर स्वयं निर्धनता को निमन्त्रण दिया तथा अपना समस्त जीवन, जिस को बड़े आनंद पूर्वक बिताया जा सकता था, आर्य समाज रुपी यज्ञ मे भेंट कर दिया। यज्ञ में डाली जाने वाली आहुति सदा सुगन्धयुक्त, पुष्टिकारक, रोग-नाशक एवं मृदु होती है। सचमुच महात्मा हंसराज की जीवन आहुति में ये चारों गुण विद्यमान थे।

महात्मा हंसराज की आर्थिक स्थिति अति शोचनीय थी लेकिन फिर भी उन्हों ने अपने जीवन दान का संकल्प कर लिया। आपके भाई मुलखराज जी ने आपके परिवार के निर्वाह के लिए ४० रु. मासिक देना स्वीकार कर लिया। उन जैसी स्थिति वालों की इतने में निर्वाह होना कठिन था। स्वास्थकर भोजन प्राप्त न होने से उन का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इन्हों ने दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज में अवैतनिक मुख्याध्यापक के रूप में रहना स्वीकार किया। इन के अनथक परिश्रम के फलस्वरूप यह कालिज दिन दुगुणी रात चौगुणी उन्नति करने लगा जिस का स्वर्णिम परिणाम आज

आर्य युवक समाज डी. ए. वी. कालेज जालन्धर
धर्मशिक्षा की परीक्षा

लेखक :—श्री देवीदयाल जी संगठन मन्त्री युवक समाज



आर्य युवक समाज दयानंद कालेज जालन्धर, प्रो० वेदीराम जी एम० ए० के नेतृत्व में बड़ा ही सराहनीय कार्य कर रहा है। गत वर्ष की गतिविधियों द्वारा विद्यार्थियों में नव चेतना आई है। कालेज में विद्यार्थियों के मध्य आर्य समाज के सिद्धान्तों पर खूब चर्चा होती रहती है। इस धर्म चर्चा का प्रभाव यह हुआ है कि पहिले जो आर्य समाजी बच्चे कोरे वैज्ञानिक वातावरण में दब से गए थे, पूर्ण ओज और तेज लेकर खड़े हो गए हैं। आज खुल कर मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध ईश्वर निराकार साकार आदि विषयों पर वर्तालाप होता है। दैनिक व साप्ताहिक सत्संगों में सारा वर्ष महर्षि दयानन्द जी के जीवन चरित्र की कथा होती रही। इससे छात्रों में दयानन्द के प्रति अटूट श्रद्धा उत्पन्न हुई है।

उपर्युक्त वातावरण में छात्रों को और अधिक लाभ पहुंचाने के हेतु युवक समाज के अध्यक्ष, व प्रादेशिक युवक संगठन के संयोजक प्रो० वेदीराम जी ने वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के प्रचार व प्रसार हेतु एक परीक्षा का भी आयोजन किया। विद्यार्थियों को एक महीने तक निम्न चार पुस्तकों पर लगातार व्याख्यान दिए गए।

हमारे सम्मुख है। इस पाठशाला को शुरू करते समय कमेटी के पास केवल २४००० रु. था पर हंसराज जी के परिश्रम से यह राशि १०५६०० रु. हो गई। जब स्कूल के लिए बड़े भवन की आवश्यकता हुई तो आप ने पचास हजार रुपया एकत्रित कर भवन भी बनवा दिया।

इन्हों ने अछूतोद्धार, विधवा विवाह और शुद्धि कार्य में बड़ा सहयोग दिया। जहां पर अकाल पड़ा वहीं स्वयं पहुंचे और हजारों प्राणी बचाए।

इन के हृदय में वैदिक धर्म के लिए प्यार का समुद्र ठाठें मारता था। आप ने देश और जाति की भलाई के लिये जो पौधे लगाए उन में दो प्रमुख हैं। दयानंद कालिज और उस से सम्बन्धित संस्थायें तथा आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा। इन्हों ने वेद प्रचार के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना की। इन के ही प्रयत्न से लगभग २५० आर्य समाजों की स्थापना हुई।

१६ अप्रैल को महात्मा हंसराज जी का जन्म दिवस है। इस दिन स्थान स्थान पर महात्मा जी के जन्मोत्सव मनाए जाएंगे पर उत्सव मनाने में ही हमारा कर्त्तव्य पूरा नहीं हो पाता। हमारा सब का कर्त्तव्य है कि हम उन के अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करें और उन के कार्यों को स्मरण करते हुए उन के गुणों को अपने जीवन में धारण करें।

महात्मा हंसराज जी का त्याग

(प्रिंसिपल श्री भगवान दास जी, दयानन्द कालेज, सोलापुर)



आज का नवयुवक ऋषि दयानन्द के समय की स्थिति को क्या जाने ? भारतीय स्वतंत्रता संग्राम घर की फूट के कारण असफल हो चुका था वीर मराठे, दृढ़ संकल्प राजपूत और धर्म निष्ठ सिख दासता की शृंखलाओं को तोड़ने का प्रयत्न करते करते थक गये थे हमारा १८५७ का स्वतंत्र होने का अपूर्व प्रयत्न भी रानी झांसी की वीरता की गाथा बन कर रह गया था तथा अनेकों बलिदाताओं की बलि भी रंग न ला सकी थी। भारतीय जनता विदेशी शासन के नीचे और भी दली जाने लगी। कई प्रकार के प्रहार हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा मान प्रतिष्ठा पर होने लगे। हमारे इतिहास को गंदा किया गया तथा हमें अपनी ही मातृभूमि में विदेशी बनाने के ढंग सोचे जाने लगे। सब से बड़ा षड़यन्त्र रचा गया शिक्षा क्षेत्र में सारा शिक्षा का कार्य विदेशियों ने अपने हाथ में ले लिया तथा ईसाई सरकारी कालिजों स्कूलों में धड़ाधड़ ईसाई बनाये जाने लगे। पादरियों ने धन तथा सरकारी नौकरियों का लालच दे दे कर सब ओर से भारत देश को ईसाई देश बनाने के कुकृत्य आरम्भ कर दिये। देशस्थ संस्कृति सभ्यता तथा वेष-भूषा का खुले बन्दों मखौल होने लगा



१. Dayanand His life & warks

२. सत्यार्थ प्रकाश

३. आर्योद्देश्य रत्न माला

४. गोकरुणानिधि

इन व्याख्यानों को सुन कर लगभग ३०० छात्रों ने परीक्षा के लिए नाम दिए। इन पुस्तकों के १५० सेट विद्यार्थियों के मध्य मुफ्त बांटे गए। इन पुस्तकों को पढ़ने की विद्यार्थियों में इतनी होड़ लगी। कि उन्होंने शेष पुस्तकें स्वयं खरीदीं और परीक्षा की तैयारी प्रारम्भ कर दी। कई विद्यार्थी ऐसे भी थे कि जिन्हें हिन्दी नहीं आती थी, उन्होंने अंग्रेजी में इन पुस्तकों को समझा, उनके Notes तैयार किए। और परीक्षा की तैयारी में लग गए।

रविवार ४ मार्च १९६२ ई० को परीक्षा तिथि घोषित की गई। बिजली कड़क रही थी, मूसलाधार वर्षा हो रही थी, किन्तु फिर भी जालन्धर के विभिन्न क्षेत्रों से वर्षा में भीगते हुए ६७ विद्यार्थी परीक्षा देने के लिए आए। विद्यार्थी सफल हुए तथा निम्न तीन विद्यार्थी क्रमशः प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थान पर रहे।

१. अमृत स्वरूप गुप्त प्री० यूनिवर्सिटी

२. वीरभान चन्द विल्याण --Do--

३. अमर चन्द तृतीय वर्ष।

गोकरुणा निधि पुस्तक पढ़ कर कई छात्रों ने मांस न खाने का व्रत लिया। आशा है अन्य युवक समाजें भी ऐसा ही आदर्श उपस्थित करेंगी।

उस समय की सरकार ने शासन को पक्का करने के लिए धार्मिक स्वतन्त्रता के नाम पर ईसाईयों को विशेष सुभीतायें तथा सहायता देकर सारे देश में ईसायत का बोलबाला कर दिया। ऐसी अवस्था में नवयुवकों को पश्चिम की चकाचौंध तथा देश अहित कार्यों से बचाने के लिए दयानन्द संस्थाओं का श्रीगणेश लाहौर में हुआ। बहुत कठिन समय था ईसाईयों का विरोध, सरकार की धमकियां, भयभीत जनता, पैसे की कमी, कार्यकर्त्ताओं की न्यूनता यह सब बातें होते हुए भी आर्य नेताओं ने एक गम्भीर पग उठा ही लिया ऐसे समय में जब बी० ए० तो क्या दसवीं पास भी सरकार की उच्चकोटि की पदवियों पर पहुंच जाते थे उस समय नवयुवक हंसराज ने देश के भले को आगे रखकर अपने सब आराम को छोड़ कर अपनी अवैतनिक सेवायें दयानन्द कालेज प्रबन्ध कर्तृ सभा को अर्पण कर दीं। यह बहुत बड़ा त्याग तथा इसी महान आहुति से यज्ञ सफल हुआ जिस की शुद्ध सुगंधी आज संसार में फैल चुकी है। जो बीज छोटा था उसको आरम्भ में ही त्याग के शीतल जल से सींचा गया तथा वह आज महान वृक्ष बन गया है। जो नींव पूज्य महात्मा हंसराज के निस्स्वार्थ तपश्चर्या की चट्टान पर रखी गई वह आज विशाल संस्थाओं में बदल गई। कौन कह सकता है कि हम कहां होते अगर महात्मा हंसराज का यह महान त्याग न होता।

त्याग के कई अर्थ लिये जाते हैं तथा भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न प्रकार के त्याग करते देखा तथा सुना। सामाजिक जीवन में तो किसी एक पग पर ही त्याग किया जावे तो वही समाज को ऊंचा उठा देता है। फिर पूज्य महात्मा जी का त्याग तो सर्वमुखी त्याग था। उसका फल तो राष्ट्र तथा जाति को मिलना ही था। मन वाणी कर्म से उन्होंने त्याग किया तथा सारी आयु क्रियात्मक रूप से यह संकल्प निभाया। जब वह सत्तारूढ़ थे संसार झुकता था तब स्वयं कहा कि अब दूसरे कार्य करें। यह त्याग उस त्याग से भी अपूर्व था जो उन्होंने आरम्भ में किया था। इससे सोसायटी और भी शक्तिशाली हो गई। अगर वह स्वयं प्रिंसिपल पद को न छोड़ते तो कोई उनको कहने वाला न था। पर उन्होंने अपने ही कार्य कर्त्ताओं के हाथ में संस्थाएं दीं तथा स्वयं देश-हित के दूसरे कार्यों में लग गये।

यही नहीं उनकी त्याग भावना इतनी बलशाली हो गई कि घर में रहते हुये वह घर वालों के लिये वैरागी हो गये तथा उनके जीवन का एक एक क्षण जन समूह के भले के लिये लगा। वेतन लेना तो एक ओर वह तो लोगों के प्रेम तथा आदर वश दिये गए निजी उपहार भी कालेज कमेटी को दे देते थे। यह मानी हुई बात है कि नवयुवक शमा के परवाने बनते हैं। अगर नेता में स्वयं त्याग भाव न हो तो नवयुवक दूर भाग जाते हैं। पर पंजाब के उच्च कोटि के अनेकों नवयुवक महात्मा जी के केवल संकेत मात्र से उनके पास आ गए तथा अपना जीवन संस्थाओं तथा आर्य समाज की सेवा में लगा दिया। स्वयं कार्यकुशल होना एक बात है पर ऋषि के मिशन को आगे बढ़ाने के लिये सुन्दर कार्यकर्ता पैदा करना तो पूज्य महात्म हंसराज जैसे वीतराग त्यागी से ही बन पड़ता है।

महात्मा हंसराज जी की गम्भीरता

(ले० श्री आचार्य नर देव जी शास्त्री वेदतीर्थ कुलपति गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर)



पूज्य आचार्य नर देव जी शास्त्री वेदतीर्थ आर्य जगत के प्रख्यात शिरोमणि विद्वान हैं। दिव्य विभूति हैं। वेद शास्त्रों एवं व्याकरण के चमकते सूर्य हैं। सरलता की मनोरम मूर्ति हैं। आदर्श गुरुकुल महाविद्यालय ज्वाला पुर के मान्य कुलपति हैं। विचारों, विद्या, शास्त्रों तथा वैदिक सिद्धान्तों की उच्चता के साथ २ जीवन और वेश कितना सादा, स्वभाव कितना सरल है—यह देख कर मस्तक झुक जाता है। स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी के जीवन का कुछ सन्देश लेने मैं उन की सेवा में पहुंचा—कितना सुन्दर सन्देश दिया—सं.

जब स्वर्गीय पं. लेखराम जी आर्य मुसाफिर की हत्या हुई तब मैं लाहौर में ही था। इन की अर्थी का जलूस जब श्मशान पर पहुंचा तब दोनों



पूज्य महात्मा जी के आदर्श जीवन के कारण उनकी वाणी में बहुत बल था। उनके बैठे संस्था को कभी धन की न्यूनता नहीं आई। देश सेवा के जिस किसी कार्य के लिये उन्होंने अपील की धन उनके चरणों में आ पड़ा। देश वासियों को उनपर बहुत विश्वास था।

जितना त्याग उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में किया तथा जितना सामाजिक जीवन में किया उसे भी बढ़कर उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में किया। स्वदेशी प्रचार, तथा देश प्रेम की भावना जो उन्होंने ऋषि दयानन्द से ली उसके कारण वह देश के राष्ट्रीय जीवन में एक बहुत ऊंचा स्थान रखते थे तथा अंग्रेज शासक उनसे भयभीत भी थे। इस कार्य क्षेत्र में त्याग तथा स्वाभिमान का नमूना इस बात से पता लगता था कि उन्होंने संस्थायें चलाने में कभी एक पैसा विदेशी सरकार से नहीं लिया। अंग्रेजी शासकों ने बहुत बल दिया पर वह न झुके। जब उस समय के शासन ने दयानन्द संस्थाओं से निकले नवयुवकों पर संदेह करना आरम्भ कर दिया तो पूज्य महात्मा जी ने बैंक, बीमा कम्पनियां, इंडस्ट्री तथा टेक्नीकल स्कूल खोल कर स्वदेश के हजारों नव युवकों की आजीविका के साधन पैदा कर दिये तथा राष्ट्रीय स्वावलम्बन की लहर चल पड़ी। इस बात में उनका नेतृत्व बहुत सुन्दर था। दयानन्द संस्थाओं तथा आर्य गुरुकुलों से निकले हुए नवयुवकों ने कभी भी अंग्रेजों के सामने नौकरी के लिये अपने स्वत्व को छोड़कर गिड़गिड़ाहट नहीं की तथा वह सदैव देश सेवा में अग्रसर रहे।

महात्मा हंसराज देश के महान नेता थे। जो कार्य सैंकड़ों मिलकर न कर सकते थे वह उन्होंने अपने महान त्याग से कर दिया। आने वाली संतानें शताब्दियों तक उनकी आभारी रहेंगी।

पार्टियों के सारे नेता एकत्रित थे। यह जलूस डेढ़ मील लम्बा था। चिता को अग्नि देने के पूर्व दोनों दलों के नेताओं के भाषण हुए। उन में महात्मा मुंशी राम जी ने यह कहा कि—यदि इस घटना के पश्चात् भी दोनों पार्टियां एक नहीं होतीं और मिल कर काम नहीं करतीं तो मैं अलग हो जाऊंगा। इस पर सहस्रों श्मशान यात्रियों में बड़ी खलबली मच गई। चौधरी राम भजदत्त जी ने कहा कि-इस घटना के बाद यदि हम न समझे और एकत्रित न हुए तो पृथक दल बना कर काम करने में कोई लाभ नहीं।

इसी प्रकार एक २ कर के नेता सामने आते गये और आवेश युक्त भाषण करते गये। सब से पीछे महात्मा हंसराज जी की बारी आई। आप जानते थे कि महात्मा मुंशी राम जी ने जो कुछ कहा वह आवेश में कहा है। यदि दोनों पार्टियां मिल भी गई' तो देर तक नहीं चलेंगी। इस लिए उन्हों ने केवल इस बलिदान की महत्ता को समझ कर भविष्य में अधिक सावधानता से कार्य करते रहने की बात कही। चिता को आग दे दी गई। शरीर के भस्म होने के पश्चात सहस्रों लोग दुःखित हृदय से अपने २ स्थानों को चले गये।

फिर रविवार आया

उस दिन वच्छोवाली समाज में दोनों दलों का सम्मिलित अधिवेशन हुआ। वच्छोवाली समाज कोई बड़ा नहीं था, तो भी इतनी अधिक भीड़ हो गई कि मुख्य द्वार बन्द करना पड़ा। फिर भी लोग खिड़कियों के रास्ते चढ़ कर आते रहे। मैं छोटा सा था १३ वर्ष का ऐसा बीच में फंस गया कि निकलने को कोई मार्ग न था, प्रतिनिधि सभा का कार्यालय उसी समाज में ऊपर था, उस में आ कर बैठ गया और सब कारवाई देखता रहा। मुझे उस समय हिन्दी भाषा अच्छी तरह नहीं आती थी तथापि मैं भिन्न २ वक्ताओं के अभिप्राय को समझ गया।

मास्टर सुन्दर सिंह बी. ए.

उन्हों ने 'गर राम फिर यहां पर तशरीफ लावें' यह कविता उच्च स्वर से सुनाई।

मास्टर देवीदयाल बी. ए.

ने बलिदान के महत्व को समझ कर फिर एक होने का उपदेश दिया।

मास्टर आत्मा राम अमृतसरी

ने कहा कि हम अब तक आपस में तीर चलाना सीख रहे थे। पर आज के दिन से हम दोनों इन तीरों को आर्य समाज के शत्रुओं पर चलाया करेंगे।

चौधरी रामभजदत्त जी

ने कहा कि इस दुर्घटना के पश्चात यदि हम को अकल ना आई और हम ने मिल कर काम नहीं किया तो लज्जा की बात होगी।

लाला लाजपत राय जी

जब खड़े हुए तब सन्नाटा छागया। उन का आवेश पूर्ण भाषण सुनने योग्य था। उन्हों ने बलिदान का महत्व समझाते हुए कहा कि संसार में कौमें और जातियां बलिदान से ही ऊपर आती हैं। यह बलिदान हमारी आंखें खोलता है। हमें बल देता और मिल कर उठने की स्फूर्ति देता है।

ऐसे बहुत से

छोटे मोटे वक्ता खड़े हुए और सब का एक ही स्वर रहा कि इस बलिदान से लाभ उठाना चाहिए

अपनी कमजोरियों को दूर करना चाहिए। झगड़ा समाप्त हो।

सब से पीछे

महात्मा हंसराज जी की बारी आई और उन का शान्त गम्भीर प्रवचन जैसा भाषण हुआ। आप ने कोई आधे घण्टे तक अग्ने नय सुपथा—और अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि—इन मन्त्रों की व्याख्या की। सब को प्रेरणा की कि आज से हम व्रत लेवें कि आर्य समाज की रक्षा के लिए तन मन धन प्राणपण से तयार रहेंगे।

इस के पश्चात्

आरती हो कर यह अधिवेशन समाप्त हुआ। लोग घरों को चले गये।

दूसरा रविवार आया

उस में बहुत भीड़ रही क्योंकि लोग यह जानने के लिए उत्सुक थे कि क्या २ हुआ और कैसे २ मेल हुआ।

सुनाया गाया

कि महात्मा हंसराज जी प्रधान हुए और आर्य विद्यार्थी आश्रम लाहौर के सुपरिंटेण्डेंट मास्टर तोता राम जी मन्त्री बनाये गये।

यह मेल

खाली लाहौर की समाजों का हुआ और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व. डी. ए. वी. कालेज मैनेजिंग सोसायटी अलग २ चलती रहीं। केवल लाहौर में नहीं अपितु पंजाब भर में एक आश्चर्य सा रहा कि आज तक जो घटना नहीं हुई किसी धर्म में नहीं हुई वह आर्य समाज में हो गई अर्थात् इतने वर्षों तक पार्टियां अलग २ रह कर एक हो गईं।

यह मेल

केवल एक वर्ष तक टिकसका। स्थिर न रह सका। कारण कुछ भी हो। मुख्य कारण तो लोगों का असन्तोष, दोनों दलों के कार्य कर्ताओं का असन्तोष कि चुनाव ठीक नहीं हुआ।

बात भीतर पकती रही

अन्त में फिर दो हो गये + और पृथक् २ समाजें लगने लगीं। इस दशा में भी महात्मा हंसराज जी इतने अधिक गम्भीर रहे कि एक शब्द भी इस विषय में नहीं कहा। इस से मैं इस निश्चय पर पहुंचा कि उस समय के आर्य समाज के नेताओं में इतना दूर दर्शी व गम्भीर नेता कोई नहीं था।

हमारे पिता जी

राव साहब श्री निवास राव जी महात्मा मुंशी राम जी के भक्त थे। इस लिए हम को वच्छोवाली समाज के साथ ही रहना व बहना पड़ा। वैसे हम आर्य विद्यार्थी आश्रम में रहते थे और पहिले मास्टर दुर्गाप्रसाद जी दयानन्द हाईस्कूल में पढ़ते थे। फिर हम सरदार दयाल सिंह के यूनियन एकेडमी में पढ़ने लगे।

जब मैं ने मट्रिक पास किया

तब लोगों ने प्रेरणा की कि ऊंची शिक्षा के लिए डी. ए. वी. कालेज में प्रविष्ट हो जाऊं। मैं महात्मा से मिला भी। अपने हैड मास्टर जी रजनी कान्त मुकर्जी एम. ए. का सिफारिशी पत्र भी साथ लाया। उस समय महात्मा जी ने यही जवाब दिया कि सोचेंगे। दैवी घटना यह हुई कि मैं डी. ए. वी. कालेज में प्रविष्ट न हो सका। यूइंग मिशन कालेज में दाखिल होने चला गया। अन्त

स्वर्गीय महात्मा हंस राज जी का जीवन चरित्र एक दृष्टि में

(ले. श्री किशन चन्द्र जी रल्हन J/35 नई दहली-3)



१८६४-(१६ अप्रैल) बिजवाड़ा जिला होशियार पुर (पंजाब) में ला. चूनी लाल जी के गृह में जन्म हुआ।

१८८२-'दी जैनरेटर आफ आर्यवर्त' अंग्रेजी साप्ताहिक पत्र। प्रकाशित किया।

१८८५-(नवम्बर) बी. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और अपना जीवन आर्य समाज और डी. ए. वी कालिज केमटी के अर्पण कर दिया।

१८८६-(१ जून) को डी. ए. वी. कालिज को लाहौर में स्थापना हुई और महात्मा जी उस के अवैतनिक प्रिंसिपल नियुक्त हुए।

१८६२-आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना की।

१८६५ 'आर्य गजट' उर्दू साप्ताहिक पत्र का श्री ला० लाजपत राय जी पंजाब केसरी के साथ सम्पादन आरम्भ किया।

१९११ डी. ए. वी. कालिज के प्रिंसिपल के पद को त्याग दिया और प्रादेशिक सभा के काम में तन मन से लग गये।

१९१३ दयानन्द कालिज कमेटी के श्री प्रधान बनाए गए।

१९१४ ज्येष्ठ पुत्र श्री बलराज जी को लार्ड हार्डिंग केस में सात साल का दण्ड मिला और महात्मा जी की धर्म पत्नी का देहांत हो गया।

१९१८ पंजाब शिक्षा कांफ्रैंस के प्रधान चुने गए।

१९१६ नेशनल सोशियल कांफ्रैंस के प्रधान चुने गये।

१९२२ हिन्दु संगठन की योजना तैयार की और मलकानों की शुद्धि आरम्भ की।

१९२४ अखिल भारतीय शुद्धि सभा के प्रधान चुने गए।

१९२८ महिला महाविद्यालय लाहौर स्थापित किया।

१९३७ प्रादेशक सभा के प्रधान पद से पृथक हो गए।

१९३८ (१५ नवम्बर) केवल २० दिन बीमार रह कर ओ३म् का जप करते २ रात्रि के ११ बज कर ५ मिनट पर स्वर्गवास हो गया।

सारी आयु महात्मा जी ने एक सादा, तपस्वी जीवन यापन करते हुए सब क्षेत्रों में और कौमी भी लिये हिन्दु जनता के दुःखों को निवारण करने

में मैं वहां भी न टिक सका। यद्यपि प्रिंसिपल ने यह कहा था कि मेरे सब व्यय का प्रबंध वह कर देंगे। मैं ने सन १८६८ में लाहौर छोड़ा। उस के पश्चात जब मैं यू. भी. में आया और गुरु कुल महाविद्यालय ज्वालापुर में काम करने लगा तभी महात्मा जी के दर्शन हुए। वह महा विद्यालय के जल्से में आया करते थे। गरमियों की छुट्टियों में दो मास हरिद्वार मोहन आश्रम में रहते थे। तब मैं उन से अवश्य मिला करता, उन की गम्भीरता सदा ही हमारों पर प्रभाव डालती थी।

दीन बन्धु महात्मा हंस राज जी

(ले० श्री मिसखीराम जी वैद्य लसाड़ा जालन्धर)



सन १६२५ में जब मैंने दशवीं श्रेणी पास की तब मेरी इतनी दीन अवस्था थी जितनी कि एक भंवर में फंसे हुये पुरुष की हो सकती है जिस को अपना सहायक कोई न दीखता हो। मैं अकेला लाहौर आ गया और श्री रत्न चंद के तालाब के मन्दिर के पुजारी के पास रहने लगा। नित्य दरवाजों पर नोटस देखते रहना कि कहीं कोई Vacancy हो यही मेरा काम था। उस समय आज की तरह इस Emp'eyment exchange नहीं था और न आज कल की तरह इस दफ्तर के अफसर ग्राम २ जा कर लोगों को बतलाते थे कि मैट्रिक पास करने के बाद यह २ मार्ग हैं जैसे 1. Direct employment. 2. University educate 3. Trade.

एक दिन आर्य स्वराज्य सभा में एक आदमी

का भरसक प्रयत्न किया।

आपने यतीमों और विधवाओं की पुकार सुनते हुए भरसक उनकी सहायता की।

महात्मा जी शान्ति के देवता थे। आप की प्रतिमा तेज की ओजस्वी मूर्ति थी।

यदि महात्मा जी ऋषिवर दयानन्द की पुकार को सुन कर इस कार्य क्षेत्र में न उतरते तो आज हिन्दु जाति सारी की सारी ईसाईयों वा मुसलमानों के पंजे में होती। चोटी और यज्ञोपवीत का निशान न मिलता।

का स्थान रिक्त हुआ मुझे पता लगा तो मैं श्री अजीत सिंह जी सत्या थीं जो उस सभा के मंत्री थे मिला उन्होंने मुझे काम पर लगा लिया परन्तु थोड़े महीनों बाद मुझे उस काम से जवाब मिल गया। श्री राम गोपल जी शास्त्री इस सभा के प्रधान ने मुझे सुझाव दिया कि मैं आयुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करूं। मेरे मन में भी इच्छा यही थी मैं श्री सुरन्द्र मोहन जी आचार्य दयानंद आयुर्वेदिक कालिज से मिला और प्रार्थना की मुझे आयुर्वेद पढने के वास्ते सहायता की जावें। उन्होंने फरमाया कि इस कालिज में आप का प्रबन्ध नहीं हो सकता, हां आप पिलीभीत या ऋषिकेश जा कर पढ सकते हैं मैं स्वराज्य सभा परि महल के दफ्तर में उदास हो कर बैठा था कि एक सज्जन जो अभी २ मन्सूर अली से शुद्ध हो कर म. बेधड़क बने थे मेरे पास आये और पूछने लगे कि उदासी का क्या कारण है। मैं ने अपनी व्यथा बतलाते हुये बतलाया कि मैं आयुर्वेद पढ़ने के वास्ते ऋषि केश जाना चाहता हूं। परन्तु उस ने बतलाया कि एक पैसे में ऋषिकेश पहुंचा सकता हूं। मेरे पूछने पर उस ने मुझ से एक पैसा लिया और गेरु ले आया। मेरे वस्त्र गेरु से रंग दिये और मुझे हरद्वार वाली गाड़ी में बैठा आया। मैं चुप-चाप गाड़ी में बैठ गया कुछ शर्म सी आ रही थी एक टीटी ने गालियां भी दीं और एक ने कहा बाबा जरा आगे हो कर बैठ जाओ। अस्तु मैं राय वाला स्टेशन पर पहुंचा। विधालय के

आचार्य श्री दया नंद जी से मिला। उन्हों ने कुछ दिन बाद बतलाया कि आप को अपनी पुस्तकें आप खरीदनी होंगी और 10/- जमानत भी देनी होगी बाकी भोजन यहां से मिलता रहेगा और आप पढ़ते रहें। मेरे वास्ते उस समय यह भी समस्या थी पुस्तकों और 10/- के वास्ते मैं हरद्वार आ कर मोहनअश्रम में ठहरा। उस समय मुझे महात्मा जी से परिचय नहीं था केवल यह आर्य समाज का आश्रम सुन रखा था इस वास्ते मैं वहां चला गया तीन चार दिन माली की कृपा से अमरूद और गंगाजल पर निर्वाह किया। मन में इस जीवन से घृणा हुई। राय साहब हलिया राम जी जो उस वक्त स्टेशन मास्टर थे उन की कृपा से लाहौर पहुंचा डा. मुलख राज जी मेरे Class fellow थे से किराया ले कर घर पहुंचा।

मेरी स्थिति देख कर मुझ पर लाला मक्खन लाल जी को जो डा. सुन्दर लाल जी के भाई थे दया आई और मुझे कराची ले गये और वहां loco workshop में काम सीखने के वास्ते लगा या परन्तु भग्य में कुछ और था जिस दिन मैं काम पर गया उसी दिन ज्वर हो गया और सात दिन एक ही ज्वर के कारण मैं बहुत कमजोर हो गया और मन बहुत बेचैन हो गया

उस बेचैनी की हालत में मैं ने श्री दीन बन्धु महात्मा जी से पत्र द्वारा प्रार्थना कि मुझे लाहौर में अपने पास कहीं स्थान दें और मुझे अपने चरणों में रखें। मैं ने लिखा कि मैं पहले दर्जे में पास हूं परन्तु अभी तक बेकार हूं। महात्मा जी का थोड़ी देर में ही उत्तर मुझे मिल गया अपने स्वभाव के अनुसार उन्हों ने मुझ पर दया की और मुझे आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा में रखलिया।

एक दो मास मैं देखता रहा कि महात्मा जी तो कल्प वृक्ष हैं हर एक की मुराद पूरी करते हैं कोई आता है मैं Industrial स्कूल में बच्चा दाखल करवाना है महात्मा जी लिख देते थे वह हो जाता था कोई कालिज की फीस के बारे में आता कोई आयुर्वेदिक कालिज में दाखल होने के वास्ते आता। गरजे कि हर एक की मुराद पूरी होती और मैं पास बैठा सुनता और देखता।

एक दिन महात्मा जी और मैं सभा के दफ्तर में अकेले थे और महात्मा जी कोई पत्र लिखवा रहे थे और मैं पत्र लिख रहा था अचानक मन में महात्मा जी से अपनी स्थिति निवेदन करने का उत्साह हुआ और मैं ने पत्र लिखना समाप्त करते ही महात्मा जी से प्रार्थना कर दी कि मैं भी आयुर्वेद पढ़ना चाहता हूं। दीन बन्धु जिन का स्वभाव ही दीनों की सहायता करना हो चुका था पूछने लगे कि क्या रुकावट है। मैं ने निवेदन किया कि खर्च नहीं है। महात्मा जी ने उसी वक्त मुझे आज्ञा दी कि आओ प्रवेश फार्म लाओ, और कि खर्च का प्रबन्ध हो जावेगा।

दूसरे दिन ही मैं दाखल हो गया,। अब दो घण्टा महात्मा जी के घर टिबाबावा फरीद जाया करता और उन को श्री मद्भागवद्गीता योग दर्शन यजुर्वेद आदि भिन्न २ ग्रंथों को पढ़ कर सनाया करता था नित्य नियम पूर्वक स्वाध्याय होता और उस का मुझ पर नित्य प्रभाव पड़ने लगा। तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणि धानानि क्रिया योगाः इस सूत्र का मन महात्मा जी बहुत ही करते थे। महात्मा जी योग दर्शन के सूत्र कण्टस्थ करते और मुझे भी कण्ठस्थ

करने को कहते थे। एक दूसरे की सुनाते ऐसे मुकाबला होता और मैं ही इस में निष्फल होता वे झट काफी सूत्र स्मरण कर लेते और मुझ से उतने न होते।

महात्मा जी नित्य संध्या करते और बाद में यह भजन उनको बहुत प्यारा था और मुझे अभी तक याद है गाते। भजन निम्न है—

हे जगत स्वामी भेंट धरूं क्या मैं तेरी
माल नहीं मेरे सम्पत नहीं जिसको कहूं मैं मेरी
इस जग में हम ऐसे विचरें योगी करे ज्यों फेरी
यह तन यह मन होवे न अपना है सब माल तुम्हारा
जब चाहो तब ही तुम लेवो नहीं कछु जोर हमारा
धन जन यौवन अपना माने मूर्ख भूला भारी
तुझ बिन और सहायी न कोई देख लिया विचारी
तेरे ही दर का भिखारी मैं स्वामी लाज तुम्हें है मेरी
चरण शरण निज अर्पण करके भक्ति देवो बिन देर

कालिज में पढ़ते हुए नित्य महात्मा जी के दर्शनों तथा स्वाध्याय का लाभ तो मुझे होता ही था, हर साल हरिद्वार जाने का पुण्य भी मुझे प्राप्त होता रहा। हर साल छुट्टियों में उनके साथ हरिद्वार आता वहां पत्र व्यवहार का कार्य अच्छे ग्रन्थ पढ़कर सुनाना नित्य का कार्य रहता। उनके साथ वायु सेवनार्थ बाहर जाना और चलते २ सत्संग की बातें भी नित्य होती थीं।

कविराज पास करने के बाद उन्होंने मुझे मालाबार Relief के काम पर भेज दिया। वहां श्री स्वामी जटाधा नंद जी तथा मि० चमन लाल जी पहले ही पहुंचे हुये थे। वहां मैं ने १४ मास कार्य किया और बाद में महात्मा जी की आज्ञा का उल्लंघन करके मैंने वापस आने का अनुरोध किया जिससे महात्मा जी कुछ नाराज भी हो गये मगर मुझपर उनकी दयादृष्टि थी कुछ समय बाद मुझे उसी मोहनाश्रम हरिद्वार का जिस में पहले निस्सहाय चार रातें काट चुका था अध्यक्ष नियुक्त किया वहां मैं तीन चार वर्ष रहा हर गर्मियों में एक-दो मास महात्मा जी के दर्शनों का लाभ होता रविवार आश्रम की यज्ञ शाला में हवन यज्ञ और संध्या के अलावा सत्संग होता। महात्मा जी के उपनिषद् पर व्याख्यान होते, वहां से भी मुझे अलग होना पड़ा और मुझे उसी वेतन पर लाहौर लालपतराय सेवा संघ में लगा लिया गया। मुझे वह कार्य ठीक न लगा और मैं अपने घर बारामंगा चला गया और अपना वैदिक कार्य आरम्भ कर दिया।

कुछ समय बाद लाला हरिराम जी बर्ड के हक से पीड़ित लोगों की अवस्था देखने बारामंगा आये और उनसे मैंने पुनः महात्मा जी से किसी औषधालय में लगाने की प्रार्थना की तो उन्होंने झट मुझे बुलाया और लसाड़ा जि० जालन्धर में आयुर्वेद औषधालय खोलने के वास्ते कहा।

महात्मा जी की मुझ पर बहुत कृपा रही है और सब से अधिक उपदेश जो उन्होंने मुझे तब दिया अब उन्होंने श्री दीवान राधा कृष्ण जी को दिया वह है Be fair to your self and be all. उनके गुणों का कहां तक वर्णन करूं। वे मुझ दीन, हीन और निस्सहाय के बन्धु थे जब कभी कोई दुःख होता उनसे निस्संकोच निवेदन कर देता था और उस दुःख से निवृत्ति पाता था। अब जब कोई दुःख होता है उनके न होने को अनुभव करता हूं और दो आंसू बहाकर चुप रह जाता हूं।

आर्य प्रादेशक उपसभा नई देहली

का साधारण अधिवेशन २५-३-६२ को आर्य ३-३० पर आर्यसमाज अनारकली रीडिंग रोड में १२५ प्रतिनिधियोंकी उपस्थिति में बड़ी शांति के साथ सम्पन्न हुआ, वार्षिक रिपोर्ट सर्वसम्मतिसे पास हुई। दो प्रस्ताव पारित होकर सर्वसम्मति से पास हुए।

प्रस्ताव नं० १. श्री डा० रामस्वरूप जी ने पेश किया 'सभा के सदस्यों को उचित है कि वे अपने नामों के साथ उपजातियों यथा-पुरी, चावला, खन्ना, आदि के लिखने की प्रथा को बन्द करें। इस के लिए सभा की रिपोर्टों, सदस्यता के फार्मों तथा अन्य प्रकाशन आदि और पत्र व्यवहार में इसका प्रयोग बन्द किया जाए।

प्रस्ताव नं. २—श्री देवराज जी ने प्रस्तुत किया—'सभा को चाहिए कि वह संध्या, हवन मंत्रों की बड़ी उत्तमव्याख्या की पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखवा कर प्रकाशित करें जिस से देश विदेश की अंग्रेजी पठित जनता में प्रचार हो सके, तत्पश्चात् निम्न पदाधिकारी चुने गए :—

प्रधान—श्री भगवान दास जी पुरी, उपप्रधान—श्री शान्ति नारायण जी, श्री ईश्वर दास जी, श्री भक्तराम जी एडवोकेट, मंत्री-राज कुमार जी उपमंत्री-श्री जैमुनी जी, श्री राम नाथ जी सहगल, श्री नंद किशोर जी भाटिया, खजांची-श्री देवराज जी कोछड़, लेखा निरीक्षक श्री मेहर चन्द्र जी पुरी। अंतरंग सभा के सदस्यों का निर्वाचन अधिकारियों को सौंपा गया।

आर्य समाज अनारकली की ओर से सुन्दर जलपान का प्रबंध किया गया था। धन्यवाद और शान्ति पाठ के बाद कार्यवाई समाप्त हुई।

राज कुमार मंत्री आ. प्रा. उपसभा देहली.

चुनाव

आर्य समाज मोडल टाऊन लुधियाना का चुनाव १. ४. ६२ को निम्न प्रकार से हुआ।

प्रधान-श्री संतराम जी, उपप्रधान पं.हरिरामजी, श्री जयदयाल जी, मंत्री श्रीचरनदासजी उपमंत्री श्री ओमप्रकाशजी, खजांची श्रीओम्प्रकाशजी, प्रोपेगेन्ड मंत्री श्री महेन्द्र पाल जी, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री राम दयाल जी, इसके अतिरिक्त श्री वी. एस. कुमार, श्री एस. एल चोपड़ा, श्री ए. एनदूआ, श्री दया नंद जी, श्री सत्या नंद जी, श्री गिरधारी लाल जी, श्री काशी राम जी, श्री तारा चंद जी, श्री जसवंत राय जी अंतरंगसदस्य चुने गए।

चरणदास मंत्री समाज

(२) आर्य समाज अलावलपुर का निर्वाचन ३१. ३. ६२ को निम्न भान्ति से हुआ।

प्रधान-श्री अमरनाथ जी सग्गी, उप प्रधान-श्री बाबू राम जी शर्मा B.A.B.T., मंत्री-श्री गुरुप्रशाद जी, उपमंत्री श्री ठाकुर दत्त जी शास्त्री, खजांची श्री चिमन लाल जी, पुस्तकाध्यक्ष श्री चन्द्र गुप्त जी, प्रचार मंत्री श्री देवराज जी लेखा निरीक्षक श्री गुलशनराज जी, तथा श्री प्रीतम देव जी सहगल, श्री गुरुदत्त जी, श्री लेखराज जी, श्री कर्म चन्द्र जी अंतरंगसदस्य चुने गए।

गुरुप्रशाद मंत्री समाज

आर्य समाज माडल टाउन गुड़गांवां

का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़ी धूम धाम से ३१-३-६२ से २-४-६२ तक मनाया गया। इस में महात्मा आनंद स्वामी जी सरस्वती पं. खुशी राम जी शास्त्री प. शान्ती प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारर्थी. प. जगदीश चन्द्र जी दर्शनाचार्य प्रोफैसर वेदी राम जी M.A., डा. धर्म देव जी M.A., P.H.D RESEARCH SCHOLAR डा. राम स्वरूप जी MM.A.P.H.D आचार्य सत्य प्रिय जी M.A. पं चंद्रसैन जी शास्त्रीके प्रभाव शाली व्याख्यान हुये, श्री राजपाल मदन मोहन चिमटा मंडली, पं. मेला राम रेडियो सिंगर, पं. हरि दत्त जी, पं. देश राज जी, तथा श्री सुरिन्द्र कुमार जी आफ D.A.V हायर सैकन्डरी स्कूल दिल्ली कैंट के संगति ने जनता पर खूब प्रभाव डाला हजारों की संख्या में नर नारी ने लाभ उठाया'

तीर्थ राम—मंत्री

आर्य अनाथालय फ़िरोजपुर छावनी शादी के ख्वाहिशमंद

आर्य अनाथालय फिरोजपुर की कन्याओं से शादी के ख्वाहिशमंद सज्जन शीघ्र अपने प्रार्थना पत्र अधिष्ठाता आर्य अनाथालय फ़िरोजपुर छावनी को भेजें।

नोट :—(१) कन्याओं से शादी कराने वाले सज्जनों का आर्य विचारों वाला होना आवश्यक है।

(२) वेतन तथा योग्यता का वर्णन ठीक २ करें।

पत्रव्यवहार—मैनेजर पबलिसिटी आर्य अनाथालय फ़िरोजपुर छावनी से करें।

आर्य समाज हिसार

वार्षिक चुनाव १-४-६२ को निम्न प्रकार हुआ है।

श्री मुरारिलाल जी शास्त्री प्रधान
श्री प्रकाश चन्द्र एडवो केट उपप्रधान
श्री नत्थन लाल जी „
श्री देव राज जी एडवोकेट मंत्री
श्री नंद लाल जी सहायक मंत्री
श्री सुरन्द्र गुप्त उप मंत्री
श्री सजन कुमार जी कोषाध्यक्ष
श्री हीरा नंद जी सहायक कोषाध्यक्ष
श्री जगन्नाथ जी शर्मा M.A.B.T मनेजर आर्य कन्या पाठशाला
श्री विजय चन्द्र जी M.A सहायक मैनेजर
श्री आशानंद जी शास्त्री पुस्तकालयाध्यक्ष
श्री आत्मा राम जी एडवोकेट आडीटर

भवदीय देवराज मंत्री

सूचना

सभी आर्य संस्थाओं से नम्र निवेदन है कि स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का जन्म दिवस १६ अप्रैल को बड़े उत्साह के साथ मनाएं। नैतिक कर्म के पश्चात उनके जीवन पर शिक्षा-प्रद व्याख्यानों का तथा संगीतों का आयोजन करें तथा छात्र छात्राओं में महात्मा जी के गुणों को धारण करने की प्रेरणा दें। और सभा से प्रकाशित महात्मा हंसराज का जीवन चरित्र रियायती मूल्य पर बांटें।

—सम्पादक

आर्य जगत के पाठकों से

आर्यजगत के महात्मा हंसराज विशेषांक के लिए जिन सज्जनों ने लेखों व कविताओं द्वारा स्नेह प्रदर्शन किया है हम उनके सहृदय से आभारी हैं जिन लेखकों के लेख स्थानाभाव व विलम्ब के कारण प्रकाशित नहीं हुए उन से क्षमा प्रार्थी हैं। शेष लेख व कविताएं साधारण प्रकाशनों में अवश्य प्रकाशित होती रहेंगी।

२—म० हंसराज विशेषांक १५ और २२ अप्रैल का सम्मिलित अंक होगा उसके पश्चात २६ अप्रैल का अंक प्रकाशित होगा पाठक नोट कर लें।

—व्यवस्थापक

महात्मा हंसराज जी

(ले. श्री हरवंस लाल जी मुजरिम प्रधान आर्य समाज दसूआ)

आरियां दी अख दा रौशन सितारा हंस राज।
हर किसे मजलूम दा गम खार भारा हंसराज,
पाप ते पाखण्ड दे फूके हमेशा आलने।
पाप ते पारवण्ड लई सी इक शरारा हंसराज,
हंस वांगू मोतियां दी चोग ओह चुगदा रिहा।
सच नाले झूठ दा करदा नितारा हंसराज,
डी० ए० वी तहरीक दा बानी सी सादा इस कदर।
कर गया खद्दर दे विच अपना गुजारा हंसराज,
ओ जिला होशियार पुर दी इक निराली रौशनी।
समझिया संसार ने रौशन मुनारा हंसराज,
झूलदा ही वेखिया भगवान दे मैं इशक विच।
भगती रस दे विच सी खांदा हुलारा हंसराज,
चप्पू लगा के धर्म दा, बेड़ी किनारे ला गया।
फेर साथों कर गया आखिर किनारा हंसराज,
महर्षि दे मुजरिमां दी दूर हो जावे शिथिलता।
चार दिन लई दे दवे जे रब उधारा हंसराज,

मुद्रक व प्रकाशक श्री सन्तोषराज जी मन्त्री प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा द्वारा वीर मिलाप प्रस मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्य जगत कार्यालय निकट कचहरी जालन्धर नगर से प्रकाशित—सं० श्री त्रिलोकचन्द्र शास्त्री

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब का

दीपावली अङ्क २०१९

आर्य जगत्

ऋषि निर्वाण अङ्क



महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वाध्याय शील और वेद प्रचार में रुचि रखने वाले

आर्य नर-नारियों को आवश्यक सूचना

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर ने यह अनुभव करते हुए कि हर आर्य सामाजिक बालक पुरुष तथा स्त्री को पता लग सके कि वैदिक धर्म में बाकी मतों से क्या विशेषता है, 'वैदिक धर्म का महत्व' इस नाम का एक ट्रैक्ट छपवा रखा है जिस के लेखक सभा के महोपदेशक पं० त्रिलोक चन्द्र जी शास्त्री हैं। इसका मूल्य दो आने प्रति ट्रैक्ट और १० रुपए प्रति सैंकड़ा है।

आशा है कि आर्य समाजों स्कूलों तथा कालेजों के अधिकारी इसे भारी संख्या में बांटने की कृपा करेंगे। दानी सज्जनों से प्रार्थना है कि अधिक से अधिक संख्या में यह ट्रैक्ट मंगवा कर लोगों में बांट कर पुण्य के भागी बनें। इस ट्रैक्ट में आप को बहुत से प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे। जैसे।

(१) संसार के सब सम्प्रदायों की आयु कितनी है? इन में मानवता के लिए पहले कौन-सा विधान था।

(२) कर्मवाद (सिद्धान्त) — सुख दुःख पशु, पक्षी और मनुष्य इन सब में विषमता क्यों?

(३) व्यक्ति पूजा का निषेध सारे सम्प्रदाय व्यक्ति पूजा पर ठहरे हैं। परन्तु वैदिक धर्म केवल सिद्धान्तों पर आधारित है। अनेक प्रमाणों से इसे सिद्ध किया गया है।

(४) आत्मा और परमात्मा के बीच में क्या किसी तीसरे देवदूत या पैगम्बर की आवश्यकता है। इस पर विचार किया गया है।

(५) वैदिक धर्म मस्तिष्क और बुद्धि का धर्म है और विज्ञान के अनुकूल है इसकी विवेचना की गई है।

(६) वर्तमान् अशान्ति की औषधि वेद में ही प्राप्त हो सकती है।

(७) वैदिक धर्म की प्रशंसा जो पश्चिमी लेखकों ने की है उनके अपने शब्दों में उसे स्थान-स्थान पर उद्धृत किया गया है।

श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती द्वारा लिखित ट्रैक्ट 'सुखी संसार के सरल साधन' भी बिक्री के लिए मौजूद है। इस ट्रैक्ट का मूल्य १ आना प्रति ट्रैक्ट और ५) रुपए प्रति सैंकड़ा है। वर्तमान अशान्ति के दूर करने के चार सरल साधन इस ट्रैक्ट में बतलाये गए हैं।

मिलने का पता

महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, जालन्धर।

मुद्रक व प्रकाशक श्री संतोषराज जी मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस [illegible] से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर

ओ३म्

आर्य जगत्

का

ऋषि निर्वाण (दीपावली) विशेषांक

२८ अक्तूबर १९६२—दीपावली २०१९

२१, २८, व ४ नवम्बर के ४२–४३–४४ सम्मिलित अंक वर्ष २२

ते हि पुत्रासो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥ वेद ॥

प्रभु का प्यारा कौन ? क्या धन के भण्डार से भरा हुआ ? या चक्रवर्ती सम्राट् प्रभु प्रेम का प्रासद पाता है ? क्या विद्या में सर्वत्र प्रसिद्धि पाने वाला बल शक्ति से सारी धरती प्रकम्पित करने वाला प्रभु के आशीर्वाद को पा लेता है ? नहीं। ये चीजें चाहे जीवन को भौतिक सुखों से भर दें पर प्रभु के प्रेम को पाने के लिए तो कुछ और ही चाहिए। वेद सन्देश है कि प्रभु के प्रेम के मधुर प्रसाद को पाने के लिए दो बातें चाहिए।

पहिला गुण यह हो कि ऐसा व्यक्ति केवल अपने लिए न जीवे। अपने ही स्वार्थ, सुख के संसार में ही रमण न करता रहे। अपितु उसका जीवन दूसरों के लिए हो। परोपकार वृत्ति उसकी निष्ठा बन जाये। दूसरा गुण यह हो कि निरन्तर वह सब को अपने आचार, विचार व्यवहार से जीवन ज्योति देता रहे। उसका सब कुछ जगमगाने वाला होना चाहिए परोपकार और प्रकाश के दोनों गुण होवें। आज दीवाली पर श्री रामचन्द जी और देवदयानन्द के जीवन की भांति वेद के इन दोनों सन्देशों को जीवन में धारण करें। यही सच्ची दीवाली है।

—सम्पादक

सम्पादकीय

ईश्वर। तेरी इच्छा पूर्ण हो

ये थे रहस्य भरे गम्भीर शब्द, जिन का परमेश्वर के अनन्य विश्वासी महर्षिदयानन्द सरस्वती जी ने इस दीपमाला के दिवस निर्वाणपद की ओर जाते हुए उच्चारण किया था। ये शब्द प्रभु प्रेमी के इस भौतिक जीवन का परित्याग करते हुए अन्तिम शब्द थे। यही सारे आर्यों तथा जगजीवन के लिए अन्तिम रहस्यमय सन्देश था। दैवी जीवन की यही सब से सम्पत्ति और विभूति होती है। साधारण व्यक्ति तो भीषण मृत्यु काल में रोते हैं, शोक मग्न हो कर सब कुछ भूल जाते हैं, सवथा बेसुध हो जाते हैं। आत्म बोध भी खो बैठते हैं प्रभु स्मरण की तो कथा ही क्या कही जाये? सारे जीवन के कार्यों का चित्र उस समय सामने आ जाता है, सारा कर्म चित्रपट अपने आगे आ जाता है। हाथों से बोई हुई खेती स्पष्ट दिखाई देने लगती है—ऐसे समय में लोग रोते हैं, चिल्लाते हैं, भय भीत हो कर बेहोशी में प्रलाप करते हैं। किसी का मन संस्कारवश उस समय धन में, जन में, वासना में, भवन में तथा न जाने किस २ में होता है। सब को अपना पता है कि वह अन्तिम जीवन के लिए क्या कर रहा है—किन्तु योगी, महा योगी, प्रभु प्रेमी, आत्म ज्ञानी, सर्व मेधी महर्षि दयानन्द का मन उस समय भी ईश्वर प्रेम में था। ईश्वर विश्वास का कितना अद्भुत चमत्कार है। आत्म ज्ञानी उस समय भी जागता रहता है। प्रभुप्रेम की शक्ति का यह प्रभाव है कि उस समय इतना बड़ा कष्ट भी कष्ट नहीं प्रतीत होता, वेदना नहीं होती, मृत्यु मृत्यु नहीं दिखाई देती। ऐसी अवस्था में भी महायोगी अपने प्रीतम प्यारे से प्रसन्नता पूर्वक बाते करता कहता है—ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो तेरी इच्छा पूर्ण हो—तेरी इच्छा पूर्ण हो पूर्ण हो। कितना रहस्य भरा है इस सन्देश में।

आर्यो! महर्षि का यह भावभरा सन्देश हमारे लिए है। कितना महान रहस्य है। ध्यान रहे कि अपने जीवन में भगवान् का भजन, प्रभु का प्रेम, उस अर्चनीय का अर्चन भूल न जाये। संसार के पदार्थों में फस कर, मायामोह के आवर्त में, तृष्णा के तूफान में, सौन्दर्य के सागर, वैभव भण्डारों के भव्य भवन एवं लोगों के भाग्य चक्र में चलते हुए उस महान भगवान को भुला न बैठें—उसे किसी मूल्य पर न बेच दें—प्रभु को हर समय, हर स्थान और हर अवस्था में जानो, मानो तथा भक्ति करते रहो महर्षि का यही सन्देश था—आई दीपमाला यही सन्देश स्मरण कराती है। अब गायत-अब अर्चंत-विश्व को यही सन्देश देना है—त्रिलोक चन्द्र

सर्वमेधयज्ञ का दिन

(पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का सन्देश)

यह मानव जीवन यज्ञ करने के लिए मिला है। इसको वेद में यज्ञियातनूः कह कर पुकारा गया है। जीवन में मनुष्य नाना प्रकार के यज्ञ-परोपकार के काम करता रहता है। इसके द्वारा देवपूजा संगतिकरण और दान किए जाते हैं। जिस में यज्ञ की भावना जाती रहती है और इसके स्थान पर केवल स्वार्थ का संसार ही सामने रहता है। अपने लिए ही सारे काम करने में कोई भी लग जाता है। दिल का उदारपन समाप्त होकर संकुचित वृत्ति पनपने लगती हैं। उस समय मानव ऊंचे शिखर से गिरकर नीचे की ओर आ रहता है। उसकी देवत्वभूमि भाग जाती है। ऐसी दशा में अनेक वैमनस्य, द्वेष, अशांति तथा दानवता के बुरे २ विचार विकार के रूप में सारे जीवन को काला बना देते हैं। मनुष्य का पतन हो जाता है।

इसीलिए यज्ञ भावना का बड़ा महत्व है। अन्न, वस्त्र, विद्या, भूमि, भवन आदि का दान देना भी यज्ञ कहा गया है। अपने २ स्थान पर इन सारे यज्ञों को, परोपकार के कामों की महती प्रशंसा की गई है। हर नरनारी को ऐसे २ परोपकार के शुभ कार्य करते रहना चाहिए। किन्तु सर्वमेध करने का यज्ञ तो सबसे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ माना गया है। अपने सारे जीवन को, यौवन को, शरीर को संसार की सेवा के निमित्त, दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए समर्पित कर देना सर्वमेध कहाता है। यह यज्ञ आसान नहीं। न ही हरेक ऐसा महान् समर्पण कर ही सकता है। यह दीपमाला का पर्व हमें और बातों के साथ२ संकेत करता है। दीपक तब जगमगाता तथा दूसरों को प्रकाश देता है। जब उसमे तेल और बत्ती ने अपना सर्वमेध कर दिया हो। अन्यथा उसमें ज्योति नहीं होगी। आर्यसमाज के महान् प्रवर्त्तक ऋषिदयानन्द जी सरस्वती ने सारे विश्व की सेवा के लिए, समस्त प्राणिमात्र की वेदना दूर करने के लिए अपना शरीर, यौवन सब कुछ ही दे डाला था। भस्म भी परोपकार के लिए देदी थी। यह दीवाली उस सर्वमेध के दिव्य सन्देश का हमे स्मरण कराती है। आर्यो! संकल्प करो कि हम भी इस पुनीत पथ पर चलते रहेंगे। आर्यसमाज को शक्तिशाली बनाने में जुट जाओ।

—०—०

महात्मा सुकरात और ऋषि दयानन्द

(प्रि. सूर्यभानुजी वायस चांसलर कुरुक्षेत्र यूनिवर्सिटी प्रधान आर्य प्रादेशिकसभा (पंजाब)

इतिहास अनेक बार अपने आप को दोहराता है। संसार में प्रकृति की एकरूपता का नियम (**Law of the uniformity of nature**) कुछ इस तरह क्रियाशील है कि विविधता और भिन्नता के साथ-साथ घटनाओं में साम्य बना ही रहता है। विशिष्ट प्रकार के कारण एक क्रिया विशेष को जन्म देते हैं। ऋतुओं तथा दिन-रात का आवर्त्तन प्रतिवर्त्तन इसी तथ्य का प्रतीक है। यह नियम मानव समाज का संचालन ठीक उसी प्रकार से करता है जिस प्रकार कि जड़ प्रकृति का। देश और काल के बदल जाने पर भी समान परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं, और उनके परिणामस्वरूप मनुष्य की व्यक्तिगत और सामूहिक चेष्टाओं में यदाकदा समानता और एकरूपता का आभास मिलता है। ग्रीस के महात्मा सुकरात और ऋषि दयानन्द के जीवन की इस दृष्टिकोण से तुलना करना अनुचित न होगा।

सुकरात और दयानन्द के उदय से पहले दोनों देश अन्धविश्वास और रूढ़ियों के दास थे। पत्थरों और जड़ पदार्थों की पूजा जैसे भारत में थी वैसे ही ग्रीस में। अन्तर था तो केवल मात्रा का। क्योंकि भारत अपेक्षया भौगोलिक रूप में विशाल है, इस लिए यहां जड़ पदार्थों की पूजा के लिए क्षेत्र भी अधिक विस्तृत था। अन्धविश्वास के इस व्यापक प्रचलन के दोनों देशों की आत्माओं को कुंठित कर दिया। आम लोगों में स्वस्थ और गम्भीर चिन्तन के लिए उत्साह न रहा। विवेक तर्क के स्थान पर इस किसम के रीति-रिवाज अपनाए जाने लगे जिनका वैज्ञानिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं। भारत में श्राद्ध प्रणाली, स्त्री-शिक्षा का विरोध और छुआछूत इस मानसिक दासता के परिणाम हैं।

मानसिक दासता स्वभाव से प्रमाद और आलस्य को जन्म देती हैं। किसी आदर्श अथवा जीवन के मूल्य (**Value**) को सत्य मानने से पहले जब तक उसकी सच्चाई की परख हम स्वयं अपनी तर्क-शक्ति द्वारा नहीं करते उस आदर्श की प्राप्ति के लिये हम में अच्छी लग्न और कर्मठता कहां से आयेगी? कर्म में उत्साह तो तभी होगा, जब बुद्धि में संशय न हो। अतः रूढ़ियां जहां बुद्धि को कुंठित करती हैं वहां कर्मशक्ति की भी इन द्वारा कम हानि नहीं होती। परिणाम यह हुआ कि यूनान और भारत दोनों में ही राजनैतिक अव्यवस्था ने जन्म लिया। यूनान के छोटे २ नगर राज्य राजनैतिक षडयन्त्रों के गढ़ बन गये। भारत के अनेक प्रदेशों की राजधानियों में भी इस प्रकार के राजनैतिक कुचक्र होने लगे और अंत में देश अंग्रेजी प्रभुत्व के नीचे आ गया। दोनों राष्ट्रों की प्रजा कलह, क्लेश और अशांति के चंगुल में फंसकर रह गई। ये ऐसी विवशतापूर्ण परिस्थितियां थीं

जिनसे प्रजा का उद्धार किन्हीं मजबूत हाथों द्वारा ही सम्भव हो सकता था। विधाता ने सुक्रात यूनान को दिया और दयानन्द भारत को।

दोनों महापुरुष एक समान तर्क के पुजारी थे। किसी भी चीज़ को स्वीकार करने से पहले वे उस के लिये बुद्धिगम्य होना जरूरी समझते थे। सुक्रात ने तो यहां तक कहा कि बिना सत्य ज्ञान के चरित्र का निर्माण असम्भव है। उनका प्रख्यात कथन **'Virtue is knowledge'** चरित्र तथा ज्ञान के घनिष्ठ सम्बन्धों का प्रतीक हैं। इस प्रकार दयानन्द हर बात को बुद्धि की कसौटी पर परखते। उनका कहना है कि जो बुद्धि गम्य नहीं वह केवल पाखंड-मात्र है। इसी पाखंड का खंडन करने के लिये ऋषिने सत्यार्थ प्रकाश की रचना की। इसी उद्देश्य से पाखंड-खंडनी पता का उठाये हुए वे ग्राम-ग्राम और नगर-नगर घूमते, और लोगों को सत्य और असत्य के परखने का निमंत्रण देते। मनुष्यों के झुंडों के झुंड उन के निकट आते और उन की सिंह गर्जनी को सुन कर चित्र-खचित से रह जाते सरल और जिज्ञासु हृदय तो चुप-चाप माथा टेक देते, परन्तु कुटिल और मूढ़ लोगों के लिये यह स्पष्ट वादिता सर्वथा असहाय थी। ऐसे लोग दयानंद पर क्रोध करते, अपशब्द बकते और लाठियों और पत्थरों से उन पर प्रहार कर बैठते। और दयानंद थे कि ये सभी कुछ सहन किये जाते थे।

कुछ इसी प्रकार कार्यक्रम सुक्रात का भी था। वे नित्य-प्रति चौराहे या हाट पर पहुंच कर जन साधारण को इकठ्ठा कर के उन्हें सम्बोधित करते। उन के अकाट्य प्रमाणों के आगे बड़े बड़े विद्वान भी मात खा जाते थे। उन की तर्कशैली वज्र की तरह समस्त रुढ़ियों तथा भ्रांतियों का नाश करने वाली थी। उन का कहना था कि संसार में हर कोई मूर्ख है और अपनी मूर्खता से अवगत होने में ही सच्चा ज्ञान निहित है। हम समझते है कि हम सब कुछ जानते हैं, परन्तु सुक्रात का कहना है कि ज्ञान का यह अहंकार ही मूढ़ता की निशानी है। विचारों का मथन अथवा विश्लेषण करने में सुक्रात इतने सिद्ध-हस्त थे कि बात करते ही दूसरे को अपनी बौद्धिक सीमाओं का पता लग जाता था।

परिणाम यह हुआ कि दोनों महापुरुष अपने समय में अपने अपने राष्ट्र में नवजागरण और नव-चेतना लाने में सफल रहे। दयानंद और आर्य समाज के प्रयत्नों से भारत में अनेक भ्रांतियां समाप्त हो गईं। एक नये युग ने अंगड़ाई ली जिस में विचारों की स्वतंत्रता पर बल दिया गया। और तो और परम्परा के पुजारी और रुढ़िवादी न चाहते हुए भी दयानंद की बातों को स्वीकार करने लगे। भारत की राजनीति भी इस नव संदेश से अछूती न रही। जिस स्वराज्य और स्वतंत्रता का स्वप्न ऋषि ने लिया था, उसे मूर्तरूप देने के लिये १८८५ में कांग्रेस की स्थापना हुई।

उधर महात्मा सुक्रात ने ग्रीस में एक विशेष बौद्धिक वातावरण की रचना की। प्लेटो जैसे विश्व विख्यात दार्शनिक उन्हीं के शिष्य थे। फिर क्या था सुक्रात की मृत्यु के पश्चात ग्रीस यूरोप का गुरु बन गया। विज्ञान और बुद्धि के क्षेत्र में सभी जातियां उसे अपना अग्रगी मानने लगीं। यहां तक कि

यूरोपीय राष्ट्रों की आगामी उन्नति का प्रेरणा स्रोत ग्रीस का साहित्य ही था। अर्थात सुकरात ठीक दयानंद की तरह पश्चिम के लिये एक युग-निर्माता थे।

और सब से बड़ी बात जो दोनों महापुरुषों को एक स्तर पर खड़ा करती है—वह है दोनों की दर्दनाक मौत रूढ़िवादियों ने सुकरात पर अभियोग चलाया। न्यायकर्त्ता भी इस कुचक्र में उनके साथ थे। पथभ्रष्ट करने के लिये सुकरात को प्रलोभन भी दिये गये। वे चाहते तो आसानी से प्राणों की रक्षा कर सकते थे। परंतु वे अपने व्रत पर अटल खड़े रहे परिणाम यह हुआ कि उन्हें विषपान का दंड दिया गया। जिस निर्भीकता, निश्चलता और शांति से सुकरात ने जहर का प्याला स्वीकार किया वह उन्हें संसार के अमर शहीदों का शिरोमणी बनाने के लिये पर्याप्त है। सुकरात जीते जी ग्रीस के थे, परन्तु मरने के बाद मानव मात्र के हो गये। युग बीत गये और उनके पवित्र बलिदान की गाथा आज भी कायरों को वीर बनाने की क्षमता रखती है।

दयानंद के निर्वाण की कहानी तो और भी अधिक प्रेरणा देने वाली है। सुकरात को केवल एक बार जहर दिया गया और दयानंद को तेरह बार। वज्र का वज्र सा शरीर छोटे-मोटे आक्रमणों की परवाह ही न करता। परन्तु अंतिम बार जहर में कांच घोट कर उन्हें छल से दिया गया और इस प्रहार को नाशवान शरीर सहन न कर सका। इस पर भी उनकी मानसिक शांति और ओजस्विता में कोई अंतर नहीं आया। वे अब भी प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा मान रहे थे। मृत्यु के समय उनका आत्म-समर्पण का भाव उन के जीवन की उज्जवलतम घटना है—वह घटना जिसमें गुरुदत्त जैसे अनेक नास्तिकों का उद्धार करने की क्षमता मौजूद है—वह घटना जो शत्रुओं को भी रुला दे और उन्हें मित्र बनने पर विवश कर दे।

इतिहास में दो दीप जले—एक यूनान में और दूसरा हिंदुस्थान में—दोनों की आभा से यह धरती उज्जवल हुई—और वे दो दीप किस प्रकार हम मनुष्यों की कुभावनाओं ने बुझा दिये! दीप फिर भी जलते रहेंगे और बुझाने वाले उन्हें बुझाएंगे भी जग में अच्छाई और बुराई इकट्ठे चलते हैं।

**********:०:******

आर्यजगत् के स्नेही पाठकों से

आर्यजगत् सभा का साप्ताहिक मुखपत्र है। पत्र धर्म प्रचार में कितना सहायक होता है, यह तो सब को विदित ही है। सभा अपने साप्ताहिक पत्र द्वारा संन्यासी महात्माओं, समाज के पुराने अनुभवी नेताओं, विद्वानों कवि महोदयों तथा युवक भाई बहिनों को जीवन देने वाले आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, एवं सामाजिक लेखों वा कविताओं से धर्म प्रचार कर रही है। यत्न होता है कि प्रति सप्ताह दो तीन मननशील सज्जनों के लेख अवश्य पाठकों की सेवा में पहुंचाए जाएं। सभा की प्रचार सम्बन्धी सूचनाएं भी होती हैं। सभा अपने कर्तव्य को सदा से निभाती चली आरही है। सब लेखक सज्जनों की 'जगत पर अनुकम्पा का आभार प्रदर्शन करते हुए जनता से प्रार्थना करते हैं कि आर्य जगत को अधिक से अधिक प्यारा बनाने का यत्न करेंगे। ग्राहक बनाकर सहयोग देंगे। अपने अमूल्य सुझाव भी देते रहेंगे। —सम्पादक

**********:०:*******

जोत से जोत जले

(श्री. ला. सन्तोष राज जी महामन्त्री आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर)

मूलशंकर स्थान २ पर घूमा, मन्दिर देखे, मठ देखे जंगल छाने, नदियां पार कीं, पर्वत लांघे, गुफाएं खोजीं। कहीं भी वह जोत न मिली। जिससे मन मन्दिर के बुझे दिए को जला सके। साधु महात्मा मिले उन की शरण ली। यह सोच कर कि ज्ञान की जोत होगी पर वह निकले जुगनूं। जुगनूं कहीं जोत जगा सकते हैं? मन की जोत जगने न पाई अन्धकार बना रहा। पर वह अन्धकार मिटाने पर तुला रहा। उस दौड़ धूप का बड़ा लाभ हुआ।

मूलशंकर अब दयानन्द बन चुका है। दिया मौजूद था उस में अब तेल बत्ती पड़ चुकी थी। कसर थी तो केवल एक जलते दीपक की जिस की जोत से वह जोत जल सके। वह जलती जोत दयानन्द को मथुरा की कुटिया में मिली।

जोत जली और खूब जली। अन्धकार ग्रस्त भारत, अन्धकार ग्रस्त भारतवासियों के हृदय सब प्रकाशमान होने लगे। देश जाति के भाग्य खुल गए ऐसा मालूम होने लगा पर प्रभु को कुछ और ही स्वीकार था। इस रोशनी के स्तम्भ की सम्भवतः कहीं और आवश्यकता थी। भगवान् दयानन्द का देहावसान हो गया। प्रभु की विचित्र लीला—देहावसान हुआ दीवाली के दिन। वह दिया बुझा—पर हजारों दिये जलाकर, कहीं एक स्थान पर नहीं, देश के कोने २ में घर२ में। दयानन्द तेरी जलती जोत धन्य थी। बुझती हुई भी गुरुदत्त में जोतें जला गई। महात्मा हंसराज और स्वामी श्रद्धानन्द जैसी जोतें जल उठीं। इनके पुण्य प्रकाश से दयानन्द की कीर्ति अमर होती गई। इन जोतों से जोत के बाद जोत जलने लगी। उनके पुण्य प्रताप से ही आज आर्यसमाज व जाति अग्रगण्य है।

आज दीवाली है। हम निर्वाण दिवस मना रहे हैं। एक दिया जल रहा है। उसकी जोत से अनेकों दिये जला लगे। आओ! हम भी अपने दियों में तेल और बत्ती डालें। वह देखो उस जलती जोत की हिलती शिखा आह्वान कर रही है। आगे बढ़ो—दिवाली अपना सन्देश दे रही है। कान खोल कर सुनो—जोत से जोत जले!

आवश्यक निवेदन

आर्यसमाजों तथा अपनी संस्थाओं से निवेदन है कि समय-समय पर अपने यहां होने वाले पव, संस्कार, यज्ञ और उत्सव आदि की सूचना आर्य जगत कार्यालय आर्य प्रादेशिक सभा हंसराज भवन जालन्धर शहर के पते पर भिजवा दिया करें ताकि उचित समय पर प्रकाशित हो सकें।

—सम्पादक

चमका, चमक रहा, चमकेगा वैदिक धर्म हमारा

(रचयिता :—श्री वेदप्रकाशजी बी. ए. प्रभाकर, आर्य हा० सै० स्कूल, लुधियाना)



राज्य कम्पनी में ऐसा भी कभी समय था आया।
धर्म कर्म सद्ग्रन्थ ज्ञान की कटु कलुषित थी काया॥
जन जन था निष्क्रिय निकम्मा मन मसोस अकुलाया।
पाप शाप छल गुरुडम ने था अपना रंग जमाया॥
दयानन्द ने जन्म लिया जब टकारा टकारा।
.........चमका०॥

दानवता ने मानवता का आकर गला दबाया।
दम्भ निराशा छुआछूत ने जनता को भरमाया॥
भेद भावना मनमानी ने ऊंचा महल बनाया।
भ्रष्ट पतित होते थे मानव मानव की पड़ छाया॥
दयानन्द पाखण्ड खण्डनी लेकर ध्वज ललकारा।
.........चमका०॥

विकल वेदना विधवाओं की सुन धुनती सिर धरती।
कष्टमतों अत्याचारों से जनता आहें भरती॥
कट कट कर गौओं की गरदन करुण पुकारें करती।
घोर नरक में पड़ी मनुजता जीती थी न मरती॥
दयानन्द निर्भीक वीर ने डटकर तब हुंकारा।
.........चमका०॥

हिन्दु सभ्यता संस्कृति थी जब पल-पल गोते खाती।
निर्धनता थी पांव पसारे गरदन पकड़ डुबाती॥
हया दया दीवाला निकला क्रूर कुटिलता छाती।
खा पी मौज उड़ाओ कुछ को यही भावना भाती॥
दयानन्द का हृदय तड़प कर विषधर सा फुंकारा।
.........चमका०॥

गम्भीर चिन्तन की वेला।

(श्री प्रिंसिपल रलाराम जी एम. ए. एम. एल. ए. होश्यार पुर)

जब स्वामी दयानन्द ने आर्य समाज को स्थापित कर के वेद के आधार पर समाज सुधार की आवाज़ उठाई तो भयभीत तथा चिन्तित हिन्दुओं की जान में जान आई। अन्धकार प्रकाश में बदल गया! आशा ने अपनी ध्वजा फहराई और जाति की उन्नति की ओर बढ़ने लगी। यह दयानन्द के मिशन की सामाजिक पहुंच थी। इस की कितनी आवश्यकता थी। लाखों व्यक्ति इस की ओर आकर्षित हो कर आर्य समाज में आये। इसी कारण जाति आर्य समाज को अपना नेता समझने लगी। आर्य समाज निरन्तर बढ़ता गया।

कई व्यक्ति पराधीनता की जंजीरों से व्याकुल तथा व्यथित् थे। परतन्त्रता उन को दिन रात अखरती थी। वे इसे उतार कर फैंकना चाहते थे। स्वतन्त्रता का नाम लेना तब मौत को बुलाने के बराबर था। देश प्रेम अपराध था। ऐसे समय में जब दयानन्द ने निर्भय होकर यह कह दिया और लिख दिया कि विदेशी राज्य चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो वह स्वदेशी राज्यकी बराबरी नहीं कर सकता। तो लोग चकित रह गये। राजनैतिक स्वतन्त्रता के प्रेमियों को श्री दयानन्द से सहारा मिला। आर्य समाज की ओर झुक गया तथा इस के काम में देश सेवा समझने लगे भारत स्वतन्त्र होगा, यह आवाज आर्यसमाज ने उठाई। आर्यसमाज सर्वप्रिय बन गया। इसने तप, त्याग और सत्य प्रियता का सन्देश नवयुवकों के सामने रख कर राष्ट्रीय चरित्र को ऊंचा किया। जहां कहीं भी देश जाति पर संकट आया, आर्यसमाजी हजारों की संख्या में वहां दौड़ कर पहुंच गए इससे एक जाति तथा एकराष्ट्र की भावना जागृत हुई।

आर्यसमाज वेद अनुगामी है। ज्ञान तथा प्रकाश के बिना समाज सुधार तथा राष्ट्रनिर्माण का काम नहीं चल सकता। इसी कारण इसने विद्याप्रचार करना आवश्यक समझा। हिन्दी व संस्कृत का प्रचार बढ़ा, धार्मिक भाव जागृत हुए। जैसे कूप पर कोई स्नानार्थ, कोई प्यास शान्त करने के लिए तथा कोई आग बुझाने के लिए जल प्राप्त करने जाते हैं वैसे आर्य समाज रूपी आन्दोलन को किसी ने इसलिए अपनाना क्योंकि इससे राजनैतिक कामनाएं सिद्ध होती दिखाई दीं, किसी ने इसे इसीलिए अनुकरणीय समझा क्योंकि इससे बेहतर समाज सुधारक न था। किसी ने इसमें इसीलिए प्रवेश किया क्योंकि आर्य समाज ज्ञान प्रकाश तथा विद्या का ध्वजाधारी है। अधिक संख्या ने इस में इस लिए प्रवेश किया क्योंकि स्वामी दयानन्द ने एक प्रभु, शुद्धि, सामाजिक समता व न्याय का समर्थन तथा पोषण किया। ये सब आर्य समाज के शरीर के अवयव हैं। इन

सब के मेल तथा संगठन में आर्य समाज का महत्व और उस का पूर्णरूप है। ये मनके वेद रूपी सूत्र में पिरोये हुए एक माला का रूप दर्शा रहे हैं।

यदि आज भारत में सामाजिक सुधार का वातावरण है तो आर्यसमाज जैसी संस्था का पैदा किया हुआ है। जिसने धर्म और शास्त्र के प्रबल प्रमाणों से सामाजिक दोषों का उन्मूलन किया। यह श्रेय राजनैतिक आन्दोलन को ही नहीं मिल सकता। अब भी समाज में अन्याय तथा विषमता को दूर करना है। सामाजिक कुरीतियां अभी अनेक हैं और नाना रूप तथा वेष धारण कर प्रकट हो रही हैं। ऐसी स्थिति में आर्यसमाज को एक महत्व पूर्ण पार्ट अदा करना है। भारतीय मनोवृत्ति धार्मिक है। यदि सुधार को धर्म से जुदा किया गया तो भारतीय संस्कृति नष्ट भ्रष्ट हो जायगी, हम अपना रूप खो बैठेंगे। आर्यत्व नष्ट हो जायगा। सुधार भी सफल न हो पावेगा। दयानन्द की सुधार शैली सफल हुई।सुधार को धर्म के वास्तविक स्वरूप पर उसारा गया और अब वह एक भव्य भवन है। केवल पाश्चमीयता भारत मे सुधार को स्थिर तथा सदृढ़ नहीं बना सकती। स्वतन्त्र भारत में आर्य-समाज की भारी जरूरत है।

आर्य समाज ने जातपात को निर्बल कर के समता तथा सामाजिक न्याय की स्थापना की। जब तक झूठा ऊंच नीच का भाव हम में पाया जाता है, प्रजातन्त्र या लोक राज कीभ सफल नहीं हो सकता। जातपात को कानून कभी मिटा नहीं सकेगा इसे न्याय युक्त तथा युक्त संगत (Rational) बनाना ही एक मात्र साधन है प्रजातन्त्र शासन को सफल बनाने का अन्यथा हमारे प्रतिनिधि ठीक कोटि के नहीं हो सकते।

आज चारों ओर अनाचार और घूस तथा बेईमानी अपना नाच दिखा रहे हैं। चरित्र की दुर्बलता भयानकरूप धारण कर गई है। आर्य समाज की आज के स्वतन्त्र भारत को आवश्यकता है। जो लोक सेवा का उच्चादर्श समाज ने दिखाया है उस की आज आवश्यकता है। हमारी स्वतन्त्रा क्षणभंगुर होगी यदि हमारा समाज सबल न हो, यदि हमारी समाज प्रथाएं समता तथा न्याय पर न हो। इस कार्य में समाज सफलता प्राप्त कर सकता है क्योंकि लोक सेवा, तप, त्याग तथा डीमोक्रेसी (**Democracy**) इसे जन्मघुट्टी में मिले हैं।

आर्य युवकों का सहयोग अनिवार्य

(महामना श्री लाला देवी चन्द जी एम. ए. होश्यारपुर)

आज के युवक और युवतियां धर्म से सर्वथा विमुख व उदासीन हो रहे हैं। धार्मिक विषयों पर वार्तालाप उन के लिए कोई आकर्षण नहीं रखता। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संगों में जाना उनको रुचिकर नहीं। वह सिनेमा, ड्रामा, डांस, थियेटर की सभ्यता की ओर खिचे चले आ रहे हैं। उन्हे खेलकूद अधिक प्रिय है। आज हमारे युवक प्रकृति की गुलामी भोगवाद में मस्त आत्मिक जीवन और उसके नैतिक मूल्यों से सर्वथा उदासीन हैं। उस ओर उन का ध्यान ही नहीं जाता।

प्रत्येक कार्य में विजय के लिए बुद्धि व शरीर बल दोनों की अपेक्षा होती है। बुद्धिबल अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी होता है। इसके बिना शारीरिक शक्ति निष्फल ही रहती है। समाज व राष्ट्र के नवयुवक शारीरिक बल के ही प्रतीक हैं तो वयोवृद्ध लोग बुद्धिबल और अनुभव सिद्ध योग्यता के। दोनों का परस्परा सहयोग ही समाज का सफल संचालन कर सकता है। न केवल बूढ़े और न अकेले युवक ही समाज का निर्माण कर सकते हैं। जोश के साथ होश युवकों के आशापूर्ण उत्साह और हृदयों में साथ-साथ अनुभवी गुरुजनों के बुद्धिपूर्ण विचारों का नेतृत्व भी अनिवार्य है। कोई सभा संस्था समाज यथार्थ में सभा नहीं कहलाती जिस में धर्म अधर्म की परख करने वाले वृद्ध पुरुष और नारियां न हों।

आर्यसमाज मे नए खून का प्रवेश किए बिना उन्नति असम्भ है। बड़े आर्यसमाजस्थों को आयुभर पदाधिकारियों और गद्दियों से चिपटे न रह कर उत्साही नौजवानों को अपनी देखरेख में कार्य सम्भालने का अवसर देना चाहिए। उनकी गलतियों को बड़ी उदारता से क्षमा करते हुए प्रेम से उनका सुधार और नियन्त्रण करना चाहिए। गिर २ कर ही घुड़सवार बनते हैं। नवयुवकों व युवतियों के हृदय में बड़े बड़ों के लिए सम्मान व सत्कार की श्रद्धापूर्ण भावनाएं उन की बहुमूल्य सम्पत्ति का काम दे सकती हैं। समाज संस्था व जातियां तथा परिश्रम व त्याग से ही बनती है। विलासप्रिय निष्कर्मा आलसी लोगों के लिए इस संसार मे कोई स्थान नहीं। प्रकृति माता जागरूक, ज्ञानवान, तत्त्वेता, क्रियाशील लोगों की चरण चेरी बनकर दासीवत् उनके सामने कर जोड़ कर आन खड़ी होती है। केवल मस्तिष्क से योजनाएं बनाने वाले शेखचिल्ली अपने मिथ्या स्वप्नों के संसार मे ही रमण करते २ अपना नाश कर लेते हैं।

हमारे स्कूल, कालेज, पाठशालाएं और आर्य समाजिक परिवार ही नौजवानों की खान हैं।

रौमां रौलां की दृष्टि में—

महर्षि दयानन्द और रामकृष्ण परमहंस

(ले. प्रो० भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. आर. इ. एस.)
हिन्दी विभाग—गवर्नमेंट कालेज, पाली (राजस्थान)

सुप्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान रौमां रौलां ने सुप्रसिद्ध बंगाली संत रामकृष्ण परमहंस का एक जीवन चरित फ्रेंच भाषा में लिखा है जिस का अंग्रेजी अनुवाद राम कृष्ण मिशन के अद्वैत आश्रम मायावती, अल्मोड़ा (हिमालय) से प्रकाशित हो चुका है। लेखक ने राम कृष्ण के चरित का निरुपण

उन्हीं से आर्य समाज में युवक युवतियों की भरती हो सकती है। जब १९०४ में स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी ने मुझे होशियारपुर डी. ए. वी. हाई स्कूल में मुख्याध्यापक रूप में नियुक्त करके भेजा था तो उन दिनों प्रति सप्ताह रविवार को प्रातः स्कूल के सब अध्यापक और छात्रा वास में रहने वाले विद्यार्थी बाजारों में पंक्तियां बांधे आर्यसमाज मन्दिर के सत्सङ्गों में सम्मिलित हुआ करते थे। यह क्रम १४-२० वर्ष निरन्तर चलता रहा परन्तु आज परिस्थितियां बिल्कुल बदल चुकी हैं। यदि अध्यापक आर्य समाज में आने का नियम धारण कर लें तो हम विद्यार्थियों से उनके कुछ अनुकरण की आशा कर सकते हैं। आर्यसमाजस्थ सज्जनों को ईसाइयों के हाथ में बाइबल की पुस्तक पकड़े गिरजा घर में जाने की भांति अपने परिवार को स्त्री बच्चों को अवश्य ही आर्यसमाज में ले जाने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए।

नौजवानों को आर्य समाज में लाने के लिए आर्य युवक समाजों की स्थापना का विशिष्ट प्रयास करना चाहिए। यह कुमार सभाएं आर्य समाज की पोद का काम दे सकती हैं। उन में साप्ताहिक सत्संगों, में मासिक, षाण्मासिक शिविरों तथा वार्षिक उत्सवों में उन्हें स्वतन्त्र लेख भाषण तथा सेवा कार्यों का प्रशिक्षण बड़े लोगों के नेतृत्व में होना अभिष्ट है। आर्य समाज का भिन्न २ भाषाओं में सुन्दर साहित्य सस्ते दामों विद्यार्थियों के हाथों देना भी बहुत अच्छे परिणाम पैदा कर सकता है। तीसरा उपाय यह है कि आर्य वीर दलों के द्वारा युवकों का बलवान् संगठन बनायाजाए। इस के लिए मेरा सुझाव यह है कि डी. ए. वी. कालेज प्रबन्ध कमेटी और आर्य प्रादेशिक सभा आर्य युवकों की एक सांस्कृतिक संस्था संगठित करने के लिए सुयोग्य धार्मिक संयोजक नियत करे जो यत्र तत्र आर्य वीर दल की शाखाएं स्थापित करे। आर्य समाज की यह सब से बड़ी जरूरत है। नवयुवकों के प्रवेश किये बिनां आर्य समाज का भविष्य उज्जवल नहीं हो सकता।

करने से पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आन्दोलन का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है जो उक्त ग्रन्थ के **Builders of Unity** 'एकता के निर्माता' शीर्षक अध्याय के अन्तर्गत है। इस में राजा राम मोहन राय देवेन्द्र नाथ ठाकुर, केशव चन्द्र सेन और स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों और प्रवृत्तियों का अत्यन्त विशद और मौलिक विवेचन किया गया है। उपर्युक्त ब्राह्म समाज के तीन नेताओं में समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय को छोड़ कर शेष दोनों राम कृष्ण परमहंस के समकालीन थे। स्वामी दयानन्द भी उस समय के ही महापुरुष हैं। केशव सेन और स्वामी दयानन्द की भेंट कलकत्ता में हुई। केशव बाबू अपने जीवन के अन्तिम भाग मे राम कृष्ण परमहंस से भी अत्यधिक प्रभावित हो गये थे जिस के फलस्वरूप उन्होंने ब्राह्म समाज के अनेक सिद्धांतों को तिलाञ्जली देकर वैष्णव भक्तिवाद को स्वीकार कर लिया था।

इसी पुस्तक के आगामी अध्याय Ramkrishan and the great shepherds में रौमां रौलां ने परमहंस जी की केशव दयानन्द आदि सुधारक महापुरुषों के प्रति अपनी व्यक्तिगत सम्मति और भावना का उल्लेख किया है। इस अध्याय में स्वामी दयानन्द के प्रति राम कृष्ण. की जो सम्मति रौलां ने व्यक्ति की है वह हमें नितान्त एकांगी पक्ष पात पूर्ण और अनुचित प्रतीत रोती है। प्रस्तुत पंक्तियों में उसी पर विचार करने का यत्न किया जायगा। रौला ने इस प्रसंग के प्रारम्भ में ही लिखा है।

Dayanand was summed up, judged and condemned of less worth still.' P. 163 अर्थात् राम कृष्ण ने दयानन्द के सिद्धांतों को संक्षिप्त रूप से जाना, उन के विषय में निर्णय किया और उन्हे अत्यन्त कम महत्व का जान कर छोड़ दिया। आगे रौमां रौलां लिखते हैं।

"It must be admitted that when the two men met at the end of 1873, the Arya Smaj had not yet been founded and the reformer was still in the midest of his career."

जब १८७३ के अन्त में रामकृष्ण और दयानन्द की भेंट हुई, उस समय तक आर्य समाज की स्थापना नहीं हुई थी और सुधारक दयानन्द के जीवन का मध्याम्ह था। यहां तक तो कोई आपत्ति-जनक बात नहीं है। आगे वे लिखते हैं—

When Ram Krisna examined him, he found in him. "a little power" by which he meant "real contact with the Divine."

जब राम कृष्ण ने दयानन्द की परीक्षा की तो उसमें उन्हें 'कुता शक्ति' प्रतीत हुई जिससे उनका अभिप्राय ईश्वर से वास्तविक सम्पर्क था। हम यह समझने में असमर्थ हैं कि रामकृष्ण या कोई भी अन्य व्यक्ति क्या किसी व्यक्ति की परीक्षा कर यह जान सकता है कि इसका ईश्वर से अधिक या कम सम्पर्क है। वह कौन सी कसौटी है जिससे वह बात जानी जाती है कि अमुक पुरूष का भगवदीय सम्बन्ध इस स्तर का है। पादटिप्पणी में लिखा गया है। He recognised in him also this

characteristic redness of the breast' राम कृष्ण ने दयानन्द के सीने में एक विशष्ठ ललाई देखी। (जो उसकी यौगिक शक्ति का धोतक थी) क्या सीना लाल होना किसी व्यक्ति में आध्यात्मिक शक्ति की विद्यमानता सूचित करता है। कोई योग विद्या से परिचय रखने वाला व्यक्ति ही इस पर प्रकाश डाल सकता है।

आगे रौमां रोलां रामकृष्ण का दयानन्द के प्रति मत इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—

'But the Fortured and tor turing chanader, the petticose attileticism of the champion of the Vedas, his feverish insistence that he alone was in the right, and therefore had the right to impose will, were all plats on his mission in Ram krishna's eyes.'

अर्थात् दयानन्द का अन्यों को पीड़ित करने का स्वाभाव वेदों के इस समर्थक का अन्यों के प्रति युयुत्सु भाव, उसका इस बात पर अत्याधिक आग्रह कि अकेले वही सही हैं और इसलिए उन्हें अपनी इच्छाओं को दूसरों पर थोपने का अधिकार है, रामकृष्ण की सम्मति में दयानन्द के उद्देश्य पर ये ही सब बातें कलंक के तुल्य थीं।

हम रौमांरौलां की उपर्युक्त धारणा से किसी भी प्रकार सहमत नहीं हो सकते। दयानन्द ने अपने मत को मनवाने के लिए न तो किसी को कष्ट दिया और न पीड़ित ही किया। वेदों का वह उग्र समर्थक अवश्य था, परन्तु 'Back to the Vedas' का नारा लगाने का भी एक महत्वपूर्ण कारण था। दयानन्द यह अनुभव कर चुके थे कि भारत का धर्म मूलतः वेदों पर ही आधारित है, अतः जब तक धर्म के इस आदि स्रोत की ओर भारत के जनसमाज को उन्मुख नहीं किया जाएगा तब तक न तो वास्तविक धर्म की ही प्रतिष्ठा हो सकती है। और न उसे सुदृढ़ ही बनाया जा सकता है। सम्भवतः स्वामीजी द्वारा किए गए अन्य मत-मतान्तरों के खण्डन मण्डन और उनके शास्त्रार्थों को देख कर ही रौलां ने इसे उनका युयुत्सुभाव (athlericisam) कहा है परन्तु स्वामी जी की इन प्रवृत्तियों में कहीं भी अपने विरोधी को हानि पहुंचाने, उसे नीचा दिखाने अथवा पराजित करने की प्रवृत्ति नहीं थी अतः उसकी उपर्युक्त आलोचना भ्रांतिपूर्ण धारणाओं पर आधारित है। न तो स्वामी दयानन्द ने यही कहा कि वे अकेले ही सत्य हैं और न उन्होंने अपनी बातों को मनवाने का ही आग्रह किया। इसके विपरीत वे तो बार २ यही कहते रहे कि उनका अपना निज का कुछ भी मत नहीं है। वे उन्हीं सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं जो ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त सभी ऋषि मुनियों को मान्य रहे हैं और जिन्हें सभी शास्त्रों की सहमति प्राप्त है। जहां तक उनके अपने मत का प्रश्न है, वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि उसे भी अंध विश्वास युक्त होकर न माना जाए। बल्कि लोग युक्ति और तर्क की कसौटी पर उसे कसें, यदि उसमें सत्य हो तो स्वीकार करें, अन्यथा नहीं। मेरी समझ में विश्व के सभी महापुरुषों का अपने मत के प्रति यही दृष्टिकोण रहा है। स्वामी दयानन्द ने भी आग्रह-पूर्वक अपनी बात नहीं मनवाई।

हमारा निवेदन है कि यदि स्वामी दयानन्द ने

शास्त्रार्थों और विवादों में भाग लिया तो क्या बुरा किया ? उस समय हिन्दू जाति की जो अवस्था थी और शास्त्रों के अर्थों को लेकर जो अनाचार हो रहे थे, उनको देखते हुये शास्त्रों के सत्यार्थ का प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक था और यही दयानन्द ने किया परन्तु स्वयं शास्त्र ज्ञान से विहीन राम कृष्ण इस कार्य के महत्व को न समझे तो इस में दोष किसका ? जहां तक शास्त्रों के अर्थों को तोड़ने मरोड़ने और उनके अर्थों को बदलने का प्रश्न है, यह नया आक्षेप नहीं है जब २ स्वामी जी का वेदार्थ वेद भाष्य के रूप में पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों के समक्ष आया तब २ उन्हों ने यही कहा कि यह शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को स्वेच्छानुसार परिवर्तित करने का यत्न है। स्वामी जी ने स्वयं अपने जीवन काल में ही इस आक्षेप का समाधान करने की चेष्टा की थी। उन्होंने अपने अर्थों को ब्राह्मण ग्रन्थों निरुक्त, व्याकरण आदि के आधार पर सिद्ध ही नहीं किया यह भी कहा कि मध्यकालीन भाष्यकारों ने जो शास्त्र के अभिप्राय को उल्टा कर अपने २ संकीर्ण सम्प्रदायों के मतानुसार सीमित कर दिया है उसे पुन. उल्टा कर मैं उनके वास्तविक उदार आशय को प्रकट कर रहा हूं।

स्वामी दयानन्द नवीन मत की स्थापना करने के लिये उत्सुक थे, यह तो कोई उनका बड़े से बड़ा विरोधी भी नहीं कह सकता। उन्होंने स्थान २ पर यह स्पष्ट कर दिया है कि नवीन मत प्रवर्तन करने का उन का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। वे उसी पुरातन वैदिक धर्म के प्रचार के इच्छुक हैं जो अनादि काल से विश्व का सार्वजनीन मत है। ऐसी स्थिति में उन पर सम्प्रदाय प्रवर्तन का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। रामकृष्ण ने यह भी कहा है कि इस प्रकार की व्यक्तिगत और सांसारिक विजय ईश्वरीय प्रेम की बाधक है। यह व्यक्तिगत विजय तो है ही नहीं। स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की विजय वैदिक धर्म की विजय है और ईश्वर के अटल नियमों की विजय है। हां, स्वामी जी की यह धारणा अवश्य थी कि सच्चा लोक-कल्याण ही वास्तविक ईश्वरीय प्रेम है।

यह है दयानन्द की उदात्त भावना, उसका प्रचण्ड लोक संग्रह का भाव उसका विश्वजनीन सिद्धान्त जिसे समझने में न तो रामकृष्ण ही सफल रहे और उनके प्रशंसक रोमां रौलां ही।

—०—

दीपावली का शुभ पर्व

सभी आर्य समाजों और आर्य भाइयों, बहिनों को वेद प्रचार के पुनीत कार्य का सुदृढ करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए और परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से कम से कम चार आना संग्रह कर आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर के वेद प्रचार कोष में भिजवाकर पुण्य के भागी बनें।

खुशीराम शर्मा

वेद प्रचार अधिष्ठाता

आर्य जगत के ग्राहक बनना, बनाना आर्यों का परम कर्तव्य है।

संसार को प्रेम सिखा देंगे

(रचयिता श्री 'पिशोरा लाल जी प्रेम' रैणुका H.P)

हम आर्य वीर कहाते हैं, बन कर के वीर दिखा देंगे।
भूमण्डल के सब देशों में, वेदों का नाद बजा देंगे।
जो निराकार और निर्विकार है, सर्वव्यापक सर्वाधार है।
उस पार ब्रह्म परमेश्वर की, पूजा सबको सिखला देंगे।
वेदों का ज्ञान है सबके लिए, यह वेद है ईश्वर की वाणी।
मानव के लिए सद्ज्ञान यही, संसार को यह समझा देंगे।
प्रचार करेंगे वेदों का, हम दयानन्द के सेनानी।
हम सत्य अहिंसा सेवा का, दुनिया को मार्ग बता देंगे।
यह वैदिक धर्म हमारा है, हम को प्राणों से प्यारा है।
इस धर्म की रक्षा करने को, अपना सर्वस्व लुटा देंगे।
सूदखोरी, चोरबजारी का, और झूठ फरेब मक्कारी का।
हम अपने प्यारे भारत से, इन सब को दूर भगा देंगे।
मिल जुल के रहें सब आपस में, और आपस में सब प्यार करें।
संसार के कोने कोने में, सन्देश यही पहुंचा देंगे।
है पंचशील से प्यार हमें, नहीं युद्ध से भी इन्कार हमें।
हम, 'यथायोग्य वर्ताव' का, वैरी को पाठ पढ़ा देंगे।
इस देश का अंजल खा कर भी, जो देश द्रोही करते हैं।
उन देश द्रोही दुष्टों का, नाम और निशान मिटा देंगे।
विधवाओं और अनाथों की, रक्षा कर्त्तव्य हमारा है।
इनकी रक्षा करने के लिए, हम तन-मन-धन लगा देंगे।
हम प्रेम का ही प्रचार करें, और प्रेम का ही व्यवहार करें।
हम प्रेम से जग को जीतेंगे, संसार को प्रेम सिखा देंगे।

आर्य्यसमाजी भाइयो! खूब दौड़ लगाओ

[लेखक श्री पं० भक्तराम जी (अफ्रीका वाले) जालन्धर]

लेख के शीर्षक के शब्द मेरे नहीं। वे स्व० महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के उस सन्देश के हैं जो उन्होंने आर्यसमाज काशी के अधिकारियों की प्रार्थना पर 'आर्यसमाज स्थापना दिवस' के अवसर पर आर्यसमाजियों के लिए दिया था। अधिकारियों के उस वाक्य की व्याख्या करने के निवेदन पर मालवीय जी ने कहा था— 'आर्यसमाजी दौड़ेंगे तो सनातनधर्मी खड़े होंगे। आर्यसमाजी खड़े होंगे तो सनातनधर्मी बैठ जावेंगे आर्य भाई बैठ जावेंगे तो सनातनधर्मी भाई लेट जावेंगे, आर्य लोग लेट जावेंगे तो 'सनातनी लोगों का 'बोलो हरी राम' हो जावेगा।'

एक सनातन धर्म पर ही क्या निर्भर है संसार भर के सम्प्रदाय और समाज आर्य समाज से प्रेरणा लेते रहे और ले रहे हैं। आज आर्य समाजी शिथिल हैं पर आशा रखनी चाहिए कि वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी कीर्ति का ध्यान रखते हुए फिर से आर्य समाज को उसी गौरवासन पर बिठा देंगे। आर्य समाज राख से दबी हुई अग्नि के समान है जो राख के हटने पर भी चमक दमक के साथ प्रकट हो जाती है। आर्य भाइयोंकी प्रसिद्धिका इससे बढ़कर और क्या प्रमाण मिल सकता है कि महान् योगी श्री अरविन्द घोष ने वैदिक मेगजीन, जिसका सम्पादन स्व० आचार्य रामदेव जी करते थे, में लिखा था—'दयानन्द की भावना सत्य की भावना थी। जहां सत्य देखो, समझ लो कि उस पर दयानन्द की छाप है। देश, धर्म तथा जाति के लिए आवश्यकता का कार्य अवश्यमेव हो जावेगा क्योंकि उसके लिए दयानन्द के अनुयायी मिल जाते हैं।

आर्य समाज अग्नि रूप है पर कभी २ उस अग्नि पर राख आ जाती है जिस के हटाये जाने की परमावश्यकता है। आर्य समाज के प्रचार का ही फल है कि सब मतों में हलचल मच गई और उन्होंने मैंतदे बदलने आरम्भ कर दिये। प्रत्येक सम्प्रदाय अपने विचारों को वैदिक धर्मानुसार बनाने में यत्न-शील है। अंजील, कुरान और पुराणों के चिराग वेद-रूपी ज्योति के सामने मन्द पड़ गये। अमरीका के डाक्टर एण्डरियू जेकसन ने ठीक ही तो कहा था कि 'योगी दयानन्द की शिक्षा की भट्टी में असत्य और अविद्या जल कर राख हो जावेगी।

रूस के महात्मा टालस्टाय को स्व० आचार्य रामदेव जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' भेजा था। इधर उन्हें उसकी रसीद पहुंचती है उधर चौथे दिन समाचार पत्रों में समाचार छप जाता है कि काऊंट टालस्टाय बिना पता दिए घर से निकल गये। अन्ततः उनकी धर्मपत्नी भी उनके पास चली जाती है। आचार्य जी ने उनका साहित्य [illegible]

का अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने वैदिक धर्म के सम्बन्ध में एक रचना रचने की ठानी। इसपर आचार्य जी ने 'सत्यार्थ प्रकाश' भेज दिया परन्तु उनके देहान्त हो जाने के कारण उनकी कृति अपूर्ण रह गयी। जादू वह जो सिर चढ़कर बोले।

प्रोफेसर मेक्स (मोक्ष) मूलर जो वेदों को बच्चों की बिलबिलाहट बताते थे और वैदिक शिक्षा को पाशविक शिक्षा कहते थे 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पढ़कर लिखते हैं—'सब से उत्तम पुस्तक दयानन्द सरस्वती की 'ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका' है। वेदों के बारे में दयानन्द की ही पोजीशन ठीक है।' वह लार्ड मकाले, जिसने लिखा था कि वेदशास्त्रों में इतनी भी बुद्धि की बात नहीं जितनी कुत्ते की कहानी में है, जीवित रहते तो वह भी वेद मतानुयायी हो गए होते।

उस दिन मैं ईसाइयों के मीटिङ्ग रूम में गया। मिशनरी ने सच्चे ईसाई का वही लक्षण किया जो एक 'आर्य' का होता है। ईसाई प्रचारक अब अपने भाषणों में चमत्कारों का वर्णन अलकारों की पुट देकर करने लग पड़े हैं। वे केवल करामातें बताकर और ईसामसीह के सूली पर चढ़ाये जाने की दुर्घटना सुनाकर हिन्दुओं को ईसाई नहीं बना सकते। यह है आर्यसमाज का प्रभाव।

स्व० आचार्य राम देव जी ने गुरुकुलकांगड़ी के वार्षिकोत्सव सन् १६१३ पर दिये गये अपने व्याख्यानों में कहा था कि सर सैयद अहमद खां ने कुरान के अनुवाद में लिखा था—'यदि बहिश्त (स्वर्ग) के वही अर्थ हैं जो आज कल लिये जाते हैं तो उससे चकला (वेश्यालय) अच्छा है।' उन्हीं ने महर्षि दयानन्द के निर्वाण पर लिखा था—'आज सचमुच एक फरिश्ता (देवता) की मृत्यु हुई है।' क्या यह हमारे आचार्य की शिक्षा का प्रभाव नहीं?

मालवीय जी ने एक बार आर्य समाजियों को आह्वान किया (चैलेंज दिया था) जिस में उन्होंने कहा था—'पुराण सर्वथा वेदानुकूल हैं। इनमें कोई बात वेद विरुद्ध नहीं। आर्य समाजी सनातन धर्मियों को तो चैलञ्ज देते हैं मुझे क्यों नहीं देते? मैं उन का चैलंज स्वीकार करता हूं।' आर्य समाज के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी पं० बुद्धदेव जी ने लिखित स्वीकृति पंडित जी के पास भेजी और उसका उत्तर न मिलने पर ला० रोशनलाल जी बैरिस्टर स्वयं मालवीय जी के पास गए और पत्रोत्तर मांगा तो उन्होंने अपना भागवत का पुस्तक खोल कर उसमें स्थान २ पर लाल पेन्सिल के चिन्ह दिखलाये और कहा—'मैं तो इन गपोड़ों को मिलावट(प्रक्षेप) मानता हूं। इन को छोड़ कर शेष भागवत पर जहां चाहो शास्त्रार्थ कर लो।' क्या यह ऋषि दयानन्द की दिग्विजय नहीं?

टाइम्ज़ आफ इण्डिया संवाददाता ने एक बार लिखा था कि सिखों में भी धार्मिक जीवन आर्य-समाज ने संचार किया है। सारांश यह कि सब सम्प्रदाय वैदिक धर्म की शरण में आरहे हैं परन्तु वेद प्रचार का प्रतिनिधि आर्य समाज उदासीन है। इसकी उन्नति रुकी नहीं तो गति अवश्य मन्द पड़ गयी है। आज लोहा गर्म है। केवल चोट लगाने की आवश्यकता है। यदि लोहा ठण्डा हो गया तो वर्षों का काम शताब्दियों पर जा पड़ेगा अतः आर्य भाइयों को खूब दौड़ लगानी चाहिए अन्यथा आर्य समाज रहे या न रहे परन्तु दयानन्द ने जो गति

वेदों को मानते हो तो वेदों को जानो भी

[आचार्य श्री स्वर्गीय नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ज्वालापुर हरिद्वार]

सृष्टि की आदि में जब ऋषि ध्यानावस्थित बैठे थे तब उनके अन्तःकरण में वेद फुरे । उनके अन्तःकरण में वेदों का प्रकाश हुआ—ऋषियों ने वेद देखे, ऋषियों ने वेद बनाये नहीं। इसीलिए ऋषियों को मन्त्र द्रष्टा कहा जाता है, मन्त्रकर्ता नहीं मुक्तात्माओं में जो प्रथम ४ ऋषि लौटे उन चारों पर चारों वेद प्रगट हुए। उन चार ऋषियों के चार नाम थे। अग्नि वायु, आदित्य, अङ्गिरा। इन पर क्रम से चार वेद प्रकट हुए ऋग्, यजुः साम, अथर्व

पहिले पहिले

जब वेद परम्परा चली तब गुरु शिष्य रूप में चली। गुरु अर्थात ऋषि अपने शिष्यों को कण्ठस्थ ही सब कुछ सुनाते, पढ़ते-पढ़ाते थे ऋषि वेदों को साक्षात किये हुए रहते थे। पता नहीं यह कण्ठस्थ-प्रथा कबतक चली।

विचित्र धारणाशक्ति

उन ऋषियों की विचित्र धारणाशक्ति रही होगी जो इस प्रकार कण्ठ-परम्परा से वेदों का अध्ययन अध्यापन चलता रहा—

निरुक्त कार कहते है

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽ
वरे भ्योऽसाक्षात्कृत धर्मभ्यः उपदेशेन

चलायी है वह रोके भी नहीं रुक सकती। हां, यश आर्य समाज को नहीं किसी और को मिलेगा।

महर्षि दयानन्द के प्राण, महर्षि का धर्म, महर्षि का उद्देश्य और महर्षि का आधार 'वेद' थे। वेद को त्याग कर वह किसी से सन्धि करने को त्यार न थे। आज का सभ्य संसार आगे को नहीं पीछे को जाना चाहता है अर्थात् पिछले धर्म को अपनाना चाहता है और वह पवित्र वेद का धर्म है जिस के प्रचार के लिए भगवान् दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी । आर्यसमाजी ऋषि ऋण से तभी उऋण हो सकते हैं जब वे लड़ाई झगड़े, स्वार्थ और पदलोलुपता छोड़ कर निःस्वार्थ भाव से वेद प्रचार करेंगे । वेद के कारण ही महर्षि अमर हैं। उनकी मृत्यु उस दिन होगी जिस दिन वेद के प्रति हम आर्यों की श्रद्धा न रहेगी । बातें बनाने से तो बालर्नि, लण्डन न्यूयार्क और मक्के मदीने में वेद प्रचार की धूम मचने से रही और न ही रोम में पोप के महल पर 'ओ३म' की पताका लहरायेगी । आओ आर्य भाइयो ! महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस पर प्रतिज्ञा करें कि हमें विश्वजगत् छोड़ दे, हमारे प्राण चले जावें पर हम वेद को न त्यागेंगे।

बोलो वेद रक्षक महर्षि दयानन्द की जय

—०—०—

मन्त्रान्संप्रादुः।

पहिले पहिले ऋषि वेदों को स्वयं साक्षात् किए हुए रहते थे। वे अपने अगले शिष्यों को सब कुछ कण्ठस्थ ही बतलाया करते थे।

उपदेशायग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च

आखिर यह कण्ठस्थ परम्परा कब तक चलती। ऋषि लोग सब कुछ कण्ठपरम्परा से, मौखिक परम्परा द्वारा वेदाध्ययन वेदाध्यापन में अलकसाने लगे।

तब

उन्होंने बिल्म ग्रहणाय अर्थात् थोड़े में वेदों का अर्थ जाना जाए। वेदों का भेद पाया जाय, इसलिए वेदाङ्गादि बनाए।

फिर

कण्ठस्थ परम्परा ढीली पड़ी और साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन परम्परा चल पड़ी—

जब बुद्धि का ह्रास

बढ़ गया तब एक-एक समुदाय ने एक-एक वेद सम्भालना प्रारम्भ किया। तब ऋग्वेदियों की, यजुर्वेदियों की, सामवेदियों की, अथर्ववेदियों की पृथक पृथक वेदाध्ययन—वेदाध्यापन—पद्धतिएं चल पड़ीं। जो चारों वेदों को सम्भाल सकते थे वे त्रिवेदी, जो दो वेदों को सम्भाल सकते थे वे द्विवेदी आदि कहे जाने लगे—

इस प्रकार

यह वेदों की परम्परा न जाने कब तक चलती रही।

धीरे धीरे

वेदाध्ययन—परम्परा सीमित होती गई और अध्ययन-अध्यापन का रुख वेदांगों की ओर लगा और जिसकी जितनी धारणा शक्ति रही वह, एक एक, दो-दो शास्त्रों के पण्डित होने लगे और वेद परम्परा वालों का ध्यान शास्त्र परम्परा की ओर लगा—और वैयाकरण, नैयायिक, मीमांसक आदि बनने लगे।

और उधर

वैदिक परम्परा में सार्थक वेदाध्ययन परम्परा ढीली पड़ी और वेदों की केवल कण्ठस्थ परम्परा रहने लगी।

किसी ने ठीक ही

कहा कि—

वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं,
शास्त्रैर्विहीनाश्च पुराण पाठाः।
पुराण हीनाः कवयो भवन्ति,
भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति।।

लोग वेद वेदों को छोड़कर शास्त्रों के पीछे पड़ गये। जो शास्त्रों को संभालने में असमर्थ रहे वे पुराणों को लेकर पुराणपाठी हो गये। जो पुराणों को न सम्भाल सके वे खाली भागवत को ही ले बैठे।

जब

हम पर विदेशी और विधर्मी शासन रहा, सैंकड़ों वर्षों तक तब भी हमने हमारे पूर्वजों ने अपनी परम्पराओं को किस प्रकार सुरक्षित रखा—

उस समय

वेद परम्परा अथवा शास्त्र परम्परा वालों में यह भावना काम करती रही कि—

'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः,
षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति'

(महाभाष्य)

ब्राह्मण अथवा द्विजों को चाहिए कि वे कर्तव्य बुद्धि से—अपना अपना धर्म समझ कर ही धार्मिक बुद्धि से वेद—वेदाङ्गों का सार्थिक अध्ययन-अध्यापन करें करायें।

क्यों कि

जब वैदिक परम्परा का राज्य और अनुशासन चलता था तब वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था थी और तदनुसार सब काम चलते रहे।

पर, जब से

विदेशी विधर्मी शासन में अर्थकरी विद्या की ओर ध्यान गया तब से समस्त वेद वेदाङ्ग परम्परायें ढीली और एक देशी और प्रदेशीय बन गईं।

धीरे-धीरे

वेद वेदाङ्गाध्ययनके प्रबल केन्द्र ढीले पड़ गये—जिन्होंने किसी प्रकार अपनी-अपनी परम्पराओं को किसी प्रकार संभाल रखा वे धन्य हैं जिनकी कृपा से वेदशास्त्रादि के दर्शन तो हो जाते हैं।

जब दयानन्द आये

तब उन्होंने देखा कि विदेशी और विधर्मी राज्य भारत में अपने पञ्जे गाड़ चुका है। विदेशी शिक्षा दीक्षा जोरों पर है। प्राचीन धर्म कर्म, संस्कृति सभ्यता का लोप होता जाता है।

तब

वेदों का महानाद किया और वेदों की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित किया

और कहा

भारतीयो। किधर भटक रहे हो। घर में ही सब कुछ है उसी को टटोलो और वेदों का नाम इस जोर से गूंजा कि संसार चकित हो गया कि यह कौन स्वामी आगया और इस युग में यह क्या वेद, वैदिकधर्म और वैदिकसंस्कृति और वैदिक सभ्यता की बातें करता है—

पहिले पहिले

भारतीय जन ही स्वा० जी के विरोध में रहे—विलायत के लोग तो रहते ही पर अन्त में संसार मान गया कि वेदों के ज्ञान के बिना दुःखों से छुटकारा न होगा।

अब सब संसार

वेदों को मानने लगा है और वेदों का मान करने लगा है पर वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सुदीर्घ प्रयत्न नहीं हो रहा है—

अभी

स्वराज्य हो जाने पर भी भारतीयों का ध्यान पाश्चात्य शिक्षा दीक्षा में ही संलग्न है। पाश्चात्य ढंग के विश्वविद्यालयों का ही बोल बाला है। संस्कृत विश्वविद्यालय जो थोड़े बहुत हैं वे भी पाश्चात्य रंग-ढंग के बनते जा रहे हैं इसलिए वैदिक धर्म और संस्कृत विद्या के अभिमानियों के संमुख बड़ी चिन्ता का प्रश्न है कि अब हमारा भविष्य क्या होगा और हम किधर भटक रहे हैं।

हमारा उद्धारतो

केवल वेदों को मानने में नहीं, उद्धार है वेदों को जानने में।

निर्मली का बीज

निर्मली का बीज घिसकर गदले जल में मिलाने से गदला जल स्वच्छ, पीनेयोग्य हो जाता है। खाली निर्मली के बीज का नाम लेने से नहीं। यही बात वेदों की है।

केवल वेद वेद

कहते रहने से वेदामृत नहीं मिलेगा उसका जब अर्थ पूर्वक यथार्थ ज्ञान प्राप्त होगा तभी संसार का यथार्थ कल्याण होगा—

स्वामी दयानन्द

कह गए

" वेदा देव "

वेदों से ही तुम्हें सब कुछ मिलेगा

" वेद एव "

वेद ही सब कुछ है

" वेदे एव "

वेद में ही सब कुछ ज्ञान विज्ञान भरा है।

"वेदप्रणिहितो धर्मः,
अधर्मस्तद्विपर्ययः ॥"

वेदों में ही जो कहा गया है वही धर्म है। उससे सब विपरीत सब अधर्म है।

उसी धर्म से

तुम्हारे सब सांसारिक कार्य पूर्ण होंगे। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सधेंगे।

'स किमर्थं न सेव्यते'

(महाभारत)

उसी धर्म की—कल्प वृक्ष की सेवा क्यों नहीं करते हो।

०—०—०

आई दिवाली

(रचयिता श्री हरवंश लाल जी "हंस" आर्य गायक)

आई दिवाली हमें कुछ बताने। यतिवर ऋषि का संदेशा सुनाने ॥ आई...
उठो तुम सजग हो स्वकर्त्तव्य जानो दम्भों की दीवार का नाश ठानों
कौन आएगा पाठ तुम्हें यह पढ़ाने। आई दिवाली हमें कुछ बताने ॥
जिधर देखते हो उधर है अन्धेरा अब भी है पापों का यथापूर्व डेरा
जड़ से इसे तुम हिलाओ तो जाने। आई दिवाली हमें कुछ बताने ॥
लिए आर्यों की सी निकालो उमंगें वही हंस लेख श्रद्धा सी तरंगें
बनो आज वैदिक धर्म के दिवाने। आई दिवाली हमें कुछ बताने ॥
निर्वाण इस दिन ऋषि का हुआ था 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' कहा था
ऋषि ऋण चुकाओ तभी 'हंस' जाने। आई दिवाली हमें कुछ बताने ॥

सर्वतोमुख सुधारक महर्षि दयानन्दजी का अद्भुत कार्य

सुप्रसिद्ध महापुरुषों द्वारा समर्पित कुछ श्रद्धाञ्जलियां

(ले०—श्री धर्मदेव जी विद्या मार्तण्ड देवमुनी वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर)

आदर्श सर्वतोमुख सुधारक परम श्रद्धेय महर्षि दयानन्द बड़े उदार विचारों के व्यक्ति थे। उन में साम्प्रदायिक द्वेष वा संकीर्णता का लवलेश भी न था। इसी लिये सब जातियों के उदार विद्वान् उनका मान करते थे। अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी के संस्थापक सर सय्यद अहमदखां ने महर्षि दयानन्द जी के ३० अक्तूबर सन १८८३ को बलिदान के ठीक पश्चात् ६ नवम्बर सन १८८३ के अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गैज़ेट में लिखा था कि—

'निहायत अफसोस की बात है कि स्वामी दयानन्द साहेब ने जो संस्कृतके बड़े (विद्वान) और वेद के बहुत मुहक्किक (समर्थक) थे ३० अक्टूबर ७ बजे शाम को अजमेर में इन्तकाल किया। इलावा इल्मी फजल (उत्तम विद्या के अतिरिक्त) निहायत नेक और दरवेशसिफ्त (साधु स्वभाव) आदमी थे। इनके मोहतकिद (अनुयायी) इनको देवता मानते थे और बेशक वे इसी लायक थे। वे सिर्फ ज्योतिस्वरूप निराकार के सिवाय दूसरे की पूजा जायज (विहित) नहीं रखते थे। हम से और स्वामी दयानन्द मरहूम (स्वर्गीय) से बहुत मुलाकात थी। हम हमेशा इनका निहायत अदब (आदर) करते थे कि सभी मजहब वालों को इनका अदब लाजिमी (आवश्यक) था। बहरहाल ऐसे शख्स थे जिनका मसल (उपमा) इस वक्त हिन्दुस्तान में नहीं है। और हरएक शख्स को उनकी वफात (मृत्यु) का गम (शोक) करना लाजमी है कि ऐसा बेनजीर शख्स (अनुपम मनुष्य) इनके दरमयान से जाता रहा।' (अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट ६-११-१८८३)

सर सय्यद अहमदखां जसे सुप्रसिद्ध मुसलमान नेता की ओर से ऐसी श्रद्धांजलि अर्पित की जानी महर्षि दयानन्द की असाम्प्रदायिकता का ज्वलन्त प्रमाण है। इससे उन लोगों की आंखें खुल जानी चाहिए जो उन्हें मुसलमानों का शत्रु समझते हैं। महर्षि दयानन्द का वैयक्तिक जीवन बहुत ही उच्च कोटि का था। साथ ही वे बड़े कर्मयोगी सुधारक थे। जातिभेद और अस्पृश्यता आदि दूर करने का उन्होंने घोर परिश्रम किया था। स्त्रियों की शोचनीय अवस्था को दूर करने के लिए भी उनका प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय था।

आदर्श योगी दयानन्द

महर्षि दयानन्द अपने समय के सब से बड़े योगी थे। उनका स्थान संसार के सर्वोच्च योगियों और विद्वानों में है। उनकी शक्ति अद्भुत थी। उनका हृदय बड़ा विशाल था। सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी ने महर्षि दयानन्द के पवित्र चरित्र का चित्रण इस प्रकार के शब्दों में किया है—

दयानन्द दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक तथा विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाला योद्धा था।

वह मनुष्यों और संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली प्रकृति की बाधाओं का वीर विजेता था। उस के व्यक्तित्व की व्याख्या यों की जा सकती है—

'एक मनुष्य जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथोंमें इतनी शक्ति है कि जीवन तत्व में से अभीष्ट स्वरूपवाली मूर्ति घड़ सके तथा कल्पनाको क्रिया में परिणत कर सके वे स्वयम् एक दृढ चट्टान थे। उनमें ऐसी दृढ़ शक्ति थी कि ट्टानपर घन चला कर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सके।'

महर्षि दयानन्द के वेदविषयक मन्तव्यका प्रबल समर्थन करते हुए योगी अरविन्द जी ने लिखा था कि 'महर्षि दयानन्द की इस धारणा में कि वेद में धर्म और विज्ञान दोनोंकी सच्चाइयां पाई जाती हैं कोई उपहासास्पद वा कल्पित बात नहीं है।... वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा यह विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या कोई भी हो, महर्षि दयानन्द का यथार्थ निर्देशों के प्रथम आविर्भावक के रूप में सदा मान किया जायगा। पुराने अज्ञान और पुराने युग की मिथ्याज्ञान की अव्यवस्था और अस्पष्टता के बीच में यह उसकी ऋषि दृष्टि थी कि जिसने सचाई को निकाल लिया और उसे वास्तविकता के साथ बांध दिया। समय ने जिन द्वारों को बन्द कर रखा था उनकी चाबियों को उसीने पा लिया और बन्द पड़े हुए स्त्रोतकी मुहरों को उसी ने तोड़ कर परे फेंक दिया।' सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी की यह श्रद्धाञ्जलि अत्यन्त महत्वपूर्ण है इस में सन्देह नहीं हो सकता

नवभारत निर्माता महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द का नाम नवीन भारत के निर्माताओं में सदा आदर के साथ लिया जायगा। उन्होंने केवल धार्मिक और सामाजिक जागृति ही जनता में उत्पन्न नहीं की बल्कि स्वराज्य का महत्व भी अपने देशवासियों के सम्मुख स्पष्ट शब्दों में रखते हुए मर्मवेदनाके साथ अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—

'अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्योंका अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है सो भी विदेशियों से पादाक्रान्त हो रहा है। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकारक दुःख भोगने पड़ते है कोई कितना भी करे परन्तु जो 'स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।' अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, मातापिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक पृथक शिक्षा, अलग अलग व्यवहारका विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।' (सत्यार्थ प्रकाश, अष्टम समुल्लास)

इस से बढ़ कर स्वराज्यके महत्वसूचक वाक्य क्या हो सकते हैं ?

सत्यार्थ प्रकाशके दशम समुल्लास में महर्षि ने लिखा है कि

'जब स्वदेशमें ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार व राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःखके दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता।'

'आर्याभिविनय' नामक प्रार्थना पुस्तक में भी महर्षि दयानन्द ने अनेक स्थानों पर इस प्रकार की प्रार्थनाएं लिखी हैं कि...

अन्य देशीय राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।'

(पृ. २२४, रामलाल कपूर, सं० १९९४)

'ऋजुनीति नो वरुणः' इस ऋग्वेद मन्त्र की व्याख्या में महर्षि ने आर्याभिविनय में लिखा है कि···

'हमपर सहाय करो जिससे सुनीतियुक्त होकर हमारा स्वराज्यत्य अत्यन्त बढ़े।'

राष्ट्रीय एकता के लिए एक राष्ट्र भाषा की आवश्यकता को अनुभव करते हुए महर्षि दयानन्द ने ही गत शताब्दी में न केवल मातृभाषा गुजराती होते हुए भी आर्यभाषा (हिंदी) में सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ लिखे बल्कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा की स्थिति दिलाने के लिए लाखों हस्ताक्षर कराने की योजना बनाई। राष्ट्र की साम्पत्तिक और शारीरिक अवस्था को उन्नत करने के लिए गोवध निषेध और गोपालन अत्यावश्यक है यह जान कर उन्होंने न केवल 'गोकरुणानिधि' आदि पुस्तकें लिखी अपितु लाखों हस्ताक्षर करा कर महारानी विक्टोरिया के पास भिजवाने का यत्न किया। राष्ट्रीय एकता और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से जातिभेद और अस्पृश्यता को अत्यन्त हानिकारक समझ कर उन्होंने उनके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया। बालविवाह, विषम विवाह, बाधित वैधव्य, स्त्रीशिक्षा का निषेध आदि कुरीतियों को राष्ट्रीय दृष्टि से भी अत्यन्त हानिकार समझते हुए उन्होंने इनका प्रबल विरोध किया तथा उन्हें वेदादि सत्यशास्त्रों की शिक्षा के विरुद्ध बताया। राष्ट्रीय महासभा के उस समय के अध्यक्ष स्वः श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी ने ७ अक्टू. १९५० में आर्यसमाज चौक प्रयाग में ठीक कहा था कि—

मैं स्वामी दयानन्द जी को साम्प्रदायिक नहीं मानता। मेरे विचार में वे महान् थे। उनका धर्म विस्तृत था। मैं उनको राजनैतिक पुरुष भी मानता हूं।'

ऐसे सर्वतोमुख आदर्श सुधारक और कर्मयोगी महर्षि दयानन्द का स्मरण सब आर्यों में नई स्फूर्ति और नवजीवन का सचार कर दे जिससे हम सच्चे आर्य बनकर संसार में आर्यत्व का प्रसार कर सकें॥

o—o—o

आर्य समाज खन्ना (लुधियाना)

आर्य समाज खन्ना में २८. ९. ६२ से ८. १०. ६२ तक पं चन्द्रसेन जी शास्त्री और ताराचन्द जी भजनीक की कथा और भजन होते रहे। जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ५. १०. ६२ को श्री राजेन्द्र कुमार के घर वैदिक रीति से पं चन्द्रसैन जी शास्त्री ने विवाह संस्कार कराया। इस अवसर पर सभा को ३१/- वधू पक्ष की तरफ से, और वर पक्ष की ओर से ११/- दान मिला। वेद प्रचार के लिए ८४. २५ न. पैसे कुल धन प्राप्त हुआ।

मन्त्री आर्यसमाज, खन्ना

पुनः जागृत हों !

(ले०-श्री सुदर्शन जी 'अंशु' नई दिल्ली)

अग्नि का गुण है कि जो कोई उस के समीप आएगा अथवा उस में पड़ जाएगा वह वस्तु भी ठीक उसी का रूप धारण कर लेगी और लाल से जब अधिक ताप होने पर सफेद हो चमकती है तब कुछ समय के लिए यदि उसे भट्टी से निकाल भी दिया जावे तब भी वह निज रूप को शीघ्र परिवर्तित नहीं करती। ठीक यही स्थिति उस आर्य कहलाने अथवा समझने वाले की चाहिए और उस को इस भांति भट्टी का रूप धारण करना चाहिए जो निज चमक, प्रकाश एवं उष्णता से सब को निज वश में कर ले सब को उस के समीप से हार्दिक एवं मानसिक सुखका आभास हो। ध्यान से देखिए यही एक ऐसा गुण है जिस से सर्व धर्मावलम्बी आकर्षित एव प्रभावित हो सकते हैं।

आज दीवाली है न ? सब व्यापारी अपना लेखा-जोखा करेंगे। नाना प्रकार के पूजा कीर्तन होंगे, घर एवं स्थान प्रकाशित होगा। बाह्य रूप से नाना प्रकार के ढोंग रचे जावेंगे। इस दिन हर तरह का बाजार गर्म होगा सब को हर्ष है कि आज मेरी अधिक बिक्री होगी। क्या बनिए और हलवाई साथ में पंसारी और कसाई, सब आशा पर अभिलाषा लगाए मन के लड्डू भोर रहे हैं रात्रि को कुबेर की पूजा भी करेंगे। इतना ही नहीं बल्कि आज खुशी है त्यौहार है चलो मांस शराब पर ही हाथ साफ करें और रात्रि तो जुए के लिए सुरक्षित है ही। यह है संक्षेप में रूप रेखा आज के मानव की जिन में रहने वाले हजारों क्यों लाखों की संख्या है उन लोगों की जो अपने को आर्य कहलाने एवं समझने में गर्व अनुभव करते हैं, परन्तु क्या वे लोग अन्य लोगों से पृथक हैं कदापि नहीं, आधुनिक आर्य की पहचान दूर से क्या समीप से भी होनी असम्भव है। तो होती कब है ? जब वह सज्जन प्रवेश करें समाज में तभी न। परन्तु समय था जब आर्य की पहचान दूर से ही हो जाती थी, उसकी औरत और ईमानदारी इतनी थी कि लोग उस के वाक्य को पाषाण-रेखा समझते थे उस के आदर्श त्याग मय जीवन एवं देश भक्ति और सौहार्द की लोग प्रशंसा करते थे, परन्तु आज युग बदल गया, आज आर्यों में विवाद चल पड़े हैं, कुछेक लोग निज प्रण के इतने कच्चे हैं जितना सूत का कच्चा धागा। स्वार्थी इतने कि अपना कार्य हुआ और किनारा कर दिया। कोई किसी पर भरोसा करे यह तो अब फॉर्मूला ही फेल हो गया।

समय था जब कि समीप बैठे बातचीत एवं उस के सद् व्यवहार से ही लोग मुग्ध-एवं प्रभावित हो जाते थे परन्तु यह गुण सब कहां विचरने चले गए, आज एक प्रचारक भी यह कहते सुनाई देता है...'भाई बोलने का ढंग आ गया है अब तो

जिधर मुंह करेंगे मीठा ही पड़ेगा'...खेद है! ऐसे लोग भी लोक कल्याण को पीछे त्याग धन के लोभ एवं लालसा वश दूसरी ओर किनारा करना चाहते हैं। न जाने ये लोग उन हुतात्मायों को कैसे भूल जाते हैं जो दिन-रात प्रचार के कार्य में भी बताते थे एवं खाने पीने की भी सुध नहीं थी उन में, भूल गए क्यों लेखराम को और काली कमली वाले बाबा एवं म० हंसराज आदि को। क्या ये लोग दूसरों को सुमार्ग पर चलाते हुए निज भट्ठी का कुछ भी उपयोग नहीं करेंगे क्या इनकी उष्णता किसी ठिठुर रहे के लिए उपयोगी नहीं हो सकती।

आईए पुनः जागृत हो कर संसार को जागृत करने वाले महान उपकारक एवं निडर योगी महर्षि दयानन्द के जीवन में से एक पुलकित एवं सन्देश देने वाली कली का अवलोकन करते हुए आज उन्हें उनके निर्वाण दिवस के उपलक्ष्य में श्रद्धांजलि अर्पित करें। निम्न घटना से पाठक देखेंगे कि किस प्रकार आगन्तुक उनके समीप आते ही मुग्ध एवं प्रभावित हो जाते थे।

अमृतसर मिशन स्कूल में बाबू ज्ञानसिंह नामक अध्यापक थे, उन्हीं दिनों पंडित खड़गसिंह नामक व्यक्ति बारह वर्ष पूर्व ईसाई बन चुके थे। इतना ही नहीं बल्कि वह एक अच्छा खासा ईसाई धर्मका विद्वान समझा जाता था, इन्हीं पण्डित जी ने ज्ञान सिंह से पूछा आप को पता है कि मुझे किस से शास्त्रार्थ करने को बुलाया है? बाबू जी ने कहा कि उन का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है और वह सरदार भगवान सिंह की वाटिका में ठहरे हैं। तब पण्डित खड़ग सिंह ने कहा कि मुझे उन के पास ले चलो, वहां जाकर एक ऐसा आश्चर्य हुआ जो आज तक कभी नहीं देखा था।

पण्डित खड़ग सिंह ने जाते ही नमस्कार किया और स्वामी जी के बगल में बैठ गया, स्वामी जी के साथ जिन लोगों की बात चीत हो रही थी उन को खड़ग सिंह ने स्वामी जी की ओर से उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया। एक ब्राह्मण ने आक्षेप किया कि हम स्वामी जी से बात चीत कर रहे हैं, आप से नहीं। खड़ग सिंह ने कहा कि जब मुझ से आप को संतोष न हो तो स्वामी जी से पूछ लेना। बस फिर क्या ईसाई मत तो मानों उनके दर्शन करने मात्र से ही सर्वथा निकल गया और वह स्वामी जी के पक्के भक्त बन गए। कुछ कालोपरांत अपनी दो कन्यायों का विवाह भी हिन्दुओं में ही किया और आर्य समाज का उपदेश देने लगे। स्थानीय पादरी वैरिंग ने जब उक्त समाचार सुना तो बहुत घबराया और उस ने पादरी के० एन० बनर्जी को कलकत्ता में तार द्वारा सूचित किया परन्तु वह भी न आया।'

पाठक समझ गए होंगे कि किस प्रकार महर्षि के दर्शन मात्र से ही बड़े से बड़ा ईसाई प्रभावित हो पुनः वैदिक धर्म को ग्रहण करता है। उक्त घटना एवं लेख का सार यही है कि सब नर नारी, वास्तव में आर्य अर्थात् श्रेष्ठ बनने का प्रयास करें, हमारे व्यवहार व वर्ताव से ही लोग प्रभावित एवं संतुष्ट हो जावें। केवल मात्र प्रचार से ही कार्य सिद्ध नहीं हो सकता।

गीत

(ले० श्री दीपचन्द्र जी 'निर्मोही' आर्य हाईस्कूल पानीपत)

प्यारे मानव भूल न जाना ऋषि की अमर कहानी।
जीवन भर ब्रह्मचारी रह कर आज्ञा गुरु की मानी॥

भूल चुका था नर ईश्वर को अज्ञानी बन कर।
मानवता सब भस्म हुई थी दानवता में जलकर॥

सत्य, अहिंसा तड़फ रहे थे पाप कर्म में फसकर।
दयाहीनता पनप रही थी निष्ठुर दिल में पल कर॥

बहिष्कार इन सब का करने ऋषि ने मन में ठानी।
प्यारे मानव भूल न जाना ऋषि की अमर कहानी॥

हिन्दु, इसाई-मुसलिम बनते, अपना धर्म छोड़कर।
अविद्या की ओर बढ़े थे, विद्या से मुख मोड़कर॥

पतन हुआ था यों हिन्दु का, मर्यादा को तोड़कर।
द्वेष, ईर्षा बढ़े हुए थे, आपस में ही होड़कर॥

ज्ञान प्रकाश दिया ऋषिवर ने, थे जो नर अज्ञानी।
प्यारे मानव भूल न जाना, ऋषि की अमर कहानी॥

दीप जलाकर अनगिन उसने अपना दीप बुझाया।
सोते हुए देश भारत को, उसने आन जगाया॥

ऋषियों की भूमि से उसने दानव दूर भगाया।
मझधार पड़े अपने भारत का बेड़ा पार लगाया॥

उसके ऋण से ऋणी हुआ है, भारत का हर प्राणी।
प्यारे मानव भूल न जाना, ऋषि की अमर कहानी॥

ऋषि का स्मारक दिवस

(श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रयाग)

भारत निवासियों के लिए दीवाली भिन्न २ प्रकार के संदेश लाती है परन्तु आर्य समाजियों के लिए तो यह एक ही संदेश देती है अर्थात् आर्य समाज के प्रवर्तक, इस युग के महान् निर्माता तथा आर्य संस्कृति के एक मात्र उद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने अपनी जीवन ज्योति से आत्मिक, चारित्रिक बौद्धिक अन्धकार को दूर करने का महान् काम किया। आर्य समाजियों के लिए एक अत्यन्त कठिनता छोड़ गये अर्थात् वेदों की शिक्षा को संसार में फैलाओ। बौद्धों ने कहा कि तुम महात्मा बुद्ध की शरण में आओ। ईसाईयों ने कहा कि तुम ईसा को खुदा का इकलौता पुत्र मानकर उसकी पूजा करो। मुसलमानों ने कहा कि मुहम्मद साहिब खुदा के पैगम्बर हैं। उनकी सिफारिश मुक्ति के लिए आवश्यक है। भारत के हिन्दु महात्माओं ने अपने नाम पर सम्प्रदायों की बुनियाद रखी। सिख लोग न केवल बाबा नानक को ही संसार का तारक मानते हैं अपितु उनका यह भी विश्वास है कि जितने गुरु हुए हैं वे भी नानक जी की आत्मा थे। नानक सब कुछ हैं, उनकी पूजा आवश्यक है। किन्तु स्वामी दयानन्द एक ऐसे धार्मिक ऋषि हुए जिन्होंने लोगों से कहा कि मैं उपासक हूं उपास्य नहीं। तुम्हारा उपास्य देव एक ईश्वर है। मनुष्य की पूजा करना पाप है। ईश्वर की पूजा करना प्रत्येक का कर्त्तव्य है।

बड़े लोगों की सबसे बड़ी और अन्तिम दुर्बलता यह होती है कि वे नाम चाहते हैं। स्वामी दयानन्द में यह भी नहीं थी। वह कहा करते थे कि मेरी जात को न देखो मेरा नाम न लो। उस प्रभु का नाम लो जिस का मैं भी उपासक हूं और प्रत्येक व्यक्ति को उसी का उपासक होना चाहिए। उन्होंने वेदों की शिक्षा तथा वैदिक ऋषियों के उपदेशों को विश्व के सामने रखा। यहां तक त्याग और उत्सर्ग किया कि अपनी वसीयत में लिख दिया कि मेरी भस्म को खेत में फैंक दिया जावे। मेरी अस्थियों पर कोई समाध या स्मारक न बनाया जाये जिससे मूर्खजन कहीं भूल से मेरी पूजा न करने लग जायें। आर्यसमाज ने अब तक इस पर आचरण किया है। किसी आर्यसमाज को यह विचार तक भी नहीं होता कि स्वामी दयानन्द की पूजा करे। मैं एक बार ट्रावंकोर गया। वहां की राजधानी ट्रवेंड्रम से कुछ दूरी पर वरकला एक स्थान है, वहां एक महात्मा नारायण की समाधी है। दक्षिण में नारायण स्वामी के लाखों अनुयायी हैं। नारायण स्वामी मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे, वह एक ईश्वर को मानते थे। वह मर गये किन्तु सारी आयु मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए भी वह अपने चेलों से मूर्ति पूजा छुड़ा न सके।

जहां उनका मृतक संस्कार हुआ था, वहां एक स्मारक है। एक कोठड़ी है जिसमें उनके कपड़े और खड़ाऊं आदि रखे हैं। हर वर्ष मेला लगता है और चेले उनके कपड़ों आदि को पूजते हैं। उसी पूजा को मुक्ति का साधन मानते हैं।

वह समाध देख कर मुझे महर्षि दयानन्द का ध्यान आया कि यदि स्वामी दयानन्द अपने अनुयायियों को यह कड़ा आदेश न दे जाते तो उनकी भी सैंकड़ों मूर्तियां होतीं तथा उन पर माथा टेक कर लोग अपनी मुक्ति की तैयारी करते। स्वामी दयानन्द ने हमें कितना बड़ा पाठ पढ़ाया कि गुरु-गुरु है उपास्य नहीं। जो गुरु अपने को पुजवाता है वह गुरु नहीं है। ऐसी शिक्षा आज तक किसी अन्य गुरु ने नहीं दी सिवाय उन वैदिक ऋषियों के जिन्होंने अपने नाम पर कोई सम्प्रदाय नहीं चलाया। इसी लिए तो पतञ्जलि महर्षि ने अपने योग दर्शन में लिखा था कि सब गुरुओं का गुरु तो ईश्वर है, क्योंकि उसी सूर्य की ज्योति से सारे मानवीय दीपक प्रकाशित होते हैं। इस लिए उसी की उपासना उचित है। मुझे मत पूजो—यह है स्वामी दयानन्द की शिक्षा।

निषेधात्मक शिक्षा विधि के लिए ही दी जाती है। जब आप को कोई वस्तु किसी पात्र में रखनी होती है तो पहले आप उस पात्र को शुद्ध करते हैं। यदि किसी नली में आप पानी को चढ़ाना चाहते हैं तो आवश्यक है कि उसकी हवा निकाल ली जाए। इसी प्रकार यदि परमात्मा की भक्ति को अन्दर प्रविष्ट करना चाहते हैं तो सांसारिक विषय-तृष्णा की हवा को बाहिर निकाल दो। स्वामी दयानन्द ने अपने नाम की एषणा को अपने अन्दर से निकाला, तभी तो उस दिल में ईश्वर-विश्वास स्थान पा सका। जो नेता अपने नाम के लिए मरता है उसे अपने गुरु की ओर दृष्टि दौड़ानी चाहिए। जब तक हम में यह अहम्भाव शेष है तब तक हम न ईश्वर के भक्त हो सकते हैं और न ही संसार की भक्ति कर सकते हैं।

वेदों का प्रचार अतीत के इन वर्षों में कितना हुआ है और उस प्रचार में प्रत्येक आर्य ने कितना भाग लिया है? यह सोचना है। आज जबकि हम ऋषिस्मारक दिवस मनायेंगे। दीपमाला का यही सन्देश है। दीवाली हमारे सामने है और आर्य समाज का काम हमारे सामने है। बीसियों कार्य हैं जिनको हमारे पुराने वृद्ध आर्य सज्जनों ने आरम्भ किया। उन में से बहुत से अधूरे पड़े हैं। ऐसी अवस्था में यदि किसी ओर से यह ध्वनि आती है कि आर्य समाज का काम पूरा हो चुका और अब उसे कुछ करना शेष नहीं है तो मुझे आश्चर्य होता है। लोगों को क्या हो गया कि वे अपने कार्य का अनुमान नहीं कर सकते। आइये! इस विषय पर गम्भीर विचार करके अपने कर्तव्य पालन में यत्नशील होवें—



दक्षिण तथा आर्य समाज

(श्री प्रिंसिपल भगवान दास जी एम. ए. दयानन्द कालेज सोलापुर)

बहुत से भाई कई बार पूछ लेते हैं कि बंगाल तथा दक्षिणी भारत में आर्यसमाज का प्रचार क्यों नहीं ? मुझे बगाल तथा दक्षिणी भारत मे आर्य समाज के कार्य को देखने का सुअवसर मिला। बंगाल के बारे में जो धारणा बनी थी वही धारणा दक्षिणी भारत के बारे में बनी है।

आर्य समाज जनता के सामने कितने ही स्वरूपों में आती रही है पर इसके दो स्वरूप मुख्य रहे हैं। सब से सुन्दर तथा मुख्य स्वरूप है धर्म के भावों का प्रसार तथा प्रचार और दूसरा है अत्याचार तथा पाखंड नाशक का कार्य।

उत्तरी भारत में राजनीति की आड़ में धार्मिक तथा सांस्कृतिक अत्याचार होते रहे। इसलिये आर्य समाज का बहुत भारी समय खंडन आदि में लगता रहा। इन अत्याचारों के मुकाबले के लिये ही जनता को त्यार करते रहना आर्यसमाज का मुख्य कार्य रहा। इसलिये आर्यसमाज का केवल लड़ाका स्वरूप सामने रहा। बार-बार के अत्याचारों से संस्कृत आदि भाषाओं से रुची हट गई इसीलिये धर्मग्रन्थों में ध्यान जमा नहीं लोगों को मसालेदार बातों का चस्का पड़ गया और आर्य समाज के प्लेट फार्मों से धर्म के विचार फीके पड़ गये। इस लिये बड़े-बड़े विद्वान भी चुप होते चले गये इसी कारण दूसरे धर्मों को अड्डे बनाने का अवसर मिल गया परिणामतः उत्तरी भारत में चेले चांटों के कई मत चल पड़े हैं तथा आर्य समाज के धार्मिक दृष्टिकोण को धक्का दिया जा रहा है। यह एक तथ्य है कि बार-बार के अत्याचारों से जाति की तरफ शक्ति हीन हो गई थी इसी लिये आर्य समाज की ओर से धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में किया गया उग्रकार्य सराहनीय है। पर इस केवल खंडनात्मक कार्य-क्रम का परिणाम यह निकला कि आर्य समाज का लड़ाका स्वरूप तो जनता के सामने रहा तथा लोगों ने अत्याचारों तथा पाखंडों से बचने के लिये आर्य-समाज की शरीली पर दूसरा स्वरूप पीछे रह गया यह तो ठीक रहा कि यहां पर भी अत्याचारी तथा पाखण्डी लोगों का बोल-बाला था वहां आर्य समाज का प्रचार खूब हुआ तथा लोगों ने आर्य-समाज के कार्य-क्रम को अपनाया दूसरे स्वरूप के के आगे न आने से अन्य क्षेत्रों में प्रचार न बढ़ा। यह भी तथ्य है कि आरम्भ काल के शास्त्रीय आदि कार्यों से प्रभावित हो कर बड़े-बड़े विद्वान् आर्य-समाज में आये। विद्वान् प्रचारकों तथा विद्वानों की आर्य समाज के पास कमी नहीं तथा साधारण ज्ञान का मनुष्य तो क्या अन्य मतों के बड़े-बड़े विद्वान् भी आर्य समाज के विद्वानों की योग्यता तथा कुशलता को मानते हैं। इस लिये आर्य

समाज के प्रचार का यह फल हुआ कि दूसरे मत मतांतरों ने अपनी शैली तथा विचार बदल लिये तथा जो पाखंडों पर अपना हलवा मांडा उड़ा रहे थे उन्होंने करवट ली और अपने विचारों को टटोला। दयानन्द की गर्ज ने और आर्यसमाज के पहले युग के नेताओं और प्रचारकों ने थलका मचा दिया पर आर्य समाज का सारा रूप दूसरों के मुकाबले का ही रहा इसलिए कुछ अपनी गलतियों से तथा विरोधियों की चालों से आर्यसमाज परिवारों में न घुस पाई। दक्षिणी भारत में धार्मिक विचारों की परम्परा बहुत ऊंची है। आर्यसमाज का लड़ाका स्वरूप काम न आया। इसलिए न परिवार आर्य-समाज में आये तथा न ही आर्यसमाज परिवारों में जा सका। थोड़े शब्दों में कहना हो तो यह हुआ कि आर्यसमाज के पास चौदह सम्मुलासों वाली सत्यार्थ प्रकाश होते हुए भी जनता ने पहले दस सम्मुलासों को समझने का यत्न भी न किया। और हमारे उपदेशकों तथा विद्वानों ने भी कभी यह प्रयत्न न किया कि पहले दस सम्मुलासों को आंदोलन रूप से जनता के सामने रखे। दक्षिणी भारत में इस बात की आवश्यकता बहुत थी।

जब १९४३ में बंगाल जाने का अवसर मिला तो जो बंगाली भाषणों को सुनने आते थे वह पूछते थे कि आर्यसमाज के पास क्या खंडन का ही काम है या उसके पास अपना कुछ देने को भी है। मुझे उस समय बहुत हैरानी होती थी कि हमारे विद्वान अपने पास के धन को क्यों नहीं देते। बंगाल के लोग भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत हैं संस्कृत के शुद्ध शब्द अब तक ज्यूं के त्यूं हैं। यही बात दक्षिणी भारत की है। सैंकड़ों तथा हजारों की संख्या में लोग धर्म चर्चा में आते हैं सारी-सारी रात्री बैठते हैं पुरानी राग विद्या तथा सुन्दर कलाओं के लिये जनता में अगाध श्रद्धा है। संस्कृत पढ़ना कर्तव्य समझा जाता है और बड़े-बड़े पश्चिम के पढ़े लिखे भी धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हैं। सरकार भी संस्कृत के प्रसार के लिये बहुत यत्न करती है तथा संस्कृत पढ़ना किसी न किसी सत्ता पर अनिवार्य है। संस्कृत के धुरन्दर पंडित छोटे छोटे नगरों में भी मिलते हैं। संस्कृत में भाषण देना तथा अपनी मातृ-भाषा में संस्कृत के शब्द लेने पर बड़ा बल दिया जाता है। अनेकों विद्वान ऐसे मिलेंगे जिन्होंने जीवन भर धर्म चर्चा तथा धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन के सिवाये और दूसरा कार्य किया ही नहीं। ईश्वर प्रार्थना तथा धार्मिक उत्सव व संस्कार प्रत्येक घर में होते हैं बड़े से बड़े पाश्चात्य प्रणाली के विद्वान भी ईश्वर विश्वासी हैं और कोई न कोई धार्मिक कृत्य प्रतिदिन करते हैं। होना तो यह चाहिये था कि ऐसे क्षेत्र में आर्यसमाज एकदम घुस जाता और हुआ यह कि लोग यहां आर्यसमाज से दूर रहे और अब भी दूर हैं। हैदराबाद के इलाके में भी हजारों लाखों लोग आर्यसमाज के जलसे जलूसों में आते तो हैं पर धार्मिक कृत्यों के अर्थ में आर्यसमाज को बहुत कम मानते हैं। जिसका कारण यह कि आर्यसमाज उनके सामने केवल एक ही रूप में आया तथा उनको हमारा धार्मिक दृष्टिकोण नहीं मिला। मैं उन आर्यसमाजियों से सहमत नहीं जो यह कहते हैं कि दक्षिणी भारत के लोग रूढ़ीवादी हैं।

मुझे यहां पर मन्दिरों में आने का अवसर मिला। भाषण देने की भी आज्ञाएं मिलीं। अब मैंने यह बताया कि कोई स्त्री पुरुष आर्यसमाजी

आर्यसमाज को बचाओ !

(ले०--श्री वेदीराम जी शर्मा प्रो० डी० ए० वी० कालिज जालन्धर)

मैं खोज रहा हूं तिमिर बीच,
कब से ज्योतिर्मय दाह एक।
बल उठे किसी दिशि वह्नि राशि,
ले, देकर मेरी चाह एक ॥

किसी कवि के यह शब्द आज के आर्यसमाज के तिमिराच्छन्न वातावरण पर कुछ सार्थक से

नहीं हो सकता जबतक ईश्वर को न माने तो लोग बहुत हैरान हुए। बार २ प्रश्न करते हैं कि क्या आर्यसमाज ईश्वर को मानता है? इसलिए जब वेद पर तथा ईश्वर सत्ता पर आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी के भाषण हुए तो सैंकड़ों लोग आए और यह जानकर प्रसन्न हुए कि आर्यसमाज का विश्वास ईश्वर में सुदृढ़ भी है तथा ऊंचा भी।

इन बातों से स्पष्ट है कि आर्यसमाज किस प्रकार विचार शुद्धता ला रहा है। भारतीय संस्कृति को मानने वाले सब एक हैं और आर्यसमाजी विचार ही सबको एक रख सकता है भारत वासियों के लिए यह एक कल्याण का मार्ग है। आर्यसमाज के नेता दक्षिण की ओर ध्यान दें। आर्यसमाज के कार्यकर्ता दक्षिण में पधारें। न केवल आर्यसमाज को धन मिलेगा और जन भी। और देश में राष्ट्रीयता तत्वों का बढ़ावा होगा। यह छोटा कार्य नहीं है।

होते दिखाई देते हैं। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेद का सन्देश देश-विदेश में फैलता रहे, इसी हेतु आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज ने उनके सामने व बाद में काफी कार्य भी किया। धर्म के नाम पर किए जा रहे अत्याचारों का भण्डा फोड़ किया। राष्ट्रीयता की रूप रेखा भारतीय युवक को स्पष्ट की। सामाजिक सुधार से देश के वातावरण को पवित्र बनाया। महर्षि की मृत्यु के पश्चात उनके भक्तों ने अपने बलिदानों की माला से ससार के सामने आर्य सिद्धांतों पर मर मिटने का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी की अटूट श्रद्धा। प० लेखराम जी का साहित्य प्रचार, स्वामी दर्शनानन्द जी की युक्तियों, स्वामी सर्वदानन्द जी की मस्ती भरी कथाएं, किसे भूल सकती हैं। महात्मा हंसराज का हंस हंस कर समाज कार्य के लिए बलिदान हो जाना।

आज भी पूज्य पं० रामचन्द्र जी देहलवी जैसा तार्किक विद्वान हमारे पास है। पूज्य पण्डित जी की सेवाओं को कौन भूल सकेगा। किन्तु आज आप अत्यन्त वृद्ध हो चुके हैं। श्री पं० नरदेव जी जिनका अभी देहान्त हुआ है अपने पीछे एक ऐसी याद छोड़ गए हैं कि देश का बच्चा-बच्चा भूल न सकेगा।

इन सभी विद्वानों के नामों के पीछे आर्यसमाज का इतिहास छुपा है। किन्तु दुःख यह है कि इनका स्थान लेने वाला कोई भी युवक आगे आता आज दिखाई नहीं दे रहा। आज हमारे पास पार्लियामेन्ट की सीटों के चुनाव लड़ने के लिए तो बड़े २ शूरवीर मिल जावेंगे। किन्तु वैदिक सिद्धांतों का प्रचार और प्रसार करने वाले विद्वान आज समाप्त ही होते जा रहे हैं। आर्य समाज की प्रादेशिक और सार्वदेशिक सभाएं भी आज ऐसे ही लोगों के हाथों में जा चुकी हैं जो या तो अकर्मण्य व्यक्ति हैं या जो केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही इन्हें प्रयुक्त करना चाहते हैं। देव दयानंद की आत्मा आज इन सभाओं में दिखाई नहीं देती ! यही हाल आर्यसमाजों का भी है। ९० प्रतिशत ऐसे आर्य समाजीबन्धु मिलेंगे कि जिन्हें आर्यसमाज के सिद्धांतों का ज्ञान तो क्या होगा ! उन्हें वैदिक सन्ध्या भी स्मरण न होगी। कहीं २ तो आर्यसमाज के मन्त्री और प्रधानों के घरों में भी आर्य सिद्धांतों का मजाक उड़ाते मैंने अपनी आंखों से ही देखा है। आर्यसमाज के उत्सवों में अधिकतर उपदेश उन्हीं विषयों पर होते हैं जिनमें केवल अखबारी समाचार ही अधिक हों। कहां होगा धर्म का प्रचार ? कैसे फलेगा ऋषि का सन्देश ? यह प्रश्न आज बिच्छु के डंक के समान टेढ़ा बना हुआ ऋषि भक्तों के हृदयों को कष्ट दे रहा है।

इस प्रकार की अनास्था का चारों ओर अन्धकार छाया हुआ है। पुराने समाप्त होते जा रहे हैं। नए आ नहीं रहे। कैसे चलेगा यह काम ? हमारे नेताओं को इस ओर ध्यान नहीं। फुरसत भी नहीं है।

अतः आज इस ऋषि निर्वाण के पावन दिन, हम सभी को इस विकट समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। आज इस तिमिर के मध्य एक प्रकाश के दीप जलाना तभी सार्थक होगा कि जब हम यह निश्चय करें कि ऋषि दयानन्द के मिशन को आगे ले जाने के लिए सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में ही अपनी समस्त शक्ति लगाएंगे। वर्तमान विषैली राजनीति से आर्यसमाज के नवयुवकों को बचा कर स्वस्थ धार्मिक विचारधारा की गंगा में स्नान करावेंगे। तभी हमारा कल्याण होगा।

—o—o—

आर्यसमाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग नई देहली

का वार्षिकोत्सव १०—११—१२ नवम्बर को अपने भवन में ही बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हो रहा है। जनता समय पर पधार कर लाभ उठाए।

मन्त्री आर्यसमाज

प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब के अध्यक्ष का निवेदन

मान्यवर मन्त्री जी !

सादर नमस्ते !

सेवा में प्रार्थना है कि आपके आर्य समाज में या आपके साथ सम्बन्ध स्कूल अथवा कालेज में आर्य युवकों का समाज भी अवश्य होगा यदि यह अभी तक नहीं बन सका है तो कृपया शीघ्र ही इस ओर अपनी पूरी शक्ति लगा कर युवक

महर्षि जी का प्रिय वेद मंत्र

(ले०—श्री ओम प्रकाश जी 'नारंग' एम० ए० डी० ए० वी० कालिज जालन्धर)

ओम् विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥

ऋषि अंक में हम आर्य जगत् के पाठकों को ऋषि का अत्यन्त प्रिय वेद मन्त्र भेंट करते हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की इस मन्त्र पर अगाध श्रद्धा थी और आप इसे गायत्री मन्त्र के तुल्य मानते थे। वैसे भी यह आर्यों की दैनिक प्रार्थना का पहला मन्त्र है। इस पवित्र वेद मन्त्र का शब्दार्थ तो बहुत सरल है परन्तु भाव बहुत गूढ़ तथा रहस्यपूर्ण है। शब्दार्थ—

हे सविता देव! (जगत की उत्पत्ति करने वाले प्रभो!) आप मेरे सकल दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुर्भावनाओं को दूर करके मुझे उत्तम और कल्याणकारी गुण, कर्म स्वभाव प्रदान करें अर्थात् बड़े ही सीधे सादे शब्दों में भक्त भगवान् से यह मांग करता है कि उसकी सारी बुराइयां दूर हों और सभी अच्छाइयां प्राप्त हों।

हम इस वेद मन्त्र की व्याख्या तीन मुख्य प्रश्नों का उत्तर देकर करेंगे।

१. क्या कोई परमात्मा है?

२. क्या वह हमारी प्रार्थना सुनता है?

३. इस सीधी सीधी प्रार्थना का महत्व क्या है?

पहले प्रश्न के बारे में हमें यह कहना है कि यद्यपि परमात्मा मन, इन्द्रियों और बुद्धि द्वारा जाना, पहचाना एवं परखा नहीं जाता तथापि वह अपनी रचना में से अवश्य प्रगट होता है और देखने वाली आंखें उसे देख ही लेती है। ईश्वर की आराधना करना इसलिए उचित है कि संसार के समस्त प्राणी भय, संकट और विपत्ति में उसका अवश्य स्मरण करते हैं और उसी का आश्रय ढूंढते है। नास्तिक हो या आस्तिक हर कोई दुःख के समय भगवान ही की शरण में जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी का यह दोहा कितना भावपूर्ण है:

दुःख में सिमरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सिमरन करें, तो दुःख काहे को होय॥

शक्ति का संगठन अवश्य कीजिए। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने प्रदेश की सभी युवक समाजों को केन्द्रित करने का निश्चय किया है। आप भी अपने युवक समाज का केन्द्र के साथ सम्बन्ध करा दीजिए। आप की सेवा में युवक संगठन का संविधान भेजा जा चुका है आप उसमें भेजे गए फार्म को भर कर १०) शुल्क के सहित निम्न पते पर तुरन्त ही भेज दीजिए। यदि युवक समाज नहीं बना है तो उसका शीघ्र ही निर्माण कर यह फार्म भेजिये। यह कार्य आर्यसमाज की शक्ति को बलवान बनाने के हेतु ही किया जा रहा है। आप स्वयं विचारशील हैं। अतः इस कार्य को प्राथमिकता प्रदान कर अनुगृहीत करें।

आपका बन्धु—वेदीराम शर्मा एम० ए०, डी० ए० वी० कालिज, जालन्धर।

हम सब जानते हैं कि दुःख में मनुष्य को मां याद आती है या परमेश्वर। यह भी प्रायः देखा जाता है कि मजबूरी और मुसीबत में मनुष्य ईश्वर ही को पुकारता है। उस समय वह नहीं सोचता कि उसकी प्रार्थना सुनी जाएगी अथवा नहीं। इसका एक प्रबल उदाहरण दूसरे महायुद्ध में देखा गया। जब हिटलर की फौजों ने स्टालिन ग्राड पर धावा बोल दिया और रूसियों को जान के लाले पड़े तो कुछ लोगों के सुझाव पर रूस के डिक्टेटर मार्शल स्टालिन ने उजड़े हुए गिरजा घरों को फिर से आबाद करने की आज्ञा दे दी। याद रहे कि रूस की कम्यूनिसट सरकार ने शासन सम्भालते ही भगवान् को देश निकाला दे दिया था और वहां पर ईश्वर की पूजा तो क्या नाम लेना भी अपराध माना जाता था। गिरजा घरों और मस्जिदों में ताले पड़े हुए थे परन्तु युद्ध की मजबूरी ने स्टालिन जैसे लोह पुरुष को भी ईश्वर के चरणों मे झुका दिया। हमारे विचार में यह बात ईश्वरीय सत्ता का जीवित प्रमाण है।

फ्रांस के फिलासफर रोमन रोलां ने एक पत्ते की बात लिखी है 'If there is no God, let us invent one.' अर्थात् यदि कोई भगवान् नहीं तो आओ एक भगवान् घड़ लें। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जो स्वभाव से स्वार्थी है भय के बिना पाप से परे नहीं रह सकता। भगवान का भय मनुष्य को कई पापों से बचाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे राज्य की सत्ता के डर से हम कानून को तोड़ने से डरते हैं। जो कोई मानव भगवान् की सर्वव्यापकता में विश्वास रखता है उसके हाथों से पाप होना बड़ा कठिन है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आज से सौ, पचास वर्ष पूर्व जब मनुष्य ईश्वर में आस्था रखते थे तब वह आप की अपेक्षा कहीं अधिक सच्चे, ईमानदार दयालु विश्वासपात्र और न्यायप्रिय थे। परन्तु आज का मानव स्वार्थी, दम्भी, दुराचारी और पक्का चार सौ बीस बनने जा रहा है।

दूसरा प्रश्न यह है कि आया परमात्मा हमारी प्रार्थना सुनता है। उत्तर यह है कि परमात्मा सर्वव्यापक होने के नाते हम सब के हृदयों में विराजमान है। जब हमारी सात्विक भावनाएं प्रबल होकर उत्कट इच्छा का रूप धारण कर लेती हैं तो हमें उस अदृष्ट ईश्वर का मौन आशीर्वाद प्राप्त हो जाता है। इसलिए कवियों ने भावुकता में आकर भावना को ही भगवान बतलाया है। उर्दू के प्रसिद्ध शायर डाक्टर इकबाल ने क्या सुन्दर कहा है कि—

'आप जज़बाए दिल गर मैं चाहूं हर चीज मुकाबिल आ जाए। मंज़िल की तरफ़ दो गाम चलूं, तो सामने मंज़िल आ जाए।' तो सिद्ध हुआ कि ईश्वर प्रार्थना का अर्थ पवित्र प्रयत्नों द्वारा मन की भावना को जागृत करना और उस महान् प्रभु के आश्रय सच्चाई, पवित्रता और ईमानदारी की रक्षा के लिये अग्रसर होना है। इस के अतिरिक्त वेदोक्त ईश्वर प्रार्थना का कोई दूसरा अर्थ नहीं है। कारण यह है कि ईश्वर पापनाशी होने के नाते अच्छे और बुरे कर्मों का अवश्य फल देता है। वह खुशामद से खुश नहीं होता; रिश्वत का लालच नहीं रखता और सिफारिश से किसी का अपराध क्षमा नहीं करता।

अब हम तीसरे प्रश्न का उत्तर देते हैं। यह प्रार्थना हमें मानव जीवन का एक महान् सिद्धांत सुझाती है। यह संकेत करती है कि हमें सदैव अपने ही दोषों को देखना चाहिये। दूसरों के कीड़े निकलना, निन्दा स्तुति करना अथवा दूसरों पर दोषारोपण करना बड़े आसान काम हैं परन्तु यह महापातक हैं। यह हमारे मन में अभिमान को उत्पन्न करते हैं और हमें पाप के गढे में गिराते हैं। ज्ञानी लोगों का कहना है कि जो व्यक्ति दूसरों के अवगुण गिनता है वह अपने गुण उनको देकर स्वयं उनके दोष ग्रहण करता है इसके विपरीत जो दूसरे के गुणों का बखान करता है वह अपने अवगुण उनको देकर उनकी अच्छाइयां स्वयं ले लेता है। कितना भावपूर्ण है भक्त कबीर का वह दोहा जिस में कहा कि—

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो मन खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥"

बाबा फरीद का यह श्लोक भी इसी सिद्धांत की पुष्टि करता है :—

'जे तूं अकललतीफ हैं, काले लिख न लेख।
आपनड़े गिरिवान में सिर नीवां कर वेख॥'

अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य को दूसरे की निन्दा नहीं करनी चाहिये अपितु अपने ही दोषों पर दृष्टि डालनी चाहिए। इस दृष्टि से यह वेदमन्त्र प्रार्थना रूप में एक महान उपदेश दे रहा है। यह कह रहा है 'हे कल्याण के पथ पर चलने वाले मानव सदैव अपने दोषों पर दृष्टि रख और नित्य प्रति आत्मनिरीक्षण किया करो। प्रार्थना, याचना तथा प्रयत्न द्वारा इन्हें दूर करने की चेष्टा भी किया कर। जरा सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो यह बात जितनी आध्यात्मिक जगत् में सच्ची है उतनी ही व्यावहारिक संसार में भी लाभकारी है। संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि यह छोटा-सा मन्त्र अपने अन्दर भावना का सागर रखता है और ऐहिक और पारमार्थिक जगत् में सब प्रकार की सफलताओं की कुंजी साधक के हाथ में पकड़ाता है। इसलिए ऋषि दयानन्द इस पर इतने मुग्ध थे।

पुस्तक परिचय

पुस्तक नाम—लाईफ एण्ड मिशन आफ महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक—श्री एस० एल० भाटिया अवकाश प्राप्त अफसर भारतीय आडिट तथा अकाऊंटस विभाग ३२५ आदर्श नगर जयपुर राजस्थान।

मुद्रक—भास्कर प्रिंटर्ज पण्डित शिवदान का रास्ता जयपुर। पृष्ठ सं० ८०

महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन तथा आदर्शों पर अंग्रेजी भाषा में लिखी गई यह पुस्तक अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है। पुस्तक की भाषा सरल शैली प्रभावोत्पादक और कविता सरस है। इसके विद्वान लेखक महर्षि के अनन्य भक्त हैं। जैसा कि पुस्तक की प्रस्तावना में आर्य जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री वैद्यनाथ जी शास्त्री ने लिखा है कि लेखक ने यह पुस्तक कविता के रूप में लिखकर मानवता की महान सेवा की है। १८ पृष्ठ की भूमिका में उन्होंने महर्षि के जीवन दर्शन को बड़े सरल तथा रोचक ढंग से पाठकों के सम्मुख रखा है। इस महर्षि जी के जीवन दर्शन की झांकी सुन्दर रूप से सामने आ जाती है। आरम्भ में दी गई कविता "टैल्ज बाई डेड मैन" तो विशेष रूप से पठनीय है।

'आर्यजगत्' इस पुस्तक को पढ़ने की अपने अंग्रेजी पाठकों से साग्रह सिफारिश करता है।

—सन्तोषराज सभा मन्त्री

धर्म के नाम पर

(लेखक—श्री पिशौरी लाल जी 'प्रेम' रेणुका जिला सिरमौर (हि प्र०)

धर्म के नाम पर जग में बड़े उत्पात होते थे, धर्म के नाम पर सब से ज्यादा पाप होते थे।

महर्षि स्वामी दयानन्द के शुभ आगमन से पहले धर्म के नाम पर किस प्रकार के अत्याचार, दुराचार लूट खसूट और ठगी होती थी इसके सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहता हूं।

धर्म के नाम पर कई माता-पिता गंगा नदी के किनारे खड़े हो कर अपने बच्चों को स्वयं ही गंगा नदी की भेंट कर देते थे। अर्थात् गंगा में फैंक देते थे। गंगा की सीढ़ियों पर पड़े, पुजारी जो कि पहले से ही खड़े होते थे उन बच्चों को गंगा से निकाल कर उन्हें उन के माता-पिता को लौटा देते थे। और इस के बदले में उनसे पर्याप्त धन ले लेते थे। दुर्भाग्यवश कई बार बच्चे डूबकर मर भी जाते थे।

धर्म के नाम पर लोग देवी देवताओं की जड़ मूर्तियों पर भेड़, बकरी और भैंसों की बलि चढ़ाते थे। यहां तक कि कई अन्ध-विश्वासी अपने बच्चों तक को भी देवी पर बलि चढ़ा देते थे।

धर्म के नाम पर बहुत से लोग अपनी कन्यायों को मन्दिरों की भेंट कर देते थे वह भाग्यहीन कन्यायें आयु भर कंवारी रहकर मन्दिरों में जड़मूर्तियों के आगे नाचती और गाती थीं। कई लोग कन्या का जन्म होते ही इन्हें बदशुगनी समझकर इन का गला घोंट देते थे। इस के अतिरिक्त स्त्री जाति को विद्या पढ़ने की आज्ञा बिलकुल नहीं थी।

धर्म के नाम पर छोटी-छोटी कन्याओं का, जिन में एक-एक वर्ष तक की कन्याएं भी होती थी, उनका विवाह कर दिया जाता था। और दुर्भाग्यवश उन में कई विधवा हो जाती थीं। उन बाल विधवाओं को पुनर्विवाह करने की आज्ञा नहीं थी। पुरुष तो चालीस पचास वर्ष की आयु में भी पुनर्विवाह कर लेते थे। परन्तु इन निर्दोष बालविधवाओं को आयु भर विधवा रहकर कई प्रकार के घोर अत्याचार सहने पड़ते थे। यह बदशगुनी समझी जाती थी। किसी शुभ कार्य में इन को सम्मिलित होने की आज्ञा न थी। अपने भाईयों के विवाह तक में भी इन को सम्मिलित नहीं होने दियाजाता था। बहुत सी विधवाएं तंग आकर आत्महत्या कर लेती थीं। बहुत सी ईसाई या मुसलमान हो जाती थीं।

धर्म के नाम पर अछूतों को मन्दिरों में जाने की आज्ञा नहीं थी उन्हें उन मार्गों पर भी चलने की आज्ञा न थी जिन मार्गों पर ब्रह्मण लोग या उच्च जाति के लोग चलते थे। अछूतों को उन कुओं और बावलियों से पानी भरने की आज्ञा नहीं थी जिन से उच्च जाति के लोग भरते थे। कहीं-कहीं अछूतों को कांसी के बर्तनों में खाना खाने की आज्ञा भी नहीं थी। इन्हें वेद, मन्त्र

पढ़ने या सुनने का अधिकार न था। एक बार एक अछूत किसी मन्दिर के पास से गुजर रहा था मन्दिर में कोई ब्राह्मण वेदमन्त्र पढ़ रहा था। अनजाने से उसने वेदमन्त्र का उच्चारण सुन लिया। बस फिर क्या था धर्म के नाम पर उसे यह दंड मिला कि उसके कानों में सिक्का डाल दिया गया।

एक स्थान पर एक मुसलमान गुंडे ने यह झूठी बात फैला दी कि अमुक लड़की ने मुसलमान के घर का पानी पी लिया है। धर्म के ठेकेदारों ने उस निर्दोष लड़की को घर से बाहर निकाल दिया। हिन्दु जाति के किसी व्यक्ति ने उसे सहारा न दिया। लाचार होकर लड़की को मुसलमान होना पड़ा और उसी गुंडे मुसलमान का आश्रय लेना पड़ा।

धर्म के नाम पर तीर्थों पर भारी लूट-खसूट होती थी। पंडे पुजारी अपने यजमानों से सर्वस्व दान करा लेते थे कई भोले भाले व्यक्ति अपनी स्त्रियां भी पंडों को दान कर देते थे और फिर पंडे लोग यजमानों से बहुत सा धन लेकर उनकी स्त्रियां उन को लौटा देते थे। पंडे लोग घर से गऊ लाकर गंगा के किनारे खड़ी कर देते थे गऊ दान के बहाने जिस से जितना धन मिल सके लेकर गऊ उन्हें दे देते थे। और गऊ दान कराकर वह गऊ वापिस लौटा लेते थे। इस प्रकार एक गऊ का सैकड़ों बार गऊ दान होता था।

साधारण गृहस्थी पांखड़ी साधुओं पर विश्वास कर के उन्हें अपने घरों में आने जाने देते थे और वह धूर्त साधु उनकी बहु-बेटियों को भगाकर ले जाते थे। निर्धन गृहस्थी अन्न, वस्त्र की कमी के कारण दुख का जीवन व्यतीत करते थे अनाथ बालक बाल-विधवाएं दाने-दाने को तरसती थीं और धर्म के नाम पर मन्दिरों के पुजारी और महात लोग दूध घी तथा पिस्ता बादाम उड़ाते थे।

धर्म के नाम पर पहाड़ों में रहने वाली कई वृद्ध स्त्रियां, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोगों को विष दे देती थी वह विष एक विशेष प्रकार का होता था जिस से तत्काल मृत्यु नहीं होती थी अपितु कुछ समय तक गलते, सड़ते और तड़पते हुए मृत्यु होती थी।

धर्म के नाम पर सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण के अवसर पर भोली जनता को लूटा जाता था ज्योतिषी लोग राहु, केतु, शनि आदि ग्रहों के कोप को हटाने के बहाने से लोगों को लूटते थे। जब किसी के घर में किसी की मृत्यु हो जाती थी तो घर वालों को जो असह्य दुख और शोक होता था उससे बढ़ कर उन्हें मृतक के पीछे क्रिया कर्म करने की चिन्ता होती थी। महाब्राह्मणों को (जो मृतक का दान लेते थे। आवश्यकता की सब वस्तुये इस लिए दी जाती थीं—कि यह सब कुछ मृतक को स्वर्ग में मिलेगा। सूई धागे से लेकर बर्तन, कपड़े, पलंग, रजाई और खाने का सामान आदि सब कुछ देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त ब्राह्मणों को जिमाने म उनकी हलवा पूरी और खीर में बहुत-सा धन व्यय हो जाता था। इसके पश्चात् मृतक की गति कराने के लिए तीर्थों पर जाकर वहां इनके पीछे पिंड तर्पण कराने में भी बहुत-सा धन व्यय हो जाता था। और फिर इनके

महान् उपकारी देवता

(कुमारी अरुणा जी आर्या प्रभाकर टोहाना)

स्वामी जी के समय में स्त्री-जाति की अति दुर्दशा थी। उनके अधिकार केवल चारदीवारी में रहने तक ही सीमित थे। उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता था। बाल-विवाह और पुनर्विवाह की प्रथा थी। विधवाओं का जीवन निर्वाह अति कठिन था। ऐसी दुर्दशा देख कर स्वामी जी का दिल पिघल गया। उनके अन्तर तक वेदना छू गई। रह २ कर उनके हृदय में एक कसक उठती थी कि

पीछे मृतक श्राद्ध के बहाने प्रतिवर्ष ब्राह्मण लोग हलवा पूरी और खीर उड़ाते थे। यह सब कुछ धर्म के नाम पर होता था।

कहां तक लिखूं यह तो केवल मात्र हिन्दु जाति के सम्बन्ध में थोड़ा सा लिखा। ईसाई और मुसलमानों ने धर्म के नाम पर जो अत्याचार किए जो खून की नदियां बहाईं उनका तो कहना ही क्या। महर्षि के शुभआगमन से पूर्व धर्म के नाम पर इस प्रकार के बड़े २ उत्पात होते थे, अत्याचार और दुराचार होते थे। मानव ही मानव का रक्त बहाते थे। सब ओर अविद्या का साम्राज्य था। अज्ञान अन्धकार छाया हुआ था चोरी ठगी और लूट खसट का बोलबाला था। ऐसे समय में आनन्दकन्द जगदानन्द, सद्गुरु महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का शुभआगमन हुआ। महर्षि ने भारत की यह अवस्था देखी तो उनकी आंखों में आंसू आ गए। उन्हें इतना असह्य दुःख हुआ कि उन्होंने योगसमाधि के आनन्द तक को त्याग कर मानव जाति को धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों से तथा लूट खसूट से बचाने का निश्चय किया। मानव जाति को सत्य सनातन वैदिक धर्म का मार्ग बताया जिससे मानव जाति सुख और शांति प्राप्त कर सके। पाखंड का खंडन करने के कारण महर्षि को कई बार विष दिया गया परन्तु महर्षि दयानन्द सत्य पथ से और संसार का उपकार करने के कार्य से विचलित नहीं हुए और अन्त में भी महर्षि को ऐसा तीव्र विष दिया गया-कि जिससे महर्षि दयानन्द ने निर्वाण पद प्राप्त किया। यह महर्षि दयानन्द के बलिदान का परिणाम है—कि संसार में अब उस प्रकार से धर्म के नाम पर अत्याचार और लूट-खसूट नहीं हो सकती। हठधर्मी से चाहे कोई कुछ कहे या करे परन्तु सत्य तो यह है—कि अब वैदिक ज्ञान का प्रकाश फैलने लगा है। पाखंड की जड़ें हिल चुकी हैं। मानव जाति को सुख और शांति प्राप्त करने के लिए महर्षि के बताए हुए मार्ग पर चलना ही पड़ेगा सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपनाना ही पड़ेगा।

किस प्रकार नारी जाति का सुधार किया जाए? नारी जाति पर ऋषिवर के अनन्त उपकार हैं। उन्होंने हमें अतल पतन के गर्त से निकाल उन्नति के उच्च शिखर पर आसीन किया। अशिक्षा के गहनांधकार को चीर कर वैदिक ज्ञानकी ज्योति प्रदान की। पैर की जूती से सिर की पगड़ी और शूद्र से देवी बनाया। नारी की यह वर्तमान उन्नति उच्च से उच्च पदाधिकार यह सब उस दिव्य विभूति महर्षि दयानन्द की ही अमूल्य देन हैं। विधवाओं को पूर्ण विवाह की आज्ञा दी। बाल विवाह बन्द करवाए।

उस समय भेद भाव छूआछूत का घुन समाज को खोखला बना रहा था। तो स्वामी जी ने सर्व-प्रथम अपना ध्यान इस ओर आकृष्ट किया और इस के भूत को दूर भगाया। 'कृण्वन्तो विश्व मार्यम्' का नारा लगाया। 'सर्वे भवन्तु सुखिन.' के सन्देश को घर २ पहुंचाया। एवं लोगों को 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' का पाठ पढ़ाया।

इसी प्रकार जब प्रचारार्थ स्वामी जी जोधपुर नरेश के निमन्त्रित किए जाने पर जोधपुर जा रहे थे तो लोगों ने स्वामी जी से कहा कि—'जहां आप जा रहे हैं वहां के लोग कठोर प्रकृति के हैं कहीं ऐसा न हो कि सत्योपदेश से चिढ़ कर श्री चरणों को पीड़ा पहुंचाएं।' स्वामी जी ने उस समय जो उत्तर दिया वह वास्तव में स्वर्णा-क्षरों में अंकित किया जाने योग्य है। 'यदि लोग हमारी अंगुलियों को बत्तियां बना कर जला दें तो भी कोई चिन्ता नहीं। मैं वहां जा कर अवश्य सत्योपदेश करूंगा।'

क्योंकि पापी को यह नहीं भाता था कि आर्यों का सौभाग्य-सूर्य, अभागे भू-भाग पर कुछ काल और चमक कर उसकी निबिड़ तमोराशि का सर्वनाश करे। इतना कष्ट होते हुए भी स्वामी जी प्रसन्न चित्त थे। मृत्यु झुक कर खड़ी हुई थी। यह पहला क्षण था कि जिसमें महर्षि की मृत्यु की अवस्था देखकर श्री गुरुदत्त जैसे धुरंधर नास्तिक के हृदय की उपजाऊ भूमि में आत्मिक जीवन की जड़ लग गई। गुरुदत्त निरन्तर अपलक अतिशय श्रद्धा से देव दयानन्द की ओर देखते रहे। दयानन्द स्वामी ने गायत्री का जाप किया और फिर चिरकाल तक सुवर्ण मूर्त्ति की भांति निश्चल रूप से समाधिस्थ बैठे रहे। समाधि की उच्चतम भूमि से उतर कर भगवन् ने दोनों नेत्रों के पलक कपाट खोलकर कहा—"हे दयामय, हे सर्वशक्ति मान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है। सचमुच, तेरी ही इच्छा है। परमात्मन्! तेरी इच्छा पूर्ण हो। अहा! मेरे परमेश्वर, तूने अच्छी लीला की।" इन शब्दों का उच्चारण करते ही ब्रह्मर्षि ने अपने प्राणों को सूत्रात्मा वायु में लीन कर दिया। आर्त्त भारत के भाग्य का भानु, भगवान् दयानन्द, कार्त्तिक अमावस्या सम्वत् १९४० विक्रमी, मंगलवार को सायंकाल छः बजे एकाएक, काल कराल रूप अस्ताचल की ओट में हो गया। अबलाओं के पक्ष-पोषक, दीन दुर्बलों के सहायक और अनाथों को सनाथ करने वाले मस्त योगी ने आज के दिन अपनी काया कन्दरा को त्यागा था। आज उनके परोपकारों के कार्यों को स्मरण कर हमारा सब का शीश नत मस्तक हो रहा है। हम सब उन के प्रति श्रद्धांजलि भेंट कर रहे हैं। पर सच्चे अर्थों में हमारी श्रद्धांजलि तभी होगी

विश्व के उपकारी संन्यासी

(ले०—श्री चन्द्रसेन जी आर्य हितैषी, उपदेशक प्रादेशिक सभा सोनीपत निवासी)

भारतवर्ष सुधारकों, महर्षियों, वीतराग संन्यासियों, महापुरुषों तथा शूरवीरों से प्रसिद्ध है। संसार के किसी भाग में इतने उपकारी महापुरुष नहीं हुए। हां अन्य देशों में संसार को नष्ट भ्रष्ट करने वाले अनोखी खोपड़ी के वैज्ञानिक अवश्य हुए हैं और आज भी हैं। ऐटमबम्ब बनाने वाले वहीं के तो हैं। इधर भारत में आज भी ससार को सुख और शान्ति का संदेश देने वाले अनेकों वीतराग साधु और धर्मिक संस्थाएं हैं। अपने देश में इतने अधिक उपकारी महापुरुष हुए जिनकी मैं आपस में तुलना करना उचित नहीं समझता। प्राचीन समय के महापुरुषों के समय को उन्हीं का युग कहेंगे इसे आप सब भली प्रकार समझते हैं। कईयों ने तो अपने नाम के व अपने पृथक् विचारों के मत पन्थ सम्प्रदाय आदि बना डाले। इन में कुछ स्वार्थ सिद्धि थी। वैदिक प्रणाली के उपासक भी बहुत हुए जिन्हें अपना स्वार्थ नहीं था। जिस २ युग में ये हुए ससार ने इन के चरणों में सिर झुकाया। मनु महाराज आदि महर्षि ब्रह्मा से लेकर जैमनि ऋषियों तक जितने भी महापुरुष व संयासी हुए वे आज के युग में चमक रहे हैं। भगवान् राम और योगी राज कृष्ण, प्रताप, शिवा आदि राष्ट्रीय नेता भी अपना विशेष स्थान रखते हैं। परन्तु मैं जिस सन्यासी की पवित्र चर्चा कर रहा हूं। वह किसी भी पवित्र आत्मा से कम नहीं, वे सब पवित्रता के युग में हुए पर यह सन्यासी उस उन्नीसवीं शताब्दी में हुए जबकि चहुं ओर हर दिशा, हरदेश से हमें मिटाने के मन्सूबे बान्धे जा रहे थे। जिन्हें इस युग में सब से बड़ा निडर और अखण्ड बालब्रह्मचारी विश्व के उपकारी स यासी देवता स्वरूप ब्रह्मऋषि कहो, महर्षि कहो वह थे देव दयालु दयानन्द सरस्वती। पढ़ा लिखा संसार इनका आदर करता है। सन् १९३९ में मेरा सौभाग्य है एक सत्याग्रही के रूप में हैदराबाद दक्षिण (निजाम की जेल में लगभग ६॥ मास रहा। वापसी पर महात्मा गांधी जी के दर्शनों वास्ते वर्धा स्टेशन उतर दागाव आश्रम में गया। वहां कई दिन बातचीत करने का सौभाग्य भी मिलता था। उन्होंने भी इन्हें विश्व के उपकारी संयासी बताया। बल्कि यहां तक कह दिया, जो अछूत उद्धार कार्य व राष्ट्र सेवा कर रहा हूं

जब कि हम उनके सैनिक बन कर, उनके बताए हुए मार्ग के अनुयायी बन कर संसार के कल्यार्थ कार्य करें। स्वामी जी की विशेष कर नारी जाति पर बड़ी कृपा थी। अत. आज उनके निर्वाण दिवस पर हमें यह प्रतिज्ञा करनी चाहिए कि उन के द्वारा लगाया गया पौधा आर्य समाज, इस हितैषी संस्था की छाया में हम अपनी और समस्त विश्व की उन्नति की वृद्धि में प्रयत्नशील रहेंगी।

दयानन्द के भक्तो !

(ले०—श्री दयानन्द जी आर्य लेखराम नगर कादिया)

युग प्रवर्तक ऋषिवर दयानन्द ने साहित्य-क्षेत्र की कलुषित धारा को एक नया मोड़ दिया, जिसे हम साहित्य में धर्म का सम्मिश्रण कह सकते हैं। वास्तव में यह एक ऐसा उपकार का कार्य है जिसे संसार के विद्वान् कभी नहीं भुला सकते हैं। देखा जाए, तो प्रचार का यही सर्वोत्तम साधन है। ईसाई का धनाढ्य परिवार कुछ धन इसीलिए यथा-शक्ति देता है कि ईसाई-पादरी प्रचार कर सकें, यही कारण है कि ईसाई मिशनरियों की जहां तक पहुंच नहीं, वहां भी उनके मतोपदेश लिखित रूप

यह स्वामी दयानन्द की देन है। स्वामी जी के समय में इस देश में अनेकों सन्यासी थे जो कि बहुत कुछ कर सकते थे पर वे तो मठधारी व स्वार्थी बने चेले चेलियां बनाने में लगे रहे। भारत परतन्त्र था भारतीय सभ्यता मिटाई जा रही थी अपने भी स्वार्थी बन रहे थे। भगवान राम और कृष्ण आदि महापुरुषों के चरित्र पर न चल बल्कि उन के नाम पर मन्दिर बना एक प्रकार से दुकानदारी चला रहे थे विधवाओं और अनाथों को गैर जाति वाले अपनी ओर ले जा रहे थे। विदेशी विद्वान वैदिक धर्म पर कीचड़ उछाल रहे थे, सात समुन्द्र पार के मुट्ठी भर गोरे लोग भारत की पवित्र भूमि पर धाक जमाए बैठे अर्थात् उन का राज्य था। अंग्रेजी का बोलवाला था हर तरफ से हिन्दु (आर्य जाति का घाव थे किसी उर्दू के कवि ने ठीक लिखा था—

हिन्दु जाति इस तरह से मुबतलाये दर्द है।
दर्द भी ऐसा जिस पहलू से उल्टो दर्द है॥

इसका इलाज तो कोई उपकारी महापुरुष व संन्यासी कर सकता है स्वार्थी का यहां क्या काम, भारत ही नहीं विश्व के रोग का इलाज वैदिक ढंग से निकाला, अनेकों कष्ट उठाने के बाद दण्डी गुरु विरजानन्द जी की तपस्या पर महर्षि दयानन्द जी ने अपना बलिदान दिया। इस संन्यासी की विचार-धारा विश्व के विद्वानों के मनों में घर कर गई ऋषि ने दूर की सोच कर लगभग अस्सी वर्ष पूर्व बाम्बे नगर में आर्यसमाज जैसी पवित्र संस्था की स्थापना की। आज से लगभग २०-२५ वर्ष पहले आर्यों में भी विश्व के उपकारी संन्यासी की भावनाओं पर मर मिटने की इच्छा रहती थी। आज कुछ स्वार्थी लोग आर्यसमाज में घुस आये हैं उपकार की भावना कम है। आज का युग कैसा है? इस में हमारा क्या ख्याल हो सकता है, इस पर बड़ी गम्भीरता से विचार करें। अपनी त्रुटियों पर एक टिक नजर डालें। आर्यसमाज को सही आर्य समाज बनाएं। सन १९६२ की दीपमाला मनाते हुए 'विश्व के उपकारी संन्यासी' के कार्यों पर चलने की प्रतिज्ञा करें।

देवियों का कर्तव्य

(बहिन सुशीला आर्या जी एम. ए. नरवाना)

महर्षि दयानन्द ने स्त्री-जाति पर जितने उपकार किये हैं, उनके विषय में कुछ कहना पिष्टपेषण मात्र है। यह तो सर्वविदित है कि ऋण हम पर बहुत अधिक है। विचार करने और कहने लिखने योग्य यदि कुछ हैं तो वह यही कि उस उपकारी के ऋण से उऋण होने की चिन्ता करना हमारा परम कर्त्तव्य है ऋणदाता को कहीं चैन नहीं। जब तक सिर पर ऋण का भार है हम सुख की नींद नहीं सो सकते। अतः क्यों न ऋण मुक्त होने का प्रयत्न करें ?

कई देवियां यह तो स्वीकार करती हैं कि हम ने महद् उपकार किए किन्तु ऋण से उऋण होने के प्रश्न पर कहने लगती हैं कि हम इसके प्रतिदान में क्या कर सकती हैं ? ऐसी बात नहीं, करना तो सभी को कुछ न कुछ जरूर है, ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्य पूर्ति तक पहुंच सकें। इस क्षेत्र में देवियों का कर्तव्य उत्तम आर्य सन्तान का निर्माण करना है, जिस की आर्य समाज के पास भारी कमी है और जिस कमी के कारण हमारे भविष्य को

में पहुंच रहे हैं। एक मुसलमान का बालक कुरान का पाठ अपना कर्तव्य जानता है। जब हम पढ़ते हैं कि स्वामी सर्वदानन्द जी के जीवन ने पलटा खाया था, कैसे ? सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने से। आज सभाओं के प्रकाशित साहित्य की जब प्रति-सप्ताह विज्ञप्तियां पढ़ते २ कई वर्ष बीत चले, तो ज्ञात होता है कि आर्यों को धार्मिक-साहित्य के खरीदने में रुचि नहीं। देवता दयानंद ने न जाने किन २ कष्टों को झेल कर सत्यार्थप्रकाश लिखा। भला उनकी किताबों को जो नित्य पढ़ता है, वह ऋषिवर के बताए वैदिक धर्म को सुचारू रूप से जान सकता है। विभिन्नता की गहरी दीवारों की स्थापना का मूल कारण अधार्मिक साहित्य का प्रचार है। आज कम्युनिस्टों का रंगबिरंगा साहित्य छपता है तो हमें स्पर्धा होनी चाहिए कि हम तो दयानंद के भक्त हैं। एक ही धर्म लाना चाहते हैं, तो दीवाली जैसे त्योहारों पर खूब साहित्य बांटें। जिस आर्य को प्रभु ने बड़ा कुछ दिया है, उसका कर्तव्य है कि आज के दिन अपने परिचित अन्य मतावलम्बी व अन्य देशों को अपने हाथ से वेदों के ग्रन्थ, महर्षि के ग्रन्थ भेजें। सही रूप में यह एक ठोस कार्य है जो आर्य जनता अपना ले तो संसार सुधर सकता है। दीपावली का जलता दीपक भी प्रकाश-साहित्य की एक किरण है। यदि हम भी साहित्य बांटने लगें तो समय आएगा, जब कि हम आज के दिन का महत्त्व जानेंगे। आओ, ऐसा करें। तभी हम इस महत्त्व-पूर्ण बलिदान पर्व से कुछ शिक्षा ले सकते हैं।

निराशा, का काला अंधकार ग्रसित करने को मुंह बाए खड़ा है। न जाने जीवन मरण के इस महत्वपूर्ण प्रश्न की हम ने क्या सोच कर उपेक्षा कर दी?

आज तो स्थिति यह है कि लोग अपने को सन्तान से पृथक करके देखने लगे हैं। आप स्वयं आर्य हैं, आर्य समाज के गण्यमान्य व्यक्ति हैं किन्तु आपकी सन्तान वैदिक सिद्धान्तों से कोसों दूर है, तो आप आर्य कैसे हुए? नीतिकारों ने पुरुष शब्द की पूर्णता स्वयं पुरुष, पत्नी तथा पुत्र से मानी है। अतः सच्चा आर्य पुरुष वही है जिसने अपनी सन्तान को वैदिक धर्म के सांचे में ढाला हो। यदि हमारे बालकों के गलों में यज्ञोपवीत नहीं, यज्ञ करना उन्हें न आता है न भाता है, तो हम आर्य समाज के हितैषी व ऋषि दयानन्द के अनुयायी होने का दावा कैसे कर सकते हैं?

परिवारों में आर्यत्व के अभाव की पूर्ति कौन करेगा? हमारी माताएं। यह कार्य है ही उनका कुछ माताएं अपनी सन्तान के आज्ञाकारी व सुशील होने का दावा करती हैं फिर भी उन्हें वैदिक सिद्धान्तों से अनुराग नहीं तो अभिप्राय यही हुआ कि उन्होंने ऐसा करने का यत्न नहीं किया और यदि दुर्भाग्यवश संतान आज्ञाकारी नहीं, माता पिता के आर्यत्व के रंग में रंगना नहीं चाहती, तो भी दोष अपनी प्रभाव हीनता का है। विचारणीय यह है कि यदि हमने अपने प्रभाव से परिवार को नहीं सुधारा तो किया क्या? और यदि परिवार सुधार लिया तो कुछ भी करने को शेष नहीं रहा। मान लीजिये, आप आर्यसमाज की तन, मन, धन से सेवा कर रही हैं, किन्तु आपके शीघ्र ही बाद, या उसी समय में आपके किए काम पर पानी फेरने वाली अनार्य सन्तान छोड़ने की भूल कर रही हैं, तो आपके कार्य का फल क्या हुआ? यह तो मिट्टी का घरौंदा बना कर मिटा डालने जैसी बात हुई। इस प्रकार तो आपका कार्य स्वल्पकालीन हुआ।

अब वह गम्भीर अवसर आ गया है जब माताओं को सचेत होना होगा। वे अपने कर्तव्य से कब तक कतरेंगी? उन्हें इतने मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए कि वे कितनी सन्तानें उत्पन्न कर चुकी हैं कितने पुत्रों को डाक्टर या इंजीनियर बना चुकी हैं। कितनी सन्तानों को धन कमाने योग्य बना चुकी हैं। अपितु गर्व और गौरव तो यह होना चाहिये कि उन्होंने सन्तानों को धन के साथ धर्माचरण के प्रति आस्था किस मात्रा में प्रदान की है। उन्हें कहां तक आर्यत्व की दीक्षा दी है यदि आप यह कार्य किसी और के करने के लिये छोड़ देती हैं फिर भी आर्य माता होने का गर्व करती हैं, केवल इस लिए। आप आर्य समाज की सदस्या या पदाधिकारणी हैं तो इसे मिथ्या दम्भ ही कहना पड़ेगा।

तनिक कल्पना तो कीजिए आर्य जाति के भविष्य की। आप के बच्चे वैदिक ग्रन्थों के नाम तक न जानेंगे तो वेद प्रचार कैसे होगा? आपकी सन्तानें साप्ताहिक सत्संगों में जाने से लज्जा अनुभव करेंगी तो आर्य समाज की सदस्य संख्या कसे बढ़ेगी? आप के बच्चे विशेष अवसरों (विवाहादि संस्कारों) पर ही थोड़ी देर के लिए जनेऊ धारण करना पर्याप्त समझेंगे, तो यज्ञोपवीत के लिए सिर की बाजी लगाने वाले क्या आकाश पाताल से

त्रैतवाद की अक्षुण्णता

(ले०-श्री विद्याभूषण,आचार्य ओंकार मिश्र 'प्रणव' शास्त्री एम. ए. फरोजाबाद)

महर्षि दयानन्द सरस्वती के साहित्य पर विवेचनात्मक दृष्टि डालने से यह बात स्वतः सिद्ध प्रतीत होती है कि ऋषि ने मानवीय जीवन हित के लिए प्रत्येक पहलू पर विचार विमर्श किया है। एक ओर ऋषि ने जहां धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में एक नवीन चेतना प्रदान की है, वहां दार्शनिक क्षेत्र में भी उन्होंने 'त्रैतवाद' की स्थापना करके एक अनुपम, अद्भुत एवं अक्षुण्ण नूतन ज्योति को प्रज्वलित किया है। तत्कालीन दार्शनिक इतिहास के अध्ययन से यह भली-भांति विदित हो सकेगा कि ऋषि के आविर्भाव से प्रथम भारतीय दर्शन शास्त्र भी पुरातन परम्परा को भूलकर अधिकांश दार्शनिक आचार्य अनेकवादों की भूलभुलैयों में भटक रहे थे। बौद्धों का कर्मवाद, जैनियों का नास्तिकवाद, नवीन वेदान्तियों का अद्वैतवाद इसी की शाखारूप, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, शून्यवाद, इस्लाम का एकेश्वर, ईसाईयत का पिता पुत्रवाद आदि विचारधाराएं उपरिनिर्दिष्ट भूलभुलैयों के ही प्रतीक हैं।

ऋषि ने अपनी अनुपम विद्वत्ता, अनोखी तर्क शक्ति एवं अकाट्य युक्तियों से इन सभी वाद-विवादों का खण्डन करके शुद्ध त्रैतावाद की स्थापना अपने पवित्र 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में की है। प्रश्नोत्तर प्रणाली के रूप में त्रैतावाद की उपक्रमणिका इस प्रकार है।

प्रश्न—यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से।

उत्तर—निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है किन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है।

प्र०—क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ?

आएंगे ?

हमारे लिये यह दो नावों पर पैर रखने वाली बात होगी कि एक ओर तो आर्य समाज के भवन निर्माण व धन संचय के लिये दिन की भूख और रात की नीन्द हराम कर दें, दूसरी ओर घर बैठे आर्य समाज का प्रकारान्तर घात करें। सन्तान निर्माण की प्रथम जिम्मेदारी शास्त्रों ने माता पिता पर ही डाली है। पुरुष कहते हैं वे धन कमाने में इतने व्यस्त हैं कि इस कार्य पर ध्यान देने का समय नहीं निकाल पाते। सौभाग्यवश हमारे अधिकतर आर्य परिवारों में देवियां बाहरी चिन्ताओं से मुक्त हैं उन्हें सब प्रकार से इस कार्य का बीड़ा उठाना होगा। प्रायः आर्य देवियां अशिक्षिता भी नहीं होतीं, अब तो उच्चशिक्षिताओं की संख्या बढ़ रही है। उन्हें वैदिक सिद्धान्तों का का ज्ञान कुछ न कुछ होता ही है। यदि कर्तव्य पालन पर डट जाएं तो इस ज्ञान को बढ़ा भी सकती हैं।

उ०—नहीं, वह अनादि है।

प्र०—अनादि किसे कहते हैं, और कितने पदार्थ अनादि हैं।

उ०—ईश्वर, जीव, और जगत् कारण में तीन आनादि हैं।

प्र०—इस में क्या प्रमाण है ?

उ०—'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समान वृक्ष परिसस्व जाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्योऽभिचाकशीति' ऋक्॥

'शाश्वती भ्य.समाभ्यः'

'अजामे।ांलोहित शुक्ल कृष्णम्'

इस प्रमाण परम्पराका उपस्थापन से ऋषि ने ईश्वर, जीवतथा· प्रकृति को अनादि माना है। अर्थात् ये तीनों पदार्थ न कभी उत्पन्न हुए हैं और न होते हैं, और न कभी होंगे। ऋग्वेद के 'द्वा सुपर्णा मन्त्र में आलङ्कारिकरीतिसे स्पष्टतयावर्णित है कि प्रकृति रूपी वृक्ष पर दो सुपर्ण (पक्षी) अनादि काल से सखारूप में बैठे हैं। उन में से एक जीव तो उस वृक्ष के फल सुख दुःखादि का भोक्ता है और द्वितीय ईश्वर फलों को न भोगता हुआ सर्वत्र प्रकाशित रहता है।

त्रैतवाद की इस पवित्र स्थापना पर पाठकों के समक्ष कुछ विचार धारा अपने प्रकार से रखी जा रही है।

कल्पना कीजिए संसार में कोई एक पदार्थ या चेतन शक्ति है। द्वितीय पदार्थ या चेतन शक्ति के अभाव में वह 'एक' क्या किसी के ज्ञान या चर्चा का विषय बन सकता है ? ज्ञेय सत्ता का कोई मूल्य नहीं जब तक कि ज्ञाता न हो। इसी प्रकार चर्चा करने योग्य पदार्थ का कोई महत्त्व नहीं जब तक कि ज्ञाता न हो। इसी प्रकार चर्चा करने योग्य पदार्थ का कोई महत्व नहीं जब तक कि चर्चा करने वाला न हो। स्पष्ट है कि यद्यपि ज्ञेय और ज्ञाता का समवाय सम्बन्ध नहीं, तो भी ऐसा सम्बन्ध अवश्य है कि एक दूसरे के अभाव में दोनों ही व्यर्थ प्रतीत होते हैं।

इसी प्रकार मान लीजिए दो चेतन शक्ति वर्तमान हैं और परस्पर दोनों विचार विमर्श करती हों किन्तु विचारणीय पदार्थ के अभाव में विचार विमर्श का आधार क्या होगा निराधार चर्चा एक की हो अथवा दो की वह तो प्रमत्त-गीत के ही समान है। अतः दो के विचार का आधार अवश्य होना चाहिए। स्पष्टीकरण की सरलता के लिए विचार कीजिए, किस संस्कृत भाषा को छोड़ को छोड़ कर २१ भाषाओं में एक वचन तथा बहु वचन में दो ही वचन माने गए हैं। अर्थात् एकोऽहं बहुस्याम' के सिद्धान्त की अप्रत्यक्षपुष्टि की गयी है। किन्तु सम्पूर्ण वैज्ञानिक जगत् जान सकता है कि एक से बहुत्व नहीं हो सकता। जब तक एक का सहायक द्वितीय न हो।

इस को सरलतया इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—एक पुरुष अथवा एक नारी बहुत्व के जनक नहीं हो सकते। ये दोनों मिल कर बहुत्व की सृष्टि करते हैं। अर्थात् उत्पत्ति का वैज्ञानिक क्रम मैथुनी सृष्टि में यही श्रेष्ठ है कि सर्वप्रथम एक वचन पुरुषत्व, द्विवचन स्त्रीत्व, तदनन्तर ही बहुत्व होता है। इसी प्रकार संस्कृत भाषा के व्याकरण ने तीन वचनों की घोषणा के साथ २ एक वैज्ञानिक सत्य का भी उद्घाटन कर दिया है।

परिणामतः किसी भी ज्ञानपूर्वक क्रिया अथवा चर्चा के लिए तीन पदार्थों की सत्ता अनिवार्य है। अर्थात १—चर्चा करने वाला, २—चर्चा सुनने वाला ३—तथा जिसकी चर्चा की जा रही है। आलंकारिक रीति से इसको इस प्रकार जानिए कि (१) परमात्मा चर्चा करने वाला है (२) जीवात्मा चर्चा सुनने वाला है तथा (३) प्रकृति चर्चा का विषय है।

इसी विवेचन को संस्कृत व्याकरण में प्रथम पुरुष चर्चा विषय, मध्यम पुरुष चर्चा का श्रोता तथा उत्तम पुरुष चर्चा कर्त्ता का रूप दिया गया है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का पर्यायवाची एक परमात्मा शब्द स्वयं ही त्रित्व का बोधक है। परमात्मा का अर्थ है बड़ा, विस्तृत या व्यापक आत्मा। ध्यान रहे यहां परम शब्द सापेक्ष है। बड़ा छोटे को अपेक्षा रखता है। अतः सिद्ध हुआ कि परमात्मा किसी आत्मा से बड़ा भी है। जिस से बड़ा या विस्तृत कहा गया है, वह है जीवात्मा। अब आत्मा शब्द के अर्थ पर विचार कीजिए।

"अत" सातत्यगमने धातु से आत्मा शब्द की व्युत्पत्ति होती है। यथाहि:—'अतति सर्वत्र सर्वदा सव व्याप्नोतीत्यात्मा) अर्थात् जो सब में सर्वदा व्यापक रहता है वह आत्मा है। स्मरणीय है कि व्यापक भी बिना व्याप्य के नहीं रह सकता है। व्यापक होने के लिए व्याप्य की सत्ता अवश्यम्भाव्य है। अन्यथा व्यापक शब्द का व्यवहार भी नहीं हो सकेगा। इस प्रकार ईश्वर व्यापक है और प्रकृति व्याप्य है तथा जीवात्मा ईश्वर से छोटा आत्मा है। यही क्रम अनादि काल से वर्तमान है।

दीपक का अभिमान

(श्री राममूर्ति जी कालिया, एम. ए दिल्ली)

(१)

मेरा होना जग में तम का काल बन गया,
यह जग मेरे कारण से खुशहाल बन गया।
भूले भटके पथिकों को पथ दिखलाता हूं,
देता हूं आलोक स्वयं जलता जाता हूं॥

(२)

कालापन खाकर करके भी मैं चमक रहा हूं
तिल तिल कर जलके भी मैं दमक रहा हूं।
छोटा सा हो कर के भी मैं बड़ा बना हूं,
सच पूछो मैं अन्धकार में तना खड़ा हूं॥

(३)

दीपक है यह सत्य कि तुम जलते रहते हो,
अपने ही मुख से तुम इसको क्यों कहते हो?
अन्धकार निगला जो तुमने बना हुआ है,
गया कहां वह तले तुम्हारे छिपा हुआ है॥

कृण्वन्तो ॥ ओ३म ॥ विश्वमार्यम

श्री मद्दयानन्द ऋषि-बोध-अंक

आर्य जगत

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर

शिवरात्री के पूजन पर बालक मूलशंकर विस्मय जनक दृश्य मे

अधिष्ठाता—डा० वेदीराम जी शर्मा एम ए
... सभा मंत्री

मूल्य ५० पैसे

सम्पादक—श्री त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री
... सभा

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब का वार्षिक निर्वाचन

माननीय प्रि० भीमसेन जी बहल, एम.एस.सी.

सर्वसम्मति से पुनः सभा प्रधान निर्वाचित हुए



आर्यप्रादेशिक सभा पजाब के दिनाक ११ फरवरी १९६८ ई० रविवार को आर्य समाज अनारकली मन्दिर माग नई दिल्ली मे सम्पन्न वार्षिक अधिवेशन मे सर्वसम्मति से श्री प्रि० भीमसेन जी बहल को प्रधान चुना गया तथा अन्य अधिकारियो एवम् अन्तरग सभा प्रतिष्ठित सदस्यो और सार्वदेशिक सभा के प्रतिनिधियो को मनोनीत करने के भी सभी अधिकार आपको दिए गए। आपने सभी मान्य प्रतिनिधियो से प्रेम भरे शब्दो मे निवेदन किया कि—'आपने सभा का जो दायित्व मुझे सौंपा है उसके लिए आप सभीको पूर्ण सहयोग देना आवश्यक है। सभा बडे विकट आर्थिक सकट मे है। वेद प्रचार के कार्य को भी बढाना है। अत सभी को हृदय खोलकर तन, मन, धन से सभा की सहायता मे अग्रसर हो जाना चाहिए।

सदस्यो ने सभा प्रधान को हर प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया।

—[illegible]

ओ३म्

आर्य जगत

का

ऋषिबोध (शिवरात्रि) विशेषांक

२६ फरवरी १९६८ शिवरात्रि २०२४

१८, २५ फरवरी तथा ३ मार्च १९६८ के ६, ७, ८ का सम्मिलित अक वर्ष २८

वेदामृत

●●●●●●●

**ओ३म् अग्ने व्रतपतेव्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपमि ॥**

—यजुर्वेद

प्रभुदेव ! आप तमाम व्रतों को पूर्ण करने वाले हैं। व्रतपति हैं। मैं भी जीवन में पवित्र व्रत धारण करने लगा हूं। ऐसी कृपा करें कि मुझे इस पावन व्रत को पूरा करने की शक्ति प्रदान करें। आप की कृपा के बिना व्रत कैसे पूर्ण हो सकता है? मैं अनृत से, असत्य से तथा इन विनाशी पदार्थों से अविनाशी सत्य रूप आप को प्राप्त करूं। इन क्षण भंगुर विश्व के चमकीले रूपों में लिप्त व आसक्त हो कर आप के सत्य, अविनाशी रूप को भुला न बैठूं। मेरे इस व्रत को पूर्ण करें, सफल करें—सं.

सम्पादकीय

व्रती की व्रतनिष्ठा

भगवान से प्रार्थना की जाती है कि व्रतपते व्रत चरिष्यामि...प्रभुदेव ! आप सारे व्रतो को पूर्ण करने वाले हैं, इसलिए मैं जिस जीवन व्रत को धारण करने लगा हू उसकी सफलता के लिए शक्ति प्रदान करो ताकि मेरा यह पवित्र व्रत पूर्ण हो सके। जीवन भी एक व्रत है जिसे सफल करने के लिए नाना प्रकार के साधन अपनाने होते हैं। मनुष्य जब तक व्रती नही बनता तब तक उसका प्राप्ति स्थान उसे मिल ही नही सकता। व्रत का व्रती बनकर ही मानव अपने कार्य को पूरा कर सकता है। व्रतहीन मानव तो मानव ही नही है। धनहीन या भूमिहीन हो, सत्ताहीन या वर्गहीन हो—इसमे बुराई नही किंतु व्रतहीन होना बडा पाप है। व्रत से रहित जीवन भी क्या जीवन है ? जिस रथ या नौका के सामने कोई मंजिल ही नही है उसने फिर पहुचना कहा है ? वह पहुच भी कैसे सकते है। व्रत का लेना परमावश्यक है। व्रत के रूप भिन्न-भिन्न हो सकते हैं किन्तु जीवन में इस की है बड़ी जरूरत। कोई विद्याव्रती बनता है तो कोई धनव्रती, कोई बलव्रती तो भोगव्रती, कोई धर्मव्रती तो कोई सत्ताव्रती—व्रती बनना पड़ता है। व्रत की दीक्षा तो लेनी ही पड़ती है।

आज की शिवरात्रि एक चौदह वर्ष के बालक के लिए व्रत का पर्व बनकर आई थी। टकारा के शिव-मन्दिर मे मूलशकर ने आज की रात को एक व्रत रखा था—महान व्रत। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा शिव के दर्शन करने के लिए। शरीर का भी व्रत रखा। उस दिन दिन उसने न कुछ खाया और न ही पिया। मन का भी व्रत रखा सत्य सकल्प था कि आज की रात शिव की मगलमयी रात है। भगवान शिव के दर्शन होगे। इसके लिए व्रत की दीक्षा लेकर जागता रहा। सब सो गये किन्तु वह व्रती न सोया। व्रत में नीद कैसी ? व्रती की व्रतनिष्ठा का ही परिणाम था कि मूलशकर फिर दयानन्द बनकर व्रत के विशाल पथ पर चल पडा। तब तक व्रती का व्रत पूरा न हो तब तक आरामहराम होता है। विश्व के प्रलोभन, चमकीली तारे, इन्द्रियो के विषय तथा भयानक बाधाएं भी उस व्रती को रोक न सकी। व्रत की निष्ठा ने व्रती को सफलता दी। मौत पर विजय तथा शिव प्राप्ति दोनो मिल गये। यह रात्रि व्रती की व्रतनिष्ठा का स्मरण कराती है। हम भी उस व्रती देवता दयानन्द के अनुगामी हैं। आज फिर यह पावन पर्व हमे व्रत का स्मरण कराने आया है। सोचे कि क्या हम व्रती है ? हमने किसी भी पवित्र व्रत की दीक्षा ली है। हमारे सामने भी जीवन-पथ है या नही ? वेद प्रचार के लिए समय देने का, सम्पत्ति देने का, समाज की सेवा का, जीवन निर्माण का किसी प्रकार का भी व्रत हम ने लिया है ? इस शिवरात्रि पर उस महान व्रती का सन्देश सुनना है।

—त्रिलोक चन्द्र

आर्यो का बोध-दिवस

[श्री प्रि० भीमसेन जी बहल, एम०एस०सी०, प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर]

इकतालीस दिन के निरन्तर उपवास के पश्चात् सिद्धार्थ को जब जेठी-मधुवन मे गाएं चराती हुई सुजाता ने पवित्र दूध से खीर बना कर खिलाई तो उस तपस्वी राजकुमार को "आत्मबोध" हुआ। सन्त रुसव ने एक लोमडी को जब किसी पत्थर की मूर्ति पर मल-विसर्जन करते देखा तो उसके अन्त.करण से आवाज़ आई कि यह ईश्वर नही है। हमारी श्रद्धा के विशेष भाजन बालक मूल शकर को भी शिवरात्रि की अन्ध निशा मे यही बोध

हुआ और एक सच्चे जिज्ञासु के रूप में अन्ध-विश्वासो का परित्याग कर, सच्चे शिव की खोज मे तल्लीन हो गए। छान्दोग्योपनिषद् के शब्द इस शुभ कार्य पर कितने उपयुक्त प्रतीत होते हैं—

"यदेव विद्या करोति
श्रद्धयोपनिषदा तदेव बलवत्तरं"

अर्थात् जो बुद्धि पूर्वक श्रद्धा से, वृद्धो के सरक्षण मे शुभ कर्म किया जाता है, वही सब से अधिक बलशाली होता है। अंग्रेजी के विद्वान ने भी ऐसा ही कहा है—



"Where Sacred Souls meat with inertia great things happen there." जहा पवित्र आत्माए मेधा बुद्धि से युक्त होकर कर्म करती हैं वहां महान् कार्य होते हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने भी इसी प्रकार बुद्धि पूर्वक कठोर साधना की, उनके मन, वाणी, और कर्म मे विद्युत शक्ति और प्रतिमा प्रकाशमान हो उठी। उन्होने अपने साधनाकाल मे कटीले और सघन वनों, कैलाश जैसे ऊचे पर्वतो, विन्ध्याचल और आबू की दुर्गम चोटियो, गगा-यमुना-नर्मदा आदि नदियो के तट पर बैठ कर अपनी आत्मा मे प्रभु स्मरण कर अपना कार्यक्रम निर्धारित किया था। इसी साधना और चिन्तन का फल 'आर्य समाज' है।

महर्षि दयानन्द की इस पुष्पित वाटिका आर्य समाज मे महात्मा हसराज, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे सुरभित पुष्प खिले जिन्होने महर्षि द्वारा निर्मित आर्य समाज के दस नियमो को अपने जीवन का ध्येय स्वीकार कर देश-जाति और धर्म पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। ऐसे महान व्यक्तियो के त्याग और बलिदान को देख कर जहा स्वदेश के अन्य मतावलम्बी प्रभावित हुए वहा विदेशी सत्ता भी भयभीत हो उठी थी। किन्तु आज आर्य समाज का वह तेज कुछ मन्द-सा पड़ता दिखाई दे रहा है। आज इसके अपने ही मुख्य कार्यकर्ताओ मे भी पारस्परिक सम्पर्क केवलमात्र ऊपर-ऊपर का सा ही रह गयाहै, किसी क्रातिकारी आदर्शवाद, या कार्यक्रम पर आज आर्यसभासद एक रूप होकर नहीं चल रहे। इस अवस्था पर आज थोडा विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

सर्वप्रथम हमे यह निश्चय करना होगा कि आर्य समाज का सगठन किसी महान उद्देश्य का साधन है या यह स्वय एक उद्देश्य है? वस्तुत आर्यसमाज के प्रारम्भ-काल मे महर्षि द्वारा प्रणीत १० नियमों के ऊपर प्राय: 'आर्यसमाज के उद्देश्य व नियम—यह शब्द लिखे होते थे। किन्तु अब कुछ समय से इन १० तत्वो को केवल-मात्र नियम समझा जाने लगा है और संस्थाओ तथा अन्य **Societies** के नियमो के समान इन्हे भी एक शिष्टाचार के रूप मे स्वीकार करने की प्रथा चल पडी है। जिस प्रकार मनुस्मृति के अनुसार यम-नियम दोनो का साथ-साथ पालन करना ही कर्तव्य माना गया है इन मे से किसी भी एक को छोडना पाप है। इसी प्रकार इन दस तत्वो को केवल नियम समझ कर इनकी इस प्रकार की औपचारिक (**Formal**) स्वीकृति आज आर्यसमाज की अवनति का कारण बनी हुई है। आवश्य-कता इस बात की है कि इन १० तत्वों को उद्देश्य समझ कर यमो की भान्ति इनको प्रत्येक आर्य सभासद जीवन में चरितार्थ करने का ध्यय बनाए।

वर्तमान युग अनुसन्धान **Research** का युग है। वैज्ञानिक, राजनीतिक, दार्शनिक आदि सम्प्रदाओ के नेता अपने-अपने सिद्धातो की रिसर्च के लिए अपने-

अपने विद्वानों को संगठित कर उन्हें विश्व-विचारधारा पर अपने सिद्धांतों की छाप लगाने की योजनाएं बना रहे हैं। बौद्ध-ईसाई अपनी-अपनी विद्वत्परिषदों द्वारा यह कार्य कर रहे है परन्तु आर्यसमाज इस दिशा मे सर्वथा उदासीन है। इस समय आर्यसमाज की विचार-धारा के अतिरिक्त तथा उपयोगिता को स्थापित करने का एक मात्र उपाय यही है कि हम संगठित रूप से वैदिक अनुसन्धान का कार्य करे। अन्य सुधार के काम तो अन्य संस्थाएं भी कर लेंगी, गीता पुराण का प्रचार भी हो जाएगा, परन्तु वेद की यौगिक प्रणाली से व्याख्यान तथा भाष्य सिवाय आर्यसमाज के अन्य कोई नहीं कर सकता। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन काल में राय मूलराज जी की सहायता से पंजाब यूनिवर्सिटी मे इस दिशा में कार्य कराने की इच्छा प्रकट की थी किंतु उस समय सफलता न मिली, अब तो इस दिशा मे आर्यसमाज के विद्वान खूब कार्य कर सकते हैं। वेद का सत्यार्थ प्रकाश ही मानव समाज को आर्यसमाज बना सकता है।

अतः आज इस ऋषिबोध के पावन पुण्य दिवस पर हमे इस दिशा मे, आर्यसमाज को बलवान बनाने के लिए कुछ न कुछ निश्चय अवश्य करना चाहिए, तभी बोध दिवस पर हमे भी बोध प्राप्त हो सकेगा।★★★

महर्षि दयानंद के उपकार

[श्री वेद प्रकाश जी मलहोत्रा एम. ए. अंग्रेजी तथा हिन्दी]

महर्षि दयानन्द अपनी दूरदर्शिता तथा तपस्या के कारण विश्व वन्द्य हुए। आप ने जगत को वेद मार्ग दिखाया। आप सच्चे ईश्वर भक्त मानव-प्रेमी तथा त्यागी साधु थे। आप ने अपना जीवन न केवल भारत अपितु सारे विश्व के कल्याण के लिए कार्य करने मे लगाया।



आप ईर्ष्या और द्वेष से ऊपर रहते हुए प्रत्येक से प्रेम और स्नेह करते थे। आप जैसा क्षमाशील व्यक्ति संसार के इतिहास में दुर्लभ है। आधुनिक ससार आप का उचित मार्ग प्रदर्शन के लिए कृतज्ञ है। अब विदेशों मे भी आप के विचार पहुच रहे हैं और विदेशी नागरिक आप की तर्क शैली तथा सेवा भावना से प्रभावित होते हुए कहते हैं कि महर्षि दयानन्द की वाणी के अनुवाद उन की भाषाओं मे प्रस्तुत किये जायें। हमारे साधन चाहे इतने न हों पर फिर भी यह एक ऐसी आवश्यकता है जिस की ओर आर्य समाज को ध्यान देना होगा।

महर्षि दयानन्द का सब से प्रमुख उपकार मानव बनने का उपदेश देना है। वे नहीं चाहते थे कि मानव किसी का शारीरिक अथवा मानसिक दास बने। वे मनुष्य के उत्तरोत्तर विकास के समर्थक थे और उसे स्वतन्त्र रूप से अपनी उन्नति में व्यस्त देखना चाहते थे। परन्तु साथ ही उनका विचार था कि मनुष्य की वास्तविक उन्नति केवलमात्र उसकी अपनी उन्नति में नहीं उसके समाज की उन्नति मे भी हैं। उसे दूसरों की उन्नति मे अपनी उन्नति देखनी चाहिए। व्यक्ति समष्टि का अंग है। व्यक्ति और समष्टि दोनों को साथ-साथ उन्नत होना है।

महर्षि दयानन्द का दूसरा उपकार ईश्वर का सच्चा स्वरूप जगत के सामने रखना है। उन्होंने हमें मूर्ति-

पूजा से स्वतन्त्र कराया। उन्होंने अवतारवाद के पाखड से भी मानव को मुक्ति दिलाई। उन्होंने ईश्वर को किसी व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित कहानियो के साथ नही उलझने दिया। यदि आधुनिक युग में किसी ने सच्चे शिव के दर्शन करके उसकी व्याख्या सत्य के आधार पर की तो वे ऋषि दयानन्द ही हैं।

महर्षि दयानन्द का तीसरा उपकार विश्व के सामने वेद के सच्चे महत्व को रखना है और दुनिया को यह उपदेश देना है कि वेद मार्ग से ही इसका कल्याण हो सकता है। भूले-भटके विश्व को पावन वेद वाणी का सन्देश महर्षि ने ही इस युग मे दिया।

महर्षि ने भारत को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक स्वतन्त्रता का मार्ग दिखाया। वे भारत मे स्वराज्य और सुराज्य चाहते थे। वे भारत को समृद्ध सगठित और सबल देखना चाहते थे। वे भारत की एकता के समर्थक थे। उन्होंने राष्ट्र भाषा के पद के लिये हिन्दी को चुना और राष्ट्रोत्थान के लिए स्वदेशी वस्तुओ के प्रयोग पर बल दिया। उन्होंने देश मे से छुआ छूत, बाल्य विवाह भ्रम तथा पाखण्ड को उखाड फेंकने का सफल प्रयत्न किया। महिलाओ को समाज मे उचित स्थान दिलाना भी उन का ही कार्य था। वे विधवा विवाह तथा शुद्धि के समर्थक थे।

महर्षि ने व्यक्तिगत जीवन मे ब्रह्मचर्य का महत्व बताया और स्वयं इस का उदाहरण उपस्थित किया।

महर्षि के उपकार अनगिनत हैं। प्रश्न यह है हम उन के प्रति अपना आभार किस तरह प्रगट कर सकते हैं। मेरे विचार मे साधारण कृतज्ञता की यह माग है कि हम न केवल अपने आप को महर्षि द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलाये अपितु दूसरो को भी इस ओर आने की प्रेरणा दें। भारत जैसे विशाल देश मे महर्षि भक्तो के लिये विशाल कार्य क्षेत्र पड़ा है। काम बहुत है करने वाले थोडे हैं। महर्षि के भक्तो को अपना तन मन धन उन के विज्ञान के प्रचार मे लगाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को एक अवैतनिक मिशनरी के रूप मे कार्य करते हुए अपने परिवार तथा समाज के उत्थान मे जुट जाना चाहिए। अब फालतू बाते करने का समय नही है, काम करने का समय है। आओ हम अपना कर्तव्य पहिचाने।

महर्षि दयानन्द की धार्मिक चेतना

[श्री डा० वेदीराम जी शर्मा एम० ए० पी-एच० डी० मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा जालन्धर]

आज के इस प्रगतिशील युग मे धर्म की बात करना कुछ मजाक सा समझा जाता है। धर्म को इस प्रकार की स्थिति में पहुंचा देने मे मतो की अवैज्ञानिक मान्यताए ही अधिक उत्तर दायी रही हैं। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज के उदय से पूर्व भारत मे भी धर्म का रूप इतना विकृत हो गया था कि उसे स्वीकार करके उस का अनुयायी बनना तो दूर रहा, मानव मनमे इसके लिए इतनी घृणा भर दी गई थी कि लोग धर्म शब्द से ही घृणा करने लगे थे। महर्षि का सब से बड़ा उपकार यही है कि उन्होंने वैदिक धर्म का सच्चा स्वरूप जनता के समक्ष प्रस्तुत कर इसे मत-मतान्तरों के हीन रूप से ऊपर उठा दिया। इसलाम और ईसाई मतो की कट्टरता ने जो धर्म के विपरीत शताब्दियो तक कार्य किए उस पाप के कीचड से स्वामी जी महाराज ने ही जनता को बाहर निकाल कर वैदिक सूर्य की अनन्त प्रभा से प्रभावित कर दिया।

यूरोप के धार्मिक इतिहास मे एक लम्बा समय 'अन्धकार युग' (**Dark Age**) के नाम से प्रसिद्ध है। यह समय ईसा की दसवी शताब्दी से सतरहवी शताब्दी तक समझा जाता है। इस काल मे ईसाई पादरियों के हाथो भौतिक विज्ञान वेत्ताओं, भूगोल वेत्ताओं खगोल वेत्ताओ और आविष्कार करने वालो पर जो भीषण

अत्याचार किए और धार्मिक मत भेदों के कारण रोमन कैथोलिको पर प्रोटेस्टेण्टो ने और प्रोटेस्टेण्टो पर रोमन कैथोलिकोने जो जुल्म ढाए, उनका उदाहरण ससार के किसी भी इतिहास मे नही है। धर्म के नाम पर स्वार्थ पूर्ति और राज्य सत्ता को हड़पने के लिए होने वाले झगड़ो के कारण यूरोपीय देशों में धर्म का विद्रोह होने लगा और धर्म को अफीम बताकर त्याज्य कहा जाने लगा। सच है,—



खुदा के बन्दों को देख कर ही,
खुदा से मुन्किर हुई है दुनिया।
कि ऐसे बन्दे हैं जिस खुदा के,
वह कोई अच्छा खुदा नही॥

ईसाई जगत में उस अन्धकार युग मे इन्क्वीजीशन नामक धार्मिक अदालत होती थी। इस अदालत के न्यायाधीश पोप द्वारा दी गई सजा की कही भी अपील न हो सकती थी। जो लोग ईसाई धर्म में अविश्वास या शका करते थे या पोप की आज्ञाओ का उल्लघन करते थे वे अपराधी करार दिए जाकर इस अदालत मे पेश कर दिए जाते थे और जब तक अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार न करे उसे कई प्रकार की यन्त्रणाएं दी जाती थी। इस प्रकार की यन्त्रणाओ के लिए कई यन्त्र भी तैयार किए जाते थे। इन मे 'रैक' 'कालर आफ टारचर' 'स्कैवेंजर्स राटर' नामक यन्त्र बहुत प्रसिद्ध थे।

इन उपर्युक्त यन्त्रो मे अपराधी समझे जाने वाले व्यक्ति को चाहे वह नवयुवक, वृद्ध या कोमलागी युवती ही क्यो न हो, नंगा करके फसा दिया जाता था और फिर इन्ही के द्वारा उसे भीषण यन्त्रणा दी जाती थी। 'रैक' अभियुक्तो के अंगा को खीचने का यन्त्र था। इस के द्वारा अभियुक्त की उंगलिया हाथ, पैर व अन्य सब खीचे जाते थे।

इससे मनुष्य को भीषण कष्ट होते थे। लोग चीख-चीख कर या तो मर जाते थे या अपना अपराध स्वीकार कर पादरी के अनुसार ईसाई धर्म की मान्यता स्वीकार कर लेते थे। **'कालर आफ टारचर'** एक अन्य भीषण यन्त्र था। इसमें एक कालर रहता था जिसमे सैकड़ो सुइया लगी रहती थी। यह कालर अविश्वासियों के गले मे लगाया जाता था, जिसमे वे लोग अपनी गर्दन इधर-उधर नही हिला सकते थे। इधर-उधर हिलाने से वे सुइया उन्हे चुभने लगती थी। कुछ समय पश्चात उसकी गर्दन सूज जाती थी और वह मौत का मेहमान हो जाता था। इसी प्रकार 'स्कैवेन्जर्स राटर' एक कैंची की तरह होता था। इसमे अपराधी के हाथ, पैर, और सिर को कसने के अलग-अलग खाने बने होते थे। इस यन्त्र मे अपराधी के हाथ, पांव और सिर फंसाकर कस दिए जाते थे जिसमे वह जैसे का तैसा जड़-वस्तु की तरह कस जाता था। अन्त में व्यक्ति तड़फ-तड़फ कर अपने जीवन को धर्म के दूत पादरी के लिए बलिदान दे देता था।

"इन्क्वीजीशन" से सजा पा कर मरे हुए लोगों को अलग-अलग नही जलाया जाता था अपितु बहुत से मुर्दे इकट्ठे होने पर उन्हे एक साल ही जला दिया जाता था। जलाने के दिन की घोषणा हो जाती थी उस दिन लोग त्यौहार मनाते थे। स्वयं बादशाह भी ठाठ-बाट के साथ इस अवसर पर उपस्थित होता था। सब कैदियो की जबाने एक दूसरे के साथ बाध दी जाती थी। इस के पश्चात नाना प्रकार की सामग्रियों से भरे भोजन के थाल उन के आगे पेश कर के उन से मजाक किया जाता था। प्रधान पादरी का भाषण होता था जिस में वह

जी भर कर इन अपराधियो को गाली देता था। इस के बाद जिन्दा या मरे सभी को एक चबूतरे पर रख कर धधकती आग मे फेंक दिया जाता था।

ये सब अत्याचार पवित्र धर्म के नाम,पर किए जाते थे। अपने पहिले वर्ष में ही इस अदालत ने एक ही प्रान्त मे दो हजार यहूदियो को 'स्टेक' से बाध कर जला दिया। इस से भयभीत होकर हजारो यहूदियो ने अपने आप ही आत्मघात कर लिया। 'लौण्डो' का कथन है कि अकेले टोर्की-तेड़ा नामक राजा ने अपने राजत्वकाल मे एक लाख, चौदह हजार चार सौ एक मनुष्यो का सर्वनाश किया। इसके अतिरिक्त चार्लस पचम के राजत्वकाल में एक लाख से अधिक अविश्वासियो को प्राण दण्ड दिया।

यह तो केवल ईसाई धर्म की बात हुई इस्लाम ने भारत मे जो अत्याचार किए वह तो विधर्मी होने के कारण कुछ उचित भी कहे जा सकते हैं किन्तु उन्होने शताब्दियो तक सूफी फकीरो को जो तलवार के घाट उतारा उसका कारण क्या कहा जाएगा। मसूर, अल्हल्लाज, इमाम गज्जाली आदि फकीर 'अनहलकखुदा' कहते-कहते ही अपने मुसलमान भाइयो की द्वेषाग्नि मे भस्म हो गये थे।

इस परिस्थिति का प्रभाव हिन्दु धर्म पर भी उस मे पड़ना स्वाभाविक था। महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इन सभी परिस्थितियो को अपनी निर्मल भाव भूमि में वैदिक-ज्ञान चक्षुओ से स्पष्ट और इनका जो उचित उपचार सत्यार्थ प्रकाश रूप मे प्रदान किया उसे विश्व-मानव कभी भुला न सकेगा। आओ आज उस महान ऋषि के पावन बोध-दिवस पर सच्चे धार्मिक जीवन को ग्रहण करने का व्रत लेकर उनके चरणो मे अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करे।

—•—

आर्य जगत् के स्नेही पाठकों से

आर्य जगत सभा का साप्ताहिक मुख पत्र है। पत्र धर्म प्रचार मे कितना सहायक होता है, यह तो सब को विदित ही है। सभा अपने साप्ताहिक पत्र द्वारा सन्यासी महात्माओ, समाज के पुराने अनुभवी नेताओ, विद्वानो कवि महोदयो तथा युवक भाई बहिनो को जीवन देने वाले आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, एवं सामाजिक लेखो वा कविताओ से धम प्रचार कर रहा है। यत्न होता है कि प्रति सप्ताह दो तीन मननशील सज्जनो के लेख अवश्य पाठको की सेवा मे पहुचाए जाए। सभा की प्रचार सम्बन्धी सूचनाए भी होती है। सभा अपने कर्तव्य को सदा से निभाती चली आ रही है। सब लेखक सज्जनो को 'जगत पर अनुम्पा का आभार प्रदर्शन करते हुए जनता से प्रार्थना करते हैं कि आर्य जगत को अधिक से अधिक प्यारा बनाने का यत्न करेंगे। ग्राहक बना कर सहयोग देंगे। अपने अमूल्य सुझाव भी देते रहेंगे।

—सम्पादक

★ प्रत्येक मृत्यु यह याद दिलाती है, हर घटी कहती है कि अन्त निकट है। हर दिन आप के बहूमूल्य जीवन के एक अश को समाप्त करता है, अतः सतत साधना मे सलग्न हो जाना चाहिये।

आवश्यक निवेदन

आर्यसमाजो तथा अपनी संस्थाओ से निवेदन है कि समय-समय पर अपने यहा होने वाले पर्व संस्कार, यज्ञ, उत्सव आदि की सूचना आर्यजगत कार्यालय आर्य प्रादेशिक सभा हंसराज भवन जालन्धर शहर के पते पर भिजवा दिया करें ताकि उचित समय पर प्रकाशित हो सकें।

—व्यवस्थापक

हिंदी सप्ताहिक पत्र

'आर्य जगत'

जालन्धर के स्वामीत्व अधिकार तथा अन्य विषयों का ब्यौरा फार्म ४

(अधिनियम ८ देखो)

१—प्रकाशन का स्थान :—कार्यालय आर्य प्रादेशि प्रतिनिधि सभा, महात्मा हंसराज भवन, निकट कचहरी, जालन्धर नगर।

२—प्रकाशन की अवधि :—सप्ताहिक।

३—मुद्रक का नाम :—वेद प्रकाश मलहोत्रा।
जाति :—भारतीय।
पता :—मन्त्री आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, निकट कचहरी जालन्धर नगर।

४—प्रकाशक का नाम :—वेद प्रकाश मलहौत्रा।
जाति :—भारतीय
पता :—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी जालन्धर

५—सम्पादक का नाम :—प० त्रिलोकचन्द जी शास्त्री बी०ए०
पता .—महोपदेशक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी जालन्धर नगर

६—पत्र के स्वामी व्यक्तियो के नाम अथवा पते जो उसके साझीदार हैं। अथवा इसकी सम्पूर्ण पूंजी के १ प्रतिशत से अधिक भागो के मालिक हैं :—

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा रजिस्टर्ड संस्था ही इस पत्र की स्वामिनी है।

मैं वेदप्रकाश मलहोत्रा इस लेख द्वारा घोषित करता हूं कि ऊपर लिखे विषयों की सूचना मेरे ज्ञान व विश्वास के अनुसार सर्वथा तथ्य पूर्ण है।

(हस्ताक्षर) वेदप्रकाश मलहोत्रा—प्रकाशक आर्यजगत सप्ताहिक जालन्धर,

आर्यो शिवरात्रि पर दीक्षा लो

[लेखक—प० भगवान देव शर्मा संचालक, महर्षि दयानन्द योगाश्रम-टकारा (गुजरात]

जैनियो का कोई पवित्र दिन था। नगर मे एक बड़ा भारी जलूस निकाला गया। जैन सम्प्रदाय के स्त्री पुरुषों का उत्साह उस जलूस में देखने लायक था। तरह-तरह के रंगीन कीमती वस्त्र धारण किये हुए वे लोग सड़क पर आगे बढ़ते जा रहे थे। उनके आगे उस सम्प्रदाय के साधु-स्त्री-पुरुष थे। उन साधुओ के त्यागी लिबास को तथा अनुयायियो के रंग-बिरंगी विलासी लिबास को देख कर मैं आश्चर्य मे अवश्य पड़ा, परन्तु ज्यो ही जलूस आगे बढा त्यो ही मैंने एक सुन्दर सजी हुई विकटोरिया में एक नव-जवान, खूबसूरत कन्या को देखा। जिसका मुखड़ा कवि के शब्दो मे लिखो तो चाद को भी शर्माता था। पूछने पर मुझे बताया गया कि 'यह एक करोड़पति की एक मात्र कन्या है, जो दीक्षा ले रही है। दीक्षा लेने के पश्चात यह साधु जीवन बिताएगी और जैन ग्रन्थो का अध्ययन करके उसका प्रचार करेगी।'

इसी प्रकार जैन नवयुवक आदि भी दीक्षा लेते है जिन को दीक्षा देते समय असंख्य स्त्री पुरुष बड़े उत्साह के साथ इकट्ठे होते है और उनका शानदार जलूस निकाला जाता है।

दयानन्द के वीर सैनिक बनने तथा दयानन्द का काम पूरा करने वालो! ऋषि बोधउत्सव के पुण्य पवित्र अवसर पर जिस दिन हमारे ऋषि ने बोध प्राप्त किया, आप अपने हृदय, घर और समाजों को टटोलो कि आपने अथवा आपके बच्चों ने या आपकी समाज में कितनी सख्या में लोगों ने दीक्षा लेकर दयानन्द का काम पूरा की कोशिश की? आओ आज समय आ गया है कमर कस कर ऋषि का ऋण चुका दें।

कुछ लोग जो स्वय तो कुछ कर पाते नही, अन्य कोई आर्य समाज की सेवा करता होगा तो उसकी टीका करने को तैयार हो जाते है कि महर्षि जी ने ऐसा लिखा तैसा लिखा है और यह ऐसा चला रहा है या कर रहा है आदि ऐसी मनोवृत्ति रखने वालो से हम सिर्फ इतनी प्रार्थना करेगे कि यदि आप ऋषि के सिद्धातो के इतने हामी हैं और आपकी उम्र ५० वर्ष से ऊपर की है, आपको अन्य बातें कहने से पूर्व वानप्रस्थ ले लेना चाहिए क्योंकि ऋषि ने यह भी तो लिखा है कि ५० वर्ष पूरे होने पर वानप्रस्थ और फिर सन्यास लेकर धर्माचरण करते हुए, धर्म प्रचार तथा प्रभु भक्ति मे अपना मन लगा कर मोक्ष प्राप्ति केलिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।'

क्या आप ऋषि के इस सिद्धात का पालन करते है? क्या आपने २५ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करके विद्या अध्ययन किया? या अपने बच्चो को २५वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन कराकर विद्या अध्ययन कराया? यदि नही, तो ऋषि के सिद्धातो के ठेकेदार बन कर अन्यो की टीका करना बन्द करें।

हर साल शिवरात्रि और दीपावली पर बड़े-बड़े मेले लगाए जाते हैं। कुछ वर्ष पूर्व मथुरा मे 'दीक्षा शताब्दी' मनाई गई। हम लाखो अपने आप को ऋषि 'अनुयायी' और 'आर्य कहलाने वाले वहा इकट्ठे हुए। लाखो रुपये खर्च किए गए। इन पक्तियो के लेखक को भी उस अवसर को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दीक्षा शताब्दी प्रोग्राम की समाप्ति पर जब मैं वापिस अपने निवास स्थान पर लौटा तब मुझ से एक प्रतिष्ठित जैन भाई ने पूछा—'पडित जी! आप इतने दिन कहा गए थे?' मैंने उत्तर दिया—'मथुरा मे दीक्षा शताब्दी थी, वहा गया था।' तब उस जैनी महाशय ने जिज्ञासु भावना से पूछा—'कितने लोगो ने दीक्षा ली?' यह शब्द सुनकर मेरा मस्तिष्क चकराने लगा कि यह पूछ क्या

रहा—और मैं उसे जवाब क्या दूं। 'आखिर मैंने उसे कहा—'मेरे देखने मे एक ने भी नही।' तब उस जैनी महाशय को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसे? दीक्षा शताब्दी मे एक ने भी दीक्षा नही ली मैंने उन्हे कहा—हमारे गुरुवर ऋषि दयानन्द ने अपने गुरु के चरणों मे रहकर जब ज्ञान प्राप्त करके दीक्षा ली थी—उसको सौ वर्ष पूरे होने आए थे, इस लिए यह प्रोग्राम रखा गया था।'

मैंने जैनी महाशय को उत्तर तो दे दिया; परन्तु मेरा मन विचार सागर में डूब गया। आखों के चारो ओर मुझे—दीक्षा! दीक्षा!! शब्द दिखाई देने लगा। आत्मा ने कहा—हम लकीर पीटते चले जा रहे हैं—धीरे-धीरे हमारे अन्दर भी पौराणिको के अनुसार अन्ध-विश्वास घर करता जा रहा है, हम लकीर के फकीर बनते जा रहे हैं। जैसे पौराणिक, महापुरुषो की मूर्ति सामने रख कर अन्ध श्रद्धा से उन्हे भगवान् मान कर पूजते हैं तथा जयन्तियां मनाते हैं उनका सा जीवन अपना बनाने की कोशिश नही करते; यही हालत हमारी बनती जा रही है।

हे आर्य वीरो जागो! वैदिक धर्म की जय बोलने वालो! जब तक आप बौद्ध, जैन तथा नारायण स्वामी सम्प्रदाय के अनुसार वही दीक्षा लेकर विश्व की विभिन्न भाषाओ को सीखकर ससार के कोने-कोने मे फैल न जाओगे, तब तक न समस्त विश्व आर्य बन सकेगा और न आप दयानन्द का काम पूरा कर सकेंगे' व वैदिक धर्म की जय होगी। नारे भले ही लगाते रहो। गीत भले ही गाते रहो। परन्तु होने का कुछ नही।

एक दिन एक एक आर्य समाजी घर पर भोजन कर रहा था। बच्चा बीमार था। अचानक उन्हे पता लगा कि पास वाले गाव मे एक हिन्दू यवन-मत स्वीकार कर रहा है। भोजन को तथा बीमार बच्चे को छोड़कर वह चूड़ीदार पजामा तथा सर पर पगड़ी बांधे हुए व्यक्ति उस गांव की ओर जाने के लिए ट्रेन मे सवार हुए ट्रेन उस गांव के छोटे स्टेशन होने के कारण नही रुकी। चलती गाड़ी में से वह कूद पड़ा। दौड़कर उस व्यक्ति के घर पर पहुचे जो यवनमत स्वीकार करने के लिए तैयार बैठा था। आते ही उस पगड़ी पहने हुए व्यक्ति ने उस सज्जन से पूछा—'आपके आर्य (हिन्दू) धर्म में ऐसी कौन-सी कमी अथवा त्रुटि दिखाई दी जो आप यवनमत स्वीकार कर रहे हो?

यवनमत स्वीकार करने वाले व्यक्ति ने कहा—यह मैं फिर बताऊंगा, पहले आप यह बताइए कि आप का यह बुरा हाल क्यो है? कपड़े फटे हुए—सारा शरीर घायल-यह सब कुछ क्यो? मुस्कराकर उसी पगड़ी वाले ने कहा सुना था आप यवनमत स्वीकार कर रहे हो तब ट्रेन मे बैठ कर आपको समझाने के लिए आ रहा था। ट्रेन स्टेशन छोटा होने के कारण रुकी नही। समय हो चला था। इस लिए चलती ट्रेन मे से कूद पड़ा। जिस का यह परिणाम है। यह बात सुन कर यवनमत स्वीकार करने वाले हिन्दू का हृदय पलटा उस ने कहा जिस धर्म मे आप जैसे जान पर खेलने वाले महान व्यक्ति है उस धर्म को मे कभी नही छोड़ूगा।'

पाठको। यह और कोई नही पगड़ी पहने हुए धर्म वीर पण्डित लेखराम थे। जिस का एक यवन (मुसलमान) ने विश्वास घात करके खन्जर से खून किया था। इस घटना के पश्चात सारे शहर पर आर्य समाज का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वहा थोड़े ही दिनो मे एक सुन्दर आर्य समाज मन्दिर बन गया और वह शहर आर्य समाज का एक गढ़ बन गया।

चादनी चोक के चारो ओर सगीने थी। जन-समूह आगे बढ़ने की कोशिश मे था। गोरा पल्टन गोलियां छोड़ने की तैयारी मे थी। जलूस रुक गया। इतने मे एक विशाल काय, तेजस्वी आखों वाला भगवे वस्त्र धारण किये हुए एक सन्यासी आगे बढ़े, छाती के बटन खोलते हुए उस विशाल-काय संन्यासी ने गोरा पल्टन को ललकारा—'चलाओ गोली।' संन्यासी की गर्जना क्या थी मानो शेर की गर्जना हुई। जैसे जगल मे शेर गर्जना करता है तो छोटे-छोटे जानवर-इधर-उधर जान बचाकर

भागते हैं यही हाल संन्यासी की गर्जना से हुआ। चारों ओर सन्नटा छा गया। गोरा पलटन की संगीनें झुक गईं। रास्ता साफ हो गया। जलूस शान के साथ आगे बढ़ा। यही क्रांतिवीर संन्यासी श्रद्धानन्द था, जिसने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके देश को असंख्य देश-भक्त नौजवान पैदा करके दिए हैं, और दे रहा है जिसको एक मतान्ध मुसलमान ने गोली मारकर खून किया था। उस संन्यासी की कर्मवीरता तथा तप के प्रताप के कारण ही आज भारत की राजधानी दिल्ली में १५० सौ से भी अधिक आर्यसमाजें हैं।

जब तक आर्य समाज में श्रद्धानन्द, पंडित लेखराम, महात्मा हंसराज, लाला लाजपतराय, प. गुरुदत्त, भाई परमानन्द नारायण स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, महात्मा आत्माराम, अमृतसरी आदि जैसे त्यागी-वीर, जान पर खेलने वाले, महारथी थे, तब तक आर्य समाज का बोल-बाला रहा। परन्तु आजकल हमारा दिन प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। हम अकर्मण्य होते जा रहे हैं। इसका कारण सिर्फ एक है और वह है 'पूर्वजों के अनुसार अपना जीवन समाज को समर्पित न करना।' जब से हम ने समाज से अपना स्वार्थ साधने की मनोवृत्ति अपनाई है, तब से हमारा तथा समाज का पतन शुरू हुआ है। मैंने ऐसे कई व्यक्ति देखे हैं जो नेता बनने के लिए अपने आप को आर्य समाजी कहते हैं, परन्तु समाज पर मुसीबत आने पर वही व्यक्ति कह देते हैं,—आर्य समाज से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।' ऐसे ढोंगी तथा स्वार्थी आर्यों से हम इतना ही कहेंगे, याद रखो। यह मनोवृत्ति न आप को ऊंचा उठा सकेगी और न आपकी समाज को। आप यदि ऊचा उठना चाहते हो तो अपना जीवन आज ही निर्भय होकर निःस्वार्थ भाव से समाज को अर्पण कर दो और अपने गुरु तथा अन्य पूर्वजों के समान पाखण्ड खण्डनी पताका लेकर धर्मयुद्ध के क्षेत्र में उतर आओ। अवश्य आप अपने पूर्वजों के समान ऊंचा उठोगे और आपकी कीर्ति बढ़ेगी। आप ऊचा उठोगे तो आपकी समाज अपने आप ऊंचा उठेगी।

ओ आर्यो! आओ आज ऋषि-बोध-उत्सव पर अपना जीवन समाज को अर्पण करने के लिए 'दीक्षा' लें। वह दीक्षा जिस से हम अपना तथा जग का कल्याण कर सकें। जब हम दीक्षा लेकर बौद्ध, भिक्षुओं के अनुसार भूमण्डल पर वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए निकल पड़ेंगे तभी हम वास्तव में सच्चे दयानन्द के वीर सैनिक कहला सकेंगे। दयानन्द का काम पूरा कर सकेंगे। विश्व को आर्य बना सकेंगे। अन्यथा नहीं।

इसलिए ऋषि बोध उत्सव पर ऋषि की आत्मा तुम से पुकार-पुकार करके कहती है—'आर्यो! दीक्षा लो! दीक्षा लो!! दीक्षा लो!!! वैदिक (मानव) धर्म का प्रचार करने के लिए दीक्षा लो।

ऋषि दयान्द की एकाग्र दृष्टि

[श्री प्रो० दयानन्द जी आर्य, बौद्धिक शिक्षक आर्य वीर दल पं० ब० हु०]

शिवरात्रि की चूहे वाली घटना ने मूलशंकर के भावी जीवन का लक्ष्य बांध दिया। वह यह कि सच्चे ईश्वर का साक्षात्कार करना है। इसकी सिद्धि केलिए अन्य बातों का प्रसंग स्वतः ही आ गया। वेद और ईश्वर दोनों को मुख्य रखकर ऋषि ने वैदिक धर्म को अपनाने का उदघोष किया। उनके प्रत्येक श्वास, श्वास में अपने निर्धारित लक्ष्य की ओर संकेत विद्यमान रहता था। उनके अनुयाईयों ने कफन सिर पर बांध कर अपना आप ऋषिवर के चरणों में उसी प्रकार स्वाहा कर दिया, जिस प्रकार पतंगे जो प्रकाश की चिंगारियों में बलिदान हो जाते हैं। इस प्रकार की तड़प-भरी भावना, और वह भी हो एक सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रति से संसार में तहलका क्यों न मचे? तभी तो पाश्चात्य विद्वान विटरनिट्ज को कहना पड़ा था, हमें वेदों के अध्ययन को

प्रबल प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्ति पूजा वेद-सम्मत नहीं है, स्वामी दयानन्द के महान उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिए।'

यही कहना चाहिए कि ऋषिवर ने बडे-बडे दिए गए प्रलोभनों की उपेक्षा करते हुए, उन्हे लात मारते हुए अपने सार्वभौमिक लक्ष्य को सामने रखा। उसका अपना विश्व-व्यापी प्रभाव हुआ। तब एक कम पढ़ा-लिखा आर्यसमाजी ईसाइयो के धुरन्धर से शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत रहता था। वह प्रतिदिन कुछ समय निकालकर आर्यसमाज का कार्य करने मे लग जाता अपना गौरव मानता था। परन्तु अब क्या होने जा रहा है? आर्य समाज के उदभट विद्वान् स्व. आचार्य नरदेव जी शास्त्री ने 'आर्य वीर मे प्रकाशित एक लेख में लिखा था कि आर्य समाज में कोई कांग्रसी, कोई जनसघी, कोई कम्युनिस्ट इस बात का स्पष्ट ज्ञान तब होता है कि जब आर्य समाजी सज्जन अपनी-अपनी राजनीतिक दल को आर्य समाज की अपेक्षा अधिक महत्व देता है। जब आर्य समाज को विपत्ति के समय ऐसे सज्जन की आवश्यकता होती है, तो वह कभी कतरा जाता है। उस के लिए तो धर्म की अपेक्षा धडा अधिक प्यारा होता है। इन्ही कारणो से हमारा पग आगे बढ़ने की बजाय पीछे हटता जा रहा है।

एक समय मे एक ही कार्य होता है। जब हमारा ध्यान बट गया, तो वेद-प्रचारक कहा से आए, वैदिक साहित्य का प्रकाशन कैसे हो, पुराण, कुरान व बाईबल का अध्ययन करके खडन कौन करे। नव-युवको को आर्यसमाज मे कैसे लाएं, आदि प्रश्नो पर विचार करने वाले कम रह गए हैं। उदाहरणार्थ, एक विद्यार्थी हैं, स्व० पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती के चरणों में रहकर ६ वर्ष मे 'सिद्धान्त शिरोमणि' उत्तीर्ण की है। यह उपाधि एक सफल उपदेशक बनने का प्रमाण-पत्र है। फिर ऐसे सज्जन को विवश होकर पुन: शास्त्री, एफ० ए०, बी० ए० करनी पडती है, आजीविका के प्रबन्ध के लिए। अब बताइए कि कैसे काम चले?

दूसरी ओर, आर्यसमाज मे नवयुवको को लाने वाला युवक परिषद् बनते ही राजनीति के चक्र में आ जाता है व कहने लग जाता है कि आर्यसमाज को राजनीति में कूद पड़ना चाहिए। उसे आर्य कुमार सभाओं या आर्य वीर दलो के निर्माण की चिन्ता नही होती, जितनी चिन्ता यह होती है कि लोक सभा या विधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजे जाए। अब तो आर्यसमाज के एक-दो सन्त भी गुरुकुल चलाते-चलाते राजनीति के बहाव में बहना चाहते हैं। इसी सन्दर्भ मे आर्यसमाज के महान् साहित्य-सम्राट्, प्रसिद्ध मनीषी व लेखनी के धनी श्री प० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय, आर्योदय १४ मई, १९६७ के अंक मे "सोचिए, आप पीछे आर्यसमाज को कही तो नही घसीट रहे," शीर्षक के नीचे लिखते हैं—

हम स्वामी दयानन्द के अनुयायी हैं, परन्तु केवल अधि, इच्छाएं ऋषिवर की ओर साधन हमारे अपने। .. ऋषिवर...गोरक्षक थे परन्तु किसी पार्लियामेन्ट पर चढने की तैयारी नही की।...स्वामी दयानन्द की गोरक्षा में किसी राजनीतिक दल के विरोध का प्रश्न नही था। हम इन के विरुद्ध हर बात मे राजनीतिक उद्देश्य रखते हैं।... जनसघ राष्ट्रीय सेवक सघ, हिन्दू महा सभा एक आंदोलन खड़ा करता है और अन्त मे उसको आर्य समाज के सर मढ देता है और हम उस में हाथ डालते हैं। हिन्दी आन्दोलन में भी यही हुआ। कोई भीड़ निकली और हम उसके पीछे चल पड़ते हैं। थोड़े दिनो मे जोश समाप्त हो जाता है।

हमारे नेता उस वस्तु को पसंद करते है, जिस से वे शीघ्रतम पार्लियामैंट के मेम्बर बन जाएं। उस में लोकप्रियता भी है और सार्वभौमिक गौरव भी प्राप्त होता है! आर्यसमाज के विरुद्ध इतना साहित्य तैयार हो रहा है और इतनी नई शक्तियां पैदा हो रही हैं कि इन का हमको पता तक नहीं।'

अब परम आवश्यकता है इस बात की कि हम ऋषिवर की भांति अपने प्रमुख लक्ष्य की ओर एकाग्र-दृष्टि रखे। तभी हमारा कल्याण है। ★★

शिवरात्रि-सप्तकम्

(ले०—त्रिलोकचन्द्र शास्त्री सम्पादकः)

अस्मिन् आर्यजगत् पत्रे ऋषि बोध शिवरात्रि पर्व-विशेषाके माननीय लेखकाना विदुषां, शिक्षा-विशारदाचार्याणां, वन्दनीय संन्यासि महात्मनां, सुकवीनाञ्च जीवनप्रद लेखरूपेण गम्भीर विचाराः सर्व-जनहिताय सन्ति। समये-समये विशेषाके श्लोक निर्माणरूपेण सप्तकादिक मार्गेण अहमपि किञ्चित् लिखामि। अत्रापि द्रुतविलम्बित छन्दोबद्धं शिवरात्रि सप्तकम् अस्ति सार्थम्—स०

शिव निशा शिवदा जनमंगला, शिवसमागम साधन कारिका।
शिवजनेन समादर संयुता, शिवपराय भवाय शुभा भवेत् ॥१॥

भाव—शिवरात्री कल्याण करने वाली है। शिव को मिलाने वाली है। शिव प्रेमियो से मान वाली है। प्रभु भक्तों को यह सदा शुभ हो।

शिवपरः शिवमूलरतः शिवः, शिवकुले ननु यस्य वयो गतम्।
शिवधनाय चकार व्रतं शुभम्, शिवजना नितरां शिव संगताः ॥२॥

भावः—मूलशंकर शिव में मस्त था। उसका जन्म शैवकुल मे हुआ। उसने शिवरूपी धन को पाने के लिए व्रत रखा। शिवभक्त शिव को चाहते है।

शिवगये सुविलोक्य च मूषिकम्, किमिदमाह विचित्रमसौ यती।
न हि शिवः शिवनाम प्रतारणा, तमसि ज्योतिरनेन निभालितम् ॥३॥

भावः—शिव मन्दिर में चूहा देख कर वह बोला—यह कैसा तमाशा है? यह शिव नहीं, धोखा है। उसने अन्धकार मे प्रकाश देख व पा लिया।

सकलमेव ततं हि चराचरम्, जगदिदञ्च यतः स हि शंकरः।
निखिल विश्व पदार्थ परः शिवः, जगति पूज्य इहैव नरैस्सदा ॥४॥

भाव—जिस से यह सारा जड चेतन जगत ओत-प्रोत है वही शकर है। वह इस सारे विश्व मे व्यापक है। वही लोगों से पूजने के योग्य है।

अधिगतश्च शिवो जगदीश्वरः, शिवरतेन जनेन सुयोगिनः।
अथ शिवस्य प्रियः शिव संगतः, सकल भूमिजनेषु चचार सः ॥५॥

अर्थ—उसने शिव पा लिया। वह शिव का प्यारा, योगी था। वह भूमि पर लोगो मे घूमने लगा।

नभसि सागरतोयघनेषु न, गिरिगुहा कुलवन्य जलेषु न।
न च विशेष कुलेषु दलेषु न, विविध देश-विदेश पुरेषु न ॥६॥

भाव—वह शिव किसी आकाश स्थान मे, पर्वत, सागर, नदी, वन के विशेष स्थानो मे नही रहता। न ही किसी विशेषमत के नगरो या मन्दिरो मे ही है।

शुभनिशा पुनरद्य समागता, नरवराः शिवनाम प्रसाददा।
समय एष प्रियः शिवदर्शने, शिव विचार प्रचार परायणाः ॥७॥

सज्जनो! यह शिवरात्री आज फिर आई है। शिव का प्रसाद देती है। यही समय प्रभु प्राप्ति का है। आस्तिकता के विचारों का प्रचार करो।

महा पुरुषों को आत्म बोध

[श्री स्वामी अमृता नन्द जी सरस्वती वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर]

१. अपना धर्म ही ठीक है

मुसलमानी सत्ता भारत में स्थिर हो चुकी थी। हिन्दू राजे अपने-अपने राज-भवनों में बैठे कांप रहे थे। तब हिन्दुओं की आंखें खुली। इस का पहला प्रभाव इन के अन्दर धार्मिक जागृति से आरम्भ हुआ। इस का आंतरिक रहस्य भक्त कबीर के जीवन और शिक्षा मे दिखाई पड़ता है। कबीर स्वामी रामानन्द जी का शिष्य था। वह काशी में रहा करता था। उसके अन्दर कट्टर हिन्दु-भाव था। उसके विचारों ने इस्लाम के सन्मुख एक बांध खड़ा कर दिया। उसने लोगों को बतलाया कि यद्यपि मुसलमान हिन्दुओं पर मिथ्या विश्वास आदि का दोषारोपण करते हैं, परन्तु इन के अन्दर भी अज्ञानता और अंध-विश्वास की कमी नहीं। इसीलिये हिन्दुओं का अपना धर्म छोड़ इसलाम की शरण में जाना मानों तवे से गिर कर चूल्हे मे पड़ना है। एक ही दृष्टान्त पर्याप्त होगा—कबीर का वचन है कि—

सुन्नत किये तुर्क जो होयगा, औरत का क्या करिये।
अर्ध शरीरी नार न छोड़िये, ताते हिन्दु ही रहिये॥

अर्थात—यदि सुन्नत कराने से ही मुसलमान बनता है तो (औरत) स्त्री की सुन्नत कैसे होगी, स्त्री तो मनुष्य का आधा अंग है जिस को हम छोड़ ही नहीं सकते। इसलिये हिन्दू (आर्य) रहना ही योग्य है।

इसी रगड़ से उत्पन्न हुई अग्नि गुरु नानक जी की आत्मा में इस के एक सौ वर्ष बाद काम करती थी।

२. इस में सन्देह नहीं!

जब कभी इस ससार में धर्म और अधर्म की, न्याय और अन्याय की, अधकार और प्रकाश की आपस मे रगड़ होती है, तो उस में उत्पन्न अग्नि किसी न किसी आत्मा में स्थान पा लेती है। यह अग्नि दैवी सत्ता होती है, ऐसी आत्मा वाले व्यक्ति को महा पुरुष कहा जाता है।

गुरु नानक जी का मिशन कोई नया पन्थ चलाना न था, वह निःसन्देह सार्वभौम धर्म का प्रचार करने वाले थे। वह परमात्मा के अनन्य भक्त थे। उसीकी भक्ति का प्रचार करते थे। उनके मतानुसार सब मनुष्य परमपिता की दृष्टि में समान हैं। जैसा कि जप जी मे कहा—

'एक पिता एकस के हम बारक' या
सभना जीयां का इको दाता, सो मैं विसर न जाई।

गुरु नानक जी से पहिले मुसलमानों की सत्ता इतनी जम चुकी थी कि वह हिन्दुओं को काफिर कहने का साहस कर सकते थे। वह अपने आप को हिन्दुओं से कहीं बड़ा चढ़ा समझते थे। उस समय मनुष्य की समानता का प्रचार मुसलमानी सत्ता पर सीधा आक्रमण कराना था। जैसा कि गुरु जी ने किया।

३. इस समय किसी महात्मा का बलिदान चाहिए!

गुरु हरगोबिन्द जी के सपुत्र नवें गुरु तेग बहादुर जी के पास बहुत से ब्राह्मण कश्मीर से चलकर आए और धर्म की रक्षा के लिए प्रार्थना की। गुरु जी ने उत्तर दिया 'इस समय किसी महात्मा के बलिदान की आवश्यकता है। प्रश्न इस उत्तर का क्या अर्थ था? जबकि लाखो हिन्दू कट रहें थे और कट चुके थे?

समीक्षा—यही उत्तर ठीक था। इस मे सचाई भरी थी। जो शक्ति हजारों मनुष्यों के प्राण देने में पैदा न हो सकती थी। वह एक नेता की मृत्यु से उत्पन्न हो गई। साधारण मृत्यु बलिदान मे केवल भाव का ही अन्तर होता है। और पुरुष अपनी शहादत से देश और जाति में साहस पैदा कर देता है। इस जौहर को गुरु गोबिन्द सिंह ने इस प्रकार वर्णन किया है:—

तिलक जञ्जु राखा प्रभु ताका।
कीनो बड़ो कलू में साका॥

अर्थात्—कलयुग में बड़ी भारी साका यह हुआ कि प्रभु ने (ताका) गुरु तेगबहादुर के तिलक और जनेऊ की रक्षा की। इसी पर देश ने नारा लगाया था 'तेगबहादुर हिन्द की चादर'

४–जब मैंने यह काम आरम्भ किया था ?

गुरु गोबिन्दसिंह जी ने युद्ध क्षेत्र में आकर कहा कि—

सूरा सो पहचानिए जो लड़े दीन के हेत ।
पुर्जा-पुर्जा कट मरे, कबहू न छोड़े खेत ॥

अर्थात्—सूर वही है जो दीन, दुःखी या अबला के हेत या रक्षा के लिए प्राण देता है, जो शरीर के टुकड़े हो जाने पर भी रणक्षेत्र को नहीं छोड़ता। इस घोषणा के लिए गुरु जी को बड़े-बड़े कष्ट सहन करने पड़े, जंगलों में भटकना पड़ा, स्त्री और बच्चे कभी कहीं, कभी कहीं छिपते फिरे, सिख कई बार साथ छोड़ गए, परन्तु शेर दिल गुरु ने प्रसन्नता पूर्वक सिखों को घर जाने की आज्ञा दे दी और कहा :—

'तुम यह तो बताओ कि जब मैंने काम आरम्भ किया था तो क्या तुम मेरे साथ थे ?' उत्तर मिला—'नहीं, तब गुरु जी ने कहा—'जिस के भरोसे पर मैंने काम आरम्भ किया था वह अब भी मेरे साथ हैं।'

५–दया नन्द बोध

ऋषिवर ने कहा—'जो मैं निरानिरी संसार का ही भय करता और परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिस के आधीन मनुष्य के मृत्यु और सुख-दुःख है, तो मैं भी ऐसे अनर्थकवाद विवादों में मन दे देता, परन्तु क्या करूं ? मैं तो अपना तन, मन, धन सब कुछ 'सत्य, के ही प्रकाशार्थ समर्पण कर चुका। मुझ से खुशामद करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु ससार को लाभ पहुंचाना ही मुझ को चक्रवर्ती राज्य तुल्य है।'

मैंने इस धर्म-कार्य का सर्वशक्तिमान, सत्य-ग्राहक और न्याय-सम्बन्धी परमात्मा की शरण में शीश धर के उसी के सहायक अवलम्ब से आरम्भ किया है (भ्राति निवारण)

जिन का आज बोध दिवस है—

अद्भुत महापुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती

[श्री देवी दास आर्य कानपुर]

सुप्रसिद्ध कवि शिरोमणि भवभूति ने एक स्थान पर ठीक ही कहा है महापुरुषों के वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी कोमल हृदय को कौन समझ सकता है ? इस वाक्य में महापुरुषों की उत्तम पहचान बताई गई है। जिस पुरुष का हृदय समय पर पत्थर से भी अधिक कठोर और समय पर फूल से भी अधिक कोमल हो सकता है वह महापुरुष है। भगवान कृष्ण संसार के सर्व मान्य महापुरुष हैं। एक और वे दया की भीख मांगते हुए करण पर तीर चलाने के लिए हाथ पर हाथ रखे हुए बैठें अर्जुन को उकसाते हैं, यह है हृदय की कठोरता। दूसरी तरफ वही भगवान कृष्ण अपने पांव में तीर मारने वाले शिकारी को सामने क्षमा मांगते हुए देख कर मधुर मुस्कराहट से हस देते हैं और शिकारी को क्षमा कर देते हैं, यह है हृदय की कोमलता।

तीनों शक्तियों के स्वामी

महर्षि दयानन्द भारत के सुधारक एवं उद्धारक, नवीन जाग्रति के जन्मदाता एवं नवयुग के प्रवर्तक ही नहीं वरन संसार के अद्भुत महापुरुषों में से थे। ससार में बहुत कम ऐसे महापुरुष हुए हैं जो शारीरिक आत्मिक एवं मानसिक बल से परिपूर्ण हो। ऐसे भी महापुरुष ससार में हुए हैं जो केवल शारीरिक शक्ति से बलवान थे जैसे अर्जुन, भीम हनुमान आदि। इस प्रकार कुछ ऐसे महा पुरुष भी हुए हैं जो केवल मानसिक शक्ति में महान थे जैसे गौतम, कणाद, न्यूटन, सुकरात आदि। ऐसे महापुरुष भी हुए हैं जो केवल आत्मिक शक्ति में महान माने जाते है, जैसे शंकर आचार्य, महात्मा बुद्ध और कई योगीगण परन्तु ऐसे महापुरुष बहुत कम हुए हैं जो स्वामी दयानन्द

की तरह शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों के स्वामी हों।

कठोरता व कोमलता

महर्षि दयानन्द के हृदय मे भी भगवान कृष्ण की तरह कठोरता एवं कोमलता का अद्भुत व सुन्दर मेल था। महर्षि के जीवन मे ऐसी अनेक घटनाएं आई जिन से सिद्ध होता है कि वे पत्थर से भी अधिक कठोर थे और फूल से भी अधिक कोमल थे। जिन्हे अपने शारीरिक बल पर घमण्ड था और अपनी चमकती हुई तलवार पर भरोसा था उन्होने अपनी तलवार पर भरोसा था उन्होने अपनी तलवार से डराकर महर्षि को सत्य पथ से डिगाने का प्रयत्न किया। जिन्हे अपनी राज्य की सत्ता पर गर्व था उन्होंने अपने प्रभाव से महर्षि की वाणी को बन्द करना चाहा। जिन्हे अपने ऐश्वर्य पर अभिमान था उन राजाओ और महाराजाओ ने, सेठो और साहूकारो ने महर्षि को ऐश्वर्य और गद्दियों का प्रलोभन देकर सत्य मार्ग से विचलित करना चाहा परन्तु महर्षि का कठोर एवं दृढ़ हृदय, न तलवारो के भय से, न राज्य की सत्ता के प्रभाव से और न ही ऐश्वर्य

दया और आनन्द का मूल

[स्वामी अमृतानन्द सरस्वती]

साम्राज्य था अज्ञान का, असत्य का अन्धेरा था।
अविद्या अर कुरीति खोट, देश मे घनेरा था॥
भूले थे परमात्मा को, पूजते थे गैरों को हम।
वेद भानु लोप था, पाखण्ड का बसेरा था॥
धर्म के नाम पर, ठगी की दुकाने थी।
पोप पाधा मौलवी, ग्रन्थी लुटेरा था॥
दक्षिणा की चाट मे, दम्भ का बिछा था जाल।
लोभ के तूफान ने, संसार सारा घेरा था॥
तम को मिटाया जिस ने, ज्ञान का उजाला किया।
दया आनन्द का ही, मूल शंकर मेरा था॥

प्रलोभन से झुक सका। महर्षि दयानन्द की हत्या करने के लिए कौन-सा साधन था जो नहीं अपनाया गया। अनेक बार विष पिलाया गया। तलवारो, लाठियो तथा दण्डो से आक्रमण उन पर किए गए परन्तु वह ईश्वर विश्वासी निर्भय सन्यासी वीरता व धीरतापूर्वक कठिनाइयो का मुकाबिला करते चले गए। महर्षि के हृदय के अन्दर की दृढ़ता या कठोरता का पता इसी से ही चलता है।

परन्तु ऐसे कठोर महर्षि का हृदय कई बार कोमल भी देखा गया। उनका हृदय प्रेम व दया के सागर की भांति था। अपनी प्रिय बहिन की मृत्यु को देख कर जिस मूलशंकर (दयानन्द) की आंखो से आंसू नहीं टपकी थी, माता-पिता ने उसे पत्थर हृदय समझा था परन्तु वह पत्थर के साथ कोमल भी था। एक माता को अपने मरे पुत्र के कफन के लिए लाश को ढकने वाली साड़ी के आंचल को फाड़ते हुए देख कर उस महर्षि के आंखों से धारा बह चली थी। कठोरता और कोमलता का यह कितना विचित्र मेल है। लोगो ने आर्य समाज के इस प्रवर्तक महर्षि दयानन्द पर पत्थर फैंके परन्तु उन्होने इसे फूलो की वर्षा माना। महर्षि से लोगो ने घृणा की परन्तु उनके हृदय से घृणा के बदले सदा प्रेम ही निकला। जिन्होने महर्षि का स्वांग निकाला उन पर महर्षि केवल मुस्करा दिए और हृदय से उनका भी भला सोचा।

जिन्होने विष देकर प्राण लेने का प्रयत्न किया उन के लिए भी महर्षि ने आशीर्वाद दिया और उन को मुक्त कर दिया। पकड़ने वालो से कहा 'मैं संसार को कैद कराने नहीं आया कैद से छुड़ाने आया हूं' कीचड़ मे फंसी हुई एक बैल गाड़ी देख कर महर्षि का दिल द्रवित हो उठता है। बैल के जूए को अपने कंधो पर रखकर गाड़ी को कीचड से निकाल कर उस संयासी ने 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे' अर्थात प्राणि मात्र को मित्र की दृष्टि से देखें इस वैदिक उपदेश का जीता जागता उदाहरण पेश किया। महर्षि दयानन्द के जीवन की अन्तिम घटना तो

स्वर्ण अक्षरो में लिखने योग्य है। जब उन्होंने अपने हत्यारे रसोइये जगन्नाथ को जिसने उन को दूध मे विष दिया था, उसको अपने हाथो से रुपया देकर भाग जाने को कहा। अपने प्राणों से भी अधिक उन्हें हत्यारे के प्राणो की रक्षा की चिन्ता थी और हत्यारे का पता व नाम भी किसी को नही बताया।

आदेश वसीयत

ससार मे बड़े से बडे व महापुरुष हुए हैं परन्तु ऐसी दया व ऐसा प्रेम बहुत खोजने से भी नही मिलता। महर्षि ने अपने जीवन के अन्तिम दिन अर्थात दीपावली पर शरीर छोड़ते समय कहा था 'मेरी हड्डियो को किसी गरीब के खेत मे फेंक देना।' यह कितनी मर्मस्पर्शी एव अनुकरणीय वसीयत है।

ऐसे महर्षि जिस ने जीवन के हर पहलू पर विचार किया और भारत वासियों को कहा, ए भारत वर्ष के लोगो! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो तुम्हे जन्म से वर्ण व्यवस्था के सिद्धात को त्यागना होगा, छुआछूत को छोडना होगा, बाल व वृद्ध विवाह की प्रथा को दूर करना होगा, स्त्री शिक्षा का प्रसार करना होगा, पुरुषो की तरह विधवा स्त्रियो को भी पुनर्विवाह का अधिकार देना होगा, श्राद्ध, मूर्ति पूजा एव पाखण्ड से बचना होगा, विधर्मियो की शुद्धि करके उन्हे अपने प्राचीन वैदिक धर्म मे प्रवेश कराने के सिद्धात को स्वीकार करना होगा। स्वदेशी वस्तुओ को अपनाना होगा, प्राचीन इतिहास को गर्व के साथ देखना होगा, आर्य भाषा (हिन्दी) व सस्कृत और वैदिक साहित्य के अध्ययन पर विशेष बल देना होगा, एक ईश्वर व वेदो को मानना होगा और गो रक्षा करनी होगी।'

काश! ऐसे महर्षि के बोध दिवस पर भारतवासियो को अपने कर्त्तव्यों का बोध हो और वे महर्षि के उपदेशों व आदेशों का पालन कर देश धर्म व जाति का कल्याण कर सकें।

शिवरात्रि और महर्षि दयानंद

[श्री प्रा० भद्रसेन जी वेद-दर्शनाचार्य, होशियारपुर]

शिवरात्रि का अर्थ है कल्याण की रात पौराणिक परम्परा के अनुसार विविध देवी देवताओ मे से शिव भी एक महत्वशाली देवता है जिस का त्रिदेवो मे प्रमुख स्थान है। आज के पर्व का उसी के साथ सम्बन्ध माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस पर्व पर दिन मे निराहार रहकर रात को शिव मन्दिर मे मयूरन जागरण करने से शिव जी के दर्शन होते हैं। इसी भावना से अभिभूत हो पिता की इच्छा से बालक मूल शंकर ने दिन में व्रत रखा और रात को शिव मन्दिर मे पहुंचा। वहां जो सर्वप्रसिद्ध घटना घटी वह शिव रात्रि के शब्दार्थानुसार बालक मूलशंकर के लिए सच्चे अर्थों में कल्याण की रात बनकर आई। उस रात्रि की ज्ञान ज्योति ने न केवल बालक मूल के जीवन का कल्याण कर उसको अमर बना दिया, लाखो व्यक्तियों के जीवन केलिए वह शिवरात्रि कल्याण की रात सिद्ध हुई। अज्ञान, अन्ध विश्वास, कुरीति, रूढ़िवाद और अविवेक रूपी रात के घोर तमाच्छन्न अन्ध कार मे उस ज्ञान ज्योति ने सत्य ज्ञान, वेद विज्ञान, विवेक और सदाचार का प्रकाश किया। जिस के पुण्य प्रताप से अज्ञानियो को ज्ञान, रोगियो को निरोग्य, मरणासन्नों को जीवन, अन्धों को चक्षु, कायरो को निर्भयता, अनाथों को नाथ तथा विदिशाओ मे भटकती तड़पती आत्माओ को सत्य पथ प्राप्त हो गया। शिवरात्रि मे प्रोदभूत बालक मूलशकर को वह ज्ञान ज्योति विश्व केलिए ज्ञान सूर्य सिद्ध हुई। जिस के प्रभाव और प्रकाश को देख कर किसी कवि ने सत्य ही कहा था—

तुझ में कुछ ऐसी बात थी स्वामी जी तेरी बात पर।
लाखों शहीद हो गए लाखों ने सर कटा दिया॥

अपने लहू से लेखराम तेरी कहानी लिख गया।
तूने ही लाला लाजपत शेरे बबर बना दिया॥
श्रद्धा से श्रद्धानन्द ने सीने पें खाई गोलिया।
हस-हस के हसराज ने तन, मन व धन लुटा दिया॥

हमारे सनातन धर्मावलम्बी भाई बड़ी श्रद्धा से जिस शिव को अपना परम इष्टदेव मानते हैं, उसका पुराणो मे वर्णन करते हुए कहा है कि उसकी जटाओ से गगा बहती है, सिर मे चन्द्रमा प्रकाशमान है, माथे पर तृतीय नेत्र विराज मान है, गले मे विषधर सर्प लिपटे हुए हैं तथा उसने अपने सारे शरीर मे भस्म रमाई हुई है। आजकल विविध स्थानो पर शिव जी का ऐसा ही भव्य चित्र भी देखने मे आता है। एक विवेकशील व्यक्ति इस चित्र को देखता-देखता ही विचारो मे खो जाता है और उसको पुराणो की आलकारिक शैली का वर्णन, समाचार पत्रो के विविध कार्टूनो की याद दिला देता है। कई बार किसी कार्टून से व्यक्ति इतना प्रभावित होता है कि निर्माता की प्रतिभा और बुद्धि कुशलता के सामने वह नतमस्तक होकर अश कर उठता। प्रो० उत्तमचन्द जी 'शरण' के शब्दो में यदि आप कहने की आज्ञा दें तो यह शिव जी का चित्र एक आलकारिक कार्टून है, जो कि एक कल्याणकारी, महापुरुष की परिभाषा, स्वरूप या कसौटी का सफल चित्रण करता है अर्थात महापुरुष की पहचान इसमे दर्शाई गई है।

इस अलंकारिक चित्र को सामने रख कर यदि महर्षि दयानन्द के जीवन का एक विश्लेषण किया जाए तो उनका जीवन महापुरुषत्व द्योतक इस अलकार प्रतिमुखरित हो उठता है। यह अलकार अन्यत्र कही चरितार्थ हो या नही परन्तु महर्षि के जीवन मे इस की पूर्ण सगति दिखाई देती है। चित्र में जहा जटाओ से गगा का प्रवाह प्रवाहित हो रहा है तो वहां महर्षि जीवन भी ज्ञान सरस्वती के रूप में कम प्रवाहित नही हुआ। महर्षि की ज्ञान सरस्वती का प्रवाह सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वेद भाष्य, व्यवहार भानु आदि छोटे बडे बीसो ग्रन्थो में दिखाई देता है। महर्षि की ज्ञान गंगा के परिचयार्थ सत्यार्थ प्रकाश का कुछ परिचय असगत न होगा।

सत्यार्थ प्रकाश मे चौदह समुल्लास हैं। प्रथम में गुण कर्मानुसार ईश्वर के अनेक नामों मे से सब से मुख्य ओम् की विशेष व्याख्या के साथ सौ नामों का नैरुक्तिक वर्णन है। द्वितीय शिशुपालन-विज्ञान, बालोपयोगी ज्ञान और जन्मपत्री, भूत-प्रेत की समीक्षा है। तृतीय में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार, आर्षग्रन्थो की गरिमा, अग्निहोत्रादि यज्ञो का महत्व, विद्यार्थी लक्षण और कर्तव्य, वेदाध्ययनादि धार्मिक कृत्यो मे स्त्री पुरुषो का समानाधिकार प्रतिपादित है। चतुर्थ मे विवाह भेद, वर-वधू के लक्षण, स्वयवर विवाह पद्धति, उत्तम गृहस्थ के कर्तव्य। पचम— वानप्रस्थ एव सन्यासाश्रम सम्बन्धी विशेष विचार।

षष्ठ—वेद-मनुस्मृति आदि शास्त्रो के आधार पर उत्कृष्ट राजनीति का सर्वांगीण विश्लेषण।

सप्तम—ईश्वर, जीव और वेद का सत्य, शुद्ध, युक्तियुक्त स्वरूप और तत्-तत् सम्बन्धी शका समाधान पूर्वक विस्तृत विवेचन। अष्टम में सृष्टितत्व, उत्पत्ति प्रकार और उसकी निर्माण, पालन, प्रलय प्रक्रिया। नवम्—विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष। दशम-आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य। एकादश मे भारत में उत्पन्न पुराणो पर आधारित शैव-वैष्णादि मत और नवीन वेदान्त, मूर्तिपूजा, नारायण स्वामी, दादू नानक, कबीर, पन्थ ब्राह्म समाज आदि धर्मों, मतो, सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का एव द्वादश मे चारवाक, बौद्ध, जैन और त्रयोदश में ईसाईयत तथा चतुर्दश मे यवन मत के धार्मिक ग्रन्थो के अध्ययन से ऋषि के विचारो मे जो संदिग्ध और असम्भव बातें प्रतीत हुई, उनकी समालोचना की।

इस समालोचना के प्रयोजन को बताते हुए महर्षि ने लिखा है—जिस से सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्यमतस्थ होंवे। इन मतों के थोड़े-थोड़े दोष प्रकाशित किये हैं, जिन को देख क

मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें।

जो जो हम ने इन के मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण-भंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्यों को रखना मनुष्यपन से बहिःहै।

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिए है न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने के लिए। इस मत मतान्तर के विवाद से जगत मे जो जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उन को पक्षपात रहित विद्वान जान सकते है।

मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। जिस से मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्यो कि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नही है।

सर्व सत्य का प्रचार कर, सब को एकमत मे करा, द्वेष छुड़ा परस्पर मे दृढ प्रीतियुक्त करा के सबसे सब को सुख लाभ पहुचाने केलिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

वस्तुत: सत्यार्थ प्रकाश सत्य का प्रकाश है, जिस में मानव जीवन से सम्बन्धित अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक विषयो पर अनुसन्धान की पद्धति के आधार पर तुलनात्मक सापेक्ष अध्ययन निष्पक्षपात वृत्ति से किया गया है। यह सब अपनी विद्वता और योग्यता प्रदर्शन के लिए नही अपितु केवल सत्यासत्य के निर्णय के लिए, जिस से मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके। महर्षि ने भ्रान्ति निवारण में प. महेश चन्द्र न्याय रत्न के उत्तर में प्रसंग वश लिखा है कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों को लगभग मानता हूं।' इससे सरलता पूर्वक अनुमान किया जा सकता है कि प्रामाण्य अप्रामाण्य की समीक्षा के लिए कितने सहस्र ग्रन्थों का अध्ययन किया होगा। इस से सिद्ध होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ज्ञान गंगा के सागर थे।

शिव जी की दूसरी विशेषता है कि उनके सिर में चन्द्रमा प्रकाशमान हो रहा है। चन्द्रमा शीतलता का प्रतिनिधि है, चन्द्रमा का एक नाम सोम भी है, जो प्रसन्नता, शान्ति, अक्रोध, निश्छलता और सरलता के भावो को द्योतित करता है। महर्षि के जीवन को पढ़ने से अनेक घटनाएं ऐसी सामने आती हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि महर्षि शान्ति, शीतलता के देवता थे। जब काशी शास्त्रार्थ मे पण्डितो की एक न चली तो उन्होंने महर्षि को छल-बल से नीचा दिखाने का प्रयास किया, परन्तु महर्षि के मस्तिष्क मे कोई रोष, आवेग की रेखा न खिची। शास्त्रार्थ के पश्चात ऋषि के निवास पर श्री ईश्वरसिंह पहुचे और देखा महर्षि प्रतिदिन की तरह प्रसन्न वदन टहल रहे हैं, शास्त्रार्थ का षडयन्त्र आपकी शान्ति, शीतलता को भग न कर सका।

भारत के मण्य-मान्य नेता, न्यायाधीश गोविन्द रानाडे की अध्यक्षता मे महर्षि के पूना मे पन्द्रह व्याख्यान हुए जो आज 'उपदेश मजरी' के नाम से प्राप्त होते हैं। जब पूना मे इन व्याख्यानो का क्रम चल रहा था, तो एक दिन विरोधियो ने दयानन्द को बदनाम करने के लिए एक नकली दयानन्द को गधे पर बिठा उसके गले में फटे जूतो की माला डाल कर मुर्दाबाद के नारों से नगर में शोभायात्रा (जलूस) निकाला। जिस को देख कर खिन्न हो कुछ सज्जन महर्षि के आवास पर पहुचे और सारी घटना महर्षि को बताई, उन्होने सुन कर हास्यभरे शब्दों मे कहा कि ससार मे नकली दयानन्द का यही हाल होता है।

एक बार कुछ व्यक्ति लाठिया लेकर महर्षि के निवास स्थान के पास पहुचे और गालिया देकर कहने लगे कि तू हमारे इष्टदेव की निन्दा करता है, हम आज

तुम्हें मारेंगे । उन दिनों बलदेव नाम का एक हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति स्वामी जी के पास रहा करता था, वह उनको गालियों का मज़ा चखाने की आज्ञा लेने के लिए स्वामी जी के पास गया, परन्तु वहां जाकर क्या देखता है कि स्वामी जी छत पर खड़े उन लोगों की बातों पर हंस रहे हैं । बलदेव के आज्ञा मांगने पर स्वामी जी ने हंस कर कहा इन पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है, ये अज्ञान से ऐसा कर रहे हैं ।

शिव जी के तीन नेत्र माने जाते हैं, इसलिए उनको त्र्यम्बक और त्र्यक्ष नाम से भी स्मरण करते हैं । शिवजी ने अपने तृतीय (ज्ञान) नेत्र से कामदेव को भस्म किया था अर्थात अपने वश मे कर लेने की कथा प्रसिद्ध है । वैसे ही महर्षि ने अपने संयम, तप, ज्ञान और ब्रह्मचर्य के व्रत से कामदेव को पूर्ण वश मे कर लिया था ।

एक बार कुछ व्यक्तियों ने महर्षि को बदनाम करने के लिए एक वेश्या को प्रलोभन देकर तैयार किया । महर्षि जब एकान्त, शांत स्थान पर समाधि में ध्यानावस्थित थे, तब उन्होंने वस्त्र, आभूषणों से सजी हुई वेश्या को स्वामी जी के पास भेजा, स्वयं कुछ दूरी पर मौके की ताक मे खड़े हो गए । वेश्या जब कुछ पास मे गई और महर्षि के तेजस्वी मुखमण्डल को देखा तो उसका दिल अपने पाप से भयभीत हो उठा और वह एकदम पछताती हुई उन्ही पैरों से लौट आई, षड्यन्त्रियों की चाल धरी-धराई रह गई ।

मथुरा में जिन दिनों दयानन्द जी गुरु विरजानन्द जी के पास पढ़ा करते थे, उन दिनों की बात है कि एक दिन स्वामी जी यमुना के किनारे समाधि में ध्यानावस्थित थे, इतने में यमुना स्नान से घर लौटती हुई एक महिला ने अपनी श्रद्धावश स्वामी जी के चरणों मे अपना सिर रखकर प्रणाम किया । गीले बालों के स्पर्श से स्वामी जी ने आंखें खोलीं और माता माता कहते हुए यमुना नदी के वन मे चले गए । वहां तीन दिन निराहार रहकर उपासना और गायत्री जाप किया, जिससे कोई वासना का संस्कार घर न कर सके ।

इसी संयम, तप और ब्रह्मचर्य का परिणाम था कि जब कलकत्ता की भरी सभा में अश्विनीकुमार ने पूछा कि क्या कभी कामवासना का विचार आपके मन मे आया है ? उस सत्यमानी, सत्यवादी सत्यनुरागी ने कुछ क्षण सोचने के पश्चात भरी सभा में बड़ी गम्भीरता के साथ कहा कि—सोचने पर भी मुझे कोई ऐसा समय स्मरण नहीं आता जब काम वासना के संस्कार उद्बुद्ध हुए हों । अश्विनीकुमार ने पुनः पूछा इसका क्या कारण है ? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा मन सदा अपने कार्य मे व्यस्त रहता है, अतः उसको ऐसा अवसर ही नहीं मिला । महर्षि के इन शुद्ध विचारों का ही प्रताप था कि आपको लेटते ही उसी क्षण गहरी नींद आ जाती थी ।

(क्रमशः)

आर्य समाज का मुख्योद्देश्य : महर्षि दयानंद

[श्री प० नरेन्द्र-जी, प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यदक्षिण हैदराबाद]

धर्म और मनुष्य का स्वभाव :-

आरम्भ से ही धर्म एक ऐसे संस्थान और संविधान का नाम रहा है, जिसमे मानवता के पथ-प्रदर्शन की सम्पूर्ण सम्भावनाएं वर्तमान हों, और जिसमे मानव जीवन की सम्पूर्ण भौतिक एवं आध्यात्मिक विशेषताओं का सर्व हितकारी, सुन्दर समन्वय पाया जाये । मनुष्य को जगद्धात् शक्ति की ओर से बुद्धि, ज्ञान, चेतना और अन्तरदृष्टि के रूप में जो महान् ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है, उसकी सदा से ही यह बलवती आकांक्षा रही है कि वह भौतिक जीवन के लक्ष्य से आगे बढ़े और आध्यात्मिक जीवन की पवित्र एवं उच्चतर भूमिकाओं को भी प्राप्त करे । वस्तु ! इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस सृष्टि के

क्रमानुक्रमगत निर्माण प्रसंग में, जब मनुष्य का अस्तित्व प्रकाश में आया, तब उसका सिर कृतज्ञता और श्रद्धा पूर्वक उस सर्वशक्तिमान के सामने झुक गया।

क्योंकि जमीन और आसमान का मालिक वही है। यह जाज्वल्यमान सूर्य, जो सम्पूर्ण जड़ एवं जंगम जगत को ताप, प्रकाश और जीवन प्रदान करता है, वह जगमग जगमग करता हुआ चन्द्रमा जो सुविस्तृत वसुन्धरा पर एवं सुविशाल गगन मण्डल में सौन्दर्य की मनोहर किरणें बखेर देता है, यह धरती माता जो लह लहाते हुए खेतो को तैयार करती है और अपने उदर से बहुमूल्य रत्नों और हीरे, मोती, सोना, चांदी आदि अक्षय भंडारों को उगलती है। यह भगवती प्रकृति, जो हमें जीवनकी रंगीन और मधुर विभूतियों का परिचय देती है और जीवन के रहस्य हम पर खोलती हैं, यह सब कुछ उसी ईश्वर, उसी सर्वोपरि, सर्वतोमहान और सर्वनियन्ता प्रभु की रचनाएं हैं, जिसकी मनुष्य ने आंख खोलते ही पूजा की थी और जिसको उसने अपना सर्व प्रथम नमस्कार भेंट किया था। मनुष्य अपने अस्तित्व के पहले दिन से ही

कथा पुरानी सही।

[ले० श्री प्रो० उत्तम चन्द जी शरर] (पानीपत)

१

कथा पुरानी सही किन्तु लगता है ऐसे ।
जैसे बात नई हो घटना अभी घटी हो ।
भारत भू ने चमत्कार देखा इक ऐसा, अर्ध रात्री में जैसे सूर्य चमचमा जाए
जीर्ण शीर्ण पुष्पों से, कलियो के मानस से, जैसे अलसाया वसन्त जागे मुस्काए
प्रखर किरण को रोक तप्त धरणी अम्बर पर
सुधा बिन्दु बरसाती श्याम घटा उमड़ी हो

२

जिसे प्रौढ़ता समझ न पाई निज अनुभव से, तपः पूत योगी जिस को पहचान न पाए
उस अनन्त को महामहिम को शक्ति मान को जिसे दार्शनिक दर्शन बल से जान न पाए
शैशव ने उस को बान्धा निज मुस्कानो में
सत्य सरलता जैसे दर्शन पर विजयी हो

३

मूल ! तुम्हारी जिज्ञासा के भी बलिहारी
जिस ने वैभव त्यागा लक्ष्य बनाया शङ्कर
ममता माया रोक सकी कब चरण तुम्हारे ?
बढ़ने वाले का तो पथ है खुला निरन्तर
ऊंचे स्वर से कहता है यह तेरा जीवन
लक्ष्य प्राप्ति है सरल जो मन मे बात ठनी हो।

अपने रचयिता को समझाने का यत्न करता चला आ रहा है।

ईश्वरोपासना अनादिकाल से जारी है।

ईश्वर के विषय में मनुष्य का भक्तिभाव अर्थात उस की पूजा उपासना, श्रद्धा, विनम्रता और आत्म समर्पण की भावना अनादिकाल से ही मानव हृदय में विद्यमान चली आ रही है और धर्म इस समय भी, जबकि इस दृष्टि की ओर मनुष्य को अस्तित्व में आये हुए लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, और भौतिक उन्नति के बड़े-बड़े लक्ष्य प्राप्त किये जा चुके हैं, बहुत अधिक आवश्यक है। इसके बिना मानवता का कोई काम चल ही नहीं सकता। क्योंकि वह मनुष्य स्वभाव के एक सुस्पष्ट पक्ष के रूप में सदा से ही उजागर रहा है।

धर्म की विजय

कतिपय पाश्चात्य विचारकों ने धर्म को मनुष्य की भौतिक उन्नति के मार्ग में एक रुकावट समझा था। उनका कथन था कि धर्म मनुष्य की सोचने, समझने और देखने की क्षमता व स्वतन्त्रता को क्षीण एवं कुंठित कर देता है। आर्थिक उन्नति के इन तथाकथित प्रचारकों ने और सामाजिक न्याय तथा स्वतन्त्रता के इन अति-वादियों ने, धर्म को जन-साधारण के मार्ग से बल पूर्वक हटा देने का यत्न किया। उन्होंने ईश्वर और धर्म के विषय में मनुष्य के विचारों, मन्तव्यों, निश्चयों और सम्वेदनाओं को मिथ्या प्रमाणित करने के लिये विभिन्न प्रकार के उपायों का अवलम्बन किया। परन्तु फिर भी नास्तिकता का प्रचार संसार में नहीं हो सका और एक सुदीर्घ काल खण्ड व्यतीत होने के बाद भी, जब जन-साधारण के दिलों को टटोला गया, तब ज्ञात हुआ कि ईश्वरोपासना का भाव मानव हृदय से मिटा घटा नहीं है, अपितु और भी अधिक बढ़ गया है।

इस प्रकार नास्तिकता के प्रचार का उनका विचित्र प्रयोग बुरी तरह विफल हो गया और धर्म की जड़ उखाड़ फेंकने के लिए जो-जो उपाय रचे और कुचक्र चलाये गये थे, वे सब भी समाप्त हो गये। इतना ही नहीं, इस विस्तृत वसुन्धरा के लोगों के लिये धर्म के द्वार पुनरपि खुल गये।

मानव जाति की एकता में वेद का आदेश

मानव जाति के पारस्परिक प्रेम, समता, एका और भ्रातृ-भाव के विषय में एवं ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता के विषय में, आज से लाखों वर्ष पहले जिस धर्म ने उच्च स्वर से सुस्पष्ट घोषणा की थी, वह संसार का सर्वप्रथम धर्म था। ऋग्वेद में उसका वर्णन इस प्रकार है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते, सं भ्रातरो वावृधु सौभगाय।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां, सुदुघा पृश्नी: सुदिना मरुद्भ्यः॥

ऋग्वेद० ५।६०।५

सब मनुष्य परस्पर भाई-भाई हैं। उन में न कोई बड़ा है और न ही कोई छोटा है। सब मनुष्यों को उचित है कि वे पारस्परिक सहयोग और सद्भावना पूर्वक सौभाग्य की प्राप्ति करें। सुख की वृद्धि करने वाला, सदा एक रस रहने वाला और सर्वशक्तिमान परमात्मा इन का पिता है।

और यह सुविख्यात पृथ्वी इनकी माता है, जो कि इनको अन्न, रस, धन और पोषण प्रदान करती है और इनके लिए उत्तम दिनों की प्रवर्तना करने वाली है।

मनुष्य जाति के प्रेम, समता, एकता और भ्रातृभाव आधार पर पूर्णतया विकसित, सुसभ्य समाज की रचना को जो चित्र पवित्र वेद ने प्रस्तुत किया है, उसका उदाहरण किसी दूसरे धर्म ग्रन्थ में अथवा मजहब में नहीं मिलता। संसार के कतिपय मत-मतान्तरों में और उनके धर्म ग्रन्थों में मानव जाति की पारस्परिक एकता, समता, भ्रातृभावना और सुख, शांति के विषय में जो उल्लेख यत्र-तत्र पाये जाते हैं, उनके विषय में तथ्य यह है कि पवित्र वेदों से ही उन्होंने उन-उन लेखों को ग्रहण कर रखा है।

संसार प्रेम और सद्भावना का भूखा है

संसार ने अट्ठारहवीं और उन्नीसवी शताब्दि में बहुत सी संक्रान्तिया देखी हैं। उन संक्रान्तियों व परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप कई राजनैतिक और आचार सम्बन्धी सिद्धान्त प्रयोगो की भूमिकायो में से होकर गुजरे हैं। प्रेम और एकता की आधारशिला पर कहीं सुसभ्य समाज रचना की चिन्ता बेचैनी फैला रही है और कहीं जन्म जात-श्रेष्ठता के आधार पर एक वर्ग अथवा जाति का प्रभुत्व अखिल मानवता के सिर लादने का प्रपंच फैलाया जा रहा है। कतिपय सिद्धान्तो के संघर्ष के परिणाम स्वरूप मानवता और सभ्यता को दूसरे महायुद्ध के भीषणतम दृश्य देखने पड़े।

उस महाविनाशिकाण्ड और उसके अत्यन्त-भयानक परिणाम के बाद यह आशा थी कि एक बार फिर भी सुख और शान्ति का प्रसार ससार में हो जाएगा, परन्तु आज प्रेम, सदभावना और सुख एवं शान्ति के लिए सारा

* गीत *

[सत्यपाल 'मधुर' आर्यभजनोपदेशक आर्यप्रादेशिक सभा पंजाब (अम्बाला मंडल)]

तर्ज... ... ... मैं हूं अलबेला... ... ...

अविद्या अन्धकार मिटाकर, वैदिक ज्योति फैलाकर।
कर गया देशमें उजाला, वो था ऋषिराज वेदों वाला॥
वेद की पता का लेकर, ऋषि जब आये।
अनेकों मतो ने यहां, जाल थे फैलाए॥
पाखण्ड सब दूर, कर डाला।
वो था ऋषिराज, वेदों वाला॥
छूआ छूत ने और, कितनी हानि पहुंचाई।
लाखों बनते थे, यहां मुस्लिम ईसाई॥
छूआ छूत भूत, को निकाला।
वो था ऋषि, राज वेदों वाला॥
नारी जाति की, सुनी करुणा कहानी।
फिर से बताई आके, वेदों की बानी॥
विद्या का दिया, खोल ताला।
वो था ऋषि, राज वेदों वाला॥
कहां तक बताए, उस के उपकार इतने।
सिन्धु के कतरे नभ, के तारे हैं जितने॥
'मधुर' था वो, देश का रखवाला।
वो था ऋषि, राज वेदों वाला॥

संसार तरस रहा है। आज मानवता एक ऐसे समाज की रचना के लिए तड़प रही है, जिसका निर्माण प्रेम, सद्भावना और न्याय के आधार पर किया जाए। और वह अपनी प्रेममयी गोद मे संपूर्ण ससार को आश्रय दे सके।

आज मानवता जिस विलुप्त सपत्ति की खोज कर रही है, उसे भारत वर्ष ने उन्नीसवी शताब्दि के अन्तिम वर्षों में संसार के सामने प्रस्तुत कर दिया था। सुमहान एशिया महाखण्ड के उज्वलभाल अर्थात भारत वर्ष के आध्यात्मिक क्षितिज पर अनेको शताब्दियो के बाद एक ऐसा नक्षत्र प्रगट हुआ, जिसकी ज्योति से अज्ञान और अविद्या से परिपूर्ण घरों और मन्दिरो मे नूतन प्रकाश उदभासित हो उठे और जिसके—अस्तित्व से प्रेम, सद्भावना सुख और शान्ति के मधुर आलाप आकाश-मण्डल मे लहराने लगे।

महर्षि की शिक्षा

उन्नीसवी शताब्दि का यह विचारक, यह दार्शनिक, यह क्षाति का राजकुमार, यह समाज सुधारक ऋषि दयानन्द महान् था। जिसने पवित्र वेद के एक सच्चे प्रचारक के रूप मे बड़े साहस के साथ मूर्ति पूजा और सम्पूर्ण जड़ोपासना के विरुद्ध संघर्ष किया और एक ईश्वरवाद की प्रचार करके छोड़ा। उन्होने बताया कि ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी दयालु, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है और सारी उपासना उसी की होनी चाहिये। उन्होने एक बार फिर इस सत्य ससार के सामने उद्भासित किया कि वेद ही सब सत्य विद्याओ का पुस्तक है। वेद से ही सत्य ज्ञान का प्रकाश संसार मे हुआ था और फिर हो सकता है। उनकी शिक्षा एक केन्द्रीय विचार यह था कि सब इन्सान एक हैं, सब के कर्त्तव्य और अधिकार समान हैं। नीच-ऊच और छोटे-बड़े के सब झगड़े बखेड़े अनुचित हैं।

दयानन्द महान ने जहां एक ओर वेदो के पवित्र प्रकाश को अपने देश में फैलाने और अपने देश वासियों के व्याप्त अविद्या जन्य अन्धकार को मिटाने के लिए अनथक परिश्रम किया, वहा दूसरी ओर उन्होंने सम्पूर्ण ससारको प्रेम, शाति, सहयोग और सदभावना का सन्देश भी दिया और यह बताया कि सम्पूर्ण समस्याओं और सपूर्ण कठिनाइयो का सम्यक-समाधान प्राप्तकर सकता है।

एक सार्वभौम समाज

उस पूर्ण विद्वान और उस पूर्ण योगी ने भारतवर्ष मे वैदिक धर्म के पुनरुत्थान और अखिल भू मण्डल पर इस के प्रचार के लिए एक ऐसे समाज की स्थापना की जोकि अपने विचारो, सिद्धान्तो, नियमो और शुभ कर्मों के आधार पर एक आदर्श समाज प्रमाणित हो सके। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज एक सार्वभौम समाज है। क्योकि यह नीच ऊच और छोटे बड़े के भेद भाव को मिटाता है। यह सार्वभौम सुख, शान्ति और समृद्धि के सिद्धान्त को फैलाता है। यह सत्य न्याय और सदाचार के नियमो को आगे बढ़ाता है अखिल मानवता की सेवाके उच्चतम लक्ष्य को सामने रखते हुए एक ऐसे समाज की स्थापना की, जो कि अपने विचारों, सिद्धान्तो, नियमों और शुभ कर्मों के आधार पर एक आदर्श समाज प्रमाणित हो सके। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्य समाज एक सार्वभौम समाज है। क्योंकि वह नीच-ऊच और छोटे-बड़े के भेद-भाव को मिटाता है। यह सार्वभौम सुख, शान्ति और समृद्धि के सिद्धान्त को फैलाता है। यह सत्य, न्याय और सदाचार के नियमो को आगे बढ़ाता है और अखिल मानवता की सेवा के उच्चतम लक्ष्य को सामने रखते हुए यही एक ऐसा समाज है, जो कि अविद्या के नाश और विद्या की वृद्धि पर सर्वाधिक बल देता है।

आर्य समाज-वैदिक धर्म प्रतिनिधि है

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के जीवनकाल में ही आर्यसमाज ने अच्छी सर्वप्रियता प्राप्त कर ली थी और सभी दिशाओं में उसकी धूम फैल गई थी। सत्यशील जिज्ञासुजनों ने और मानवता के सहृदय सेवकों ने बहुत

यूरोप के धार्मिक इतिहास में एक लम्बा समय 'अन्धकार युग' (**Dark Age**) के नाम से प्रसिद्ध है। यह समय ईसा की दसवी शताब्दी से सतरहवी शताब्दी तक समझा जाता है। इस काल में ईसाई पादरियों के हाथों भौतिक विज्ञान वेत्ताओ, भूगोल वेत्ताओं खगोल वेत्ताओ और आविष्कार करने वालो पर जो प्रभाव पड़ा वह सब के सामने है। उन्होने भीमपर्षि के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया था। क्योकि वे अनुभव करते थे कि आर्यसमाज ही वैदिक धर्म का सच्चा एव प्रतिनिधि संस्थान है। और इसके नियमो तथा मन्तव्यो को स्वीकार करके ही मनुष्य अपनी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के सघर्ष मे सफल हो सकता हैं। महर्षि के सामने केवल भारत वर्ष की ही उन्नति का लक्ष्य न था, अपितु वे तो सम्पूर्ण संसार और अखिल मानवता के हितैषी एव शुभ चिन्तक थे। वे इस बात को परमावश्यक समझते थे कि अखिल मानव जाति के सर्वोदय और उसकी भय एव भ्रमरहित सर्वांगीण उन्नति के लिए वेद को पवित्र सजीवनी को, वेम के सर्व हितकारी सन्देश को, अखिल विश्व मे फैलाया जावे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती को यह स्वीकार न था कि जो धर्म सृष्टि के आरम्भ से ही मानव जाति का पथ-प्रदर्शन करता रहा है, वह केवल भारत मे ही सीमित होकर रह जाए। जिस धर्म ने अखिल विश्व को विशुद्ध-अध्यात्मवाद का अमृतपान कराया, वह अविद्या और अन्धकार के बादलो मे ही गुम हो जाए, जिस धर्म के अनुयायियो ने विविध प्रकार के विद्या, विज्ञान और कलाकौशल की शिक्षा ससार को दी और सभ्यता, सस्कृति एव सदाचार के झण्डे ससार मे लहराए, वह दासता के पाश मे जकड़ा पड़ा रह जाए। इस लिए उन्होने इस सत्य विश्वास और सत्य चिन्तन के आधार पर आर्य समाज की स्थापना की कि एक दिन अखिल भू-मण्डल पर अवश्यमेव वैदिक धर्म का प्रसार हो जाएगा। और सत्य-ज्ञान एव आत्मिक आनन्द के अभिलाषियो को तथा सपूर्ण शान्तिवादो सहृदयजनो को आर्य समाज से अनन्त काल तक पथ-प्रदर्शन प्राप्त होता रहेगा।

तर्क और श्रद्धा

[श्री प ओमप्रकाश जी आर्य महोपदेशक जालन्धर]

१—मूलशकर ने शिवरात्रि का व्रत रखते समय तथा उपवासी बनते समय तर्क का नहीं, पूरी श्रद्धा का परिचय दिया।

२—शिवजी महाराज के सम्बन्ध मे जो कुछ माता पिता या अन्य पुजारियो ने बतलाया उसको वैसा ही सत्य स्वीकार किया।

३—मन्दिर मे उपवासी बने बालक मूलशकर के सामने जब एक क्षुद्र चूहे ने शिव मूर्ति का घोर अपमान किया तब भी अपने इष्टदेव का अपमान असह्य प्रतीत हुआ और झट अपने पिता जी को जगाते हुए सभी कुछ का समाधान चाहा।

४—ठीक समाधान न मिलने पर इस सारी पूजा पद्धति को असत्य समझ त्याग दिया परन्तु असली और सच्चा शिव कौन-सा है और कहां तथा कैसे मिलता है यह जानने तथा प्राप्त करने का दृढ सकल्प लिया।

५—बहिन और चाचा की मृत्यु ने वैराग्यवान बना दिया। ससार के असली स्वरूप का बोध प्राप्त करना चाहिए। मृत्यु किसी की होती है और क्यो ? इससे छूटने या इस पर विजय प्राप्त करने का कौन-सा मार्ग है ? मैं उसे अवश्य जानकर ही दम लूंगा यह दूसरा दृढ़ सकल्प था। जो उन्होंने धारण किया।

६—इन दोनो महाव्रतो को धारण कर मूलशकर घर से निकले। जीवन भर न माता को न पिता को, न अन्य किसी आत्मीय बन्धु को स्मरण किया। केवल सच्चे शिव की तलाश और मृत्यु पर विजय प्राप्ति के के साधनो की खोज और प्राप्ति ही उनका जीवन लक्ष्य रहा।

७—सारा जीवन पढ जाइये। सर्वत्र सच्ची श्रद्धा और निष्ठा के ही दर्शन होंगे। तर्क ने सत्य और असत्य

का परिचय करा दिया। असत्य से हटाना और सत्य की ओर प्रवृत्त करना यही तर्क का काम है।

८—सत्य को जान लेने पर श्रद्धा ही उसे धारण कराती, सुरक्षित रखती तथा अन्यो तक पहुंचाने की प्रेरणा करती है। ऋषि का जीवन इस का प्रमाण है।

९—जब योग साधन से सच्चे शिव के दर्शन कर लिए और मौत केवल शरीर की होती है, आत्मा अविनाशी है यह रहस्य जान लिया, फिर न किसी प्रलोभन से प्रलोभित ही हुए, न भय से भयभीत।

१०—लोगो ने ईंटें बरसाई, जहर के प्याले पिलाए अपशब्द और कठोर वचन सुनाए, बाल ब्रह्मचारी के। ब्रह्मचर्य पथ से विचलित करने का भी निन्दनीय कार्य किया पर क्या मजाल जो श्रद्धावान, सच्चा ईश उपासक, महाव्रती अपने पथ से बाल भर भी इधर-उधर हुआ हो।

११—हम ने ऋषि ग्रन्थो से भाव चुरा कर केवल दूसरो की त्रुटियां दिखलाने के लिए तर्क का जो कुप्रयोग आरम्भ कर रखा है उसे बन्द करते हुए ऋषि बोध से सच्ची प्रेरणा लेकर जीवन मे आर्यत्व, वैदिक मर्यादा सच्चा भ्रातृभाव और वेद प्रचार की लग्न उत्पन्न करें ताकि आर्यसमाज को ऋषि के सुख स्वप्नों का आर्य समाज बना सकें।

१२—कितने हैं जो नियमपूर्वक दो काल बैठकर सन्ध्या करते हैं? स्वाध्याय करते हैं? वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते है और उसका प्रचार धर्म समझते हैं?

१३—महर्षि दयानन्द जो घण्टो योग ध्यान में बैठ कर परमात्मा की उपासना का आनन्द प्राप्त किया करते थे क्या हमारा जीवन उनसे भी आध्यात्मिक दृष्टि से ऊंचा उठ चुका है कि हमें अब सन्ध्या, स्वाध्याय की आवश्यकता ही नहीं रही?

क्या कोरी बातो, भावोत्तेजक व्याख्यानो और ग्रन्थों के खण्डन मात्र से ऋषि का ध्येय पूरा हो जाएगा।

१४—ऋषिवर ने मतमतांरों का खंडन किया और खूब किया। असत्य का खडन होना ही चाहिए। अन्धकार को दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। परन्तु जहां असत्य का खण्डन किया वहा सत्य को अपने जीवन में में पहले चरितार्थ किया और फिर उसका प्रचार—यहां तक कि उसी सत्य के लिए जीवन भेंट कर दिया। बलिदानी वीर लेखराम, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी, कर्मयोगी महात्मा हंसराज तथा मुनिवर गुरुदत्त जी तथा अनेक दूसरे हमारे महापुरुषों ने जो खण्डन खड्ग सम्भाला था वह केवल गन्दगी साफ करने के लिए था और स्थान को साफ सुथरी बना कर वैदिक भावों के बीज बोने के लिए वे सदा तत् पर रहते थे। उनकी कथनी और करनी एक थी। उनका सर्वस्व वेद प्रचार के अर्पण था तर्क सत्या। सत्य का निर्णय मात्र का हथियार था परन्तु श्रद्धा जीवन दायिनी शक्ति का स्रोत, आइये! हम भी केवल सत्य जानने के लिये ही तर्क का प्रयोग करें और जो जो सत्य ऋषि कृपा तथा अपने स्वाध्याय से हमें प्राप्त हो चुका है उसका अनुष्ठान करें ताकि अपना वा अन्यो का कल्याण कर सकें।

याद रखिये। अन्धकार बिना प्रकाश दूर नहीं हो सकता और असत्य, सत्य से ही हटाया जा सकता है। इसके बिना और कोई मार्ग नही।

वेद तथा विश्व-शांति

[प्रिंसिपल श्री रलाराम जी एम० ए०]

आज भारत में सब ओर अशांति तथा हिंसा खूब ज़ोरों पर हैं। कोई प्रदेश या कोई राज्य ऐसा नहीं जहां कोई न कोई आंदोलन न चल रहा हो और उसकी सफलता के फलस्वरूप हिंसा तथा विध्वंसात्मक गतिविधियां न अपनाई जा रही हों। प्रांतीयता तथा भाषा के नाम पर मानव हत्या तथा राष्ट्रीय और वैयक्तिक

सम्पत्ति का विनाश हो रहा । साम्प्रदायिकता भी अपना सिर उठा रही है। यह अशांति विश्वव्यापी अशांति का ही एक अंग है। यह तथ्य झुठलाया नहीं जा सकता । दो विश्वव्यापी युद्धों के फलस्वरूप मानव भयंकर अशांति का शिकार हो गया है। आज का मानव केवल भौतिक ज्ञान का उपासक बनकर आध्यात्मिक ज्ञान से विमुख हो गया है। अतः वह अपनी आत्मा को खो बैठा है। प्रमाणु बम ने मानव का निराशातया भय के गर्त में गिरा दिया है। उसका परिणाम विषयासक्ति के रूप में सर्वत्र प्रकट हो रहा है। अमरीका जैसे समृद्ध देश में जहां न तो अत्याधिक जन संख्या का प्रश्न है और न जहां महंगाई हमारे देश की तरह भयकर रूप धारण किए हुए लाखों युवक 'हिप्पीज' बनकर मारे-मारे सारे संसार में खाक छान रहे हैं। उन्हे बिना नशीली वस्तुओं के सतत प्रयोग के और कोई शांति तथा आनन्द का साधन ही नजर नहीं आता। हमारे देश से नव-युवक बहुधा आनन्द की खोज सिनेमा तथा मद्यपान के द्वारा करने लगे हैं। इस भयंकर स्थिति से छुटकारा कैसे हो सकता है। इस स्थिति की जिम्मेदारी व्यक्तों पर है । वे उत्तरदायित्व को निभा नही रहे।

जगत विख्यात दार्शनिक बरट्रान्ड रसल अपनी पुस्तक 'न्यू होपस फार ए चेंजिग वर्लड' में लिखते हैं कि 'आज का युग एक अस्क्य व्याकुलता तथा घबराहट से अभिभाजित है। हम सब एक ऐसे महायुद्ध की ओर बहाए ले जा रहे हैं जो हम सब जानते हैं कि मानव जाति का विनाश सिद्ध होगा। परन्तु एक खशांक की भान्ति जिसके समक्ष एक बड़ा नाग या, अजगर हो हमे यह नही सूझ रहा कि हमारा बचाव कैसे हो सकता है।...मेरा अनुभव है कि जो जो व्यक्ति सबसे अधिक भिज्ञ हैं वे इस समय से अधिक निराश हैं।'

आज की दयनीय दशा की समाप्ति कैसे हो ? आज की अद्भुत तथा अपूर्व भौतिक और वैज्ञानिक उन्नति के बावजूद मानव अशान्त ही नहीं अपितु त्रसित, क्षुब्ध, और क्लेशित है। पश्चिम में जिस की ओर हम सहायता

श्रीमद् दयानन्द बोधोत्सव

[श्री रविदेव जी शास्त्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार]

जगे आप सारे जगत को जगाया।	दिखा ज्ञान दीपक अंधेरा मिटाया ॥
चलो देख लो रेत मे घी नही है।	कहां बेत में ईख की माधुरी है ॥
जड़ों में भला ज्ञान आया कहा से।	किसी ने नहीं ईश पाया वहां से ॥
भली मूषिका से भला ज्ञान पाया।	सदा सावधानी से जो जागता है ॥
प्रमाद और निद्रा को त्यागता है।	जो आलस्य को दूर अपने भगाता ॥
वही भाग्य अपना सदा है जगाता।	सजग 'मूल-शंकर' ने था मूल पाया ॥
'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः' की उक्ति।	चरितार्थ थी मूल की जीवनी मे।
श्रद्धा भरी अंग-प्रत्यंग में थी।	उस जिज्ञासु में सद्गुणो के धनी में ॥

श्रद्धा में भर सत्य को शिव को पाया ॥

पिता को जगा प्रश्न उसने किए थे।	न उत्तर सही श्री कृष्ण ने दिए थे।
मैं सच्चे शिवों के ही दर्शन करूंगा।	नमस्कार जड़ देव को न करूंगा ॥
यह संकल्प दृढ़ मूल जी ने बनाया।	जगे आप सारे जगत् को जगाया ॥

तथा, आश्वासन के लिए देखते है स्थिति यह है कि 'एक नवयुवक जिसका मन अपने अध्ययन से ऊब गया है यो कहता सुनाई देता है कि चिन्ता किस बात की है, कुछ ही काल मे युद्ध छिड़ जावेगा और मैं मारा जाऊगा।

एक नवयुवति जिस का जीवन सार्थक तथा रचनात्मक हो सकता है, अपने आप को भोग-विलास के जीवन मे डाल देती है यू कहकर कि युद्ध छिड़ा नही कि रूसी सिपाही आये और मैं उनके बलात्कार का शिकार हुई। जिन के पास धन है वे विषयतृप्ति मे मग्न हो जाते है यू कहते हुए कि न जाने कल मेरे पौंडो का अवमूल्यन मुझे किस गढे में फैंक देगा। इस प्रकार जीवन की अनिश्चतता कोई उच्चस्तरीय क्रिया कलाप या उद्यम होने नही देती। बर्ट्रांड रसल ऐसी भयकर स्थिति मे बचाव का मार्ग क्या है? यह रास्ता ढूढने के लिए अपनी ओर अपनी सस्कृति तथा अपने धार्मिक अधिगम की ओर हमे विशेष ध्यान देना होगा। मेरा यह कदापि अभिप्राय: नही कि हम पश्चिम से कुछ सीख ही नही सकते। ऐसा कहना शोचनीय मूर्खता होगी। पश्चिम का विज्ञान तथा इसकी तकनीकी उन्नति एक ऐसी देन है जिस की अवहेलना करना अपनी मृत्यु का आह्वान करना है। यदि पश्चिमी विज्ञान का आश्रय लेकर, हम अपने देश मे खाद्य पदार्थों तथा उपभोग की अन्य वस्तुओ की उपज नही बढायेंगे और यदि हम परिवार नियोजन नही करेंगे तो इस देश मे अन्य कई देशो की भान्ति मानव, मानव को खा जायेगा। परन्तु समझने वाली बात यह है कि आज की विश्व अशान्ति केवल अन्न के अभाव तथा जन-सख्या मे अत्यधिक वृद्धि के कारण ही नही अपितु यह एक विश्वव्यापी आध्यात्मिक संकट का भयकर परिणाम है। इस आत्म-सकट के समाधान के लिये तो पश्चिम हमारी ओर ताक रहा है, इस दावानल से बचने का वह हमे क्या मार्ग दिखायेगा। यह एक तथ्य है, स्वाभिमान की बात नही।

वेद इस स्थिति मे हमारा क्या मार्गदर्शन करता है। आज के संसार ने अपने आत्मा को खो दिया है या यूं कहिए कि अपने वास्तविक स्वरूप को भुला दिया है। जैसे याज्ञवल्क ने कहा, 'आत्मा वारे द्रष्टव्य: श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्य:। आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'। 'आत्मा को देखना चाहिए, इस के बारे में उपदेश सुनना चाहिए, इसीके बारे मे मनन करना चाहिए तथा बार बार इसके विषय में सोचना चाहिए। आत्मा केलिए ही ससार के सब वस्तु प्यारे हैं।' और जब व्यक्ति इस आत्माको भूल जाता है तो वह अपना शत्रु बन जाता है। जैसा कि गीता मे भगवान कृष्णने कहा है, अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्वेतात्मैव शत्रुवत्' अर्थात जिसनेअपने आप को आत्मा के रूप मे नही पहचाना वह स्वय अपने साथ शत्रुके समान वैर करता है। ऋग्वेद मे कहा है 'अय होता प्रथम: पश्यतेममिद ज्योतिरमृत मर्त्येत मर्त्येषु। अय स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा ३ वर्धमान: ॥६।६।४॥

यह आत्मा मुख्य होता है। इस को देखिये, मर्त्यों मे यह अमर ज्योति है। यह स्थिर प्रकट हुआ है। शरीर के साथ बढने वाला अमर प्रकट हुआ है।

आज जो चारो ओर अशान्ति तथा कलह का साम्राज्य है उस की तह मे भय तथा अविश्वास काम कर रहे हैं। एक राष्ट्र दूसरे पर विश्वास नही करता, एक ही राष्ट्र मे एक पर दूसरे को सन्देह तथा आशंका से देखता है। इस का अनिवार्य परिणाम गृहसघर्ष तथा अन्तरराष्ट्रीय सघर्ष है। इस भय से द्वेष तथा घृणा के भाव जागृत होते हैं। इन के फलस्वरूप युद्ध की ज्वालायें भड़क उठती हैं। यह ज्वालायें आज के वैज्ञानिक युग मे एक विश्वव्यापी युद्ध का रूप धारण कर लेती हैं। दो बार इस ही शताब्दी मे ऐसा हो चुका है। अब तीसरी बार यह सर्वविनाशी ज्वाला फिर भड़क पड़ने की संभावना ही नही अपितु संभाव्यता है। यह मानव का सब से बडा शत्रु है। अत: वेद में हम प्रार्थना करते हैं "यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभय कृधि।" हे भगवान जिधर से हमें भय हो उधर से हमें अभय करो। जब तक मानव इस परम शत्रु से मुक्ति नहीं पाता संघर्ष कलह

तथा युद्ध से उसे छुटकारा नहीं नहीं हो सकता। गृहयुद्ध अथवा आन्तरिक झगड़े विश्वव्यापी युद्धों का रूप धारण कर लेते हैं। पहले महायुद्ध का कारण एक छोटे देश के राज कुमार का वध था। दूसरे युद्ध का कारण हिटलर का भय और महत्वाकांक्षा थी। भय जब तक किसी खतरे को बुद्धिपूर्वक देखने या भापने का नाम है तब तक यह मानव का रक्षक है। परन्तु जब भय द्वेष और घृणा का जन्मदाता बन जाता है तब यह मानव जाति तथा व्यक्ति दोनों का शत्रु बन कर उन्हें कभी चैन की नींद सोने नहीं देता। यह ही फिर विश्व-व्यापी समरों की बड़वानल को पैदा कर देता है। आज का युद्ध सर्वनाश का द्योतक है। इस भय को जीतना परमावश्यक है। परन्तु जैसे एक जगत प्रसिद्ध दार्शनिक ने कहा है **'Dangers are not averted by terror but by calm thought.'** खतरे अति भय से नहीं टलते परन्तु शान्त विचार से जीते जाते हैं। शान्त विचार द्वेषपूर्ण तथा संकीर्ण हृदयों से अथवा क्षुब्ध व्याकुल बुद्धियों से कभी पैदा नहीं होता। घबराया हुआ कैप्टिन डूबते जहाज को नहीं बचा सकता। प्रकृति का नियम है कि जो घबराया वह गया।

अतः भय तथा द्वेष और घृणा से मुक्ति तो केवल सच्चे आस्तक भाव से मिल सकती है। 'तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय उस परम-पिता परमात्मा को जानकर ही व्यक्ति मृत्यु आदि को भय से निवृत्ति प्राप्त कर सकता है और कोई इसका दूसरा मार्ग नहीं। परन्तु यदि आस्तक भाव विशाल तथा उज्ज्वल नहीं तो भी भय से पैदा होने वाले द्वेष, ईर्ष्या, घृणा से मुक्ति नहीं मिल सकती। जैसा कि ऋग्वेद में कहा है कि सब प्राणी मात्र एक प्रेम सूत्र में बन्ध जावें तभी सच्ची निर्भयता सम्भव है।

समानी वः आकूतिः, समाना: हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥
सहृदयं सामनस्य, अविद्वेषं कृणोमि वः ॥
अन्यो अन्य अभिहर्यत वत्सं जात इवाघ्न्या ॥

अर्थ—तुम सब की आकांक्षाएं समान, तुम्हारे मन एक जैसे विचारों वाले हों, तुम सब के हृदय प्रेमपूर्ण हों ताकि तुम सब का परस्पर संगठन हो। मैं तुम को समान हृदय वाले, एक जैसे मनों वाले द्वेषभाव रहित बनाता हूं। तुम एक दूसरे के साथ ऐसे प्रेम करो जैसे गौ अपने नवजात बछड़े के साथ प्यार करती है।

यह प्रेम विशाल तथा मनुष्य मात्रके प्रति होगा तभी मानव विनाश से बच सकेगा। सारा जगत अब एक शहर है। भिन्न भिन्न देश उस नगर के मुहल्ले हैं। अब एक-देशीय प्रेम हमें विनाश से नहीं बचा सकता। हमारे प्रेम में सारी मानव जाति का समावेश होना चाहिए। सुख विशालता तथा सर्व मानव प्रेम में हैं। 'यो वै भूमा तत सुखं, नाल्पे सुख मस्ति' सुख हृदय को विशाल और द्वेष रहित करने में है। संकीर्णता में सरासर दुख है। इसी लिए ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज केलिए यह नियम बना दिया कि सारे संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है।

शिवरात्रि सन्देश

[श्री धर्म देव जी आर्य व्यवस्थापक आर्य जगत]

भारत के अन्धकार से निकालने वाला शिवरात्रि का पर्व २६ फरवरी को बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा है। शिव का नाम सुनते ही हमारा सर झुक जाता है। सन् १८९४ की शिवरात्रि का आना और चौदह वर्ष के मूल शंकर नामक बालक का "व्रत धारण करके शिव मन्दिर में जाना, यह भारत देश का महान् भाग्य था।" यह मैं विश्वास से कह सकता हूं कि अगर शिवरात्रि का व्रत वह मूल शंकर न रखता, तो आज इस

भारत देश में यह चोटी और यज्ञोपवीत वाला हिन्दु देखने को न मिलता, चारों ओर मुसलमान और ईसाई ही मिलते, देश स्वतन्त्र तो कहां से होता, बल्कि हम परतन्त्रता की कठोर जंजीरों में जकड़े जाते, हम भूल जाते कि स्वतन्त्रता भी कोई चीज होती है। क्योंकि हमारे दिल और दिमाग अलग विदेशी सांचे में ढल गये होते।

इस देश के महान् विद्वान् और अपने आपको पण्डित कहलवाने वालो के देखते-देखते प्रतिदिन हजारों हमारे भाई, इनके व्यवहार से दुखी हो कर, चारो वेद और छः शास्त्रों के उपासक, कुरान और बाइबिल के मानने वाले बनते आ रहे थे (जो एक बार मुसलमानों के साथ जाता, या उन्हे छू लेता था, फिर वह अपने आपको हिन्दु (आर्य) कहलाने का अधिकारी नही होता था, ईसाई और पादरी धड़ा-धड़ अपनी संख्या बढ़ा रहे थे।

इस समस्त भारत प्यारे देश के लोग अनभिज्ञ से होकर अविद्या रूपी सागर में गोते खा रहे थे। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ था। विधवायें और अनाथ सड़कों पर बिलखते-फिरते थे और वह हिन्दु जाति के कठोर नियमों से दुःखी हो कर विदेशियो के चंगुल में फंसे जा रहे थे। ऐसे भयंकर समय में जो शिवरात्रि चिरकाल से प्रति वर्ष मनाई जा रही थी। सन् १८९४ में कुछ और ही गुल खिला गई, यह शिवरात्रि आई और भारत का निर्माता बन कर आई तथा एक महान् आत्मा को जगा कर चली गई। आओ इसे धूम-धाम से मनायें। इसी शिवरात्री ने अन्धकार प्रकाश की छटा बिखेरी थी।

टंकारा निवासी कृष्ण जी तिवाड़ी अपने पुत्र मूल शंकर को साथ लेकर शिवरात्रि का व्रत पूर्ण करने के लिए शिव मन्दिर में पधारे, रात्रि के पिछले पहर व्रत रखने वाले शिव के समस्त भक्त गहरी निद्रा की लोरियां लेते लेते सो गए तथा निद्रा का आनन्द लेने लगे उससमय एक अपूर्व शिव का भक्त 'मूल' जाग रहा था। सारा संसार सोता था, परन्तु वह संसार को जगाने वाला जागता हुआ निद्रा से संघर्ष कररहा था।

जासु निशा सोवत संसारी।
ता जागे योगी ब्रह्मचारी ॥
दयानन्द प्रभु प्रेरित जागा।
इस जागे से जग भ्रम भागा ॥

मूल जी बालक अवस्था होते हुए भी विजय प्राप्त करने में सफल हुए। क्योंकि उनके हृदय में एक ज्योति जग रही थी, जो निद्रा का सामना करने में उनका साथ दे रही थी इतने मे एक घटना घटी, इसे घटना कहिए या प्रभु प्रेरणा, यह जो कुछ भी हुआ एक चमत्कार था। कुछ चुहे शिव की प्रतिमा पर उछल कूद करने लगे, भोग खाने लगे। मूल जी यह देख कर चौंक पड़े। हृदय पटल पर यह आश्चर्यक चित्र शीघ्रता से खिंच गया। हैरानी से सोचने लगे, यह बड़े राक्षसों तथा दैत्यों का विध्वंस करने वाला, कैलाश पति शिव नहीं है।

हे कैलाशपति शिव तुम कहां हो, मैं तुम्हारे दर्शनों केलिए रात भर जागता रहा, मुझे दर्शन दो, यह कह कर चिल्ला उठे, बस ऐसे सोचते सोचते मन मे विचारों के बीज का वृक्ष बढ़ने लगा और शीघ्र निर्णय कर लिया जिसे मैं शिव समझता हूं यह तो कोरा पाषाण है।

पेड़ से फलों को गिरते किस ने नहीं देखा था, आकाश में फैंका ढेला नीचे आता किस ने नहीं देखा होगा। परन्तु एक मस्तिष्क ने इसी को देख एक नया अविष्कार तैयार कर दिया। घर में दाल सब्जी बनाते भाप से बर्तन के ढक्कन को ऊपर उठते किसने नही देखा ? परन्तु एक महान् व्यक्ति ने उससे प्रेरणा लेकर रेलगाड़ी आदि के इंजिन का अविष्कार कर दिया, मूर्ति पर चढ़ते हुए चूहों को किसने नहीं देखा ? परन्तु एक महान् आत्मा को यहीं से तो ज्ञान हो गया। देखते सब है। परन्तु ज्ञान होता है उसी को जिस पर प्रभु कृपा हो।

आत्मा जाग उठी पिता जी भी समाधान नहीं कर सके। यह तो महान् आत्मा ईश्वर ने संसार के अन्धकार को हरने के लिए जन्म बन्धन में डाली थी, कुछ दिन बाद, बहन और चाचा की मृत्यु ने भी इस आत्मा को जगाने में पूर्ण सहयोग दिया। वैराग्य के अंकुर उपजे और एक दिन घर छोड़कर, सर्व सुखों को लात मार, उस सच्चे शिव (संसार का कल्याण करने वाले) की खोज में दर-दर भटकने लगे। और एक दिन अनगिनत दुःख उठाकर उसको पा भी लिया। अन्धकार में प्रकाश की छटा छा गई।

मूल शंकर जी अब दयानन्द कहलाने लगे। जिस ज्ञान को ऋषिवर ने प्राप्त किया था। उसे अपने पास ही नहीं रखा।

ऋषि ने जो धन प्राप्त कियाउसे सब में बांटने का प्रयत्न किया। अगर चाहते तो आराम से बैठकर जीवन-भर उस अपने प्यारे प्रभु का भजन ही करते रहते और मोक्ष का आनन्द लेते। परन्तु वाह रे ऋषि तूने इस देश के लिए अपना सभी कुछ लुटा दिया।

आर्यो! प्रेरणा ले लो, उस प्यारे ऋषि के जीवन से, यह पर्व मानना तभी सफल होगा। जब तुम ऋषि के पदचिन्हों पर चलने का व्रत लोगे, पूज्य ऋषि के जीवन की हर एक घटना से हमे जीवन को उच्च बनाने वाली शिक्षा मिलती है।

वह देवता था, और अपना सभी कुछ संसार को दे गया। अगर वह जीवन में रोया तो रोया भी अपने देश की दीन-हीन दशा को देख-देखकर, प्यारे ऋषि का दिल भर आता था, आंखों से गंगा-यमुना की बहती हुई धाराओं में करुणा मिलकर त्रिवेणी तीर्थ बन जाता था। उनके जीवन का एक-एक कार्य हमारे लिए पथ-प्रदर्शक है।

यह देवता जब उदयपुर में पहुंचा तो पहली रात्रि में आधी रात व्यतीत हो गई, परन्तु पूज्य ऋषि को चिन्ता में निद्रा नहीं आई उठकर बेचैनी से टहलने लगे। उनके पांवों की आहट सुनकर जो उनकी सेवा में आया हुआ जो व्यक्ति था उसकी भी नींद खुल गई।

उस ने स्वामी जी के चरणों में आ कर पूछा स्वामी जी, आपको क्या कष्ट है, आप को नींद क्यो नहीं आ रही, क्या कही दर्द है? या-कोई और दुःख है। अगर ऐसी बात हो तो मैं अभी वैद्य को बुला कर औषधी ले आऊं, आप कुछ बताओ तो सही? 'करुणा सागर जी लम्बी श्वास भर कर बोले हां! भाई दर्द है, परन्तु यह किसी वैद्य, हकीम की दवाई से जाने वाला नहीं है। इस दर्द की क्या पूछोगे, यह तो भारत के निर्धन मेहनती, मजदूर, किसानों का दर्द है। मुझे अपने देश की निर्धनता को देख कर रात को नींद भी नही आती,

'एक हूक सी जिगर में उठती है,
इक दर्द सा दिल में होता है।
हम रात को बैठ के रोते हैं,
जब सारा आलम सो है।

अगर रोना भी हो तो ऐसा रोना हो. अगर चिन्ता हो तो ऐसी चिन्ता हो, अपने लिये आंसू बहाना, दुःख में रोना, चिन्ता करना तो सभी जानते हैं। परन्तु उस समय में सभी के लिये चिन्ता करने वाला वह अकेला देवता था। सुख की इच्छा नहीं, स्वर्ग की इच्छा नहीं, मुक्ति की इच्छा नही, मान की इच्छा नहीं, धन-धान्य की इच्छा नही, अगर इच्छा है तो दूसरो के दुःखो को दूर करने की, परहित में जीवन लगाने की, देश को स्वतन्त्र कराने की, ऋषिवर जीये अपने लिये नही दूसरो के लिये।

कहते हैं शिवाजी महाराज ने देवताओं की रक्षा के लिये समुद्र मथन से निकला विष पी लिया था, जिस से वह नीलकण्ठ कहलाये। परन्तु मेरे देवता ने दूसरो के लिये एक बार नहीं १७ बार विष का पान किया, शिव ने तो केवल एक बार ही किया था। आओ आओ आर्य बन्धुओ इस महापुरुष के बोध दिवस को मनाते हुए उनके पदचिन्हों का अनुकरण करके अपने जीवन को सफल बनावें।

★★★

अज्ञान पर ज्ञान की विजय का प्रतीक-ऋषिबोधउत्सव

[पं० भक्त राम जी अफ्रीका वाले दिल्ली]

आर्य समाज सीता राम बाजार दिल्ली के वार्षिकोत्सव सन १९६२ पर दिए गए अपने व्याख्यान मे तार्किक शिरोमणि और शास्त्रार्थ महारथी स्व० प० रामचन्द्र जी देहलवी ने क्या ही अच्छा कहा था कि 'हमने आप को (श्रोताजनों को सम्बोधित करते हुए) बहुत सुनाया और आपने सुनने में कसर नही छोड़ी परन्तु अब करने का समय है।'

उन्होने स्वर्गीय स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज के किसी भाषण का एक उदाहरण सुनाया—एक व्यक्ति किसी स्थान के लिए चल पड़ा। जब वह चौराहे पर पहुंचा तो वह उलझन मे पड गया कि कौन-सा मार्ग ले ? उस ने सिर पर से गठरी उतारी और जो यात्री आता उसे मार्ग पूछता जाता पर चलने का नाम न लेता। परिणाम् स्वरूप वह ठिकाने पर न पहुच सका। उपरिलिखित उदाहरण देकर देहलवी जी ने कहा कि हम कल्याण मार्ग के पथिक सुख प्राप्ति के साधन पूछते तो जाते हैं पर उनको आचरण मे नही लाते। हम वैदिक सिद्धान्तों का ज्ञान होने पर भी उन्हे आचाराम्वित नही करते। वहा पहले खड़े थे मार्ग जानने पर भी वही खड़े रहे। वितण्डावाद के अभ्यासी हो गए है। इसी लिए उद्देश्य पूरा नही हो रहा। ऋषि बोधोत्सव (ऋषि जन्म दिन) तो कार्यालय के नित्य कार्य की भान्ति प्रतिवर्ष मनाया जाता है पर क्या हम आर्यसमाजियो ने अपना बोध दिवस भी कभी मनाया है ? महर्षि दयानन्द की ज्ञान रात्रि के कितने समारोहो का आयोजन हम ने आज तक किया ? क्या हमे किंचित् मात्र भी ज्ञान हुआ ? स्टीफनसन और न्यूटन के उदाहरणों द्वारा शिवजी के सामने व ऊपर से चूहे के खाद्य पदार्थ उठा ले जाने की क्षुद्र घटना पर दयाल जी (मूल शकर) के मन में सच्चे शिव की खोज के लिए घर बार त्यागने की कथा सुनसुना कर तो शिवरात्रि के महान् पर्व की सफल सम्पन्नता नहीं कही जा सकती। हम निष्क्रिय हो गए हैं।

वेद प्रचार नाम मात्र है। ससार को आर्य बनाना तो दूर रहा हम स्वय आर्य नही बने।' वेद का स्वाध्याय त्याग कर हम अखबार को ही वेद शास्त्र मान बैठे हैं। जैसे विचार उन पत्रो मे दिए जाते है वैसा उनका मस्तिष्क बन रहा है। प० भगवदत्त जी अन्वेषण कर्त्ता के ये शब्द द्रष्टव्य हैं—मेरा क्रियात्मक जीवन तो नहीं है किन्तु मेरे आर्यसमाजी विचारो को कौन बदल सकता। इन आर्य समाजी विचारो को कोई नही बदल सकता। एक आर्य भाई के इन शब्दो को सुनकर स्वा० सर्वदानन्द जी के एक व्याख्यान के निम्नलिखित शब्द स्मृति पट पर आ गए।

'कई आर्य समाजियो से मैं प्रश्न किया करता हू कि 'क्या आप आर्य समाजी हैं ?' उत्तर मिलता है—विचार तो आर्य समाजी हैं।' 'पर भाई अब काल्पनिक आर्य समाजियो की आवश्यकता नही।' मेरा तो यह कटु अनुभव है कि हमारे आर्यत्वहीन जीवन के कारण ही आर्य समाज की गति रुकी नही तो मन्द अवश्य हो गई है पर हम इस तत्व को महत्व नही देते। हम सोए पड़े हैं। हिन्दुओ, सिखो और मुसलमानो की तुलना मे मैं श्रद्धा की जो मात्रा है उसे शून्य कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगा। श्रद्धावान न हो कर हम कुतर्क भास्कर बनने मे प्रवृत्त हो रहे हैं। महात्मा मुन्शी राम जी ने एक व्याख्यान मे अपने जीवन की एक मनोरजक घटना सुनाई थी जो नीचे दी जाती है—

मैं हरिद्वार मे गंगा तट पर खड़ा था। श्रद्धालु स्त्री पुरुष गंगा में स्नान कर रहे थे। इतने में उन्होने देखा कि एक देवी डुबकियां ले रही थी। उन्होने झटपट कपड़े उतारे और गंगा मे कूद पड़े और उस देवी को

बचा कर किनारे पर ले आए। उस के पेट में पानी भर गया था। जब पानी निकाला गया तो उसने आंखें खोल दी और पहला प्रश्न यह किया कि 'मुझे गंगा से किस ने निकाला है? लोगों ने इस विचार से कि देवी मेरा धन्यवाद करेगी मेरी ओर सकेत कर दिया पर उस देवी ने मुझे सम्बोधित कर कहा—'हट हत्यारे' मैं मुक्ति प्राप्त करने जा रही थी तूने मुझे उस से वंचित कर दिया।'

यह घटना सुना कर महात्मा मुंशीराम जी ने प्रश्न किया था कि क्या यह श्रद्धा आर्यसमाजियों मे है? स्व० सर्वदानन्द जी ने एक बार कहा था आर्य समाज को सत्य सनातन (पौराणिक) धर्म की श्रद्धा और सिखों का जोश तीनों एक स्थान पर हो जाएं तो देश का कल्याण हो सकता है पर खेद है कि तीनों अलग-अलग खड़े हैं।

जोश तो नाम को भी नहीं। उत्सवों के समय सोडा वाटर की बोतल के से उबाल को 'जोश' संज्ञा नहीं। प्रारम्भिक युग जैसा मिलाप माधुर्य कहां है? वह पुरुषार्थ, उत्साह, लग्न श्रद्धा और जोश, कहीं पर 'लगाकर चला गया। 'नमस्ते का नाद जिसके सुनते ही आर्य समाजियों के हृदय एकाएकी प्रफुल्लित हो उठते थे आज कहीं सुनाई नहीं दे रहा। वह भी समय हमने देखा है जब आगन्तुक के मुखारविन्द से 'नमस्ते' शब्द सुनने पर एक आर्य उसे सहोदर समझ उस के गले से गला लगा कर मिलता था।

सहायता के कामों के लिए आर्य सेवक-सच ढूढें नहीं मिल रहे। स्वयं आर्य जन सहायता के अधिकारी होते हुए नि:सहाय देखे गए हैं। अधिकारी-अधिकारी से परिचित नहीं तो उनके आर्य सभासदों को जानने का प्रश्न ही नहीं उठता। पहले जैसे भ्रातृभाव और प्रेम प्रीति का अभाव हो गया। क्या स्वामी विश्वेश्वरानन्द और ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी के परस्पर प्रेम जैसा दृश्य दिखाई देता है आज? लाला मुंशी राम जी ने आचार्य राम देव जी को धर्म पुत्र बना कर अपना कोई स्वार्थ सिद्ध न किया था। महात्मा हसराज जी ला० खुशहाल चन्द जी (महात्मा आनन्द स्वामी जी) को अपना कर निजी लाभ नहीं उठाया था। प्रो० राम देव जी डा० चिरजीव भारद्वाज के निधन पर फूट-फूट कर जितना रोए थे उतना अपने पिता, दो भाइयों और बहन के देहान्त पर नहीं रोए थे। क्या यह भ्रातृ प्रेम की पराकाष्ठा नहीं?

सन् १९३२ में रावलपिंडी जेल में म० कृष्ण जी आचार्य रामदेव जी से मिलने गये थे तो सुपरिन्टेन्डेन्ट के यह पूछने पर 'इज ही ए ब्रदर आफ यूअरज' ? (क्या वह आपका भाई है) आचार्य जी ने उत्तर दिया था— ही इज मोर देन ए ब्रदर टू मी (वह भाई से भी बढ़ कर है मेरा) है ना सहोदर भाव का अनुपम उदाहरण? डा० चिरजीव विलायत गए थे। उनकी अनुपस्थिति में उनकी धर्मपत्नी के अपने पिता जी द्वारा सामाजिक कार्यों मे भाग लेने के कारण सताये जाने पर उन्होंने झूठी लोक-लाज त्याग कर सहायता की थी।

है ऐसा साहस किसी मे आज? महात्मा मुन्शी राम जी के सन्यास गृहण के समय महाशय कृष्ण जी का रोना न थमता था। कैसा भावुकता पूर्ण होगा वह दृश्य? कौन भूल सकता है वह दृश्य जब अमरीका से लौटने पर ला० लाजपतराय स्वा० श्रद्धानन्द जी से गले से गला मिला कर मिले थे और गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर भाई-भाई की तरह गले मिले थे।

ऋषि बोध रात्रि के मांगलिक पर्व पर सब व्रत लें कि हमारे प्राण चले जावें परन्तु हम जगत गुरु दयानन्द के आज की रात के प्रण द्वारा जगाई जोत को जो जान से बचाए रखने मे कोई प्रयत्न उठा नहीं रखेंगे। परमात्मा इस प्रण पालने में हमारे सहायक हो।

———

मैं—आर्यसमाज ऋषि दयानन्द

[प्रिंसिपल श्री भगवान दास जी डी० ए० वी० कालेज अम्बाला नगर]

इस लेख के शीर्षक मे जो शब्द 'मैं' लिखा है वह साधारण अर्थो मे प्रत्येक मनुष्य पर घटता है। बीस-पच्चीस वर्ष हुए मैंने एक पुस्तक पढ़ी थी, जिसका नाम था मैं आर्य समाज के कम्प मे गया'। उन व्यक्तियो ने जिन्होने इस पुस्तक मे लेख लिखे थे उनके जीवनचर्या को देखकर मैं हैरान होता था। उसके पश्चात आर्य समाज के कुछ पत्र-पत्रिकाओ ने समय-समय पर ऐसे ही लेख छापे थे। कई भाइयो ने वही रोचक कथाए अपने आर्य समाज के प्रवेश के बारे में लिखी थी जिनको मैंने शौक से पढा फिर उसी तरह चकित रहा जैसे पहिले हुआ था। मुझे भी कई भाई यह पूछते रहते हैं कि मैं आर्य समाज मे कब आया। मेरी कहानी रोचक तो है पर मैं सुनाता नही। क्योकि मेरे सामने यह प्रश्न नही कि 'आर्यसमाज मे मैं कब आया।' अपितु सदैव मेरे सामने यह प्रश्न रहा है कि आर्यसामज मुझ मैं कब आया। आर्य समाज मे जानेका अर्थ है प्रवेश-पत्र भरना, चदा देना, आर्यसमाज के सत्सगो और जलसो मे जाना, अथवा अधिक से अधिक आर्यसमाज सस्थाओ के लिए दान देना था। आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द की प्रशंसा के लेख लिखना या लेक्चर देना। इन्ही बातो को हम ने आर्य समाज मे प्रवेश कहते हैं और इस पर हम फखर करते है और इस के बदले आर्य समाज से बहुत कुछ आशा करते हैं। सब भाई-बहिन इन बातो को पढ़ कर यह सुगमता से समझ सकेगे कि यह सब बाते मिला कर भी आर्य समाजी पना नही है। यह तो क्रियाए हैं अथवा अधिक से अधिक आर्य समाजी बन सकने के साधन हैं। कई भाई आज कल यह भी कहते दिखाई देते हैं कि यात्रा करना भी आर्य समाजीपना है और बस। मेरा मत आरम्भ में ही भिन्न रहा है। मनुष्य को आर्य समाज मे प्रवेश लेना चाहिए पर महत्व का दिन किसी के जीवन मे वह है, जिस दिन कि आर्य समाज उनके अन्दर प्रवेश करे मैं अपने जीवन मे बहुत भाग्यशाली रहा हूं और ईश कृपा से सतोष का सुखमय जीवन व्यतीत किया है और करू गा पर झूठ, फरेबी और देश के शत्रुओ से युद्ध भी लड़े हैं और सफलता भी प्राप्त की है। पर अभी मैं यह डीग नही लगा सकता कि आर्यसमाज मेरे अन्दर प्रवेश कर गई है। इस कहानी को पूरा करने के लिए वर्षो की आवश्यकता है और भले ही जन्मो की भी। और जो मेरे लिए है, वह बहुत बड़े-छोटे सब भाई बहिनो के लिए भी है। मेरा इस जीवन का सब से बड़ा मानसिक दुःख यही है कि जो सेवा त्याग तथा बलिदान आर्यसमाज के लिए मुझे करनी चाहिए थी वह अभी बिल्कुल किसी मात्रा मे नही हुई। नैतिक आधार पर हम देशवासी इतने गिरे जा रहे हैं कि शायद आर्यसमाज मे प्रवेश कभी भी न होने पावे। आर्य समाजियो के जीवन का यह सब से बुरा और दुःख का तथ्य है। इससे भले ही किसी को गुस्सा लगे पर यह सब को मानना पड़ेगा। जब तक आर्यसमाज, आर्य समाजियो मे आर्यसमाज प्रवेश नही करती, आपस के झगड़े नही मिट सकते। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास ग्यारह में यह शब्द लिखे है :—

'इस लिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज साथ मिलकर उसके आदेश के अनुसार आचरण स्वीकार कीजिए नही तो कुछ हाथ न लगेगा.........जैसा आर्य समाज आर्य वर्त देशकी उन्नति का कारण है ऐसा दूसरा नही हो सकता।'

महर्षि ने थोड़े शब्दों मे दो बड़ी भारी बातें कही हैं। एक तो यह कि जब तक हमारा आचरण आर्य समाजी नही होता, कुछ हाथ नही लगेगा। जितनी मर्जी ऊंची ऊची डीगे मारे हम ऊचे नही उठ सकते। आर्य

समाजियो की जन संख्या का प्रश्न हमारे सामने है। आओ हम सब इस भूल मे न रहे कि आर्य समाज मे प्रवेश लेने से ही सन्तोष मिलता है अथवा इस मे हमारे जीवन के महत्व कार्य हो जाना है। महत्व इस आर्य समाज में प्रवेश करें।

दूसरी बात जो ऋषि ने कही है वह यह कि इस देश कि उन्नति आर्य समाज से ही होगी। यह भी सच्ची बात है, अगर आर्य समाज हमारे अन्दर प्रवेश कर गई तो देश का भी भला होगा। दयानन्द यह नही कहते आर्य समाज का प्रवेश-पत्र भरने से ही देश का भला होगा। अगर करोडों भाई आर्य समाज का प्रवेश पत्र भर देवे तो भी यह देश ऊंचा नही होगा। देश को जब-समूह ऊचा और शक्तिशाली नही करता। देश को तो जनता का चरित्र ऊंचा बनाता है। आज देश का नैतिक पतन हो चुका है। आर्य समाजी भी चुप बैठे देख रहे हैं। समाचारो पत्रों मे पढा कि दिल्ली मे शराब रेहड़ियो

लेखराम पर चली कटारी बाट हमारी देख रही

[रचियता—राजेन्द्र 'जिज्ञासु']

उठो आर्यो! दानवदल धरती पर है हुकार रहा।
अड बड पाखण्ड धरा का आज तुम्हे ललकार रहा॥

दयानन्द की अमर कामना बाट तुम्हारी देख रही।
लेखराम पर चली कटारी बाट हमारी देख रही।
राम कृष्ण का गौरव जाता आश से आज निहार रहा।

रूप सन्त का धार चला कोई आज दूत सरकारी है।
फूट कुटिलता दम्भ द्वेष की रही सदा से यारी है।
उठो क्राति के दूत तुम्हारा तुमको फरज पुकार रहा।

अमर वेद का ज्ञान उजाला कौन धरा को दे देगा ?
कुटिल पाप अज्ञान से बढकर कौन अरे लोहा लेगा ?
हीन है मुह मे दही जमाये जो अब सोच विचार रहा।

किसने मस्जिद मे जाकर गाई कल्याणी वाणी थी ?
गोराशाही जिस से कापी तेरी हो कुरबानी थी ?
सदा ही खजर भाला तुझ पर चलता तेज कटार रहा।

सबल बनो तो सफल बनोगे है ईश्वर उपदेश यही।
सदाचार लो धार हिय मे है ईश्वर आदेश य ही।
मान का जीवन मिला उन्ही को मौतसे जिनका प्यार रहा।

तुम्हे ऋषि ने ईश्वर के वेदो का था उपहार दिया।
सोच तनिक न तन के सुख की प्यारे बेडा पार किया।
त्याग तपस्या ईश्वर चिन्तन जीवन का आधार रहा।

पर बिकती है। कालेजों में, स्कूलों में शराब, जुआ चालू है। ग्रीन नाइट्स और डार्क नाइट्स का बोल-बाला है। आर्य समाजी भी सब बातें देख रहे हैं और फिर भी हम सब आर्य समाजी हैं। ऋषि दयानन्द की आत्मा क्या कहती होगी। आओ, सब मिल कर वीर हकीकत, महाराणा प्रताप, शिवा जी मराठा, गुरु गोविन्द सिंह ऋषि दयानन्द, वीर लेख राम, स्वामी श्रद्धानन्द महात्मा हंसराज को याद करें और आर्य समाजी बनें।

सच्चे शिव के प्रत्यक्ष दर्शन

[श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती]

शिवरात्रि का व्रत प्रारम्भ हुए सहस्रों ही वर्ष व्यतीत हो गए, परन्तु वास्तविक रूप में कल्याण करने वाली रात एक ही आई। और वह भी आज से १३० वर्ष पूर्व, जब पिता की आज्ञा से यह आश्वासन दिलाने पर कि 'सच्चे शिव के दर्शन पाओगे।' १३-१४ वर्ष के बालक मूल शंकर ने सवत् १८९४ की शिव-रात्रि का व्रत रखा और शिव मन्दिर में शिव दर्शन पाने के लिए सारी रात आंखों में बिता दी। परन्तु शिव दर्शन हो न सके, हां एक घटना ऐसी घट



गयी जिसे देखकर मूल शंकर सहसा पुकार उठा, कि सारे संसार का कल्याण करने वाला शिव तो यह हो नहीं सकता, जो अपना भी कल्याण न कर सके, मैं तो अब सच्चे शिव के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर,ही सतोष मानूंगा। वह रात चली गई दिन पर दिन जाने लगा, कैसे दर्शन पाऊं सच्चे शिव का' यही लगन बालक के हृदय में लगी रही, इसी बीच में मृत्यु के दो दृश्य देखने को मिले, प्यारी बहिन और प्रेम करने वाले चचा चल बसे। कौन ले गया इन को ? क्या मृत्यु सब को इसी प्रकार ले जायेगी ? क्या मुझे भी मृत्यु का ग्रास बनना होगा ? नही मैं मृत्यु पर विजय प्राप्त करूंगा। अब एक नहीं दो अग्नियां हृदय में प्रज्वलित हो उठीं, (१) शिव दर्शन और (२) मृत्यु जय। अब तो तीव्र वैराग्य ने घेर लिया, घर में ठहरना असह्य हो गया, निकल पड़े सब सुख आराम तथा सम्पत्ति को छोड़ कर। बीहड़ जंगलों में योगियों, तपस्वियों की गुहाओं कुटियाओं में सम्वत १९०३ से लेकर १९३१ संवत तक निरन्तर २८ वर्ष संन्यास धारण करके दयानन्द नाम लेकर घोर तप योगाभ्यास, वेद तथा अन्य शास्त्रों के अध्ययन में व्यतीत किए, और समाधि अवस्था प्राप्त करके सच्चे शिव के दर्शन अपने आत्मा में प्रत्यक्ष रूप मे पाकर मृत्यु पर भी विजय पाई।

यह सब कुछ प्राप्त करने के पश्चात् अब क्या शेष रह गया था, जिस के लिए वह चिन्तित होते, परन्तु महर्षि दयानन्द की यही तो विशेषता है कि मानव जीवन का ध्येय पाने के पश्चात् महर्षि ने जब देखा कि संसार वैदिक विचार धारा को छोड़ कर कितना दुःखी हो गया है और इसे सन्मार्ग पर लाने के लिए एक बहुत भारी बलिदान की आवश्यकता है। तब वह अमर पद, मोक्षानन्द तथा ब्रह्मानन्द में मग्न रहने के परमानन्द का भी त्याग है, जो इस युग में महर्षि दयानन्द ने ही कर दिखलाया। उतना बड़ा त्याग कर के महर्षि ने संसार के उपकार के लिए जब सम्वत् १९३२ मे कार्य शुरू किया तो इस बिगड़ी हुई दुनिया ने उनके साथ वह व्यवहार किया जो शत्रुओं से भी किया नहीं जाता। अभी पूरे नौ वर्ष भी वेद विचार का प्रसार करते नहीं बीते थे कि उन्हें सम्वत १९४० में विष देकर मार डाला गया।

आर्य समाज की स्थापना वह इसी लिए कर गए थे, ताकि उन के पीछे संस्था द्वारा वेदप्रचार कार्य पूरा होता रहे। आर्य समाज ने विद्या की वृद्धि, दुखियों की सेवा, स्वराज्य प्राप्ति, स्वदेश प्रेम तथा अन्य सभी कार्य किए और खूब किए परन्तु यदि कोई काम नहीं किया तो वह था। जिसके लिए महर्षि ने इस की स्थापना की थी और आज ७५ वर्ष के कार्य के पश्चात देख लीजिए कि स्कूल कालेज, गुरुकुल तथा अन्य संस्थाएं तो हैं, परन्तु वेद

* शिव रात्रि आई *

[श्री हरवंसलाल 'हंस' भजनोपदेशक]

शिव रात आई दूर अन्धकार हो गया।
सच्चे शिव संग मूलजी को प्यार हो गया॥
चला शिव जी को पाने मूल व्रत रख के।
अर्द्ध रात्रि को मूर्ति पे चूहा लख के॥
वहीं सर्व शक्तिमान् दृढ़ विचार हो गया।
लिए दिल में लग्न, सच्चे शिव को मिलन,
चला, घर छोड़ आए, अति पथ में विघ्न,
सीना तान के आपत्तियों से पार हो गया॥

कभी कहीं कभी कहीं गया साधुओं के दौरे।
कोई सेवा ही भूखा कहे आजा सुत मोरे।
कोई कपड़े ही छीन के फरार हो गया।
पहुंचा मथुरा नगर जग छान बीन के।
आया सरोवर पास मूल ढम मीन के।
सच्चे गुरू का सौभाग्य से दीदार हो गया॥
विरजानन्द जी के दौरे दयानन्द शिष्य ने।
रहके, सेवा का पाया मेवा अजब इसने॥
गह सत्य वेद-ज्ञान को उद्धार हो गया।
पढ-लिख कर जोड दिए लौंग भेंट को।
गुरू कहा दयानन्द भेंट जीवन की दो।
गुरू आज्ञा पे जीवन निस्सार हो गया॥

सत्य वेद रूप रवि प्रकाश हो गया।
घनो ग्जमी अविद्या का नाश हो गया।
'हंस' दुःख रूपी सागर से पार हो गया॥

प्रचार कहा है ? वेद को खोलने वेद को सर्व प्रिय बनाने का प्रयत्न कहा है ? वेद प्रचार फैलाने के लिए प्रचारक, उपदेशक कहां हैं ? वैदिक शिक्षा की संस्थाएं कहा हैं ? महर्षि दयानन्द को विष देकर मार डालने वालो ने निस्सदेह पाप किया, परन्तु महर्षि के मिशन ही की हत्या कर डालने वालो ने कौनसा पुण्य किया है ?

आज शिवरात्रि की रात के सन्नाटे मे शात एकांत मे बैठकर विचार कीजिए कि कही हम भी तो महर्षि के हत्यारे नही हैं ? आज महर्षि के जीवन पर दृष्टि डालिए और फिर अपने जीवन पर। सच्चे शिव के प्रत्यक्ष दर्शन करने केलिए हम कितना यत्न कर रहे हैं ? कितना त्याग और तप हमारे जीवन मे आ रहा है और वेद के प्रचार के लिए हम क्या कर रहे हैं ?

शिवरात्रि के व्रत का उद्देश्य तो आज से १३० वर्ष पूर्व पूर्ण हो चुका था, अब तो शिवरात्रि प्रति वर्ष इस लिए आती है ताकि हम पड़ताल कर सके कि महर्षि दयानन्द ने शिव रात्रि के दिन जो व्रत धारण किया था और जो दिव्य स्वप्न उन्होंने देखे थे, उन्हे हम पूर्ण कर रहे हैं पर नही ? दिव्य दयानन्द का आत्मा क्या कह रहा होगा ? सच्चे शिव के दर्शन पाने के यत्न ये लोग कब प्रारम्भ करेंगे और अपने हृदय का दीपक प्रज्वलि करके दूसरो के बुझे दीपक कब जलायेगे और सारे ससार मे वेद विचार का प्रसार कब करेंगे ?

★★

इसे अवश्य पढ़िये

आर्य जगत के प्रेमी पाठकों की सेवा में सूचनार्थ निवदवन है कि प्रस्तुत विशेषाक १८, २५ फरवरी तथा ३ मार्च का सम्मिलित अक है इस से अगला अंक १० मार्च को प्रकाशित होगा। पाठक नोट कर लें :

—व्यवस्थापक

शिव रात्रि के सन्देश

[श्री रविदेव जी शास्त्री दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार]

आर्यों का प्रत्येक पर्व जीवन स्तर को उठाने वाले श्रेष्ठ सन्देश, सकेत व शिक्षाए लेकर आता है। पर्व का अर्थ है पूर्ण करने वाला, पर्वों से हमारी न्युन-ताए पूर्ण हो जाती हैं।

शिवरात्रि का अर्थ है कल्याण करने वाली रात्रि। ऋषि बोध से पूर्व यह शिवलिंग के उपासकों का कितना कल्याण करती थी यह तो हम नहीं कह सकते परन्तु १४ वर्ष के मूल शकर को महर्षि दयानन्द बनाने वाली इस पवित्र रात्रि ने न केवल भारत अपितु सारे भूमण्डल का कल्याण किया है यह हम साधिकार कह सकते हैं।

शिवरात्रि का पहला सन्देश व्रत ग्रहण हैं। जीवन की सफलता के लिए अथवा जीवन मे किसी शुभ कार्य की सुसमाप्ति के लिए जीवन मे योग्यता प्राप्त करने के लिए व्रत ग्रहण की नितांत आवश्यकता है।

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति' व्रत से ही मानव पूर्ण योग्यता अधिकार तथा पदवी को प्राप्त करता है। शरीर, मन, बुद्धि व आत्मा की उन्नति के लिए व्रत ग्रहण की आवश्यकता है। देश सेवा, धर्म सेवा व जाति के लिए व्रत लेना चाहिए। आश्रम धर्मों का अनुष्ठान बिना व्रत के नही हो सकता।

शिवरात्रि का दूसरा सन्देश है जागते रहना।

'यो जागार तं ऋचः कामयन्ते' जो जागता है उसे ऋचाए चाहती हैं। उसे वेद का सत्य ज्ञान प्राप्त होता है। 'उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' उठो जागो और श्रेष्ठ जनों के पास जाकर बोध प्राप्त करो। 'जो जागत है सो पावत है' मूल शकर ने व्रत किया और वह नियतानुसार जागता रहा। कर्षन जी सो गए, पुजारी सो गए। वह व्रतशील १४ वर्ष का बालक जाग

रहा है। पानी के छींटे आंखों पर डाल-डालकर जाग रहा है।

जो जाग रहा था सावधान।
उसने ही पाया श्रेष्ठ ज्ञान।
वह पूर्व जन्म का पुण्यवान।
बन गया देव शुभ कीर्तिमान।

'जो सोवत है सो खोवत है' सोने वाले को क्या मिल सकता है। प्रकाशक भगवान सदा जाग रहे हैं वे जागने वालों को ही प्राप्त होते हैं। मूल ने इस जागरण से मूल को सच्चे शिव को सत्य ज्ञान को पा लिया।

शिवरात्रि का तीसरा सन्देश है—सत्य के प्रति श्रद्धा और मिथ्या के प्रति अश्रद्धा।

'दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः'
अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः।

अपनी प्रजा पर कृपा दृष्टि रखने वाले प्रजापति ने संसार के दो रूप देखे—एक सत्य दूसरा अन्त—एक धर्म दूसरा अधर्म—एक उचित दूसरा अनुचित और उपदेश दिया कि सत्य प्रति श्रद्धा-विश्वास आस्था, प्रगति धारण करो और असत्य के प्रति अश्रद्धा घृणा करो।

बालक मूलशंकर ने अब तक पिता जी द्वारा सुनी शिव पुराण की कथा के अनुसार शिव पूजन को सत्य समझा तब तक उसके प्रति श्रद्धा रखते हुए पूर्ण विधि से उपवास किया, पूजन किया जागरण किया परन्तु जब उनके अन्तः करण ने यह गवाही दी कि चूहे को भी अपने शरीर से हटाने में असमर्थ यह शिव लिंग, यह जड़ मूर्ति किसी का कुछ भी कल्याण नहीं कर सकती उसी समय उस अनृत के प्रति उनकी अश्रद्धा हो गई। घर चले गए उपवास तोड़ दिया और सच्चे शिव को प्राप्त करने की लगन लग गई।

आज यद्यपि ऋषि दयानन्द को अपना मार्ग दर्शक व आचार्य मानने वाले आर्य जन जड़ पूजा—मृतक श्राद्ध आदि मिथ्या विचारों पर पूर्ण अश्रद्धा रखते हैं परन्तु उसके साथ-साथ यदि सच्चे शिव के प्रति जीवित गुरुजनों के प्रति हमारी श्रद्धा न होगी तो वेद के अधूरे संदेश को मानने से हमें जीवन मे कोई लाभ न होगा तथा हमारी अवस्था उस मुसलमान के समान होगी जिसने सुना था "नमाज मत पढो" और उसने प्रभु की भक्ति छोड़ दी अगला वाक्य "जब कि तुम नापाक हो" उसने सुना ही नहीं था उसे औरों के लिए छोड़ दिया।

शिवरात्रि का चौथा सन्देश है संकल्प की दृढता मूल शंकर ने सकल्प किया कि अब तो मैं सच्चे शिव के दर्शन कर उसी का पूजन, ध्यान व चिन्तन करूंगा। इस संकल्प के साथ वे सत्यस्वरूप ब्रह्म की खोज मे लग गए। दृढ सकल्प के बिना हम कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुच सकते। सन्ध्या-स्वाध्याय-वेद प्रवचन तथा सत्सगों में मन लगाने के लिए दृढ सकल्प की परम आवश्यकता है।

शिवरात्रि का पांचवा सन्देश है संसार रूप खुली पुस्तक के अध्ययन से शिक्षाएं ग्रहण करना। यहां गिरता हुआ पीला पत्ता भी एक सन्देश दे रहा है। वृक्ष से गिरते फल का सन्देश विद्वान् न्यूटन ने सुना। पतीले की भाप से ऊपर उतरते हुए ढक्कन का सन्देश न्यूकोमेन ने सुना। वृक्षों के पत्तों से छन कर आती हुई सूर्य किरणों का सकेत पोटो ने सुना और उनके द्वारा आविष्कार कर दिखाए। इसी प्रकार छोटी सी चुहिया का सन्देश मूल शकर ने सुना और सच्चा बोध पा लिया।

सुनो सुनो हितकर सन्देश शिवरात्रि का शिव सन्देश।

आर्य समाजों से निवेदन

सभी आर्य बन्धुओं से विनम्र निवेदन है कि २३ फरवरी से २६ फरवरी तक ऋषिबोध उत्सव धूमधाम से मनाने की कृपा करें।

इस महान् पर्व को मनाते हुये सभी आर्य नर-नारी अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य के हिसाब से चार आना फण्ड वेद प्रचार के लिए अवश्य इकट्ठा करने का कष्ट करें।

एकत्रित धन सभा को भेजने की कृपा करें। प्रायः आर्यसमाजें इस दिशा मे उदासीनता का व्यवहार करती हैं। कृपया इन प्रमुख त्योहारों को प्रधानता से मनाना चाहिये तथा सभा का फण्ड भी अवश्य इकट्ठा करना चाहिये।

जिन समाजों ने अभी तक अपनी समाज कढ़ द। नहीं भेजा वह कृपा करके शीघ्र भेज दें। सभा की आर्थिक स्थिति को सुधारने में प्रत्येक समाज पूरा-पूरा सहयोग दें। शिवरात्रि फंड तथा दशांश शीघ्र भेजकर कृतार्थ करें। यही विनम्र प्रार्थना है।

विनीत—वेद प्रकाश मल्होत्रा सभा-उपप्रधान

ऋषि-बोध

[श्री श्रीराम जी पथिक छुटमलपुर U. P.]

हम सदा से अपने पर्व मनाते आ रहे हैं और भविष्य में भी मनायेंगे। महापुरुषों के जन्म दिवस, बोध दिवस या जन्म पर्व मनाना ही देश और जाति की जागृति का प्रमाण है। महापुरुषों के जीवन, जीवन की घटनायें हमें लाईट हाऊस की भान्ति प्रकाश देते रहते हैं। अपने जीवन को उच्च बनाने के लिए हमें, पूर्वजों के पद्-चिन्हों पर अवश्य चलना पड़ेगा। क्योंकि वही लोग विश्व में विजयी होते हैं, शक्तिशाली बनते हैं। जिन्होंने अपने महापुरुषों के जीवन से शिक्षा ग्रहण की तथा उनके गुणों को अपने जीवन में लाने का प्रयत्न किया।

हम २६ फरवरी को ऋषि बोध उत्सव मना रहे हैं। हमें यह उत्सव बड़ी धूमधाम से मनाना चाहिये। परन्तु साथ-साथ इस दिन हमें भी आत्म निरीक्षण करना चाहिए, क्या हम ऋषि के सच्चे अनुयायी हैं, क्या हम उनके बताए हुए मार्ग पर चल रहे हैं। हमें अपनी कुरीतियों पर दृष्टिपात करना होगा। यम-नियम का पालन करके अपने जीवन को ऊंचा उठाना होगा, और व्रत लेना होगा। तभी हमारा यह पर्व मनाना सफल हो सकता है।

आज समाजों के अधिकारियों को तथा प्रत्येक अपने आपको आर्य कहलाने वालों को, देश के भविष्य पर सोचने वालों को, अपना आदर्श त्यागमय जीवन बनाना पड़ेगा। हम सभी को यह विचारना चाहिए कि किस प्रकार किन-किन साधनों से, किन-किन ढंगों से, आर्यसमाज का प्रचार अधिक से अधिक हो सकता है। किस प्रकार 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे संसार को आर्य बनाओ का वेद का वाक्यपूर्ण हो सकता है। आर्यो हमारी कथनी और करनी एक हो, जो हम बाहर हैं वहीं अन्दर भी हों। दिखावे के आर्य मत बनो, सच्चे अर्थों में आर्य बनो, ऋषि के नाम को धब्बा मत लगाओ।

आज यह देख कर दुःख होता है कि आर्यसमाजों के निर्वाचन कहीं-कहीं तो पुलीस की देख-रेख में होते हैं। पद लिप्सा इतनी बढ़ी कि मन्त्री तथा प्रधान बनने के लिये घृणित षड्यन्त्र रचे जाते हैं। कत्ल तक हो जाते हैं। आर्यो कहा जा रहे हो हमारे गुरु ने तो घातक को भी धन देकर विदा कर दिया था। विष देने वाले, सामने लाये गये बन्दी को भी यह कहते हुए छुड़ा दिया था। मैं लोगो को कैद कराने नही आया, कैद से छुड़ाने आया हू। उसने तो घातक से भी प्रेम किया था, तुम तो अपने आर्य बन्धुओं से भी प्रेम नहीं कर सकते विचार करो भाईयो तुम कहा जा रहे, यह आर्यों का मार्ग नही।

ऋषि के ऋण को चुकाना पड़ेगा।
जो कहते वो करके दिखाना पड़ेगा॥

आओ सभी को गले से लगालो, संसार का उपकार करना हमारा उद्देश्य है। हमें अपनी ही उन्नति से संतुष्ट नही रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए, आर्यसमाज में आओ लड़ने और झगड़ने के लिए नही, प्रेम का पाठ पढ़ने और पढ़ाने के लिए। जनता की सेवा करने के लिए। भूले भटकों को मार्ग दिखाने के लिए अगर हम स्वयं मार्ग नही जानते तो दूसरों को मार्ग क्या दिखाएंगे। पहले आप सुनो फिर दूसरों को सुनाओ, पहले वेद पढो, फिर दूसरो को पढ़ाओ, पहले आप करो फिर दूसरो को कहने के अधिकारी बनो।

आज हमे, अपना आहार, व्यवहार, आचार सभी कुछ वेदोक्त बनाना पड़ेगा, हमें अपने प्रतिदिन के कार्य-व्यवहार पर प्रातः, सायं विचार करना होगा। यदि कोई अवैदिक कार्य हो गया हो तो उसका यथोचित सुधार करना होगा। हमें दिन भर के कार्य पर शाम को विचार करना चाहिए, प्रभु का भजन करके अपनी आत्मा को पवित्र बनाना चाहिए, हमारा जीवन एक आदर्श जीवन होना चाहिए। तभी हमारा यह पर्व मनाना सफल होगा। ऋषि के पद-चिन्हों पर चलते हुए हम सब स्वर में स्वर मिला कर बोलें—

जो बोले सो अभय
वैदिक धर्म की जय

महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी, जालन्धर

इस विभाग की स्थापना पूज्य महात्मा हंसराज जी के निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति में लाहौर में की थी। आर्य सज्जनों से प्रार्थना है कि पूज्यवर जी के इस पुण्य स्मृति विभाग को उन्नत करने में सहयोग दें। आर्य जनता से प्रार्थना है कि अधिक से अधिक साहित्य मंगाकर धर्म लाभ उठाने के साथ साथ इस विभाग को उच्च शिखर पर ले जाने में सहयोग देकर कृतार्थ करें।

उपयोगी पुस्तकों की सूची —

१	**साम वेद भाष्य** (आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री)	४० ००
२	**वैदिक गुरमत** (प्रो० धर्म अनन्त सिंह)	१० ००
३	**महात्मा हंसराज मोडर्न पंजाब के निर्माता** ले० प्रि० श्रीराम जी शर्मा **M A** (अंग्रेजी में)	१
४	**सन्ध्या पर व्याख्यान** ले० महात्मा हंसराज जी	१ ००
५	**Dayanand His Life and Work** ले० प्रि० सूर्य भानु जी **M A**	९ ०
६	**महात्मा हंसराज जी सचित्र** (ले० आनन्द स्वामी जी महाराज)	१०
७	**प्रभु दर्शन** (आनन्द स्वामी जी महाराज)	२ ०
८	**महर्षि दर्शन** (ले०—प्रि० दीवान चन्द जी **M A**)	२ ००
९	**स्वाध्याय संग्रह** (ले० प्रि० मा॰ इदास जी **M A**)	० ५०
१०	**नवीन प्राचीन समाजवाद** (ले० नारायण स्वामी जी)	[illegible]०
११	**सत्यार्थ प्रकाश भाग प्रथम समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M A**)	[illegible] ०
१२	**सत्यार्थ प्रकाश भाग द्वितीय समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M A**)	० १०
१३	**मुण्डक उपनिषद्** (ले० प्रि० दीवान चन्द जी **M A**)	० ३१
१४	**राधा स्वामी मत आलोचन** (ले० स्वामी सोमानन्द जी) उर्दू में	० २१
१५	**षट् दर्शन समन्वय** (ले० बुद्धदेव जी मीरपुरी)	२
१६	**सीता** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० २७
१७	**पद्मिनी** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० २१
१८	**पार्वती** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	०
१९	**Teachings of Ish Upnished** (ले० प्रि० दीवान चन्द जी **M A**) अंग्रेजी में	१ ४

आज ही आर्डर भेजिए और सभा की सहायता कीजिये आर्य समाज स्कूल कालिज पुस्तकालयों के लिये मंगाने की कृपा करें। नियमानुसार कमीशन दिया जायगा।

पुस्तकें मिलने का पता — महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, निकट कचहरी जालन्धर।

[illegible] प्रकाशक श्री प्रो० वेदप्रकाश मन्त्री आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा

★ ऋषि-निर्वाण-अंक ★



भारत के महान योगी महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती

अधिष्ठाता—डा० वेदीराम शर्मा एम ए

मूल्य ५० पैसे

सम्पादक—विनोदचन्द्र शास्त्री
महोपदेशक सभा

ओ३म्

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुख पत्र

आर्य जगत्

—o—

महर्षि दयानन्द निर्वाण विशेषांक

वर्ष २९] २६, अक्तूबर २,९ नवम्बर १९६६, [का सम्मिलित अंक ४३-४४-४५

वे दा मृ त

परमेश्वर के प्यारे

ते हि पुत्रा सो अदितेः प्रजीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ।। यजु : ।।

भावः—अदिति के, परमेश्वर के पुत्र वे है जो मानव समाज के लिए, वरन् सारे प्राणि मात्र के लिए अपने जीवन से ज्योति प्रदान देते हैं । परमात्मा के पुत्रों की पहिचान यह है कि मान समाज में समय-समय पर अज्ञान, अन्याय, अभाव का जो अन्धकार छा जाता है—जन-जीवन भटकने लगता है, तब वे अपने जीवन रूपी प्रकाशस्तम्भ से नानाविध किरणें फैला कर तमाम जीवन का अन्धेरा दूर कर देते हैं । वे जीवन दीपक होते हैं । सदा चमक कर दूसरों को भी चमका देते हैं । दीपमाला का देवदीप भी प्रभु पुत्र है । —सं.

सम्पादकीय—

देव सन्देश और हम

दीपमाला देव दयानन्द की निर्वाण रात्री है। जिस महान सकल्प को ऋषिवर ने गुरुवर विरजानन्द सरस्वती से मथुरा मे स्वीकार किया, उसे अपने महानिर्वाण के समय तक पूरा करने मे निरन्तर ही नाना प्रकार के कष्ट उठा कर भी लगे रहे। केवल मात्र उनको एक ही बात की चिन्ता थी कि सारे विश्व मे भगवान की कल्याणी वाणी वेद का प्रचार हो जाये। उस देवता का सारा जीवन ही वेदमय बन गया। श्वास-श्वास वेद के लिए था। कोई किसी वाला और कोई किसी वस्तु वाला बना। किन्तु देव दयानन्द तो वेद वाला बन गया। उनके सभी कुछ वेद ही था सारी आयु वेद प्रचार के पुनीत कार्य मे लगे रहे। आर्यसमाज की स्थापना भी वेद प्रसार के लिए की गई। अजमेर मे आज के दिन निर्वाण के पथ पर जाने से पूर्व उनके जीवन दीप से पता नही कितने बुझे दीपक जगा दिये। अन्तिम सन्देश मे कितना रहस्य भरा वचन कहा—'**आर्यो! मेरे पीछे आजाओ**' इसी एक वाक्य मे सब कुछ उस देवता ने कह दिया है।

'मेरे पीछे आजाओ' इसका क्या अर्थ है? कभी गम्भीरता से विचारा हमने देव दयानन्द ने जाते-जाते आर्यसमाज को कहा कि कि जिस वेद प्रचार के महान मिशन के लिए मैंने सब कुछ अर्पित कर दिया। उसी वेद प्रचार के मार्ग पर चलते रहना। वेद के सिद्धान्तो का प्रचार करते रहना। इस मार्ग का परित्याग मत करना। वेद के पुनीत कार्य मे मैं अपनी आहुति देकर जा रहा हू। इसके लिए बलिदान देते रहना। व्यष्टि को समष्टि पर भेंट करने मे तनिक भी संकोच मत करना। आज दीवाली आई है। आर्यो! दिल को टटोल कर देखो कि हम उस देवता के पीछे खडे है। या मनमाना पथ अपनाते जाते है। वेद के पवित्र कार्य मे हम कितना समय देते है? कितना पैसा भेट करते एवं अपने परिवार मे इस के लिए कितनी निष्ठा रखते हैं? इस समय का यह हमारा जीवन, परिवार, सस्थाएं तथा सभी कुछ क्या उसी पथ पर जा रही है जिस पर चलने का उस देवता ने सन्देश दिया था। आज वेद के कितने प्रचारक है? वेद के लिए कितनी धनराशि है? वेद प्रसार की किस मे कितनी लग्न है? वेद की निष्ठा रखने वाले के जीवन की क्या अवस्था है? जिन संस्थाओ का नाम उस देवता दयानन्द के नाम से शुरू है—क्या उसके वातवरण मे भी दयानन्द का सन्देश है या केवल द्वारो पर अक्षरो के रूप मे ही लिखा हुआ है। क्या आज तक कभी इस बात पर भी विचार किया है कि जिन वेद प्रचारको ने जैसे तैसे अपने प्रारम्भ यौवन से इस मार्ग अपने को चलाया उनमे मे कई स्वतन्त्र हो गये? कई राजनीतिक क्षेत्र मे जा कर उसी के हो गये, कई थक कर बैठ गये—सब से बड कर यह बात कि इन में से किसी एक ने भी सन्तान को वेदप्रचार के कार्य मे नही लगाया। दूसरे२ कार्यों मे लगा दिया। इस पर विचार किसी ने किया क्या?

दीपमाला निर्वाण की रात्रि है। दिवाली का यह दीपक तेल नही चाहता वरन् जीवन अर्पण करना मागता है। उस देवता ने तो अपना कर्तव्य पूर्ण कर दिया। उन के बाद भी बडे २ नेताओ ने इस मे सर्वस्व भेट कर दिया। अब यह दीपक जीवन का, समय का, सम्पत्ति और श्रद्धा निष्ठा की भेट मांगता है। यदि आर्यसमाज अपने उस महान् गुरु के निर्वाण सन्देश को मानकर उस के बताये पथ पर चलेगा तभी दीपमाला की सफलता है। आओ हम देवदयानन्द के पीछे चले तथा उनके सन्देश को माने—त्रिलोक चन्द

★★

अमृत पिलाने वाला देवता

[श्री भीमसेन जी बहल एम० एस० सी०, सभा प्रधान प्रि० डी० ए० वी० कालेज जालन्धर]



दुनिया मे लाखो मनुष्य ऐसे होगे जिनका काम केवल गरीबो को तग करना तथा उनके दिलो को दुखाना है। यह उनकी आदत-सी बन गई है। पर हमे यह कदापि नही भूलना चाहिए कि भारतवर्ष मे एक ऐसा भी देवता हुआ जिसने गरीबो की सहायता करना ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था।

महर्षि दयानन्द ने मानव समाज पर इतने उपकार किए है कि जिन्हे हम अपने दैनिक जीवन मे पग-पग पर प्रत्यक्ष होता हुआ देखते है। यदि एक शब्द मे स्वामी जी की समस्त शिक्षाओ को कहना हो, तो यही कहेगे कि उन्होने मानव जीवन निर्माण मे उन 'चारित्रिक मूल्यो' (Moral Values) का निर्माण किया जो समयानुसार नितान्त आवश्यक थे। कार्य क्षेत्र मे प्रवेश करते ही महर्षि को अनुभव हो गया था कि भारतीय मानव को चारित्रिक दृष्टि से विदेशियो ने पूर्णत. मार दिया है। गृहस्थ, समाज, राज्य, राष्ट्र सभी कुछ खोखला हो चुका है। गृहस्थ मे नारी के लिए सम्मान नाम की कोई वस्तु ही न रह गई थी। समाज में फूट ऊंच-नीच, और छुआछूत आदि विषेश ताओ का विष फैल चुका था। राष्ट्र की स्पष्ट कल्पना लोगो से समाप्त प्राय हो चुकी थी! महर्षि दयानन्द ने ऐसे अन्धकार पूर्ण युग मे 'वेद' की दिव्य ज्योति हाथ मे लेकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण किया। इसी 'सत्य-प्रकाश' की दिव्य किरणो द्वारा भारतीय जीवन मे चारित्रिक मूल्यो का पुनर्स्थापन आजीवन करते रहे। धर्म के क्षेत्र मे जनता को वेदोन्मुख कराना। शिक्षा के क्षेत्र मे गुरु और शिष्य के कर्त्तव्य दर्शाना। समाज के वैषम्य का निराकरण करना तथा मानव को यम-नियमो के पालन का उपदेश देकर चारित्रिकता के अमृत का पान कराया था।

स्वामी जी अपने कर्त्तव्य का पालन कर गए किंतु आज हम जहा पहिले थे उससे एक पग भी आगे नही बढे। हमने अभी तक भी जीवन-निर्माण का यत्न नही किया। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि हमने चारित्रिक शिक्षा का ज्ञान तो प्राप्त किया किंतु इसे जीवन मे नही उतारा। प्रसिद्ध दार्शनिक मैकेन्जी का

कथन है कि—

'A good man is not one who can, but one who does and act rightly ।'

अर्थात्—श्रेष्ठ व्यक्ति (आर्य) वही व्यक्ति नहीं जिसमे किसी काम के करने की शक्ति हो, अपितु वही श्रेष्ठ व्यक्ति कहा जा सकता है जो किसी भी तथ्य को अपने जीवन मे चरितार्थ करके उसी रूप मे कार्य कर सके।'

अरस्तू ने भी ऐसा ही कहा है कि—

'A good man cannot decide to retire from the life of virtuous activity, or even to take a rest from it There are no holidays from virtue.'

अच्छा व्यक्ति उदात्त कार्य प्रणाली से कभी भी विरत होना नही चाहेगा। उदात कर्मों के करने मे कभी भी अवकाश नही होता।

वस्तुत: जीवन का सार मानव की अपनी धारणा शक्ति मे ही निहित रहता है। एक बार यदि मनुष्य निश्चय कर ले कि मैंने सदा सच ही बोलना है तो कोई कारण नहीं कि सत्य उसके जीवन मे रम न जाए। किन्तु यह सत्य का केवल ज्ञान प्राप्त करने मात्र से ही न हो सकेगा। इसके लिए मानव को स्वयं सत्य बोलने का अभ्यास करके दिखाना होगा। जैसे निद्रा जीवन का एक आवश्यक तत्व है किन्तु केवल निद्रा मे ही रहना मानव का चारित्रिक गुण नही।

'The good man is not good when asleep or on a journey, unless when it is good to sleep or to go on a journey. Goodness is not a capacity or potentiality, but an activity'

इसी आधार पर आज हमें व्रत लेना चाहिए कि हम भी जीवन के मूल्यो का संचय करने के हेतु कर्म करे अन्यथा मानव जीवन निष्फल ही कहा जाएगा। वेद के शब्दो मे भी ऐसी ही प्रार्थना की गई कि—

'हे भगवान हम कर्म करते हुए ही सैकडो वर्षों तक जीवित रहने की इच्छा करते रहे।' —यजुर्वेद

अत: प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह महर्षि द्वारा बताए मार्ग पर चलता हुआ उनके प्रत्येक उपदेश को जीवन मे चरितार्थ करने का निश्चय करे तभी हम उनके सच्चे भक्त कहे जा सकते हैं।

आर्य समाज को बचाओ

[ले०—डा० वेदीराम जी शर्मा, प्रो० डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर]

मैं खोज रहा हू तिमिर बीच,
कब से ज्योतिर्मय दाह एक।
बल उठे किसी दिशि वह्नि राशि,
ले, देकर मेरी चाह एक॥

किसी कवि के यह शब्द आज के आर्य समाज के तिमिराच्छन्न वातावरण पर कुछ सार्थक से होते दिखाई देते हैं। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने वेद का सन्देश देश-विदेश मे फैलता रहे, इसी हेतु आर्यसमाज की स्थापना की थी। आर्यसमाज ने उनके सामने व बाद मे काफी कार्य भी किया। धर्म के नाम पर किए जा रहे अत्याचारो का भण्डा फाड़ किया। राष्ट्रीयता की रूप रेखा भारतीय युवक को स्पष्ट की। सामाजिक सुधार से देश के वातावरण को पवित्र बनाया। महर्षि की मृत्यु के पश्चात उनके भक्तो ने अपने बलिदानो की मालासे संसारके सामने आर्य सिद्धान्तो पर मर मिटने के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किए।

स्वामी श्रद्धानन्दजी की अटूट श्रद्धा। प० लेखरामजी का साहित्य प्रचार, स्वामी दर्शनानन्द जी की युक्तियो, स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज की मस्ती भरी कथाए, महात्मा हंसराज जी का हस-हंस कर समाज कार्य के लिए बलिदान हो जाना कौन भुला सकता है ?

पूज्य पं० रामचन्द्र जी देहलवी जैसा तार्किक विद्वान हमारे पास था। पूज्य पण्डित जी की सेवाओ को कौन भूल सकेगा। श्री पं० नरदेव जी अपने पीछे एक ऐसी याद छोड गए हैं कि देश का बच्चा-बच्चा भूल न सकेगा।

इन सभी विद्वानो के नामो के पीछे आर्यसमाज का इतिहास छुपा है। किन्तु दुःख यह है कि इनका स्थान लेने वाला कोई भी युवक आगे आता आज दिखाई नही दे रहा। आज हमारे पास पार्लियामेन्ट की सीटो के चुनाव लडने के लिए तो बडे २ शूरवीर मिल जावेगे। किन्तु वैदिक सिद्धान्तो का प्रचार प्रसार करने वाले विद्वान आज समाप्त होते ही जा रहे है। आर्यसमाज की प्रान्तीय और सार्वदेशिक सभाएं भी आज ऐसे ही लोगो के हाथों मे जा चुकी हैं जो या तो अकर्मण्य व्यक्ति हैं या जो केवल अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही इन्हे प्रयुक्त करना चाहते है। देव दयानन्दकी आत्मा आज इन सभाओ मे दिखाई नही देती। यही हालआर्यसमाजो का भीहै।९०%ऐसे आर्यसमाजी बन्धु मिलेंगे जिन्हे आर्यसमाजके सिद्धान्तों का ज्ञान तो क्या होगा। उन्हे वैदिक सन्ध्या भी स्मरण न होगी। कही-कही तो आर्यसमाज के मन्त्री और प्रधानो के घरो मे भी आर्य सिद्धान्तो का मजाक उडाते मैंने अपनी आखो से ही देखा है। आर्यसमाज के उत्सवो मे अधिकतर उपदेश उन्ही विषयो पर होते है जिन मे केवल अखबारी समाचार ही अधिक हो। कहा होगा धर्म का प्रचार ? कैसे फलेगा ऋषि का सन्देश ? यह प्रश्न आज बिच्छु के डक के समान टेढा बना हुआ ऋषि भक्तो के हृदयो को कष्ट दे रहा है।

इस प्रकार की अनास्था का चारो ओर अन्धकार छाया हुआ है। पुराने समाप्त होते जा रहे हैं। नए आ नही रहे। कैसे चलेगा यह काम ? हमारे नेताओ का इस ओर ध्यान नही। फुरसत भी नही है।

अत आज इस ऋषि निर्वाण के पावन दिन हम सभी को इस विकट समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना चाहिए। आज इस तिमिर के मध्य एक प्रकाश के दीप जलाना तभी सार्थक होगा कि जब हम यह निश्चय करें कि ऋषि दयानन्द के मिशन को आगे ले जाने के लिए सिद्धातो के प्रचार और प्रसार मे ही अपनी समस्त शक्ति लगाएगे। वर्तमान विषैली राजनीति से आर्यसमाज के नवयुवको को बचाकर स्वस्थ धार्मिक विचारधारा की गगा मे स्नान करावेगे। तभी हमारा कल्याण होगा। **

दीपावली के जलते हुए दीपकों में

ऋषि दयानन्द का ज्योतिर्मय सन्देश

[कुमारी विद्यावती जी आनन्द एम० ए० आचार्य हसराज महिला महाविद्यालय जालन्धर]

गत ८५ वर्षों से आर्य ससार आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि स्वामी दयानन्द का निर्वाण-दिवस मनाता चला आ रहा है। दीपावली के दिन समस्त आर्य समाजे अपने-अपने नगर मे यथा प्रयास एक सभा का आयोजन करती है, जिस मे कुछ कविता भजन आदि गाए जाते है, कुछ वक्तव्य दिए जाते है और वेद प्रचार के लिए 'चार आना फंड' एकत्रित किया जाता है और इतनी कार्यवाही के साथ निर्वाण-दिवस का पर्व समाप्त हो जाता है।

वास्तव मे प्रत्येक आर्य के लिए यह दिन बहुत महत्व का है। यह वह दिन है जिस दिन महर्षि ने आर्य जाति को बचाने के लिए अपने प्राणों की आहुति दी थी। वह जाते हुए अपने अधूरे कार्य को पूर्ण करने का उत्तरदायित्व अपने अनुयायियो पर छोड गए थे। इस दिवस को उचित रूप से मनाने के लिए हमे चाहिए कि इस दिन अपने हृदय मिला कर बैठें और सोचे कि हम कहा तक स्वामी जी के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सके हैं? जब हम अपने गरेबा मे मुंह डाल कर देखेंगे तो हमे ज्ञात होगा कि हम अपने लक्ष्य से कितना नीचे गिर गए है। हम कहते तो अपने को स्वामी दयानन्द का भक्त है, परन्तु धीरे-धीरे हम उनके दिखाए मार्ग से भटकते जा रहे हैं। हम मे स्वामी जी की सी सच्चाई नही रही और न ही उनकी सी निर्भीकता। इस गिरावट के दो कारण हैं—हमारा स्वार्थ तथा हमारा मोह। हम बाते बहुत बढ-चढ कर करते है परन्तु उन मे थोथापन अधिक होता है और गहराई कम। हम अपने स्वार्थ के लिये अपने सिद्धातो का खून करते नही शर्माते। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि हम आर्य-समाज के वास्तविक उद्देश्य को भूल कर इसे भी (Power Politics) राज्य-शक्ति हथियाने का अखाडा बना लेगे।

तात्पर्य, मैं आर्य सज्जनो के हृदय मे निराशावाद उत्पन्न करना नही चाहती मेरा तो केवल यही अभिप्राय है कि इस दिन हम अपने हृदय की गहराइयो मे छिपे हुए स्वार्थ को तथा सत्ता-प्राप्ति का जो चोर उन मे दुबका बैठा है, उसे मार भगाने का प्रयत्न करे।

हार्दिक वेदना से लिखती हू कि त्याग-मूर्ति महात्मा हंसराज जी के पश्चात् आर्य समाज उनकी कोटि का एक भी नेता उत्पन्न नही कर सकी। नेता के बिना जनता, मांझी बिन नौका वायु तथा पानी के थपेडो से कभी इधर लुढकती है और कभी उधर, उसका न कोई लक्ष्य होता है और न ही कोई निश्चित किनारा। आज हमारी दशा टूटी हुई माला के बिखरे मोतियो की तरह है। हमे महात्मा हसराज जी जैसे नेता की आवश्यकता है, जो इन बिखरे-मोतियो को एकता के सूत्र मे पिरो कर उस माला मे राष्ट्र पुरुषो को अलकृत कर सके।

ऐसी न्यूनता होते हुए भी हमे हतोत्साहित नही होना चाहिए। जीवित जातिया ही स्वतन्त्रता से सोचने की शक्ति रखती है। वही अपनी कमजोरियो को पहचान कर उनको दूर करने के लिये संघर्ष करती हैं जिस जाति के लोग अपनी कमजोरियो की ओर से आखे मूंद लेते है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि जहा हलचल नही वहा मृत्यु है, वहा श्मशान भूमि की शान्ति है। आर्य समाज पूर्णरूपेण जीवित है। यह अपना आत्म-निरीक्षण करना जानता है और अपनी त्रुटियो को सदैव अपने सन्मुख रखता है। इसमे झूठा अभिमान नही, झूठी शान नही।

आओ आज इस दीपावली पर्व पर हम सच्चे अर्थों मे ऋषि दयानन्द के सिपाही बनने का प्रण करें। हम अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट न रह कर सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझे। हमारा जीवन दीपावली के दीपक की भाति हो, जो स्वय रोशन हो कर दूसरो को रोशन करता है। दीपक स्वय जलता है परन्तु दूसरो को प्रकाश देता है। वह अपने अन्तिम श्वास तक अपने इर्द-गिर्द के अन्धकार को नष्ट करके दूसरो को मार्ग दिखाना नही भूलता। वह ससार को कहता है मेरी ओर देख और मेरे अल्प-जीवन से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हो तो करो।

महर्षि दयानन्द सरस्वती रोशनी का मीनार थे, प्रकाश के पुंज थे। जब तक जीवित रहे, वह ससार से अविद्या-अज्ञान के अन्धकार और भ्रम-जाल को दूर करने का प्रयास करते रहे। जो भी व्यक्ति उन के सम्पर्क में आया वह उनके रंग में

रगे बिना न रह सका। यही कारण था कि आर्यसमाज के आरम्भ काल में जो भी आर्यसमाज की गोद मे आया, वह निःस्वार्थ भाव से आया। इसकी गोद मे आते ही उस का परम ध्येय जनता की स्वार्थ रहित सेवा तथा निष्काम भलाई बन गया। उसने अछूत भाईयो को गले लगाया, विधवाओं की पुकार सुनी और दुखियो के लिए मरहम बना। सैकडो वर्षो से पददलित स्त्री जाति को उसने ऊपर उठाया, नारी जातिको इस तथ्य का ज्ञान करवाया कि वह असहाय तथा अबला नही है, वह मातृ शक्ति है, वह मनुष्य मात्र की पूजा है।

कभी-कभी मेरे मन मे प्रश्न उठता है कि जब स्वामी जी अपने नश्वर शरीर को त्याग कर परम-पिता परमात्मा के दरबार मे जाने की तैयारी कर रहे थे उस समय वह हमारे लिए क्या सन्देश छोडना चाहते थे। यह विचार मन मे पैदा होते ही मेरे मानसिक चक्षुओ को स्वामी दयानन्द जी की ज्योतिर्मयी मूर्ति धीरे-धीरे आकाश की ओर उठती दिखाई देती है। ऐसे प्रतीत होने लगता है कि वह दीपावली के दीपो की ओर इशारा करके कह रहे है। तुम्हारा जीवन इन जलते हुए दीपो के समान होना चाहिए।' यदि आप भी सच्चे हृदय से यह ज्ञात करना चाहते हैं कि स्वामी जी आपके लिए क्या सन्देश छोड गए हैं, तो इन चर्म-चक्षुओ को बन्द करिए। आपको स्वामी जी की सौम्य-मूर्ति दीपावली के जलते हुए दीपोकी पंक्तियो की ओर इशारा करती हुई दिखाई देगी।

समर्पण जीवन

[श्री प्यारेलाल जी बेरी, एम० ए०, प्रिंसिपल साईंदास हा० सै० स्कूल जालन्धर]

संसार मे जो कुछ हमारे पास है, हमारा अपना नही, न हम साथ लाये हैं और न साथ ले जायेगे। कोई पदार्थ कब तक हमारे पास बना रहेगा, इस विषय मे भी दावे के साथ कुछ नही कहा जा सकता। क्यो न प्रभु की आज्ञानुसार परमार्थ के लिए तन, मन, धन अर्पण कर दिया जाए—

मेरा मुझ मे कुछ नही, जो कुछ है सब तोर।
तेरा तुझ को सौंपते क्या लागै है मोर॥

यही सौपने की या समर्पण की भावना महपुरुषो को चैन से नही बैठने देती। समाज और राष्ट्र की दुर्व्यवस्था को वे सहन नही करते। यह वह लगन है कि लग जाए तो फिर बुझने का नाम नही लेती। व्यक्ति के जीवन का अन्त हो जाता है, किन्तु उसकी लगन जाते जाते दूसरों मे वह प्रेरणा भर जाती है कि वे भी समर्पण के मार्ग को अपना लेते है। परमार्थ के लिये सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। बडे से बडा परमार्थ कर के भी वह उस का श्रेय स्वय नही लेना चाहते। जो कुछ होता है उसे प्रभु की आज्ञा समझकर हर्षविषाद, सुख-दुख, हानिलाभ आदि मे सदा एक रस बने रहते हैं।

देव दयानन्द ने जीवन भर अपने आचरण से हमे यही सिखाया है। सच्चे शिव का पता लगाने और मृत्यु का इलाज ढूंढने की प्रेरणा मिली, तो उसके लिये तन-मन समर्पित कर घर-बार छोड दिया, एक एक बन्धन तोड दिया। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी आदि शारीरिक कष्टो को सहर्ष झेला, खोज के मार्ग पर आगे ही आगे बढते चले गये। न ये प्रश्न ही साधारण थे और न इनका समाधान ही साधारण गुरुओ के द्वारा हो सका। पर लगन तो लगन ही होती है। सच्ची लगन वाले को बाधाओ से क्या ! दस बारह वर्षों की घोर साधना के पश्चात् सच्चा गुरू मिल ही गया। आशा की झलक दिखाई दी। पूर्ण शिष्य के रूप मे अपने को गुरू महाराज के चरणो मे समर्पित कर दिया।

गुरु की प्रत्येक आज्ञा को तन-मन से पालन करते हुए शिक्षा पाई, सम्पूर्ण संशय निवृत्त हो गये, ज्ञानकपाट खुल गये। गुरू भी शिष्य की तर्क शक्ति को देख कर गद्‌गद् हो उठे। वे अपने जीवन लक्ष्य की पूर्ति की आशा इस शिष्य पर लगा बैठे। गुरु दक्षिणा के समय उन्होने अपनी इच्छा प्रकट की। शिक्षापूर्ण हुई तो क्या, अपने को गुरु की इच्छा के समर्पण कर दिया था, उस समर्पण मे कमी तो नही आई। अब भी गुरु ने जो आज्ञा दी, उस के पालन मे आजीवन तन-मन लगाना होगा। सभी सासारिक इच्छाओ को एकदम तिलाञ्जलि दे दी। योग-साधन द्वारा आत्मसुधार करके मोक्ष पाया जा सकता है, पर परार्थ के लिए स्वार्थ त्याग ही महत्ता की कसौटी है। मोक्ष साधन फिर देखा जाएगा, समाज और राष्ट्र का हित उस पर ज्ञान दान देने वाले परम पूज्य गुरु महाराज का आदेश। इसके पश्चात जो ऋषि ने किया वह आप लोगो से छुपा नही।

अब तनिक हम अपने अन्दर झाकें, ऋषि का काम अधूरा पडा है, सारे विश्व को आर्य बनाने का लक्ष्य तो असम्भव सा ही जान पडता है। अब हमारे अन्दर धार्मिक लगन कहीं दिखाई नही देती। धर्म प्रचार मे जीवन—अर्पण करने वाले व्यक्तियों की कमी है। हम तो प्रत्येक काम मे स्वार्थ को सम्मुख रखते है। अपने तनिक स्वार्थ के लिये जाति, समाज अथवा देश की हानि करने को तैयार रहते हैं। वर्तमान की सोचते हैं, भविष्यत् की ओर ध्यान नही करते। समाज का काम करते है, परलगन के साथ नही। अपने को महर्षि का शिष्य कहते हैं, उन्होने जीवन दे दिया, हम समय भी नही दे सकते। हमारे आचरण मे कमी है, इसलिए हमारे कहने का किसी पर प्रभाव नही पडता यदि ऋषिनिर्वाण दिवस पर हम कुछ वचन ले सकें, लगन से काम करने की प्रतिज्ञा ले सकें, कुछ अर्पण करने की ठानें तो यह दिवस मनाना सफल हो सकता है, अन्यथा हमारी लडखडाती नैया किधर जा निकलेगी, कोई नही कह सकता। ★★

सन्त वचनामृत

★ मनुष्य को देवता या दानव बनाने वाली इन्द्रिया हैं, इन्द्रिया ही ज्ञान का घट भरती हैं और इन्द्रिया ही रीता करती हैं।

★ शरीर बहुमूल्य है परन्तु जैसे रत्न का मूल्य उसकी आब पर निर्भर है वैसे ही शरीर का मूल्य अन्त:करण की पवित्रता पर निर्भर है।

★ जो परमेश्वर से दूर रहता है उससे परमेश्वर भी दूर रहता है।

★ कामनाओ के पीछे दौड़ने वाले परमेश्वर के पास नही जाते, अत: परमेश्वर भी उनके पास नही आता। जो उपासना द्वारा उसके पास बैठने का प्रयत्न करते हैं परमेश्वर उनके पास रहता है। न मानने वाले के लिए वह नही है, मानने वाले के लिए वही सब कुछ है।

★ परमेश्वर को जानने के लिए कहीं भटकने की जरूरत नही है। वह सब के हृदय देश मे स्थित है। प्रेम पूर्वक हृदय मे झाकने की जरूरत है।

★ वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए मनस्वी बनो। अपने मन को वश मे करो। मन की अपार शक्तियो को जान जाने पर तथा तन पर विजय प्राप्त कर लेने पर मनुष्य विश्व की काया पलटने मे समर्थ हो सकता है। एक विश्व विजयी योद्धा के लिए विश्व विजय करना कुछ आसान है परन्तु मन पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। जिस ने मन पर विजय प्राप्त कर लिया, वही दर्शनीय, महा पराक्रमी, योगी तथा महान है।

★ वेदज्ञान की प्राप्ति के लिए। आत्म उन्नति के लिए तथा सफल मनोरथो की सिद्धि के लिए प्रार्थना तथा जप ध्यानावस्थित होकर करना अत्यन्त आवश्यक है।

★ आशावादी बनो, आशा ही जीवन है।

★ देश धर्म के दीवानो की परवानी की धर्म वीरो और कर्मवीरो की आत्मा ज्ञानियो, ब्रह्मज्ञानियो, योगियो और महायोगियो तथा महर्षियो की दुनिया क्या है जरा इस को भी तो जानो।

आज जिनकी पुण्य-तिथि है।

भारत के प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती

[श्री भास्करानन्द जी शर्मा शास्त्री, सिद्धान्त वाचस्पति, प्रभाकर, वैदिक रिसर्चस्कालर, महोपदेशक प्रादेशिक सभा]

धन्या धरा गुर्जर देश संस्था,
विप्रान् वयो धन्यतमोऽपि लोके।
माता कृतार्था जनकोऽपि धन्या,
स्वामी दयानन्द सुतो यदीयः॥

भारतवर्ष के गुजरात प्रान्त की मौरवी राज्य अन्तर्गत टंकारा नाम की नगरी धन्य है, वह औदिच्य ब्राह्मणकुल धन्य है, वे माता पिता धन्य हैं जिन्होने दयानन्द जैसे पुत्र-रत्न को उत्पन्न किया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सम्पूर्ण जीवन हमारे लिए एक महान स्फूर्ति प्रदायक जीवन है। इनका जीवन प्रत्येक दृष्टिकोण से देदीप्यमान था। यह भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओ-मे से एक थे जिनका नाम ससार के इतिहास मे सदैवके लिए चमकते हुए नक्षत्र की तरह प्रकाशित रहेगा। वह पवित्र मातृ-भूमि के उन सपूतो मे से थे जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी गौरव किया जाये थोडा है। इनका आत्म बल, शारीरिक शक्ति, ईश्वर विश्वास, प्रकाण्ड-पाण्डित्य, श्रेष्ठतम, ओज, तार्किक बुद्धि, अजेय प्रतिभा, योग की सिद्धि इत्यादि विश्व-विजेताओ के सर्वोच्च गुणो को देख कर लोग मन्त्र-मुग्ध से हो जात थे। बडे-बडे दिग्गज पण्डित भी शास्त्रार्थ मे इनके सामने सब शस्त्रो को फेक कर भाग जाते अथवा अपनी हार स्वीकार कर इनके विचारो के बन जाते थे तभी तो किसी कवि ने महर्षि के सम्बन्ध मे कहा—

हानिबल, बोनापार्ट सिकन्दर,
जितने विश्व विजेता।
दयानन्द-सा हुआ न कोई,
आत्मबली नर नेता॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी निःसन्देह एक सर्वोच्च श्रेष्ठ ऋषि थे, वेदो के प्रकाण्ड विद्वान थे, उन पर पत्थर फेंके गए, विष दिया गया, घातक प्रहार किए गए, अनेक षडयन्त्र रचे गए तो भी वह अपने सत्य वैदिक—धर्म के प्रचारमार्ग से तिल मात्र भी विचलित नही हुए। एक बार बरेली मे वैदिक धर्म पर भाषण करते हुए ऋषिवर ने कहा था—

'लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो, कलेक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीडा देगा, अरे! चक्रवर्ती राजा क्यो न हो, हम तो सत्य ही कहेगे, मुझे वह शूरवीर दिखलाओ जो यह कहता हो कि वह मेरे आत्मा का नाश कर सकता है, जब तक ऐसा वीर दिखलाई नही देता, मैं यह सोचने के लिए तैयार नही कि सत्य को दबाऊ या नही।' यह थी उनके अन्दर महान निर्भयता।

एक बार उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह जी ने लिङ्गेश्वर-महादेव के मन्दिर का महन्त बनाने और उसकी सात लाख सम्पत्ति महर्षि के पवित्र चरणो मे भेट करने की इच्छा प्रकट की। लेकिन उस समय महर्षि ने निर्भयता पूर्वक ओजस्वी शब्दो मे कहा—'महाराणा! आप लोग लोभ देकर मुझ से सर्वशक्तिमान् अनन्त बलो के भण्डार, परमपिता परमेश्वर की आज्ञा भग कराना चाहते हैं, अगर मैं चाहू तो एक दौड मे थोडे से समय के अन्दर आपके छोटे से राज्य की सीमा को पार कर सकता हू लेकिन अनेको जन्मो तक करोडो वर्ष पर्यन्त निरन्तर दौड लगाता रहू तो भी उस ब्रह्माण्ड पति परमात्मा के राज्य सीमा को पार नही कर सकता जो आप ही बताइये मैं आपकी आज्ञा मानू अथवा उस ब्रह्माण्डपति परमपिता परमात्मा की ? मैं कभी भी किसी भी अवस्था मे उस ब्रह्माण्डपति परमात्मा के आदेश का

भग अथवा आज्ञा का उलघन नहीं कर सकता, सर्वदा सत्य का ही प्रचार करता रहूगा।' महर्षि के इन शब्दों को सुन कर महाराणा सज्जनसिह जी अवाक हो गए और अत्यधिक श्रद्धा से इनका मस्तक महर्षि के पवित्र चरणो पर झुक गया। यह थी महर्षि के जीवन की विशेषता।

महात्मा गाधी जी ने महर्षि के सम्बन्ध मे एक बार कहा था—'महर्षि दयानन्द के लिए मेरा मन्तव्य यह है कि वे आधुनिक ऋषियो मे सुधारकों मे एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, उनकी विचार-स्वतन्त्रता उनका सब के प्रति प्रेम, उनकी कार्य कुशलता इत्यादि गुण लोगो को मुग्ध करते थे उनके जीवन का प्रभाव हिंदुस्तान पर बहुत पडा है।'

साहित्य में नोबल पुरस्कार के विजेता विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कहा—'महागुरु दयानन्द को मेरा प्रणाम हो, जिन्होने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से भारतवर्ष के आत्मिक इतिहास मे सत्य और सगठन को देखा, जिस महागुरु ने भारतमाता के जीवन के सब भागो को प्रकाश से उद्दीप्त कर दिया, जिस गुरु के मिशन ने भारत के लोगो को अज्ञानता और हमारे प्राचीन इतिहास के तत्व अज्ञान से, साधुता, सभ्यता और पवित्रता के लिये जाग्रत होने का सन्देश दिया।'

रूस के प्रसिद्ध दार्शनिक काऊंट टालस्टाय ने महर्षि की महानकृति सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन कर यह उद्गार प्रकट किया—मैंने सत्यार्थ प्रकाश (ऋषि दयानन्द की कृति) के स्वाध्याय से मानसिक शाति और प्रसन्नता महसूस की। आर्यसमाज के नियमो को मैंने महती अभि-रुचि के साथ पढा।'

फ्रास के प्रसिद्ध विद्वान लेखक रोम्या रोला ने भी महर्षि के प्रति निम्नविचार प्रकट किए—

"वर्तमान काल मे जितने महापुरुष हुए हैं उन मे सब मे बडा व्यक्तित्व दयानन्द का था, जितना जीवन हिन्दुस्तान मे पैदा हुआ है उसके जन्मदाता ऋषिवर दयानन्द ही है।'

इसी प्रकार अमेरिका का महान् विद्वान् मिस्टर एन्ड्रो जैक्सन जर्मनी के वेद भाष्यकार मैक्समूलर, तथा भारत के अन्य राष्ट्रीय नेता लोकमान्य बाल गगाधर तिलक, बाबू सुभाषचन्द्र बोस, श्रीमती सरोजिनी नायडू आदि अनेक सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता तथा कई विद्वान् मुसलमान पुरुषो और स्त्रियो ने भी महर्षि के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है। उनमे से श्रीमती खदीजा बेगम एम० ए० ने कहा है—"स्वामी दयानन्द नि सन्देह एक ऋषि थे, सब पंडितो ने उन पर पत्थर फेंके, उन्होने अपने मे महान्भूत और महान् भविष्य को मिला दिया, वह आया तुम्हारे कारागार को तोडने के लिये, तुम्हारी आत्मा को बन्धन से छुडाने के लिए। वह तुम्हारे समाधि स्थानो को खोलने आया, वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया।'

उपरोक्त सब उद्धरणो से क्या सिद्ध होता है? महर्षि दयानन्द चाहते क्या थे? उनके जीवन का महान लक्ष्य क्या था? इन प्रश्नो का एक ही उत्तर है, वह भारत वर्ष मे पुन: वैदिक साम्राज्य स्थापित कर सब लोगो के जीवन को पवित्र वेदानुकूल बनाना चाहते थे। वह चाहते थे कि यहा भारत का राष्ट्रपति विश्व के समक्ष आर्य सम्राट-महाराजा अश्वपति की तरह यह घोषणा करे—

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यप.।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुत:॥
(छान्दोग्योपनिषद्)

वह चाहते थे समाज मे पुन: शुद्ध वैदिक वर्ण आश्रम व्यवस्था को स्थापित करना। महर्षि के पवित्र विचारो को श्री प बुद्ध देव जी विद्यालकार विद्यामार्तण्ड बाद मे हुए स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज आर्यपरिव्राजकाचार्य जी ने निम्न सूत्र मे बद्ध किया है

(१) गणाद् गुणो गरीयान्।

(Quality not Equality)

(२) वर्ग सहयोगो न तु वर्ग विरोधः ।

(Class Co-operation not Classwar)

(३) विना हेतुं निग्रहानुग्रहौ ।

(No, punishment and reward without discrimination.)

(४) विना लक्ष्यं न विद्या ।

No Education without design)

महर्षि दयानन्द जी सम्पूर्ण मानव समाज से अविद्या, अन्याय और अभाव को समूल नष्ट करना चाहते थे । वह चाहते थे कि गुरुकुलो और विश्वविद्यालयों में वसु, रुद्र, आदित्य सज्ञक सच्चे ब्रह्मचारी उत्पन्न हो । सद्-गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी वेदोक्त रीति से स्वस्थ कर्त्तव्य के पालन करने वाले हो, देविया विदुषी, चरित्र सम्पन्ना और वीरागना हो । महर्षि के इन हृदयगम भावो को इस युग के देववाणी के अद्वितीय-महाकवि कविरत्न प मेधाव्रत जी ने निम्न श्लोको मे बद्ध किया है—

पुरातनी भारत भाग्य सम्पदा,
गता महोत्कर्षगिरीन्द्रमस्तकम् ।
विनिर्दिशन् वैदिक-कालशालिनी,
जनान्य इत्थ समबोधयन्मुनिः ॥
(दयानन्द दिग्विजय१—१३)

वैदिक-युग के पुरातन भारत की भाग्य लक्ष्मी उन्नति के हिमाचल-शिखर पर पहुंच चुकी थी उसे मुनिवर दयानन्द जी ने इस प्रकार समझाया—

विशिष्ट-विद्या-विनयादि सद्गुणै-
रलंकृतान स्नातक विप्रवर्णि नः ।
अपपुजने ससदि नम्रमौलयो,
महाप्रताः पृथिवीश्वरा हृदा ॥
(दयानन्द दिग्विजय १—१४)

उस समय के स्नातक श्रेष्ठ विद्या, विनय आदि सद्गुणो से अलकृत थे । महाप्रतापी नृपगण इन स्नातको का भक्ति से शिरनावकर सभा मे सत्कार करते थे ।

विशुद्ध वेदात रहस्य वित्तमा ,
सभासु शास्त्रार्थ विधान पंडिताः ।
निरजन ब्रह्म निलीन मानसा ,
पुरा बभूवुः सुलभादि योषित. ।
(दयानन्द दिग्विजय १-१९)

उस समय सुलभा, गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, घोषा, सूर्या आदि देविया पवित्र वेदो के रहस्य को समझती थीं। परिषदो मे धुरन्धर पडितो के साथ शास्त्रार्थ किया करती थी । उनका मानस हंस निरजन ब्रह्म मे निमग्न रहता था।

यह थे महर्षि दयानन्द के हृदयङ्गम भाव । महर्षि विलासिता के घोर विरोधी थे—

'Plain living and high 'thinking, Simpleness is it self greatness ।

सादगी और ऊचे विचार पैदा करना एक बड़ा दर्जा है. इस उच्च सिद्धान्त को भी महर्षि दयानन्द जी विश्व समाज मे मूर्तरूप मे देखना चाहते थे। वह भारतीय रहन, सहन पहनावा, रीति रिवाज और संस्कृति के महान समर्थक थे, हा जो उन मे खराबी आ गई थी उसको दूर करना चाहते थे । हर एक बातो मे बिना सोचे विचारे, अधविश्वासी बन कर अंग्रेजो अथवा विदेशियो का नकल करना वह अच्छा नही मानते थे । भारत के एक गवर्नर-जनरल लार्ड डफरिन ने भी एक बार ठीक ही कहा था—

'The west has still much to-learn from the east in matters of dress ।

अर्थात पोशाक के विषय मे पश्चिम के लोगो को पूर्व के लोगो से बहुत कुछ सीखना है ।' अग्रेज तथा विदेशी विचारक इस बात को समझते थे । आज तो सम्पूर्ण विश्व के विद्वान विचारक महर्षि के महान उपकारो को एक स्वर से स्वीकार करने लगे है ।

सदियो से विदेशियो के पादाक्रान्त भारत अब पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र हो गया है, अब हमको आगे बढने के लिये अधिक साधन उपलब्ध है, हम से विश्व के लोग

बडी-बडी आशाये लगाये बैठे है। दीपावली का पवित्र पर्व पुन आया है, इसी दिन महर्षि का महानिर्वाण हुआ था, अत हम आज उनके पवित्र जीवन से महान प्रेरणा लेकर आगे बढने और उनके अधूरे कार्य को पूर्ण करने का दृढ सकल्प करें तभी दीपावली के पवित्र पर्व मनाने और शुद्ध पवित्र घृत के दीपक जलाने के हम अधिकारी बन सकेंगे। इस वर्ष भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का महानिर्वाण दिवस दीपावली का पवित्र पर्व हमारे लिये महान सन्देश दे रहा है।

★ पांच मुक्तक ★

[श्री प्रो० ओमकुमार जी एम० ए०, दयानन्द कालेज, शोलापुर]

(१)

नफरत की दीवार गिर कर ही रहेगी,
लाख रोको, जल धारा फिर भी बहेगी।
फूल को तुम कैद कर सकते हो, मगर,
याद रखो गन्ध उड कर ही रहेगी।

(२)

रस की चाह तो कोई चाह नही है,
असल आनन्द तो विष पीने मे है।
रो रो कर जीना कोई जीवन नही है,
आनन्द तो हंसते हुए जीने मे है।

(३)

सूरज जल जल कर प्रकाश कर रहा है,
शीतल समीर जग मे शीतलता भर रहा है।
हाय रे दुर्दैव कि जिस हित ये मिट रहे सारे,
वह इन्सान तो इन्सानियत का खून कर रहा है।

(४)

पैसा आज सत्य की ज़ुबा का ताला हो गया,
विज्ञान के युग मे सब गडबड घोटाला हो गया।
यान्त्रिक सभ्यता ने फूका है ऐसा मंत्र,
कि मानव बाहर से उजला अन्दरसे काला हो गया।

(५)

है कौन-सी पीडा कि जो चुकती नही है,
कौन कहता है युग धारा रुकती नही है।
दयानन्द के अडोल तप त्याग के आगे,
है कौन-सी ताकत कि जो झुकती नही है।

महर्षि दयानन्द और अन्तर्राष्ट्रीयवाद

[श्री अनूपसिंह जी दयानन्द भवन, मुजफ्फर नगर]

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु ख भाग्भवेत् ॥

जिन व्यक्तियो ने महर्षि दयानन्द कृत ग्रथो का तथा उनके तपोमय जीवन का अनुशीलन किया है । उनको मालूम है कि उन्होंने उपर्युक्त सूक्ति का अपने जीवन मे पूर्णरूपेण पालन किया है । बहुत से सज्जन राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद को एक-दूसरे का विलोम मानते है । इनके विचार मे राष्ट्रवादी अन्तर्राष्ट्रवादी नही हो सकता और अन्तर्राष्ट्रवादी राष्ट्रवादी नही हो सकता। महर्षि दयानन्द के भी ऐसे सज्जन इसी परिभाषा के प्रकाश मे देखकर उनको राष्ट्रवादी तो मानते है, पर अन्तर्राष्ट्रवादी नही । परन्तु बात ऐसी नही । राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रवाद मे परस्पर विरोध नही, अपितु दोनो एक-दूसरे के पूरक है । राष्ट्रवादी ही अन्तर्राष्ट्रवादी हो सकता है । प्रसिद्ध इतिहासकार Hayes (हेज) के अनुसार —

'Nationalism, when becomes synongmous with the purest patriotism, proves a unique blessing to humanity and to the world'

अर्थात् जब राष्ट्रवाद देश प्रेम का पर्यायवाची हो जाता है, तब यह मानवता और संसार के लिए एक वरदान सिद्ध हो जाता है ।

एक व्यक्ति जो अपनी 'मा' को 'मा' नही मानता क्या वह अन्य पुरुषो की मा को मा नही मानेगा ? ऐसा विचार या तर्क सगत नही मालूम पड़ता । हा ! जो व्यक्ति अपनी 'मा' को यथोचित सम्मान प्रदान करता है, उससे तो यह आशा की जा सकती है कि वह दूसरो की मा को भी यथोचित सम्मान प्रदान करेगा । पर दूसरे से नही । ठीक इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने राष्ट्र को प्यार नही करता वह दूसरे राष्ट्रो को भी कभी प्यार नही कर सकता । यदि कोई व्यक्ति राष्ट्रीयता की कीमत पर अन्तर्राष्ट्रीय का ढोंग रचता है तो उसका यह कृत्य राष्ट्रद्रोह समझा जायेगा ।

महर्षि दयानन्द राष्ट्रवादी तो थे ही, परन्तु वे अन्तर्राष्ट्रवादी भी थे । उनके विश्व विख्यात अमरग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका मे लिखे इन शब्दों से कितनी अन्तर्राष्ट्रीय झलकती है । उनके शब्द है—'यद्यपि मैं आर्यावर्त देश मे उत्पन्न हुआ और बसता हू । तथापि जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातो का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हू, वैसे ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति वालो के साथ भी वर्तता हू । जैसे स्वदेश वालो के साथ मनुष्योन्नति के विषय मे वर्तता हू । वैसा ही विदेशियोंके साथ भी ।'

अपने शिष्य बेरिस्टर "श्याम जी कृष्ण वर्मा" को प्रशिक्षित करके विदेशो मे वैदिक धर्म और सस्कृति के प्रचारार्थ भेजा था ताकि विदेशियो का भी उक्त धर्म और सस्कृति का पालन करने से उनके सुख और एश्वर्य मे वृद्धि हो, और वे भी मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करने मे सफल हो सके । २६ मार्च १८७९ को हरिद्वार से श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को एक पत्र मे स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अमेरिका निवासियो के कुशल क्षेम की जिज्ञासा से लिखा था— "अमेरिका वालो से अति प्रेम से हमारा नमस्कार कहना और उनसे कुशलता पूछना कि लाहौर आदि के समस्त समाज मे आप लोगो के लिये तैयारी कर चुके हैं, वहा कब तक जावेगे, उन्होने संस्कृत पढने का आरम्भ किया वा नही और जो कुछ वे हमारे विषय मे कहा करे सो लिख दिया करना और हम नही लिखे तो भी उनकी कुशलतादि सदैव लिखते रहे ।" यह पग उनकी (महर्षि दयानन्द) की अन्तर्राष्ट्रीयता का परिचायक है ।

महर्षि दयानन्द जी महाराज के स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' मे लिखे निम्न शब्द भी अन्तर्राष्ट्रीयता की कसौटी पर पूरे उतरते हैं।

'यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त मे प्रचलित मतो मे से किसी एक मत का आग्रही होता, किन्तु जो-जो आर्यावर्त्त या अन्य देशो मे अधर्म युक्त चाल चलन है, उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बाते हैं उनका त्याग नही करता न करना चाहता हू, क्योकि ऐसा करना मनुष्य धर्म के बहि: है।'

'आर्य समाज की स्थापना उन्होने सत्य सनातन और वैदिक धर्म के प्रचार और उसके द्वारा समस्त विश्व अर्थात मानवमात्र के लिए की, जैसा कि आर्य समाज के ६ और ७ नियम मे उल्लेखित है।' ससार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।' सब मनुष्यो से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्त्तना चाहिए।' मनुष्य स्वार्थान्ध होकर व्यक्तिगत व पारिवारिक संकीर्ण क्षेत्र तक ही अपनी समस्त गतिविधिया सीमित न कर दे, इसीलिए महर्षि आर्यसमाज के ९वें नियम मे लिखते हैं—'प्रत्येक मनुष्य को अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सब की उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए।' आर्यसमाज के पूर्वलिखित इन नियमो मे भी कितनी अन्तर्राष्ट्रीयताभरी है।

महर्षि दयानन्द जी महाराज तो सृष्टि के समस्त प्राणधारी जीवों को सुखी निरोग और सन्मार्गगामी देखना चाहते थे। कवि के शब्दो मे उनकी अन्तर्राष्ट्रीय भावना को यू व्यक्त किया जा सकता है—

'हे नाथ ! सब सुखी हो कोई न हो दुखारी।
सब हो निरोग भगवन धन-धान्य के भण्डारी॥
सब भद्र भाव देखे सन्मार्ग के पथी हो।
दुखिया न कोई होवे, सृष्टि मे प्राणधारी॥

विश्व को महर्षि दयानन्द की देन

[आर्योपदेशक ब्र. पं. जैमिनी कुमार जी आर्य विद्या वाचस्पति बी. काम]

आर्यसमाज के नियमो व उद्देश्यो को देखने से यह प्रतिपादित होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना केवल वेद के प्रचार व प्रसार के लिये ही की थी, क्योंकि उन्होने देख लिया था कि वेद ही एकेश्वरवाद एवं मानवतावाद का प्रतिपादक है इसलिये उनकी यह प्रबल स्वच्छा थी कि समस्त संसार के मानव आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक प्रेरणा को प्राप्त करके अपने जीवन के उद्देश्य को पूर्ण करे।

विश्व की स्थिति

महर्षि के साहित्य को दृष्टिगत करने से यह अवगत होताहै कि जिस समय संसार के लोगो को वेदो का अमर सन्देश दे रहे थे उस समय सम्पूर्ण विश्व सांप्रदायिकता के दूषित वातावरण से अपने को प्रभावित कर राग, द्वेषादि की अग्नि मे दावानल के समान स्वाहा हो रहा था।

यूरोपमे साम्प्रदायवादियोका ऐसा जाल बिछ गया कि वे नारियोमे आत्माकी सत्ता को भी अस्वीकार करने लग गयेथे। रोम की एक सत्य घटना है कि एक बार एक पादरी साहब चर्च मे उपदेश कर रहे थे चर्च पुरुषो तथा स्त्रियो आदि श्रोताओ से खचाखच भरा हुआ था, उस दिन पोप साहब का उपदेश आत्मा व परमात्मा विषय पर था। आत्मा के सम्बन्ध मे पोप साहब ने बताया कि **'स्त्रियों में आत्मा नहीं होती है वे अचेतन हैं, जड़ हैं।'** इस पर एक महिला को उचित नही लगा यह सम्पूर्ण स्त्री जाति का अपमान है, इसके साथ ही उस महिला ने एक अभिनय खेला और वह पोप साहब की समाप्ती पर चर्च के प्रमुख निष्कम्प द्वार पर

जाकर खड़ी हो गई जब पोप साहब अपने अन्य साथियों के साथ प्रमुख द्वार से निष्क्रमण कर रहे थे, उसी समय तत्काल महिला ने अपने पैर की चप्पल निकाल कर पोप साहब को दो-चार जड़ दी इस व्यवहार मे पोप साहब को अत्यधिक क्रोध हुआ तथा तत्काल महिला को गिरफ्तार कर लिया गया जब वह मुकदमा न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत हुआ तो न्यायाधीश ने महिला से पूछा क्या आप ने पोप साहब पर चप्पल से प्रहार किया है ? इस प्रकार दो तीन बार पूछने पर महिला ने कहा— हां !

लेकिन पोप साहब से यह तो पूछिये कि उस दिन चर्च में क्या उपदेश कर रहे थे। इस पर पोप साहब ने अपने भाषण का सार बताते हुए कहा कि **'स्त्रियों में आत्मा नहीं होती है, वे जड़ है अचेतन हैं केवल वह उपभोग की ही सामग्री है'** इस प्रकार पोप के द्वारा कहे जाने पर महिला ने कहा कि जब स्त्रियो मे आत्मा नही होती है वे जड हैं तो मैंने इनको कैसे चप्पल मार दी। जड वस्तु तो कुछ भी कार्य कलाप नहीं कर सकती है, वे सुख-दु ख का कुछ भी अनुभव नही करती है, अत मै तो निर्दोष हू जैसा कि अभी-अभी आपके सामने एक मुकदमा आया था। जिसमे एक व्यक्ति ने तलवार से एक का खून कर दिया था, सो आपने उस खून करने वाले महाशय को कारावास दिया है । लेकिन जिसके द्वारा खून हुआ, जबकि दोषी तलवार है, तलवार से ही सामने वाले व्यक्ति का खून हुआ है अतः पोप साहब के मतानुसार मैं तो जड हूं फिर मेरे विपक्ष मे निर्णय क्यो हो रहा है ? इस तथ्य पर न्यायाधीश साहब भी अवाक् रह गए, वे कुछ न कह सके अन्त मे केवल इतना ही कहा की जिस प्रकार पुरुषो मे आत्मा है वैसे ही स्त्रियो मे भी है। इस घटना के घटित होने पर आजकल कुछेक ईसाई पादरी स्त्रियो मे आत्मा की सत्ता मानने लगे है।

विज्ञान एवं धर्म के झगड़े :—

विज्ञान और धर्म का झगडा सर्व-प्रथम यूरोप से ही प्रारम्भ हुआ है। जिन दिनों मे विज्ञान की दिनो दिन उन्नति हो रही थी उन्ही दिनो मे यूरोप मे ईसाई मत का बोलबाला था। तथा सर्वत्र पोप का ही साम्राज्य था। प्रत्येक पुरुष को पोप की आज्ञा का पालन करना होता था। किसी को भी स्वतन्त्र रूप से आंख व कान खोलकर चलने की अनुमति नही थी । इस प्रकार के संकुचित विचार एव वातावरण से प्रभावित होकर कुछेक लोगो ने प्रथक चलना आरम्भ कर दिया साथ ही वे प्रत्येक कार्य पर तर्क करने लग गए । ऐसा करते देख वहा के धर्माध्यक्षको ने उनका विरोध किया, क्योकि ईसाई धर्म तर्क को प्रधानता नही देता है उनका ऐसा विश्वास है कि तर्क करने से मनुष्य ईश्वर व धर्म से बिल्कुल विमुख हो जाएगे। यह दंगा यहा तक बढ गया कि सृष्टि का अवलोकन करने वाले गैलीलियो जैसे आदि विद्वानो से बाईबल के सिद्धातो का खण्डन करते हुये कहा कि **"सूर्य पृथ्वी का चक्कर नहीं लगाता है अपितु पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाती है।"** इस सत्य तर्क पर [वहा] इटली के धर्मान्ध नेताओ ने उन्हे किस निर्दयता से गरल पिला कर मौत के घाट उतारा यह सबको अवगत ही है।

ईसाई मत पृथ्वी को चटाई के समान चपटी मानता है एव सूर्य चन्द्रादि ग्रहो और उपग्रहो को पृथ्वी की तुलना मे पृथ्वी के चारो ओर घूमन वाले छोटे-छोटे गोले मानता है। ज्योर्डब्रूनो ने बाईबल के उक्त कथन का खण्डन करते हुए पृथ्वी के गोलत्व को सिद्ध किया था तो वहा के धर्मान्ध नेताओ ने उसे जिन्दा जला दिया।

इसी प्रकार अरस्तू, प्लेटो आदि विद्वान वैज्ञानिको, दार्शनिको के साथ भी धर्मान्ध नेताओ के द्वारा वही व्यवहार किया गया जो गैलीलियो आदि वैज्ञानिको के साथ

किया गया था। इस प्रकार धर्म के नाम पर वैज्ञानिको, दार्शनिको के प्राण लिए जाने लगे तथा उनको सोचने-समझने विचारने तथा देखने सुनने आदि कि स्वतन्त्रता नही रही तो 'भूखा क्या नही करता है।' उन्होने दिल खोल कर सघर्ष करना प्रारम्भ कर दिया, इस वैमनस्य ने वैज्ञानिको के हृदय पर ऐसा प्रभाव डाला कि वे यह समझने लग गए कि हमारे ऊपर अत्याचारो का कारण धर्म है। इस प्रकार वैज्ञानिको को धर्म से घृणा हो गई और वह घृणा रूपी सरिता अब तक स्वच्छन्द रूप से प्रवाहित हो रही है।

अठारहवी वा उन्नीसवी शताब्दी के लगभग, धर्म के नाम पर रोम के सबसे बडे पोप ने अपना जाल यहा तक फैला दिया था कि वे बडे-बडे धनीमानी लोगो को स्वर्ग का लालच देकर, उन से सम्पत्ति लेकर स्वर्ग जाने के लिए पासपोर्ट वा हुन्डी दी जाने लगी थी, जब हुन्डी वाला व्यक्ति मरता जिसके नाम की हुन्डी है तो उस हुन्डी वक्स मे उसके साथ रख दी जाती थी। इस इस प्रकार रोम के पोप ने अपना घर भरने के लिए धर्म के नाम पर लोगो को दिल भर कर लूटना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी स्थिति भारत की भी थी।

भारत मे इस दूषित वातावरण की अत्यधिक प्रधानता थी। शैव-वैष्णवो, वाममार्गी-दादूपन्थी जैसे आदिमतो के आपसी झगडो ने प्रत्येक मनुष्यो के हृदयो मे राग, द्वेष, छल कपट व फूट का बीज बो दिया। (क्रमश.)

सत्यवक्ता दयानन्द

[श्री मथुरादास जी नवाकोट, अमृतसर]

आज दीपावली के दिन हम ऋषि दयानन्द का निर्वाणोत्सव मनाते हुए उनके प्रति कुछ श्रद्धा के फूल उनका गुणगान करके भेंट करते हैं। उनके गुण तो अनगिणत हैं, आप ईश्वर विश्वासी, पूर्ण ब्रह्मचारी, योगीराज, महाविद्वान् त्यागी, तपस्वी, तेजस्वी, शान्त स्वभाव, देश भक्त, विश्व प्रेमी, निर्भय, दयालु, गौ-रक्षक एवं सत्य वक्ता थे, उनका जीवन हर ओर से निष्कलंक था। वह सर्व गुण सम्पन्न तथा हर स्थान पर कसौटी पर पूरे उतरते थे। आज मैं केवल उनके सत्य, प्रेमी होने पर कुछ लिखूंगा।

उनका सत्य से कितना प्रेम था जिस समय उनके मन मे सत्य की खोज की इच्छा उत्पन्न हुई वह अपना घर बार छोड़ कर, माता पिता का मोह त्याग कर, धन दौलत की परवाह न करते हुए जगलो, पर्वतो में घूमे, अनेक योगियों से मिले, भूख प्यास सहन की, गर्मी सरदी झेली, केवल एक सत्य की खोज मे। इस प्रकार ठोकरे खाते हुए अन्त में मथुरा नगरी गुरु विरजानन्द जी के पास पहुचे और अपने मन की इच्छा प्रकट की तो गुरुविरजानंद जी ने कहा कि यदि सत्य को पाना है तो आज तक जो कुछ पढा है उसे भूल जाओ 'भूल गया महाराज' जितनी आपके पास पुस्तके है यह सब सत्य का लोप कराने वालीहै इनसे सत्य नही मिल सकता इसलिए उन्हे जमना नदी मे फेंक आओ,'फेंक आया महाराज', वाह रे मेरे प्यारे ऋषि कितनी सत्य की खोज की लालसा है। न जाने सन्यासीने कहासे मांगकर और कितने कष्ट उठा-उठाकर यह पुस्तके प्राप्त की होगी, परन्तु एक सचाई की खोज के लिए सत्य को प्राप्त करने के लिए और गुरु पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए गुरु की आज्ञा का पालन किया। लगभग तीन वर्ष मे पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया, सत्य मिल गया हृदय की ज्योति जाग उठी जिसकी खोज मे वर्षो से भटक रहे थे वह प्राप्त हो गया। फिर गुरु दक्षिणा के अनुसार भारत वर्ष से अविद्या, कुरीतिया, पाखण्ड, पोप लीला, अनेक कपोल कल्पित मत मतान्तरो आदि को दूर करने के लिए निकले। और फिर आयु भर जिस सत्य को प्राप्त किया

था, जो वेदाज्ञा थी, उसे प्रकट करने में किंचन मात्र भर भी संकोच नहीं किया, लोग उनके विरोधी भी हुए, परन्तु आप अकेले प्रभु पर विश्वास रखते हुए सत्य का प्रकाश करते रहे। बरेली में उनके व्याख्यान सुनने अंग्रेज कलक्टर, कमिश्नर भी आए, जब पौराणिकों की पोप लीला का खण्डन कर रहे थे तो वह अंग्रेज अफसर बहुत प्रसन्न हो रहे थे। इस के बाद स्वामी जी ने ईसाइयत पर बोलना आरम्भ कर दिया और कहा यह तो सुनी आपने पोप लीला अब जरा ईसाई मत का पोल भी सुनिये और बड़े ज़ोरदार शब्दों में ईसा का कंवारी का बेटा होने का खण्डन किया, जिस से वह अंग्रेज अधिकारी बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने स्वामी जी से कह भेजा कि इस प्रकार के व्याख्यान न दो। इससे शान्ति भंग का भय है और उनके एक शिष्य ने भी कह दिया कि अंग्रेज नाराज होता है आप जरा नरम बोला करें।

दूसरे दिन फिर व्याख्यान हुआ उसमें वह कमिश्नर आदि अंग्रेज भी आए हुए थे तो स्वामी जी ने कहा मुझे कहा गया है कि मैं सत्य को प्रकट न करूं अंग्रेज नाराज होता है कमिश्नर नाराज हो जाएगा, गवर्नर क्रोधित होगा। मेरे सामने तो चक्रवर्ती राजा भी क्यों न हो मैं तो सत्य ही कहूंगा मुझे तो केवल उस एक परम पिता भगवान के, किसी का भी भय नहीं है—क्योंकि आत्मा अमर है शरीर अनित्य है आपकी ओर से केवल मेरे शरीर को समाप्त तो किया जा सकता है परन्तु मेरी आत्मा को कोई भी नहीं मार सकता इसलिए मैं तो किसी भी दशा में सत्य को नहीं दबाऊंगा।

इस सम्बन्ध में ऋषि जीवन से अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं जहां और जब भी समय आया आप सत्य से बिल्कुल नहीं डोले और सच्चाई को प्राणों से भी प्यारा समझा, दुनिया के प्रलोभनों से, पोपों की गालियों से विरोधियों के विष देने से, शत्रुओं से वैर-विरोध से, पाखण्डियों के कष्टों से वह कभी भी सत्य के मार्ग से विचलित नहीं हुए और सदा सत्य ही कहते रहे।

इसी कारण आपने अपना पहला अमर ग्रन्थ जो लिखा उसका नाम सत्यार्थ प्रकाश (सत्य के अर्थों का प्रकाश) रखा। इस में बिना झिझक वह सच्चाई जिसे वह ठीक समझते थे और जिसका आयु भर आपने प्रचार किया उसको प्रकट कर दिया और आज उसका बोल-बाला है उसे चाहे अन्य मत वाले न भी पढ़ें परन्तु उसकी शिक्षा को सब मतमतान्तरों ने अपना लिया है।

स्वामी जी ने आर्यसमाज के दस नियम बनाए, पहले नियम में उन्होंने लिखा—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है दूसरे नियम में भी ईश्वर को सत्य, चित्‌आनन्द कहा, तीसरे नियम में वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है'— 'चौथे नियम में तो लिख दिया 'सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए' और पांचवें नियम में—'सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएं तो इस प्रकार दस नियमों में से पहले पांच नियमों में स्वामी जी ने सत्य को ही मुख्य रखा।

इससे स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सत्य के कितने प्रेमी थे आप ने अपनी सारी आयु में कभी भी झूठ के साथ समझौता नहीं किया, राजाओं ने महाराजाओं ने, बड़े-बड़े विद्वानों ने, शासन के बड़े-बड़े अधिकारियों ने अतः किसी ने भी उन्हें कोई डर दिया, धमकाया तो आपने स्पष्ट कह दिया कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और सत्य पर अटल रहे।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी महाराज एक महान सत्य वक्ता थे और हमें सत्य वक्ता बनने का उपदेश दे गए। परन्तु आजकल हम स्वार्थवश उनके मार्ग को त्यागते जा रहे हैं और सत्य जहां आरम्भ में आर्यसमाज के लिए आर्यों के लिए एक मुख्य चीज भी आज गौरव बन गई है। हमें वह भी समय याद है जबकि यदि न्यायालय में कोई आर्य गवाही देने जाता था

तो न्यायाधीश यह जान कर कि यह आर्य है तो उस पर इतना विश्वास करता था कि बस इसकी गवाही के बाद और किसी की गवाही की जरूरत ही नहीं, क्यों इसलिए कि आर्य झूठ नहीं बोलता था।

आओ ! आज दीपावली के दिन ऋषि ऋण उतारने के लिए हम अपने पिछले बीते समय पर दृष्टि डाले, आर्य समाज के काम पर आर्य संस्थाओं के काम पर, अपने व्यक्तिगत जीवनों पर, आर्य समाजियों के काम पर और देखे कि हम पहले क्या थे और अब क्या हैं। आज ऋषि निर्वाण उत्सव पर श्रद्धांजलि भेंट करते हुए आगे के लिए यत्न करें कि हम सब मिल कर द्वेष भाव त्याग कर वही पहले वाला समय लावें ताकि पहले ही की तरह फिर ऋषि का बोल बाला हो। आर्य समाज का नाम चमके। इसका उपाय भी लिख दूं और यह एक ही है कि जिस प्रकार ऋषि सत्य को प्रकट करने से किसी से भी नहीं डरते थे इसी प्रकार हम भी नए सिरे से पाखण्ड के खण्डन का शस्त्र चलाना आरम्भ कर दें। शास्त्रार्थों का दौर चलावें जिस से सत्य का प्रकाश और असत्य का नाश हो।

महर्षि दयानन्द का दिव्य संदेश

[श्री वेदप्रकाश जी विद्यावाचस्पति सिद्धातालंकार आर्यसमाज, हिसार]

'जो उन्नति करना चाहो तो 'आर्यसमाज' के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचारण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों



से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे भी होगा उसकी उन्नति तन मन, धन से सब जन मिल कर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज की यथावत् सहायता देवे तो बहुत अच्छी बात है। क्योंकि समाज का सौभाग्य बढाना समुदाय का काम है, एक का नहीं।'

ये वचन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने १८७५ ई० के अन्दर अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास के अन्तर्गत प्रार्थना समाजियो और ब्रह्म-समाजियो के प्रति कहे थे। कितने उदात्त और प्रभावोत्पादक विचार हैं ?

आज हम सब आर्यसमाजी मिल कर विचार करे कि क्या महर्षि के इस दिव्य सन्देश को कहने के योग्य हैं ? क्या हम किसी को एकता का उपदेश दे सकते हैं ? क्या हम वास्तव मे संगठन सूक्त को बोल कर अपने जीवन के अन्दर धारण करने का प्रयत्न करते हैं ? क्या आज हमारे सब के चित्त एक है ? क्या हमारे विचार एक हैं ? क्या हम सब एक ध्वज के नीचे खड़े होने को तत्पर हैं ? क्या हम अपने सर्वोच्च नेता की आवाज का समर्थन, उसके आदेश का पालन करने के लिए उद्यत है ? क्या हम कंधे से कन्धा मिला कर चल रहे हैं ?

क्या हम संगठनात्मक पाठ पढाने के अधिकारी हैं—ये सब प्रश्न ऐसे हैं जिनके उत्तर मे यही कहा जा सकता है—नही ! नही !! कदापि नही !!!

ओह ! वह आर्यसमाज जो सारे ससार को आर्य बनाने चला था, दुनिया को महर्षि का वेद का दिव्य सन्देश देने चला था। उसका वह सन्देश मार्ग में ही रह गया, सन्देशवाहक रास्ता भूल गया। अब उस संदेश को देने कौन आयेगा। क्या ईसाई या मुसलमान, सिक्ख अथवा प्रार्थना समाजी या ब्रह्म समाजी ?

आज की स्थिति देखें तो हम यही कह सकते है कि आर्यों को दयानन्द का सन्देश देने का अवकाश ही नही है। क्योंकि उन्हें आपसी लडाई झगडे से फुर्सत कहां जो वे समाज के प्रचार में समय दे सकें। आज आर्य समाज की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय है, प्रचार के लिए पर्याप्त पैसे की आवश्यकता है। एक एक पैसा समाजो, प्रान्तीय सभाओ और सार्वदेशिक मे आता है पर उस पैसे को पानी की तरह मुकद्दमे पर खर्च कर दिया जाता है, मुकद्दमे की लत जो पड गई है। कहा छूटनी है। आपस मे कोई निपटारा नही, महर्षि का सन्देश मानना नही, न्याय सभा का निर्णय स्वीकार नही बस हमे तो लडना है, समाज का पैसा बरबाद करना है - अथवा अपने नाम दर्ज करा लेना है। समाज का इससे बडा प्रचार और क्या हो सकता है, अखबारो मे नाम निकल जाता है। जिस व्यक्ति को समाज के लडाई-झगडे का पता नही उसे भी पता चल जाता है। क्या यह कोई कम प्रचार है ? क्या इस के लिए कोई कम परिश्रम करना पडता है ? नही, कम परिश्रम नही करना पडता यदि मतभेद को बढाने मे हम ने कम परिश्रम किया होता तो विरोधी पत्र-पत्रिकाए इस बात को कैसे लिखती ? हमारी बात उन तक कैसे पहुचती ? उस से पता चलता है कि इस के लिए एडी चोटी तक का ज़ोर लगाना पडा है तब जाकर कही यह सफलता प्राप्त

हुई है कि एक संस्था के दो-दो नाम हुए हैं—क्या यह कम उन्नति है ? धन्य हो इस उन्नति को !

महर्षि दयानन्द के निर्वाण दिवस पर हम जनता को क्या सुनाएंगे ? हमारे पास नई बात है नहीं। जनता को प्रभावित तो करना हुआ, अखबार मे नाम आना अवश्य है चाहे कैसे भी हो। दो सभाओ की स्थापना ही सुना देंगे।

यह तो हुई इस समय की अवस्था अब थोडा और पूर्व के समय पर विचार करे। क्या आगरा के चुनाव काड को भुलाया जा सकता है जिस के अन्दर एक व्यक्ति की मृत्यु हुई थी ? कितनी लज्जाजनक बात है। जब कोई हम से इस बात को कहेगा तब इसका हमारे पास क्या उत्तर होगा बस कोई न कोई बहाना—इससे अधिक और कुछ भी नही।

इससे भी पूर्व चलिए। महाशय कृष्ण के समय मे भी यह अवस्था कम न थी। परन्तु इस पर अधिक विचार न करते हुए और भी पूर्व समय पर दृष्टिपात करते हैं और वह समय महात्मा हस राज तथा स्वामी श्रद्धानन्द (जो उस समय महात्मा मुन्शी राम थे) का काल है। इस काल को भी हम कम भयानक नही कह सकते। इसके सम्बन्ध मे पंजाब केसरी लाला लाजपतराय अपनी आत्म कथा मे लिखते है—

'जब मैं एकान्त मे बैठ कर आर्य समाज के इतिहास के इस काण्ड पर विचार करता हूं तो लज्जित होता हूं। जिन दिनो मे बाते हो रही थी उन दिनो भी लज्जा से सिर उठाना कठिन था। क्योकि समस्त जनता उन्हे निन्दनीय समझती थी। यदि सुधार तथा पवित्रता लाने के दावेदार-शिक्षित लोग इतनी नीचता दिखला सकते थे, तो साधारण लोगो के बारे मे फिर क्या शिकायत हो सकती है। अपने सहधर्मियो के अनुचित झगडो से वह किस प्रकार प्रभावित हुए उसका अनुमान आर्य समाज के १८९१ के चुनाव के अवसर पर उनकी आलोचना से लगता है। 'यह बात हिसार के दिनो की है।' यह दृश्य मैंने अपनी आखो से देखे। मुझे रात भर नीद नही आई।.. एक सूत्र मे बद्ध हो जाने के स्थान मे हमने परस्पद झगडना शुरू कर दिया है और वह भी ऐसे गन्दे तथा अनुचित ढंग से जिसकी कोई सीमा नही है।'

आगे फिर १८९२ ई की स्थिति के सम्बन्ध मे लिखते है।

'कुछ तो पुलिस की सहायता से समाज मन्दिर पर अधिकार कर लेना चाहते थे। कुछ न्यायालय के निर्णय द्वारा दोनो पक्षो के सभा करने का समय नियत करवाने के पक्ष मे थे। (क्रमशः)

आर्य जगत् का यह अंक

महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण दिवस दीपमाला के अवसर पर आर्य प्रादेशिक सभा जालन्धर शहर का साप्ताहिक मुखपत्र आर्य जगत अपना विशेषांक प्रकाशित करके कर्त्तव्य निभा रहा है। आर्य समाज के मान्य संन्यासियो, विद्वानों एव शिक्षा विशारदो भाईयो-बहिनो व कवि कवयित्रियो का इस कृपापूर्ण पूरा-पूरा सहयोग मिलता रहता है। इस बार भी उनकी बडी कृपा है। गम्भीर व खोज पूर्ण लेख कविताएं प्रकाशित की जा रही हैं। यह भी अपनो तथा अन्य लोगो के हाथो मे देने का मीठा प्रसाद होता है। हम लेखक महानुभावो के ऋणी है। देर से आने के कारण जिन महानुभावो के लेख रह गए हैं उन से क्षमा प्रार्थी है। बाद मे उनकी कृतिया प्रकाशित हो जाएंगी। यह प्रसाद प्रेमी पाठको के हाथो मे है। —सम्पादक

ऋषि निर्वाण ते

(तर्ज—तूं ते सौ गई गूढ़ी नींदरे)

अज दुनिया तों मुख मोड़ के,
ऋषि टुर गया दिल तोड़ के।
तेरे औण ते नी दीवालिए, गलियां च दीवे बालिए,
दयानन्द नूं तूं छुपा लया, किथे लै गईयो नी दीवालिए।
साडे देवता नूं विछोड़ के,
अज दुनियां तों मुख मोड़ के..
लख ढूंढेया लभना नहीं, इन्सान एहदे जवाब दा,
कंडेयां भरे विच बाग दे, लगेया सी फुल गुलाब दा।
कोई लै गया ए मरोड़ के.
अज दुनियां तों मुख मोड़ के...
सच दा खजाना लुट गया, विद्या दा सूरज डुब गया,
हर दिल दुःखी अज हो गया इक तीर सीने चुभ गया।
हंजुआं दी गागर रोहड़ के,
अज दुनियां तों मुख मोड़ के...
जननी 'पथिक' संसार दी जगत पिता परमात्मा,
इक वार फिर दिखला देवीं दयानन्द जई कोई आत्मा।
बिनती करां हथ जोड़ के,
अज दुनियां तो मुख मोड़ के...।

लेखक :—श्री सत्यपाल 'पथिक' पुरोहित,
आर्य समाज अमृतसर।

महर्षि दयानन्द

[श्री रुद्र दत्त जी शर्मा प्रधान, आर्य समाज लक्ष्मणसर अमृतसर]

'आये जब ससार मे, जग हंसा हम रोये,
'ऐसी करनी कर चलो,तुम हंसो जग रोये।'

कितने सीधे और सरल शब्दो मे कवि ने सफल और शानदार जीवन का राज इस दोहे मे भर दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह दोहा पुकार २ कर महर्षि दयानन्द सरस्वती के निर्वाण समय का दृश्य प्रस्तुत कर रहा है, जब एक ओर महर्षि प्रभु परमात्मा के चरणों मे शीस झुकाए पूर्ण शांति और प्रसन्नता के साथ हसते हुए प्राण त्याग रहे थे, और दूसरी ओर देश भर के धर्मप्रेमी नर-नारी सिसकियां भरकर रो रहे थे। महर्षि के जन्म पर जो हर्ष उनके परिवार वालो को हुआ होगा, उससे कही अधिक आघात उनके निर्वाण के समय भारत तथा समस्त ससार के विद्या और सत्य से प्रेम रखने वाले करोडो हृदयो को पहुचा।

महर्षि दयानन्द को बाल्य काल से ऐसी तीव्र दृष्टि प्राप्त थीकि उनके सामने जो भी साधारण अथवा असाधारण घटना पेश आती थी वह पूर्णतया अनुसंधान किये बिना नही रहते थे। प्रिय बहिन और पूज्य चाचा को मरते देखकर मृत्यु की वास्तविकता और उस पर विजय पाने की प्रबल इच्छा उनके हृदय मे ठाठें मारने लगी। शिवरात्री के दिन पिता की आज्ञा से दिन भर अनशन रखने और रात्रि के पिछले पहर तक जागते रहने के पश्चात् शिव की मूर्ति पर चूहे को कूदता देखकर मूलशंकर का हृदय सच्चे शिव की प्राप्ति के लिए अधीर हो उठा। यह दो घटनाएं मूलशकर को दयानन्द बनाने और न केवल भारत अपितु संसार भर मे पुन: वैदिक सूर्य का प्रकाश फैलाने का कारण सिद्ध हुईं। पांडीचेरी के माने हुए सन्त योगीराज श्री आरबिन्दो घोष विश्व भर के सुधारकों और उद्धारको मे महर्षि दयानन्द को सबसे अनूठा, अनुपम और निराला मानते हुए कहते हैं कि—'यदि संसार के सर्वोत्तम नेताओ और रिफार्मरो को महान् पर्वत की चोटी माना जाए तो महर्षि दयानन्द का स्थान सबसे ऊंचा है।' परन्तु भारत वासियो ने ऐसे महान आत्मा की कदर नही की। यदि कही उनका जन्म अमरीका या यूरोप के किसी देश मे होता तो आज उनका मिशन सारे संसार मे फैल चुका होता।

देश को दासता की जजीरों मे जकडा और जाति को इस्लाम और ईसाइयत की बाढ मे बही जा रही देख कर महर्षि का हृदय बेचैन हो गया। गुरु विरजानन्द ने जलती पर तेल का काम किया। गुरु आज्ञा पाकर दयानन्द ने जीवन देश और धर्म की रक्षा के लिये अर्पित कर दिया। सहस्रो वर्षों से सो रही आर्य (हिन्दु) जाति को झंझोड-झझोड कर जगाया। नगर-नगर मे घूम कर वेद का अमर सदेश सुनाया। देश को जालिम अंग्रेज के पंजे से छुडाने के लिए सर्वप्रथम महर्षि जी ने ही स्वराज्य का का नारा लगाया और चौमुखी लड़ाई आरम्भ कर दी। अपने बेगाने सभी शत्रु बन गये। अंग्रेज सरकार की कड़ी और क्रूर दृष्टि रहने लगी परन्तु महर्षि दयानन्द मस्त हाथी की तरह निर्भीक अपने मार्ग पर बढते गये। दिन रात वेद के अध्ययन वेद के भाष्य और वेद के प्रचार में व्यतीत होता था। भाषणों और शास्त्रार्थों के अतिरिक्त अनेकों ग्रन्थों की रचना की। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थप्रकाश ने देशी और विदेशी विद्वानों के मुख मोड़ दिये। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को पढते ही उस समय के संस्कृत के सब से बडे विदेशी विद्वान मैक्समूलर के दिमाग का कांटा बदल

गया और सारी आयु वेदो को गडरियो के गीत कहने वाला वह विद्वान वेद को ससार भर के पुस्तकालय मे सब से ऊंचा और सब से पुराना ग्रन्थ मानने लग गया। सत्यार्थप्रकाश मे तो महर्षि ने मानो जादू भर दिया। विरोधी और विपक्षी भी एक बार पढ ले सही, हृदय धुल जाते हैं। इसे पढ कर बडे से बडे विरोधी भी महर्षि के अत्यन्त विस्तृत अध्ययन, अनुसन्धान महान परिश्रम, निरपक्षित और निर्भीकता की प्रशसा किए बिना नही रह सकते। सत्यार्थ प्रकाश की एक-एक पंक्ति मे महर्षि दयानन्द की दिव्य ज्ञान ज्योति की झलक दिखाई दे रही है, जो पढने वालो को स्वत अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान सन्यासी वीतराग श्री स्वामी सर्वदानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से ही आर्य समाज के मतवाले बन गए।

महर्षि ने एक सुनहरी असूल हमारे सामने रखा कि पहले पूर्ण त्याग और तपस्या द्वारा सत्य का ज्ञान प्राप्त करके पीछे असत्य का खण्डन करना चाहिये। पहले स्वय आर्य बन कर पीछे ससार को आर्य बनाने का यत्न सफल हो सकेगा। आओ, दीवाली के शुभ अवसर पर हम अपने आप को आर्य बना कर संसार को आर्य बनाने की ओर क्रियात्मक पग उठाने की प्रतिज्ञा करे।

सामाजिक सुधार कार्य के प्रति ऋषि दयानन्द

[डा० भवानीलाल जी भारतीय]

इतिहासकार के दृष्टिकोण से स्वामी दयानन्द और केशवचन्द्र सेन मूलत: सुधारक थे। यद्यपि इन महापुरुषो की बहुमुखी प्रतिभा और इनके विविध कार्य क्षेत्रो को देखते हुए उन्हे इस प्रकार से सम्बोधन करना सर्वांश मे समीचीन नही जान पडता, परन्तु यदि 'सुधारक' शब्द को विस्तृत अर्थो मे लिया जाय तो यह इनके लिये गौरवास्पद ही होगा, हीन कदापि नही।

दयानन्द के सामाजिक सुधारो से सभी परिचित है। उन्होने प्रचलित समाज के ढाचे को आमूलचूल परिवर्तित करने का बीडा उठाया, और एक सीमा तक वे सफल भी हुये। पुरातन परम्पराओ और धारणाओं को दृष्टिपथ मे रखते हुये भी यदि किसी ने सर्वप्रथम सामाजिक सस्कार का तीव्र आदोलन उपस्थित किया तो वह दयानन्द ही था। यद्यपि कबीर, दादू, नानक आदि मध्यकालीन निर्गुणवादी सतो ने भी सामाजिक वैषम्य, धार्मिक अध विश्वास और रूढिवादिता के विरोध मे बहुत कुछ तीखी बाते कही थी, परन्तु उनका आदोलन केवल शाब्दिक आलोचना तक ही सीमित रहा। गतानुगतिकता के पक मे ग्रस्त समाज ने क्रिया होकर इन सुझावो पर विचार करने और आचरण करने की आवश्यकता ही नही समझी।

दयानन्द का सुधार तो केवल सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित नही था। आज तो इतिहासकार इस निष्कर्ष पर पहुच रहे हैं कि दयानन्द ही भारतीय स्वातन्त्र्य आदोलन का प्रथम सूत्रकार था और १८५७ की राज्य-क्राति का उसने गुप्त रूप से सचालन किया था। कुछ भी हो, यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि राजनैतिक सुधारो की इच्छा दयानन्द के मन मे अत्यन्त प्रबलता से कार्य कर रही थी। देश की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उसने गोरक्षा आदोलन का जिस प्रकार प्रवर्तन और संचालन किया, वह किसी से अप्रकट नही है। परन्तु दयानन्द की सर्वोपरि महत्ता उसके सामाजिक सुधार के लिये है भारतीय समाज के सुधार कार्य का जब विस्तृत इतिहास लिया जायेगा, तब दयानन्द का नाम सुधारको

की श्रेणी मे शीर्ष स्थान पर प्रतिष्ठित किया जायेगा, इसमे हमे कुछ भी सन्देह नही है।

दयानंद के समाज सुधारकेे कार्योंसे आज सब परिचित है। बाल विवाह के विरोध मे उन्होने सबसे पहले आवाज उठाई। अपरिपक्व अवस्था मे विवाह होने से देश मे हीन बल वीर्य वाले रोगी युवको की संख्या दिनोदिन बढ रही है, इससे दयानन्द भली-भाति परिचित थे वे जब भाषण देते थे तो जनता को 'बच्चो के बच्चे' अर्थात् बाल्य विवाह से उत्पन्न सन्तान कहकर सम्बोधन करते थे। सत्यार्थप्रकाश मे कपोल-कल्पित शीघ्र-बोध और पाराशरी के 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' आदि श्लोको का खण्डन कर उन्होने युवावस्था मे विवाह करने पर बल दिया। उनसे प्रेरणा पाकर अनेक पुरुषो से अपने बालको के अल्प-व्यस्क मे विवाह करने का सकल्प त्याग दिया। अनेक वर्षों के पश्चात् इसी सुधारक से प्रेरणा पाकर उसी के एक शिष्य से दीवान बहादुर हर विलास शारदा ने बाल विवाह रुकवाने के लिए भारतीय व्यवस्थापिका सभा से शारदा एक्ट पास करवाया।

बाल विवाह को रुकवाना जितना आवश्यक था, उतना ही अनमोल विवाहों पर प्रतिबन्ध लगाना एव वृद्ध विवाह तथा बहु विवाह आदि अन्यान्य हानि पर रूढियो से जनता से पृथक करना भी था। बाल विधवाओ की शोचनीय परिस्थिति को देखते हुए ईश्वर चन्द्र विद्या सागर पूर्व से ही विधवा विवाह की स्वीकृति का विधान पास कराने की चिंता मे थे। दयानन्द की इस कार्य से पूर्ण सहमति थी। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता को देखते हुए उन्होंने नारी शिक्षा पर बल दिया। शताब्दियो से पीडित शोषित और दलित नारी जाति पर यदि किसी ने नि.शेष आर्शीवादो की वृष्टि की है, तो वह दयानन्द ही है। फ्रेंच मनीषी रोमा रोला ने स्वामी जी की नारी-जाति के प्रति की गई सेवाओ को ही ध्यान मे रख कर लिखा है- भारतीय स्त्रियों की शोचनीय स्थिति को सुधारने के प्रयत्न मे भी दयानन्द कम उदार और साहसी नही थे। जिन सामाजिक कुरीतियों का वे शिकार हो रही थी, उसके विरुद्ध उसने क्रान्ति की और लोगों को स्मरण दिलाया कि प्राचीन युग मे उनकी घर मे तथा समाज मे पुरुषो के समान स्थिति थी।

इसी प्रकार दलित वर्ग के अभ्युत्थान के लिये दयानन्द ने जो कुछ किया, वह चिर-स्मरणीय रहेगा। अछूत वर्ग के लिये मध्यकालीन आचार्यों और धर्म के व्यवस्थापको ने जिन अत्याचार पूर्ण व्यवहारों का विधान किया था, दयानन्द ने केवल उनका शास्त्रीय दृष्टि से प्रत्याख्यान ही नही किया अपितु उनकी दयनीय स्थिति को सुधारने के लिये व्यावहारिक योजना बनाई। यह हर्ष का विषय है कि दयानन्द के अनुयायियों ने भी अस्पृश्यता के उन्मूलन को अपने कार्यक्रम मे सदा प्रमुख स्थान दिया, जिस के फल स्वरूप महात्मा गाधी को कहना पडा कि स्वामी दयानन्द की भारत के प्रति सबसे बडी देन यदि कुछ है तो यह है उनका अस्पृश्यता के प्रति युयुत्सु भाव और उसे समाप्त कर देने का निश्चय। इसी प्रकार प्रचलित जातपात की भावना को समाप्त कर गुण कर्मानुसार समाज व्यवस्था का सगठन करना दयानन्द के सुधार कार्य का प्रमुख लक्ष्य था अत. यह कहने मे कुछ भी विप्रतिपत्ति नही है कि दार्शनिक और धार्मिक विचारोमे विरोध रखने वाले उनके बडे से विरोधियो ने भी उनकी सुधार सम्बन्धी कार्य क्षमता को स्वीकार किया है।

सामाजिक समस्याओ को हल करने के लिए केशव बाबू के प्रयास भी कम श्लाघनीय नही है। यह भी कह सकते हैं कि इस दिशा मे तो वे अपने पूर्ववर्तियो (राजराम मोहनराय और देवेन्द्रनाथ ठाकुर) से भी अधिक प्रगतिशील थे। प्रचलित जात-पात को समाप्त करने, विवाह सम्बन्धी बुराइयों को दूर करने और स्त्रियो की दशा को उन्नत बनाने के लिए केशव ने जो कार्य किये, वे ब्रह्म समाज के इतिहास मे सर्व-प्रमुख सुधार कार्य समझे जाएंगे।

★★★

महर्षि दयानन्द जी को श्रद्धांजलि

महात्मा गांधी से पूर्व महर्षि दयानन्द ने इस देश में स्वराज्य और स्वदेशी का तुम्मल घोष गुंजाया था : गांधी जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में स्वामी दयानन्द जी को श्री सच्चर जी की भाव भरी श्रद्धांजलि

[श्री आशुराम जी आर्य पुरोहित चण्डीगढ १९]

दिनांक ५-१०-६९ को गांधी शताब्दी पर भाषण के उपलक्ष्य मे आर्य समाज सैक्टर ७ चण्डीगढ़ की सार्वजनिक सभा को सम्बोधित करते हुए प्रसिद्ध गाधी सेवी श्री भीमसेनजी सच्चर (भूतपूर्व मुख्यमन्त्री, राज्यपाल तथा हाई कमिश्नर लका) ने कहा कि सत्य अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि महान व्रतो को धारण करने के द्वारा गांधी जी ने अपने आत्मा मे बहुत भारी शक्ति का संग्रह करके विश्व की महान राज्य शक्ति के साथ उसके अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध एक बडे युद्ध का सूत्रपात कर दिया जिससे भारत की कीर्ति सारे ससार मे फैल गई। उन्होंने अफ्रीका के न्यायालय मे कहा कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ। एक महान् देश का नागरिक। तुम मुझे 'कुली' कहते हो मैं इसके आगे सिर नही झुकाऊंगा और अपने मानवी अधिकारों के लिए तुमसे लडता रहूंगा।' महात्मा गाधी की शक्ति का स्रोत जिसने ढाल बन कर उनकी सदा सुरक्षा की वह उनकी पूज्य माता थी जिस ने कहा कि विदेश जाने से पहले मेरे सामने बैठकर व्रत लो कि मै मांस नही खाऊंगा, सुरापान नही करूगा और पर स्त्री गमन नही करूंगा। गांधी जी ने सिर झुका दिया और इन व्रतो ने उन्हे महान् बना दिया। आज हमारे लाखो विद्यार्थी जिस विषैले वातावरण मे बढते चले जा रहे हैं, उनके माता-पिताओं के लिए महात्मा गांधी की पूज्य माता का आदर्श जीवन एक चुनौती है जिसे यदि वह आज स्वीकार कर लें तो कोई कारण नही कि हमारे बेटे-बेटिया कुमार्ग से दूर न हो जाएं।

आपने कहा कि गाधी जी ने कोई नई बात नही की जो कुछ किया वह भारत और वेदादि सशास्त्रो के प्राचीन आदर्शों के आधार पर, जिसकी भूमि और मार्ग इस देश मे स्वामी दयानन्द पहले तैयार कर चुके थे। और क्या स्वराज्य का तुम्मल घोष गाधी जी ने दिया? नही सबसे पहले स्वामी दयानन्द ने। जिन्होने यह कहा और लिखा कि विदेशियो का राज्य चाहे कितना न्याय-पूर्ण हो फिर भी स्वराज्य की तुलना नही कर सकता। एक जगह नही स्थान-स्थान पर लिखा कि सुनीति युक्त हो कर हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढे और स्वदेशी का घोष भी सर्वप्रथम उन्होंने दिया। महात्मा गाधी ने तो उस चिगारी को लेकर एक जोरदार चुहो ओर आदोलन की आग को भड़काया।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि वेद शास्त्र की भक्ति और श्रद्धा गाधी जी के अदर कितनी थी। जिन्होने कहा कि यदि हमारा अनगिनत साहित्य सारे का सारा कभी नष्ट हो जाए तो भी हम केवल यजुर्वद के ईशोपनिषद के पहले मन्त्र 'ईशावस्य' से फिर एक नया और सुखी ससार बसा सकते हैं। अन्ततः हमारा उद्देश्य तो जैसे कि ऋषि दयानन्द ने वेद भाष्य मे कहा है व्यवहार सुख से मोक्ष आनन्द की प्राप्ति पर्यन्त का है यह व्यवहार सुख साधारण अन्न, वस्त्र, जीविका इत्यादि के द्वारा समाज को सुखी बनाना आदि यह तो पहली सीढी है किन्तु हमारी कठिनाई यह है कि अभी हम वह भी ठीक नही कर पाए। अच्छा हुआ गाधी जी पहले चले गए। आज यदि वह देख पाते कि चप्पे-चप्पे पर वेश

मे नए-नए राज्य बनाए जा रहे हैं और हर एक मुखिया बन कर अपने स्वार्थ पोषण मे बढावा चाहता है। कभी बोली का बहाना लेकर और कभी भाषा के नाम पर वा जाति पाति के आधार पर। चारो ओर मद्य और मास के अम्बार लगा जा रहे हैं। क्या आर्य समाज के लिए यह चुनोती नही है ? मैं कहता हू कि स्वामी दयानन्द के पश्चात उनका यदि कोई पहला और सच्चा शिष्य हो सकता है तो वह महात्मा गाधी हैं। जिन्होंने पग-पग पर उनके आदर्शों का अनुकरण किया। इसलिए आर्य समाज मंदिर मे ऋषि के साथ अगर कोई दूसरा चित्र लग सकता है तो वह गाधी जी का होना चाहिए।

आपने महात्मा जी की श्रद्धाजली को वर्णन करते हुए कहा कि १९२२ मे जब चोरा-चोरी के अभियोग मे न्यायालय में उनके विरुद्ध कहा गया कि इस घटना मे जो हत्याएं हुई हैं उनका उत्तरदायित्व तुम पर है तो गाधी जी ने कहा कि हा हा मैं यह सारा अपराध अपने ऊपर लेता हू। इतना ही नही अपितु मैं तो सारे भारत की प्रजा के अपराधो का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार हू, सरकार चाहे तो मुझे फासी के तख्ते पर लटका सकती है।

श्री सच्चर जी ने तत्कालीन भारत की सामाजिक स्थिति पर खेद प्रकट करते हुए कहा कि भारत जैसे महान देश महान संस्कृति और महान आदर्शों के होते हुए गाधी जी को अपने जीवन निर्माण के लिए रस्किन की शरण लेनी पडी जिसकी पुस्तक के अध्ययन से उन्होने शिक्षा लेने का व्रत आत्म-कथा मे लिखा है। इसलिए भारत को महर्षि दयानन्द का उपकार मानना चाहिए जिन्होने आकर फिर से वेद शास्त्रों के ज्ञान की गगा बहा दी और आज जिसके प्रकाश से सारा संसार आलोकित हो रहा है। ★★

आई दीवाली

(रचयिता श्री हरबंस लाल जी 'हंस' आर्य गायक)

आई दीवाली हमें कुछ बताने, यतिवर ऋषि का संदेशा सुनाने। आई ..
उठो तुम सजग हो स्वकर्तव्य जानो। दम्भों की दीवार का नाश ठानों,
कौन अय्येगा पाठ तुम्हें यह पढ़ाने। आई दीवाली हमें कुछ बताने।
जिधर देखते हो उधर है अन्धेरा अब भी है पापों का यथापूर्व डेरा,
जड़ से इसे तुम हिलाओ तो जाने। आई दीवाली हमें कुछ बताने।
लिये आर्यों की सी निकालो उमंगें बही हंस लेख श्रद्धा सी तरंगें,
बनो आज वैदिक धर्म के दीवाने। आई दीवाली हमें कुछ बताने।
निर्वाण इस दिन ऋषि का हुआ था 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' कहा था,
ऋषि ऋण चुकाओ तभी 'हंस' जाने। आई दीवाली हमें कुछ बताने॥

क्या दिया और क्या किया ?

[श्री प्राध्यापक राजेन्द्र जी 'जिज्ञासु' दयानन्द कालेज, अबोहर]

ऋषि दयानन्द जी महाराज ने मानव जाति को क्या दिया व विश्व-हित के लिए क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मानवों को शतियां लगेंगी। कारण यह है कि महर्षि की सूझ-बूझ, पुरुषार्थ परमार्थ, तप त्याग व बलिदान का अभी इतिहासकार ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं कर सके। मनुष्यों का हठ, दुराग्रह व पक्षपात भी निष्पक्ष रूप से इतिहासकारों को ऋषि की सतत साधना की महत्ता स्वीकार करने मे बाधक हैं। इसका एक छोटा-सा प्रमाण मैं यहां श्रद्धेय श्री पं. गंगा प्रसादजी उपाध्याय के शब्दों मे देता हूं।

'गढवाल और कमायू के उच्च वर्ग ने निम्न वर्ग को बहुत दबाया। यह प्रान्त बहुत पिछड़े हुए हैं। यहा क्षत्रिय और ब्राह्मण लोग छोटे लोगो को विवाह के समय डोला पालकी पर चढ़ने नही देते थे। सबसे पहले आर्य समाज ने इस प्रश्न को उठाया। उस समय न कांग्रेस आगे थी और न गांधी जी महाराज आए थे। श्री ठक्कर बापा का तो नाम भी न था। न जाने कितने सिर फूटे, कितनी लडाइया हुई और कितने मुकदमे हुए। बिजनौर और नजीबाबाद के आर्य लोग गढवाल और कमायू का साथ देते रहे। मुझे खेद हुआ जब मैंने श्री पट्टाभि सीतारमैया की पुस्तक मे डोला पालकी के विषय पर उन आर्य वीरो का नाम तक न देखा जो इस युद्ध के आदि लड़ाका थे।'

(गंगा-ज्ञान-धारा पृष्ठ ४२)

उपरोक्त शब्दो पर किसी टिप्पणी की आवश्यकता नही। यदि भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष, देश का एक सिरमौर नेता इतना पक्षपाती हो सकता है तो दूसरो से क्या कहे। आर्य समाजियों का भी दोष है। हमारी शिक्षा संस्थाओं ने और सभाओं ने भी तो ऋषि की गौरव गरिमा का दर्शन कराने वाला पर्याप्त साहित्य नही निकाला। मैंने गुरु गोविन्द सिंह जी की त्रिशताब्दी पर जालन्धर के खालसा कालेज की ओर से प्रकाशित स्मृति ग्रंथ एक विहगम दृष्टि से देखा। कई सौ पृष्ठो के ग्रथ की सामग्री, लिखाई, छपाई, कागज, जिल्द सब आकर्षक थे। क्या महात्मा हसराज जन्म-शताब्दी पर, महात्मा नारायण स्वामी जन्म-शताब्दी पर, गुरु विरजानन्द जन्म-शताब्दी पर हमने अपना कर्तव्य निभाया ? .. .. तो फिर ऋषि का मूल्याकन दूसरे क्या करेंगे। जब हम लोग ही कर्तव्य विमूढ हैं।

आईए ! ऋषि की एक देन की ओर ध्यान दें। ऋषि से पूर्व कोई ज्ञान मार्ग की महिमा गाता था तो कोई कर्म मार्ग की कुछ ऐसे थे जो ज्ञान व कर्म दोनो की निन्दा करते थे। ऐसे लोगो ने भक्ति मार्ग की रट्ट लगाई। थे सभी 'पहुचे हुए'। इसका एक उदाहरण लीजिए। जब स्वामी सत्यानन्द जी वैदिक धर्म विमुख हुए तो राम नाम की दीक्षा देते हुए उन्होने भी भक्ति प्रकाश मे लिखा था।

'तप व्रत सयम साधना सब सुमरिन को मान।'
कहता मान तुरन्त ही विनयवान विनीत,
शका न करे कथन मे श्रद्धा धार सुप्रीत।
आत्म-मार्ग मे बुरी शंका आसुरी जान,
भ्रम-सन्देह अनर्थ की जननी दुष्टा जान।

ऐसे 'पहुचे हुए सन्तो की कृपा से समाज तीन भागों मे बट गया। तीनो एक-दूसरे के वैरी। ज्ञान, कर्म, उपासना के नाम पर जाति बट गई। इससे समाज मानसिक दृष्टि से पगु हो गया। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने ऐक्यवाद का शख फू का और ज्ञान, कर्म, उपासना की ठीक-ठाक व्याख्या करके हमे एकता का, कल्याण का सवर्गीण उन्नतिका मार्ग दिखाया। ऋषिने न ज्ञान की

निंदा की, न कर्म की और न भक्ति की। विक्रम संवत् १९८८ में महान वेदज्ञ पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार ने स्वामी सत्यानन्द जी के विचारों का खण्डन करते हुए एक्यवादी दयानन्द के ये सारगर्भित वचन दिये :—

'शिल्प विद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, विद्वानों में विद्वान होवे, दुष्ट कर्म और दुष्कर्म करने वाले को प्रयत्न से हार दे और सज्जनोंकी रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जान कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार अपने गुण कर्म स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है।'

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—'जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना है उसको वैसा ही वर्तमान करना चाहिए। अर्थात जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति केलिए परमेश्वर की प्रार्थना करे उसके लिए जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे अर्थात अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।'

महर्षिदयानन्दः

[आचार्य धर्मदेवो विद्यामार्तण्डः आनन्दकुटीरम्, ज्वालापुरम्]

(१)

निखिलनिगमवेत्ता, पापतापप्रणेता,
रिपुनिचयविजेता, सर्वपाखण्डभेत्ता।
अतिमहिततपस्वी, सत्यवादी मनस्वी,
जयति स समदर्शी, वन्दनीयो महर्षिः॥

(२)

विमलचरितयुक्तः, पापमुक्तः, प्रशस्तः,
सकलसुकृतकर्ता, कर्मराशावसक्तः।
दलितजनसुधारे, सर्वदा दत्तचित्तः,
जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षिः॥

(३)

प्रथितधवलकीर्तिः, शुद्धधर्मस्य मूर्तिः,
प्रसृतनिगमरीतिः, शत्रुवर्गेऽप्यभीतिः।
अनुसृतशुभनीतिः, वेदशास्त्रेष्वधीती,
विबुधगणवरेण्यो वन्दनीयो महर्षिः॥

(४)

अधिकतम उदारो धर्मसम्बोधकेषु,
श्रुतिविहितविचारो लोकसरक्षकेषु।
विदितनिगमसारो ब्रह्मचार्यग्रगण्यो
जयति स कमनीयो वन्दनीयो महर्षिः॥

आज दीवाली आई है

(दविन्द्र पाल शर्मा, राऊर किला उड़ीसा)

अहा! आज दीवाली आई है,
संग ढेरों खुशियां लाई है,
सब के मन देखो भाई है। अहा..................

बच्चो का कैसा यह शोर,
कभी इस ओर कभी उस ओर,
सुनते नहीं बात पराई है। अहा..................

नई दुल्हिन जैसा यह बाजार,
और हर स्थान पर भीड़-भाड़,
पढती न बात सुनाई है। अहा..................

करे आतशबाजी छू ठाएं,
सबओर धुआं अब किधर जाए,
पड़ता न कुछ दिखाई है। अहा..................

रात को दिन है बना दिया,
कोने २ मे दीपक जला दिया,
हर दिल मे खुशी समाई है।

अहा, आज दीवाली आई है,
सग ढेरो खुशिया लाई है,
सबके मन देखो भाई है। अहा..................

ऋषि के शब्द कर्मण्यता, पुरुषार्थ, परमार्थ, उत्साह उमंग व आशावाद का संगीत हैं। यह ऋषि की मौलिक देन है। 'निर्धन के धन राम'। 'राम भरोसे बैठ ..'। अजगर करे न चाकरी...। 'मुझ को पराई क्या पड़ी।' कबीरा तेरी झोंपड़ी...आदि विषैले विचारो से दूषित वातावरण से बचाने के लिए ऋषि ने अपनी तेजोमयी विचारधारा का अमृतपान कराकर हमे अनुप्राणित किया है।

Dr. A.C. Bose ने Aryan Ideals पुस्तकमे ठीक ही लिखा है कि'Arya Samaj amis at producing virile intellect' अर्थात आर्य समाज (ऋषि की कामना) का उद्देश्य पुरुषेय मस्तिष्क का निर्माण करना है।

आपने आगे चल कर पौराणिकों पर (ज्ञान व कर्म का विरोध करने वालो पर व्यग कसते हुए लिख है—

'One who is incapable of liberty of body or mind thinks of attaining the liberty of the spirit' अर्थात जो शरीर व मन को मुक्त नही कर सकते। वह आत्मा की मुक्ति के स्वप्न लेते हैं। ऋषि ने ज्ञान व कर्म के पश्चात उपासना की stage अवस्था मानी है। उसने स्तुति प्रार्थना, उपासना का एक दूसरे का पूरक माना है विरोधी नही। आओ हम इस मर्म को समझे। ऋषि ने क्या दिया क्या किया का उत्तर पाने लिए ऋषि के इन विचारो पर मनन कीजिए।

धर्म प्रचार को तिल-तिल कर प्राण देने वाले—

जगद्गुरु श्री विरजानन्द जी दण्डी

[आचार्य श्री मित्र सेन जी एम० ए० सिद्धान्तालकार, परीक्षामन्त्री भारत वर्षीय वैदिक सिद्धान्त परिषद अलीगढ]

दो मुन्दी हुई दो खुली हुई,
आखों ने वह विस्तार किया।
पथ भ्रष्ट कोटि आखों वाली,
इस जगती का उद्धार किया।
यह आखो की थी दिव्य पकड,
लोगो का बाल हटाती थी।
थी विनय शीलता आंखो की,
जो प्रण पर प्राण चढाती थी।

हमारे देश मे अनेक बलिदान ऐसे हुए हैं, जो चाहे देखने मे कुछ भी हो परन्तु उन्होने तिल-तिल करके शरीर को जलाया और उद्देश्य के पूर्ण हो जाने पर ही संसार से महा प्रयाण किया। उन महापुरुषो मे एक है जगदगुरु श्री विरजानन्द जी दण्डी।

सं. १८८५ विक्रमी मे पंडित नारायण दत्त के कुल में एक बालक ने जन्म लेकर करतारपुर ग्राम को पवित्र कर दिया। इस प्रतापी बालक का नाम व्रज लाल था। बचपन से ही प्रतिभाशाली इस बालक के पाच वर्ष की अवस्था मे चेचक निकली जो सदा के लिए आखो का प्रकाश ले गई। दुर्भाग्य का अन्त न हुआ था, इसके कुछ दिनो बाद ही आपके माता और पिता का देहान्त हो गया। भाई और भावज के दुव्यवहार के कारण १५ वर्ष के व्रजलाल (जो बाद मे सचमुच ही व्रज (मथुरा) का लाल सिद्ध हुआ) ने अपना घर छोड दिया। वे सब से पहले ऋषिकेश गए, वहा से ३ साल के उपरात हरिद्वार पहुचे जहा श्री पूर्णानन्द जी से सन्यास लेकर दण्डी विरजानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आंखो के न होने पर भी दण्डी जी ने सुन सुन कर ही पाण्डित्य प्राप्त किया। आप की स्मरण शक्ति इतनी अधिक तीव्र थी कि एक बार एक साधु अष्टाध्यायी (जिस मे ४००० सूत्र हैं) का पाठ कर रहा था आप उसे चुप-चाप सुनते रहे। पाठ समाप्त हो जाने पर आप अपने शिष्य के घर पहुचे और सारी अष्टाध्यायी ज्यों की त्यो बोल कर लिखा दी।

इसके बाद आपने विद्याभूमि काशी जाकर व्याकरण साहित्य एवं दर्शनों का गम्भीर अध्ययन किया। आपकी विद्वत्ता से आपकी प्रसिद्धि 'व्याकरण सूर्य नाम से हुई। विद्या समाप्त करके सोरो (जि० एटा, उ० प्र०) में छात्रों को पढ़ाने लगे।

एक समय आप विष्णुस्तोत्र का पाठ कर रहे थे, आपके शुद्ध एवं मधुर उच्चारण से प्रभावित होकर अलवर नरेश आपको गुरु मानकर अलवर ले गए। अलवर के निवास काल मे आपने 'शब्द बोध' नामक व्याकरण का ग्रन्थ लिखा।

स्वयं अलवर नरेश आपसे प्रति दिन व्याकरण पढने के लिए नियत समय पर आते थे, चार वर्ष तक यह क्रम चलता रहा। पश्चात् दण्डी जी मुरसान, भरतपुर होते हुए मथुरा पहुंचे। हर स्थान पर आपका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। मथुरा के अनेक गण्य मान्य पुरुषो की प्रार्थना पर आपने वही अपनी पाठशाला खोल दी।

आर्यजगत् के स्नेही पाठकों से

आर्यजगत सभा का साप्ताहिक मुखपत्र है। पत्र धर्म प्रचार में कितना सहायक होता है, यह तो सब को विदित ही है। सभा अपने साप्ताहिक पत्र द्वारा संन्यासी महात्माओं, समाज के पुराने अनुभवी नेताओं, विद्वानो कवि महोदयों तथा युवक भाई बहिनो को जीवन देने वाले आध्यात्मिक, राष्ट्रीय, एव सामाजिक लेखो वा कविताओं से धर्म प्रचार कर रही है। यत्न होता है कि प्रति सप्ताह दो तीन मननशील सज्जनों के लेख अवश्य पाठको की सेवा मे पहुंचाए। सभा की प्रचार सम्बन्धी सूचनाएं भी होती हैं: सभा अपने कर्त्तव्य को सदा से निभाती चली आ रही है। सब लेखक सज्जनो की 'जगत्' पर अनुम्पा का आभार प्रदर्शन करते हुए जनता से प्रार्थना करते हैं कि आर्य जगत को अधिक प्यारा बनाने का यत्न करेंगे। ग्राहक बनाकर सहयोग देंगे। अपने अमूल्य सुझाव भी देते रहेंगे। —सम्पादक

मथुरा मे कृष्ण स्वामी नामक प्रसिद्ध विद्वान रहते थे। उनका व्याकरण के एक प्रश्न पर दण्डी जी से मत-भेद हो गया, दोनो के शास्त्रार्थ की तिथि एव स्थान भी निश्चित हो गया, किन्तु शास्त्रार्थके दिन ही कृष्ण स्वामी मथुरा छोड कर पलायन कर गए।

श्री दण्डी जी महर्षि, मुनियो के ग्रन्थो को ही पठन-पाठन योग्य मानते थे मनुष्य कृत ग्रन्थो को नही। वे ऋषि प्रणीत ग्रथो का प्रचार चाहते थे परन्तु अशक्त थे। अब तक कोई योग्य, प्रतिभापूर्ण, विद्वान शिष्य भी न मिला था जिसे वे अपनी इस वसीयत को सौंप देते। सम्भवत. यही चिन्ता उन्हे दिन-रात लगी रहती थी।

एक दिन किसी ने दरवाजा खटखटाया। दण्डी जी ने पूछा—'कौन है ?' 'उत्तर मिला—'यही तो जानने आया हू कि मैं कौन हूं ?' इस उत्तर से ही दण्डी जी ने जान लिया कि जिस युगपा प्रवर्त्तक की प्रतीक्षा थी उसका प्रादुर्भाव हो गया। प्रसन्नचित्त से द्वार खोला, अपना सारा ज्ञान उस योग्य शिष्य को सौंप दिया और गुरु दक्षिणा मे वैदिक ज्ञान के प्रचार को जीवन की भेट स्वीकार की। उस व्याकरण सूर्य के अलौकिक तेजवान शिष्य का नाम था महर्षि दयानन्द सरस्वती।

गुरु की आज्ञा प्राप्त करके आदित्य ब्रह्मचारी वैदिक ज्ञान का प्रचार करने लगा। इस प्रचार को देखकर जगद-गुरु को अपना लक्ष्य पूर्ण होने की आशा दीख पडी और सम्वत १९२५ वि० से इस ससारसे मुक्त हो गये। उनका मृत्यु के समाचार को सुनकर महर्षि ने कहा था—'आज ससार से व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।'

पूज्यपाद श्री दण्डी जी महाराज के जीवन को तुलना महर्षि दधीची के जीवन से की जा सकती है जिन्होने परोपकारार्थ अपनी अस्थियां सहर्ष भेट कर दी। इसी प्रकार आपने भी प्रसन्नता पूर्वक अपना जीवन ऋषि कृत ग्रन्थों को जीवित रखने के लिए भेंट कर दिया। वास्तव में आपने इस अमर सूक्ति को सत्य सिद्ध कर दिया :—

हमको तो आगे बढना—पर्वत की चोटी चढ़ना,
रोड़ों से भी क्या डरना—अरे एक दिन है मरना।
हमको इसकी परवाह नहीं॥

बाल ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द सरस्वती

[श्री करनैलसिंह जी फारमिस्ट आर० डिस्पेंसरी तलवंडी चौधरियां]

जननी जने तो भक्त जन, या दाता या शूर,
नही तो बांझ भलि, काहे गवावे नूर ।

इस जननी ने भी ऐसे ही एक सपूत को जन्म दिया जिस ने अपने आप को देश सेवा हित अर्पित कर दिया। ऋषि दयानन्द जी ने यह सिद्ध कर दिया कि वह संसार



मे उत्पन्न हुए हैं तो पृथ्वी पर भार न हो कर देश सेवा मे अपना तन, मन, धन अर्पण करने के लिये पैदा हुए हैं। आज शिक्षित वर्ग मे कोई ही ऐसा मनुष्य होगा जो इस महान् देवता के नाम से अ रिचित होगा। उसका दुर्भाग्य ही समझो कि वह अपने देश उत्पन्न देवता को नही जानता। अगर दुनिया के तमाम ऋषियो की एक चोटी से तुलना की जाए तो हमे यह कहना होगा कि ऋषि दयानन्द ही सबसे ऊंची चोटी है।

किसी कवि ने ठीक ही तो कहा है कि 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' ऋषि दयानन्द जी पर भी यह बात पूर्णपूरेण घटित हुई है। यह तो हम सब जानते ही है कि इनके पिता जी पक्के शैव थे। पिता ने सोचा कि मूल शंकर (बचपन का नाम) को भी शैव मत का अनुयायी बनाना चाहिए। शिवरात्रि आई पिता जी ने मूल शंकर को भी व्रत रखने के लिए कहा। मूल शंकर की माता जी ने इसका विरोध किया कहा जा बच्चा है वह भूख प्यास सहन न कर सकेगा परन्तु मूलशकर के पिता जी न माने। मन्दिर में (जो गाव के थोडी दूर था) जाकर व्रत रखा। पहले पहर तक तो जागते रहे। दूसरे पहर मूलशंकर के सिवा सब सो गए। अरे ! यह क्या हुआ ! एक चूहा आया और शिव प्रतिमा (शिवलिंग) पर चढकर चढावे के फल मिठाई आदि खाने लगा दिल मे सोचा क्या यही शिव है ? जो अपनी रक्षा एक चूहे से नही कर सकता वह मेरी रक्षा क्या करेगा। पिता जी को जगाया। पिता जी को उस समय क्या सूझे। कह दिया असली शिव तो कैलाश पर्वत पर रहता है। यह तो केवल उसकी प्रतिमा है। उसी दिन में मन मे ठान ली कि सच्चे शिव की खोज करूंगा। घर मे और दो दुःखित घटना घट गई जिन्होंने महर्षि के दिल पर पूरा तरह वैराग्य का भूत सवार कर दिया।

२१ वर्ष की अवस्था मे उन्होंने गृह त्याग किया। जंगलो की चप्पा-चप्पा भूमि छान मारी परन्तु सच्चे शिव के दर्शन न हुए। किसी कवि ने लिखा है—

बीहड बन मे विचार रहा था,सच्चे शिव का मतवारा,
छोड़ दिया था घर बारा।

कई पाखडियो से वास्ता पडा यहा तक कि सोने की अंगूठी तथा वस्त्र तक भी उन धूर्तों की भेट चढ गए। परन्तु वाह रे दीवाने तेरी दीवानगी कम न हुई। ज्यो-ज्यो तुझे कष्ट हुये त्यो २ तूने देश की भलाई की। अपना जीवन देश कल्याण हित वार दिया। जहर के बदले अमृत पिलाने वाला हमे और कोई न मिलेगा। शत्रु को क्षमा कर दिया। सहनशीलता उदार हृदय तुझ सा हमे मिलना कठिन है। दुनिया ने तुझे पत्थर मारे तूने

उन पर ज्ञान के फूलों की वर्षा की। दुनिया तेरे लिए जहर लेकर आई तूने सबको अमृत पिलाया। तेरे सद्कर्मों का कहा तक गुणगान करें। तू ससार मे ऐसी सुगन्धि भर गया कि वह सुगन्ध मिटाए मिट नही सकती। वेदों का ज्ञान तूने हमे बताया! आखिर जो कार्य तूने कर दिए वह कोई दूसरा नही कर सकता। तू ही महान पुरुष था जो मृत्यु पर विजय प्राप्त करली। आखिर मे—

ऋषि तेरी जो वाणी थी, क्या गजब है ढाए,
पाखण्डी तथा दम्भी सत्य मार्ग पे लाए ?
करनैल भी सोच रहा मन मे यह क्या बना है,
भारत का हर इंसान यह देखो आज जगा है...

हमारा तपस्वी गुरु महर्षि दयानन्द

[सुरेन्द्रपाल शर्मा व्यवस्थापक आर्यजगत]

दयानन्द ही ऐसा नाम है कि जिसको सुनते ही मन अगाध श्रद्धा से भर जाता है। मस्तिष्क नतमस्तिष्क हुए बिना नही रह सकता। आज हम ऋषि का निर्वाण दिवस मनाने चले हैं उसके गुणो का गुनगान करने चले हैं। सत्य व्रतधारी बालब्रह्मचारी, तपस्वी दयानन्द को कौन नही जानता। मुर्दा दिलो मे प्राण फूंकने वाला वही तो देव था सोई हुई जाति का उदार करने वाला वही दीवाना था। इसलिए किसी कवि सत्य ही कहा है—

धन्य है तुझको ऐ ऋषि तूने हमे जगा दिया।
सो सो के लुट रहे थे हम, तूने हमे बचा लिया।

अगर ऋषि दयानन्द न होते तो आज हिन्दू जाति खत्म हो जाती। यह उन्ही का प्रताप है जिन्होने खण्डन मण्डन की रीति से इस हिन्दू जाति मे फैली हुई कुरीतियों को जड से नष्ट करने के लिए जीवन भर संघर्ष किया ताकि अपने गुरु विरजानन्द जी को दिए वचन को पूरा कर सकें।

इस सत्य सनातक वैदिक धर्म को उन्नत करने के लिए कठिन से कठिन कार्य करने मे भी नही चुके। हिन्दू जाति का अगर कोई कल्याण चाहने वाला महापुरुष हुआ है तो केवल महर्षि दयानन्द का ही नाम पहले आता है।

महर्षि दयानन्द सत्य बात को कहने से कभी पीछे नही हटते थे चाहे इसके लिए प्राण हा क्यो न चले जाएं। अपने व्याख्यान में अंग्रेज़ तक को ललकार दिया। इन्होंने कह दिया कि अंग्रेज कलक्टर तो कुछ नहीं अगर चक्रवर्ती राजा भी मुझे सत्य का प्रचार करने से रोकेगा तो मैं रुकने वाला नही। यह थी सत्य के प्रति लगन।

इन्होने तपस्या के द्वारा अपने शरीर के द्वारा कुन्दन बना लिया था। शरीर दर्शनीय था ताम्र रंग का शरीर देखते ही बनता था। इनके जीवन की एक घटना है कि एक बार महर्षि दयानन्द ने नर्मदा के स्रोत की ओर जाने की ठानी। मन में सोचा कि यात्रा इतनी कठिन तो होगी नही, कोई साथी न मिलने पर अकेले ही चल पडे। बहुत-सा रास्ता जंगलो में चलना पड़ा। काटेदार झाडियो से शरीर छलनी हो गया कपड़े फट गए। परन्तु वाहरे धुन के पक्के तूने उफ् तक न करते हुए लक्ष्य तक पहुंचने का दृढ संकल्प न तोडा, रास्ते में एक रीछ मिल गया स्वामी जी को देखकर वह हमला करने के लिए पिछले पैरो पर खड़ा हो गया। स्वामी जी ने जब अपना सोटा (लाठी) उसको दिखाया तो वह पीछे वापिस चला गया। यह था तप का फल तथा ब्रह्मचर्य का प्रभाव।

इनके जैसा गुरु भक्त मिलना अति मुश्किल है। एक बार महर्षि दयानन्द को गुरु विरजा नन्द जी ने छड़ी से मारा। स्वामी ने गुरु जी के हाथों को दबाते हुए कहा। महाराज! मेरा यह शरीर तो वज्र की भाति कठोर हो गया है। मगर आपके हाथ कोमल हैं इनको जरूर चोट लगती होगी। आप मुझे किसी दूसरे से मरवा लिया करें। यह था उनका गुरु के साथ प्रेम।

काश कि आज भी हम युवकों के अन्दर वैसी ही भावना होती तो यह दिन प्रतिदिन के झगड़े कब के मिट जाते, आज हमें उस दयानन्द के कार्यों की याद आती है जो उसने मानव मात्र की भलाई के लिए किए, और अपना सारा जीवन ही वैदिक धर्म के प्रचार में लगा दिया।

आओ ! आज दीपावली के दिन सब आर्य बन्धु मिलकर विचार करें तथा दृढ़ संकल्प करें कि सबसे मिलकर वैदिक धर्म का प्रचार करें, देश में बढ़ रही कुरीतियों का नाश करें। वैदिक धर्म के नाम की गूंज सारे विश्व को सुना दें। दीपावली का दिन हमें दयानन्द की शिक्षा को धारण करने तथा वैदिक धर्म का प्रचार करने के लिए कह रहा है। आखिर में यह शब्द हमें हर एक को सुनाने हैं।

देश का एक दीवाना कर गया जीवन अपना दान,
उठो आर्यो सब मिलकर, उसी की सबको सुनाओ तान।



प्रादेशिक आर्य युवक संगठन पंजाब के अध्यक्ष का निवेदन

मान्यवर बन्धु !
सादर नमस्ते !

सेवा मे प्रार्थना है कि आपके आर्य समाज मे या आपके साथ सम्बन्ध स्कूल अथवा कालेज में आर्य युवकों का समाज भी अवश्य होगा यदि यह अभी तक नहीं बन सका है तो कृपया शीघ्र ही इस ओर अपनी पूरी शक्ति लगाकर युवक शक्ति का संगठन अवश्य कीजिए। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने प्रदेश की सभी युवक समाजों को केन्द्रित करने का निश्चय किया है। आप भी अपने युवक समाज का केन्द्र के साथ सम्बन्ध करा दीजिये। आप की सेवा मे युवक संगठन का संविधान भेजा जा चुका है आप उसमे भेजे गए फार्म को भरकर १०) शुल्क के सहित निम्न पते पर तुरन्त ही भेज दीजिए यदि युवक समाज नहीं बना है तो उसका शीघ्र ही निर्माण कर यह फार्म भेजिए। यह कार्य आर्यसमाज की शक्ति को बलवान बनाने के हेतु ही किया जा रहा है। आप स्वयं विचारशील हैं अतः इस कार्य को प्राथमिकता प्रदान कर अनुगृहित करें।

आपका बन्धु—
वेदीरामशर्मा, डी ए वी कालेज
जालन्धर।

'आर्यजगत साप्ताहिक' निष्पक्ष पत्र

आर्यजगत् के विद्वानों के पत्रों से ज्ञात हो गया है कि केवल 'आर्यजगत साप्ताहिक' ही एक ऐसा पत्र है जो वर्तमान समय में आर्यसमाजों तथा आर्य सभाओं के झगड़े में परे है श्री सुरेश चन्द्र जी वेदालकार गोरखपुर ने पत्र लिखते हैं जो नीचे लिखा है।

श्री सम्पादक जी तिo ४-१०-६९

सादर नमस्ते !

आर्यजगत के नेताओं की कृपा से आज आर्यजगत के सभी पत्र चाहे वह 'आर्यमित्र' हो या 'आर्य मर्यादा' हो या 'सार्वदेशिक' हो सब एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे हैं। इन नेताओं के झगड़ों से आर्यसमाजी चिन्तित हैं और दुःखी हैं। बहुत-सी आर्यसमाजें तो अब इन पत्रों से घृणा करने लगी हैं। उनका कहना है कि हम इन पत्रों को आर्यसमाज के सिद्धान्तों, वेदों के मन्त्रों की विशेषताओं को जानने के लिए लेते हैं पर वहां पर एक दूसरे पर कीचड़ अपने स्वार्थों के लिए उछालने वालों की बातें पढ़ कर दुःख होता है। इस घृणित संघर्ष में एकमेव आपका पत्र ही मार्गदर्शक एवं अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने वाला है। आपका पत्र वास्तव में उन्नत हो यही मेरी कामना है।

आपका विनीत बन्धु
सुरेशचन्द्र वेदालकार
१७५ जाफरा बाजार गोरखपुर

देवदयानन्दाष्टकम्

[श्री त्रिलोक चन्द्र शास्त्री सम्पादक]

शिवालयं प्राप्य ददर्श दृश्यं,
तप: परो यो ननु मूल बाल: ।
शिवं समाधाय चचार लोके,
नतो दयानन्दवराय तस्मै ॥१॥

भाव:—मूल शंकर ने शिवमन्दिर मे दृश्य देखा, शिव को मन में रख कर बाहर निकल कर तप तपा। उस देवदयानन्द को प्रणाम है ।

तपो युतं यस्य बभूव वै वय:,
असौ व्रतं घोरमधारयद व्रती ।
सदा रतो यो मुनिमार्ग मंगले,
नतो दयानन्दवराय योगिने ॥२॥

भाव:—जिसका जीवन तपोमय था जिसने घोर व्रत लिया। जो मुनियो के मंगल पथ पर चला उस देव दयानन्द को प्रणाम है ।

समर्पितं येन समस्त जीवितं,
गुरो: सकाशं यतमानसो मुनि: ।
समस्तलोकस्य हिताय संगत:,
नतो दयानन्द वराय वाग्मिने ॥३॥

भाव :—जिसने गुरु जी के सामने प्रण करके सारा जीवन भेंट कर दिया। जिस ने सारे विश्व का भला किया। उस देव दयानन्द को प्रणाम है।

परेशवाणी ननु वेद रूपा,
युगेषु सर्वेषु प्रतिष्ठिता या ।
विचार शील: स प्रचारदक्ष:,
नतो दयानन्दवराय सर्वदा ॥ ४ ॥

भाव :—वेद भगवान् की वाणी है। सब युगो मे उसकी पूजा प्रतिष्ठा है। वह उसी के प्रचार मे लगे रहे—उस देव दयानन्द को प्रणाम हो ।

ददौ निजं जीवितमत्र यज्ञे,
पुनीतकार्ये निरतो महात्मा ।
प्रदीपिकायां परलोकमाश्रित:,
नमोऽस्तु तस्मै गुरुगौरवाय ॥ ५ ॥

भाव :—जिसने वेद प्रचार के पवित्र यज्ञ में अपना जीवन भेंट कर दिया। दीवाली पर जिस का निर्वाण हो गया—उस देव को प्रणाम हो ।

पवित्र सन्देश परायणोऽभूत्,
जनेजने वेद प्रचारको य: ।
धनेन चित्तेन शरीरकेण,
श्रुतिप्रियस्स: निखिल: समाज: ॥ ६ ॥

भाव :—वेद प्रचार के पवित्र सन्देश मे जो लगे रहे। आर्यसमाज को चाहिए कि वह तन-मन-धन से वेद प्रसार में सदा लगा रहे।

तमोयुतं विश्वमदस्समस्तकं,
जनोजनो वेदपथ: प्रणष्ट: ।
निशा प्रवृत्ता भव ज्ञान नाशिनो,
विलासधारा भयजीव संकुला ॥७॥

भाव :—यह सारा जगत अज्ञान के अन्धकार से भरपूर है। सारे जन नारी वेद पथ से उतर गए हैं। जगत के ज्ञान की नाशिका रात्री है। सारे विलास पथ पर दौड रहे हैं।

विदन्तु कर्त्तव्यमथापि शाश्वतं,
युगे युगे वेद प्रचार सम्मतम् ।
किमस्ति कार्यं करणीयमत्र च,
सुगन्ध पूर्णो निखिलो भवो भवेत ॥८॥

भाव :—सारे नर-नारी अपना-अपना कर्तव्य पहिचानें। क्या करना है सोचें। प्रत्येक स्थान पर वेद-प्रचार हो जिससे सारा विश्व वेद सुगन्धि से भर आए।

सुधारक महर्षि

[श्री हरिश्चन्द्र जी शास्त्री 'निस्तन्द्र', साईंदास A./S.H./S स्कूल, जालन्धर]

दयानन्द आज पल पल मे हमे तू याद आता है।
अवस्था देख भारत की कलेजा मुंह को आता है ॥

यो कहने को तो कह सकते हैं कि स्वाधीन है भारत।
न पर स्वातन्त्र्य के दायित्व को निभाता है ॥

मिटाना चाहता था जाल तू सब सम्प्रदायों का।
यहा अब सम्प्रदायों को बढावा मिलता जाता है ॥

तू चारो आश्रमो वर्णों का इक सच्चा प्रचारक था।
व्यवस्था बिगडती है पर नही कोई सुझाता है ॥

है भौतिक उन्नति की आज दीवानी बनी दुनिया।
न भ्रष्टाचार की सीमा का कोई पार पाता है ॥

है दिल मे खोट पर ऊपर से बनते हैं भले मानुष।
यह है विज्ञान युग पीतल भी सोना बनता जाता है ॥

कोई लाखो मे रखता ध्यान है कर्तव्य पालन का।
समय को टालना टकराना सब को आता जाता है ॥

पण्ड़ेय दु:ख मे हम सुख का अनुभव कैसे करते हैं।
हमारा अन्तरात्मा क्यो न पापो से लजाता है ॥

न मर्यादा रही कोई नही कोई व्यवस्था है।
हर इक व्यक्ति निरंकुश है नया निज पथ बनाता है ॥

न हो कुछ करना धरना इसको दुनिया जागृति कहती।
बढावा नास्तिकता को दिनोदिन मिलता जाता है ॥

हमारा लक्ष्य है पैसा हमारा दीन है पैसा।
न समझें कि न कर्मों के सिवा कुछ साथ जाता है ॥

तू होता, राष्ट्र तेरा साथ देता, दुनिया चकराती।
बनाते शिष्य पश्चिम को गुरु जो बनता जाता है ॥

दिए हैं आर्यों को जो सुनहरी दस नियम तूने।
नहीं अनुसार उन के आचरण कोई बनाता है ॥

हुई साबित हैं सच्ची तेरी बातें सारी अनुभव से।
जमाना ठोकरें खा कर उन्हें अपनाये जाता है ॥

सभी मानव हैं एक समान सम व्यवहार हो सब से।
तेरा सिद्धांत भारत का विधान अपनाये जाता है ॥

जरूरत आज अनुभव हो रही तुझ से सुधारक की।
तेरी शिक्षाओ पर 'निस्तन्द्र' जग बलिहार जाता है ॥

दीपमाला के दिव्य संदेश

[श्री रविदेव जी शास्त्री प्राध्यापक दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार]

हमारे जीवन मे पर्वों का बडा महत्व है। ये पर्व हमारी न्यूनताओ के पूरक होते है। ये पर्व हमारे जीवन को पूर्ण करते है। पर्व का एक अर्थ होता है गाठ। ये पर्व प्रेम की गाठ है अथवा प्रतिज्ञा ग्रन्थि है। पारस्परिक स्नेह के दृढ करने के लिए इन पर्वो पर हम जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के लिए व्रत लेते है, प्रतिज्ञाएं करते है। आर्यों के रक्षा बन्धन, दशहरा, दीपावली और होली इन चार महापर्वो मे दीपमाला का स्थान सर्वोपरि है। इसके सन्देश भी एक से एक बढ कर है हम इस लेख मे दीपमाला के सन्देश पाठको की भेंट कर रहे है।

(१) दीपमाला का पहला सदेश सफाई या शुद्धि का है। लोग १० या १५ दिन पूर्व ही घरो की, दुकानो की, मन्दिरो की सफाई प्रारम्भ कर देते हैं। इस पर्व को मनाने वाला कोई विरला ही आर्य होगा जो दीपावली के उपलक्ष मे गृह की शुद्धि न करता हो। वर्ष मे एक बार तो घरो की विशेष शुद्धि होनी चाहिए। एक-एक कोना साफ कर देना चाहिए जीवन मे सफाई का बडा महत्व है, पवित्रता का सर्वोत्तम स्थान।

(२) दीपमाला का दूसरा सन्देश है मण्डन (सजावट) सफाई के पश्चात चूने आदि से पुताई करके करके गृहो को चित्रो से मूर्तियो से, बेलों फूलो व फलो से, तथा वेदसूक्तियो से सजाया जाता है। घर मे लगाए जाने वाले चित्र वीर वीरागनाओ के हो, ऋषियो व तपस्वियो के हो, पवित्रात्माओ के हो, बालिकाओ के हों। स्त्रियो के अर्धनग्न चित्र, नट-नटियो के चित्र, अश्लील वासनाओ को उभारने वाले चित्र कभी भी घरो मे न लगाए जाए।

(३) दीपावली का तीसरा संदेश है प्रकाश उस दिन हम अंधकार को भगा कर दीपो की पंक्ति से प्रकाश कर देना चाहते हैं।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय'

अधेरा मेरा दूर भगे, भीतर बाहर प्रभु ज्योति जगे।
अंधकारमे कुछ नही सूझे, कितना भटके कितना जूझे।
खडे रहे हम ठगे-ठगे, अंधेरा जग का दूर भगे।

(४) दीपमाला का चौथा सदेश है मधुरता। सभी आर्य इस दिन मिठाई बनाते है या हलवाइयो को दूकान से खरीदते है। मिष्टान्न बाटते है। इसी प्रकार—

हम अपने अन्त:करणो की सफाई करे। विकारो के, दोषो व द्वेषो के, दानवी दुर्भावो के, अकर्मण्यताओ के दुर्गन्धपूर्ण मलो को निकाल दूर फेक दें। अन्त:करण के किसी कोने मे कोई विकार छिपा न रह जावे।

और फिर—

सद्गुणो से, स्नेह और सौम्यता से, सत्य और सदाचार से, सत्संग तथा स्वाध्याय से, सहानुभूति व सेवा भाव से अन्त.करण का सस्कार करे। सुगुणो, सुविचारो सत्संकल्पो के श्रेष्ठ चित्रो से मन बुद्धि को चित्रित करे।

पुन — अज्ञानान्धकार को भगा कर ज्ञान के प्रकाश से आत्मा को प्रकाशित करे।

ज्ञान प्रकाश चहु दिशि फैले
मिटे विकार विषैले मैले

आर्य समाजों से नम्र निवेदन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित आर्य-समाजो से प्रार्थना है कि वर्ष १९६९ समाप्त होने को है इस लिए इस वर्ष का दशाश शीघ्र सभा कार्यालय मे भेज कर अपने कर्तव्य का पालन करे। साथ ही वह समाजे जिन्होंने गत वर्ष का दशाश नही भेजा वह भी भेजने की कृपा करें।

—सभा मन्त्री

विचरें हम सुख शांति पाएं।
अन्धेरा मेरा दूर भगे।

और चौथे हम सब हृदय की, वाणी की, कर्म की कटुता को दूर कर मधुरता भर ले।

'वाणी मधुर-हृदय मधुर-मधुर हो सारी भावना,
फैले फिर भ्रातृभाव भी ऐसा वरदान दो प्रभु।

५—दीपमाला का पाचवां महान सन्देश है यज्ञो द्वारा लक्ष्मी पूजन। भोले लोग लक्ष्मी का चित्र लगा कर या मूर्ति सजा कर उस पर नैवेद्य चढ़ा कर, पुष्पमालाएं पहिना कर लक्ष्मी पूजन करते हैं। यह लक्ष्मी पूजा नहीं है। लक्ष्मी का, ऐश्वर्य का यथार्थ पूजन है यज्ञ-दान परोपकार मे वितरण। दीपावली के पुण्य पर्व पर सभी दस्तकार, कलाकार, चित्रकार, मूर्तिनिर्माता, व्यापारी, मजदूर, लक्ष्मी का उपार्जन करते हैं। सभी उद्योगियो के घरो मे लक्ष्मी आती है। फिर उसका दान ही तो सच्चा पूजन है।

दीपावली के दिन जिनका निर्वाण हुआ वे महान ऋषि दयानन्द इस वर्ष के जीते-जागते सन्देश थे। उन्हें अपने शरीर की, अंग प्रत्यंगो को-अन्तःकरण की, खूब सफाई की थी, वे पवित्र तथा पवित्रतम थे। विकारों को दूर कर उन्होने दिव्य गुणो मे, दिव्य ज्ञान से मन, बुद्धि व आत्मा को समलंकृत किया था। उन्होने अन्तःगुहा के अज्ञानान्धकार को मिटा कर उसके स्थान पर दिव्य ज्ञानलोक भर लिया था। तथा सारी कटुता को भेदभाव को मिटा वे माधुर्य की प्रतिमा बन गये थे सारी वसुधा उनका कुटुम्ब थी। उन्होने अपने सभी आत्मिक ऐश्वर्य जनता जनार्दन को अर्पित कर दिये थे यह उस महान एश्वर्यशाली का यथार्थ लक्ष्मी पूजन था। हम उन महान ऋषियो के उन ज्योति स्तम्भो के पद-चिन्हो पर चलें।

(पथ प्रदर्शकेभ्यो ऋषिभ्यो नमः)

हमको ऋषि मिशन की ऐसी लगन लगा दो

दिनरैन ईश अपने कर्तव्य हम विचारें।
सद्ज्ञान वेद ज्योति संसार मे प्रसारें।।
पथ भ्रष्ट प्राणियो को रास्ता सदा दिखावें।
निर्भीक वीर बनकर आगे कदम बढ़ावें।।

विषबेल को धरा से मिलकर सभी उखाड़े..
चहु ओर से हुऐ है निज निबलता ने घेरा।
तब प्रेरणा की ज्योति से दूर हो अंधेरा।।
सत्ता के लोभ मे न हम सत्य को विसारें...

इक ओर है प्रतिष्ठा इक ओर वेद प्यारा।
किस ओर देव जावें किसने करे किनारा।।
हम जान तक भी अपनी सद्ज्ञान पर ही वारें...
हमको ऋषि मिशन की ऐसी लगन लगा दो।

हमको सुधि भुला दो ऐसी सुधा पिला दो।
दृढ धर्म भावना को हम देव आज धारें।।

रचयिता :—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु', अबोहर

वेद भक्त स्वा० दयानंद का सन्देश और दीपमाला

[श्री भक्त राम जी (अफ्रीका वाले) दिल्ली]

इससे अधिक प्रमाण स्वामी दयानन्द के वेदानुगामी, वेद विश्वासी और वेद श्रद्धालु होने काऔर क्या हो सकता है कि उन्होंने वेद प्रतिपादित धर्म (वैदिक धर्म) प्रचारार्थ ही आर्य समाज रूपी आन्दोलन चलाया था। उनके प्रादुर्भाव से पहले, अनेक लोग वेद का नाम तक नहीं जानते थे। बड़े-बड़े पण्डित स्वामी जी के व्याख्यानों मे उनके मुखारविन्द से वेद मन्त्र सुन कर बोल उठते थे कि साधु स्वयं मन्त्र बना कर वेद का नाम ले रहा है। एक अवसर पर स्वामी जी ने ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राम मोहन राय से वेद मांगे तो उन्होंने उपनिषद प्रस्तुत कर दिए थे।

यदि कहीं किसी के पास वेद की पुस्तक थी तो वे अलमारियों में पड़ी थी इसीलिए स्वामी जी को वेद जर्मनी से मंगवाने पड़े। उन्होंने वेद पढे। और पूर्ण पाण्डित्य से यजुर्वेद को सम्पूर्ण तथा ऋग्वेद के ७ मण्डलों का भाष्य किया (यजुर्वेद भाषा भाष्य के प्रथम भाग मे तो ये शब्द मिलते हैं— ऋग्वेद के भाष्य करने के पश्चात यजुर्वेद के मन्त्र भाष्य का आरम्भ किया जाता है।' हम स्वामी दयानन्द को महर्षि यूं ही तो नहीं कहते। जब एक मन्त्र का दृष्टा 'ऋषि' कहलाता है तो ऋग्वेदादि ४ वेदों के भाष्य की भूमिका का लेख कर और एक— पूरे वेद और दूसरे के आधे भाग से कुछ अधिक का भाष्यकार महर्षि क्यों नहीं ?

महर्षि दयानन्द के प्राण, महर्षि का उद्देश्य और महर्षि का आधार वेद थे। वेद को त्याग कर वह किसी से सन्धि करने के लिए तैयार न थे। वेद के सम्बन्ध में मतनिवेश होने के कारण लाहौर के ब्रह्म समाजी उनसे बिगड़ बैठे)। पूना में अनेक सज्जनों ने आर्य समाज में सम्मिलित होने से इस लिए इन्कार कर दिया कि वेदों पर हीं आर्यसमाज का आधार क्यों रखा गया ? जब वेद ईश्वरीय ज्ञान है अर्थात् सृष्टि के आदि में परमात्मा ने हमे इस कल्याण कारिणी वेद वाणी का उपदेश दिया और इसी ज्ञान से विश्व जगत् आलोकित हुआ था तो महर्षि आर्यसमाज की सुख सम्पत्ति के आदि स्रोत वेद पर आधारित क्यों न रखते ?

कोई समय था जब विदेशी वेदों को बच्चों की खिलखिलाहट और गडरियों के गीत कहा करते थे। शनैः शनैः वैदिक साहित्य के अध्ययन के पश्चात् यूरोपियन अनुसन्धान कर्ताओं को अपना मत बदलना पड़ा और इसका श्रेय स्वामी दयानन्द को है। महान् योगी अरविन्द घोष के शब्दों मे स्वामी दयानन्द संस्कृत के प्रकाड पण्डित थे। जो शास्त्र सामग्री उनको मिल सकी उससे जो काम उन्होंने किया है वह अनुपम है। वेद के विषयों का मार्ग यदि किसी को ज्ञान हुआ है तो वह दयानन्द है।

उन्होंने हमे वेद की कुंजी दे दी है जिस के द्वारा हम वेदों मे से उत्तम-उत्तम रत्न निकाल सकते हैं।

कुछ आर्य भाई यह कहते सुने गए है कि आर्यसमाज महर्षि के तपो-बल से जीवित रहेगा परन्तु वे भूलते हैं।

यह दिए हमे उन महान तपस्वी का स्मरण दिलाते हैं और प्रकाश देते हैं कि हम अपने पथ से विचलित न हो जाएं।

★★

ओ३म्भूर्भुवःस्वःतत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

(अर्थ हिंदी पद्य में)

जड़चेतन जगती मे भगवन व्यापक हो तुम प्राण रूप,
दुःख निवारण साधकके सुखदायक हो अरु त्राण रूप।
सृष्टि विधाता सुप्रकाश अरु दिव्य गुणों की दिव्यखान,
वरण योग्य जो तेज आपका नित्य करें हम उसका ध्यान।
ईश हमारे मानस में उत्पन्न कीजिये सद्विचार,
अन्दर से मन दूर्से नीच दुष्कर्म भावना दुर्विचार ॥
(श्री दौलत राम जी शास्त्री, अमृतसर)

दक्षिण तथा आर्य समाज

[श्री प्रिंसिपल भगवान दास जी एम० ए०, डी० ए० वी० कालेज (लाहौर) अम्बाला]

बहुत से भाई कई बार पूछ लेते हैं कि बंगाल तथा दक्षिणी भारत मे आर्य समाज का प्रचार क्यो नही ? मुझे बंगाल तथा दक्षिणी भारत मे आर्य समाज के कार्य को देखने का अवसर मिला। बंगाल के बारे मे जो धारणा बनी थी वही धारणा दक्षिणी भारत के बारे मे बनी है।

आर्यसमाज जनता के सामने कितने ही स्वरूपो मे आती रही है पर इसके दो स्वरूप मुख्य रहे हैं। सबसे सुन्दर तथा मुख्य स्वरूप है धर्म के भावो का प्रसार तथा प्रचार और दूसरा है अत्याचार तथा पाखंड नाशक का कार्य।

उत्तरी भारत मे राजनीति की आड मे धार्मिक तथा सास्कृतिक अत्याचार होते रहे। इस लिए आर्य-समाज का बहुत भारी समय लडने आदि मे लगता रहा। इन अत्याचारो के मुकाबले के लिये ही जनता को त्यार करते रहना आर्यसमाज का मुख्य काय रहा। इस लिए आर्यसमाज का केवल लडाका स्वरूप सामने रहा। बार-बार के अत्याचारो से संस्कृत आदि भाषाओ से रुची हट गई इसीलिये धर्मग्रन्थो मे ध्यान जमा नही लोगो को मसालेदार बातों का चस्का पड गया और आर्य समाज के प्लेट फार्मों से धर्म के विचार फीके पड गए। इस लिए बडे-बडे विद्वान भी चुप होते चले गए इसी कारण दूसरे धर्मों को अड्डे बनाने का अवसर मिल गया परिणामत उत्तरी भारत मे चेले चाटों के कई मत चल पडे है तथा आर्यसमाज के धार्मिक दृष्टिकोण को धक्का दिया जा रहा है। यह एक तथ्य है कि बार-बार के अत्याचारो से जाति की तरफ शक्ति हीन हो गई थी इसीलिये आर्यसमाज को ओर से धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक क्षेत्र मे किया गया उग्र कार्य सराहनीय है। पर इस केवल खडनात्मक कार्य-क्रम का परिणाम यह निकला कि आर्यसमाज का लड़ाका स्वरूप तो जनता के सामने रहा तथा लोगों ने अत्याचारो तथा पाखण्डो से बचने के लिये आर्य-समाज की शरीफी पर दूसरा स्वरूप पीछे रह गया यह तो ठीक रहा कि यहा पर भी अत्याचारी तथा पाखण्डी लोगो का बोल-बाला था यहा आर्य समाज का प्रचार खूब हुआ तथा लोगों ने आर्य समाज के कार्यक्रम को अपनाया दूसरे स्वरूप के आगे न आने से अन्य क्षेत्रो मे प्रचार न बढा। यह भी तथ्य है कि आरभ काल के शास्त्रीय आदि कार्यों से प्रभावित होकर बड़े-बडे विद्वान आर्य समाज मे आ विद्वान प्रचारको तथा विद्वान की आर्य समाज के पास कभी नही तथा साधारण ज्ञान का मनुष्य तो क्या अन्य मतो के बड़े-बड़े विद्वान भी आर्य समाज के विद्वानो की योग्यता तथा कुशलता को मानते है। इस लिए आर्य समाज के प्रचार का यह फल हुआ कि दूसरे मत मतातरो ने अपनी शैली तथा विचार बदल लिये तथा जो पाखंडो पर अपना हलवा माडा उडा रहे थे उन्होंने करवट ली और अपने विचारो को टटोला। दयानन्द की गर्ज ने और आर्यसमाज के पहले युग के नेताओ और प्रचारको ने थलका मचा दिया पर आर्य समाज का सारा रूप दूसरो के मुकाबले का ही रहा इसलिए कुछ अपनी गलतियो से तथा विरोधियो की चालो से आर्य समाज परिवारो में न घुस पाई। दक्षिणी प्रान्त मे धार्मिक विचारो की परम्परा बहुत ऊंची है। आर्यसमाज का लडाका स्वरूप काम न आया। इसलिए न परिवार आर्य-समाज मे आये तथा न ही आर्यसमाज परिवारो मे

पा सका। थोड़े शब्दों में कहना हो तो यह हुआ कि आर्यसमाज के पास चौदह सम्मुलासो वाली सत्यार्थ प्रकाश होते हुए भी जनता ने पहले दस सम्मुलासों को समझने का यत्न भी न किया। और हमारे उपदेशको तथा विद्वानो ने भी कभी यह प्रयत्न न किया कि पहले दस सम्मुलासो को आदोलन रूप से जनता के सामने रखे। दक्षिणी भारत मे इस बात की आवश्यकता बहुत थी।

जब १९४३ में बंगाल जाने का अवसर मिला तो जो बंगाली भाषणों को सुनने आते थे वह पूछते थे कि आर्य समाज के पास क्या खण्डन का ही काम है या उसके पास अपना कुछ देने को भी है। मुझे उस समय बहुत हैरानी होती थी कि हमारे विद्वान अपने पास के धन को क्यो नही देते। बंगाल के लोग भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं संस्कृत के शुद्ध शब्द अब तक जू के तूं है। यही बात दक्षिणी भारत की है। सैकड़ो तथा हजारो की संख्या में लोग धर्म चर्चा मे आते हैं सारी सारी रात्री बैठते हैं पुरानी राग विद्या तथा सुन्दर कलाओ के के लिए जनता मे अगाध श्रद्धा है। संस्कृत पढना कर्त्तव्य समझा जाता है और बड़े-बड़े पश्चिम के पढ़े लिखे भी धार्मिक ग्रन्थो का स्वाध्याय करते हैं। सरकार भी संस्कृत के प्रसार के लिए बहुत यत्न करती है तथा संस्कृत पढना किसी न किसी सता पर अनिवार्य है। संस्कृत के धुरन्दर पंडित छोटे-छोटे नगरों मे भी मिलते हैं संस्कृत मे भाषण देना तथा अपनी मातृ-भूमि मे संस्कृत के शब्द लेने पर बडा बल दिया जाता है। अनेकों विद्वान ऐसे मिलेंगे जिन्होंने जीवन भर धर्म चर्चा तथा धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन के सिवाय और दूसरा कार्य किया ही नही। ईश्वर प्रार्थना तथा धार्मिक उत्सव व संस्कार प्रत्येक घर मे होते हैं बड़े से बड़े पाश्चात्य प्रणाली के विद्वान भी ईश्वर विश्वासी हैं और कोई न कोई धार्मिक कृत्य प्रतिदिन करते हैं। होना तो यह चाहिए था कि ऐसे क्षेत्र मे आर्यसमाज एकदम घुस जाता और हुआ यह कि लोग यहा आर्यसमाज से दूर रहे और अब भी दूर है। हैदराबाद के इलाके मे भी हजारो लाखो लोग आर्यसमाज के जलसे जलूसो मे आते तो हैं पर धार्मिक कृत्यो के अर्थ मे आर्यसमाज को बहुत कम मानते हैं। जिसका कारण यह कि आर्यसमाज उनको सामने केवल एक ही रूप मे आया तथा उनको हमारा धार्मिक दृष्टिकोण नही मिला। मै उन आर्य-समाजियो से सहमत नही जो यह कहते है कि दक्षिणी भारत के लोग रूढीवादी हैं।

मुझे यहा पर मन्दिरो मे जाने का अवसर मिला। भाषण देने की भी आज्ञाए मिली। जब मैंने यह बताया कि कोई स्त्री पुरुष आर्यसमाजी नही हो सकता जब तक ईश्वर को न माने तो लोग बहुत हैरान हुए। बार-बार प्रश्न करते हैं कि क्या आर्य समाज ईश्वर को मानता है? इस लिए जब वेद पर तथा ईश्वर सत्ता पर आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी के भाषण देते हुए तो सैकडो लोग आए और यह जान कर प्रसन्न हुए कि आर्यसमाज का विश्वास ईश्वर मे सुदृढ भी है तथा ऊंचा भी।



महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी, जालन्धर

इस विभाग की स्थापना पूज्य महात्मा हंसराज जी के निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति मे लाहौर मे की थी। आर्य सज्जनो से प्रार्थना है कि पूज्यवर जी के इस पुण्य स्मृति विभाग को उन्नत करने मे सहयोग दें। आर्य जनता से प्रार्थना है कि अधिक से अधिक साहित्य मगाकर धर्म लाभ उठाने के साथ साथ इस विभाग को उच्च शिखर पर ले जाने मे सहयोग देकर कृतार्थ करे।

उपयोगी पुस्तकों की सूची :—

१.	**सामवेद भाष्य** (आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री)	२० ००
२.	**वैदिक गुरमत** (प्रो० धर्म अनन्त सिंह)	१० ००
३.	**महात्मा हंसराज-मोडर्न पंजाब के निर्माता** लें० प्रि० श्रीराम जी शर्मा **M. A.** (अंग्रेजी मे)	१ ५०
४.	**सन्ध्या पर व्याख्यान** ले०—महात्मा हंसराज जी	१ ००
५.	**Dayanand His Life and Work** ले० प्रि० सूर्य भानु जी **M A.**	२.५०
६.	**महात्मा हंसराज जी सचित्र** (ले० आनन्द स्वामी जी महाराज,	२.५०
७.	**प्रभु दर्शन** (आनन्द स्वामी जी महाराज)	२ ५०
८.	**महर्षि दर्शन** (ले०—प्रि० दीवान चन्द जी **M. A**)	२.००
९.	**स्वाध्याय संग्रह** (ले० प्रि० साईदास जी **M. A**)	० ५०
१०.	**नवीन प्राचीन समाजवाद** (ले० नारायण स्वामी जी)	१ ००
११	**सत्यार्थ प्रकाश भाग प्रथम समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M A.**)	० ५०
१२.	**सत्यार्थ प्रकाश भाग द्वितीय समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M. A**)	० ५०
१३.	**मुंडक उपनिषद्** (ले० प्रि० दीवान चन्द जी **M. A**)	० ३७
१४.	**राधा स्वामी मत आलोचना** (ले० स्वामी सोमानन्द जी) उर्दू मे	० ३७
१५.	**षड्दर्शन समन्वय** (ले० बुद्धदेव जी मीरपुरी)	१.२५
१६.	**सीता** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० ३७
१७.	**पद्मिनी** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	०,३१
१८.	**पार्वती** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	०.२५
१९.	**Teachings of Ish Upnished** (ले० प्रि० दीवानचन्द जी **M.A.**) अंग्रेजी मे	१.२५

आज ही आर्डर भेजिए और सभा की सहायता कीजिये, आर्य समाजें, स्कूल, कालिज, पुस्तकालयो के लिये मगाने की कृपा करें। नियमोनुसार कमीशन दिया जायेगा।

पुस्तकें मिलने का पता :— महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, निकट कचहरी जालन्धर।

मुद्रक व प्रकाशक डा० वेदीराम शर्मा एम. ए. पी.एच.डी. आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर द्वारा वीर मिलाप प्रेस, मिलाप रोड जालन्धर से मुद्रित तथा आर्यजगत कार्यालय महात्मा हंसराज भवन निकट कचहरी जालन्धर शहर से प्रकाशित मालिक—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

आर्य जगत्

का

महात्मा हंसराज विशेषांक

★

॥ ओ३म् ॥

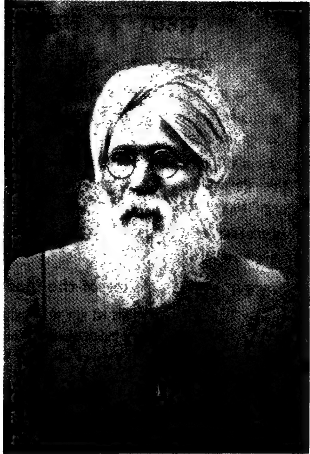
कृण्वन्तो

विश्वमार्यम्

अपघ्नन्तो

ऽराव्णः ।

★



पूज्य महात्मा हंसराज जी

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, जालंधर

[illegible] बेलीराम शर्मा

मूल्य ४० पैसे

सम्पादक—पं० त्रिलोकचन्द्र शास्त्री

★ ओ३म् ★

आर्य जगत्

—महात्मा हंसराज अंक—१९६९

२० अप्रैल १९६९ तदनुसार ८ वैसाख २०२६

वर्ष २६] १३, २० अप्रैल १९६९, १, ८ वैसाख २०२६ [अंक १५-१६

वेदामृत का पान

ओम् यदंग दाशुवे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवैतत्सत्यमंगिरः ॥

हे परम प्यारे ! जीवन के आधार परमेश्वर ! जो अपने आपको आपके अर्पण कर देता है, अपना जीवन तेरी भेंट कर देता है । अपनी सारी आयु प्रसाद को लेकर तेरे सम्पर्ण किया करता है । हे सारे विश्व के नायक ! ऐसे व्यक्ति का, दानी तथा पूजन, वन्दन करने वाले का सदा ही आप कल्याण किया करते हो । उसका निरन्तर मंगल मांगल्य ही सम्पादन करते हो । ऐसा आपका सनातन, सत्य नियम बना हुआ है । जो आपका परम भक्त हो जाता है उसके आप सुखदाता, परित्राता बनते हो ।

हे परम देव ! आपका आज के भोले भक्त पता नही क्या-क्या रूप बनाकर जगत की भौतिक वस्तुएं भेंट करते हैं । अपने भ्रम और अज्ञान का ही परिचय दे रहे हैं । आप तो अरूप, विश्वरूप, अनन्त रूप हो । आपकी मूर्ति, प्रतिमा कैसी ? चढावा कैसे चढाया जाए ? भक्तो की कितनी भ्रांति है । दिव्य जीवन के भक्त, आपके उपासक तो अपना सारा जीवन ही आपकी भेंट कर देते हैं । भक्तिमय भावमय होकर श्रद्धा, सेवा, साधना मे प्रवीण हो जाते हैं । उनका जीवन विश्व सेवा के अर्पण हो जाता है । महात्मा बन जाते हैं । परमेश्वर ! हमे भी यही यज्ञ भावना दो । हमारा जीवन भी परोपकारमय बन जाए । जीवन दान करते रहे ।

—सम्पादक

बलिदान के सच्चे प्रतीक

[श्री पूज्यवर महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज]

पूज्यवर महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज आर्य जगत के एक महान तपस्वी सन्यासी महात्मा है। भारत एवं विदेशो मे पधार कर अध्यात्मरस का जनता को पान कराते रहते हैं। पूज्य महात्मा हंसराज जी के साथ वर्षो कार्य करते रहे है। उस तपस्वी देवता के बारे मे आपका यह अमर सन्देश पढने तथा मनन करने के योग्य है—स

महात्मा हंसराज चाहते तो अन्य संसारी परिवारी लोगो की तरह उच्च से उच्च पद प्राप्त करके लाखो की सम्पति जुटा लेते। परन्तु जाति की दुरावस्था ने उनको बलिदान के इस मार्ग पर बढने के लिए प्रेरित किया। उन्होने एक बढता हुआ तूफान देखा और रुक न सके। कूद पडे। सारी आयु निर्धनता, तपस्या, त्याग मे बिताते हुए ससार के कल्याण के लिए धर्म, देश और जाति की सेवा का प्रण लिया। होश सम्भालने से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होने हर श्वास के साथ देश से को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्हे कई प्रलोभन दिए गए। देश के नेतृत्व का स्वर्ण-जाल फैलाया गया। प्रबल राजनैतिक आन्दोलन के समय उन्हे कहा गया कि यदि आप इस मे शामिल हो जाएगे तो सारे देश के नेता बन जाएगे। तब महात्माजी ने केवल इतना ही कहा–कि

मैं नींव में पड़ने वाला पत्थर हूं। रचनात्मक कार्य में लगा हूं और इसी में लगा रहूंगा।

सरलता, सादगी का सजीव चित्र, त्याग की अनुपम मूर्ति, निरभिमानिता के आदर्श महात्मा हंसराज का जीवन अनुकरण के योग्य है। रहने को एक छोटा सा कमरा लकडी का तख्तपोश, दो टूटी हुई कुर्सिया और बस। कपडे मोटे-मोटे शुद्ध स्वदेशी। सीधा सादा पाजामा, बन्द गले का कोट ऊबड खाबड सी पगडी— यह उनका वेश था। उन्नत विशाल मस्तक, श्वेत वर्ण, लम्बे चेहरे पर भव्य दाढी, ऐसे लगता था, मानो कोई प्राचीन काल का देवता हो।

डी ए वी कालेज की निष्काम सेवा, आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की स्थापना, महिला महा-विद्यालय की स्थापना आदि आदि इसी कार्यक्रम की कडियां थी। इसी ध्येय की प्राप्ति के लिए जहा कही भी भारतीयो को कष्ट आया वहा पर अपने सेवक भेजे, स्वय भी वहा पहुचे। शुद्धि आन्दोलन, अछूतोद्धार, हरिजनो की उन्नति आदि सब का यही प्रयोजन था। इस ध्येय के पीछे एक विचार था जो महात्मा जी के इस वाक्य मे झलकता था—

आप से यही कहना चाहता हू कि महर्षि दयानन्द जी के बतलाये हुए मार्ग पर दृढता से कायम रहे।

इस पुनीत दिवस पर

[डा० वेदी राम जी शर्मा एम ए पी एच. डी मन्त्री सभा जालन्धर]

जैसे महर्षि दयानन्द के साथ आर्य समाज, कवीन्द्र रवीन्द्र के साथ शांति निकेतन, स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ गुरुकुल और महामना मालवीय जी के साथ काशी विश्वविद्यालय का नाम अमर है। उसी प्रकार महात्मा हंसराज जी के साथ डी. ए. वी. कालेज का नाम शाश्वत रहेगा।

सारे देश मे ईसाई पादरी शिक्षा की आड मे देश की युवक शक्ति को शरीर और आत्मा दोनो मे ईसाई

बना रहे थे। कलकत्ते मे विलियम कालेज बडा केन्द्र था। इसी केन्द्र से देश व्यापी प्रचार का प्रबन्ध हो रहा था। डी ए वी संस्था मे अपना समस्त जीवन देने वाले महात्मा हंसराज जी ने ईसाई विद्यालय मे पढ कर इस बात को अच्छी प्रकार अनुभव कर लिया था। दूसरी ओर मुसलमानो की भी गर्दन अलीगढ मे **Beek** साहेब के हाथ मे थी। इनके बाद **Archibold** ने उनका स्थान लिया। इतिहास साक्षी है कि **Beek** ने अलीगढ कालेज मे कार्य करते हुए उसे भारतीय युवको के मस्तिष्क मे पुष्ट किया सुरक्षित किया। इतिहास कहा कि **Minto Morley Reforms** के रूप मे जो हिन्दु-मुसल्मानो के बीच परस्पर भेदभाव की प्रचण्ड ज्वाला प्रज्ज्वलित की गई, उस मे भी अलीगढ के इन्ही **Beek** और **Archibold** का भारी हाथ था। सर सय्यद को अराष्ट्रिय बनाने वाले भी **Beek** साहेब ही थे।

किन्तु धन्य है ऋषि दयानन्द कि वे म नाने युवक नेतृत्व महात्मा हस राज जी जैसे निर्भीक सेनानी के हाथ मे था। महात्मा जी ने किसी भी विदेशी विषैले सर्प रूप शिक्षक को दयानन्द की इस पवित्र संस्था के निकट नही आने दिया। आर्य समाज के विद्यादान यज्ञ के यजमान भारतीय लाल ही थे और आर्य सस्कृति के मानसरोवर के राज हंस हस राज थे। आर्य समाज के यह विद्या-उजागर विद्या-सागर एक कर्मठ और दूर दर्शी नेता थे। उनके इन गुणो पर अनेक युवक न्यौछावर होने को तैयार रहते थे।

उनके द्वारा आर्य समाज आज भी कार्य कर रही हैं। आज भी कालेजो मे वेद पाठ की कक्षाए है। आज भी धर्मशिक्षा का स्थान व समय नियत है। इस समय यदि हम स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का आदर्श सामने रखे और इन बाधाओ की चिन्ता न करते हुए अपने पथ पर बढते चले तो शीघ्र ही सफलता मिलेगी।

आज का विद्यार्थी युवक प्यासा है किन्तु पानी पिलाने वाले बन्धु अपने हाथ मे जलपात्र सम्भाले खडे है। लज्जावश पिलाने हुए शर्माते है कि कही हमे कोई यह न कह दे कि हम एक प्यासे छात्र की प्यास बुझा रहे है। आईये ! इस पुनीत दिवस पर यह निश्चय करे कि महर्षि की इस वाटिका को हरा-भरा रखने के हेतु अपना तन-मन-धन देकर हरा-भरा रखेंगे। युवक शक्ति को जागृत करेंगे। तभी उस तपोमूर्ति महात्मा हंसराज जी का पुण्य दिवस मनाना सफल होगा। ★★

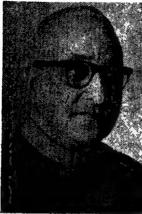
महान् आचार्य महात्मा हंसराज जी

[प्रिंसिपल भीमसेन जी बहल एम० एस० सी० सभा प्रधान जालन्धर]

भारत मे विद्यादान सभी दानो और कर्मो मे श्रेष्ठ समझा जाता है। आचार्य का सम्मान राष्ट्र मे ईश्वर से दूसरे स्थान पर माना जाता है। आचार्य ही शिष्य मे बौद्धिक शक्ति और सामर्थ्य पैदा करता है ताकि वह इस समस्त ससार को अपने ज्ञान से पार करता हुआ अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी आचार्य परम्परा मे पजाब प्रदेश मे जिला होश्यारपुर के बिजवाडा कस्बे मे १९ अप्रैल १८६४ ई० को प्रात. ऊषाकाल के पुनीत समय देव श्रेणी मे पूज्य महात्मा हंसराज जी का जन्म हुआ। विद्या दान का पवित्र कार्य प्रारम्भ से ही दूसरो की सहायता के लिए करते थे।

महात्मा जी आयु पर्यन्त सरस्वती की पूजा करते और कराते रहे है। उनकी ही कृपा का यह फल है कि आज पजाब भारत मे शिक्षा और विद्या की दृष्टि से किसी भी अन्य प्रान्त मे पीछे नही है अपितु सर्वोपरि है। महात्मा जी वर्तमान पजाब के निर्माता थे। उनके जन्म के समय यह प्रान्त बहुत पिछडा हुआ था। बगाल ही शिक्षा का केन्द्र था। सामाजिक सुधार आन्दोलन ब्रह्म समाज तथा देव समाज के रूप मे उसी प्रान्त से प्रारम्भ हुआ। भारत मे सर्वप्रथम विलियम कालेज कलकत्ता भी बगाल मे खुला।

१८८३ मे महात्मा हंसराज जी के साथ केवल २० ग्रेजुएट पंजाब यूनिवर्सिटी से पास हुए। उस समय पंजाब विश्वविद्यालय की सीनेट मे एक भी व्यक्ति आर्य-



समाजी नही था किंतु ५० वर्षों में प्रांत की काया बदल गई। यह सब पूज्य महात्मा हंसराज जी के महान तप का फल है। दयानन्द कालेज लाहौर की स्वर्ण जयन्ती रिपोर्ट में लिखा गया था कि—१८८६ मे जो एक छोटा सा बीज बोया गया था वह आज एक महान वटवृक्ष का रूप धारण कर गया है। लाहौर मे ५००० छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। लाहौर के बाहर की आर्य शिक्षण संस्थाओ मे ५०००० प्रविष्ट हैं। ३००० अध्यापक हैं। १९३६-३७ मे डी ए. वी कालेज लाहौर और उससे संबद्ध संस्थाओ का वार्षिक व्यय ४५००० रुपए था। अकेली लाहौर की दयानन्द कालेज सोसायटी के साथ संबद्ध सम्पति का अनुमान १२००००० रु था। इन डी ए वी संस्थाओं ने अपने प्रांत मे जन्मे, पले और पढे विद्यार्थियो को सारे भारत के उच्च पदो पर जाने का सुअवसर प्रदान किया। बडे २ डी ए. वी. छात्र, इंजीनियर, जज, मजिस्ट्रेट, पुलिस अफसर सभी कुछ बने हैं। उस महान आचार्य महात्मा हंसराज जी की तपस्या का फल आज हम सभी भोग रहे हैं। वह पंजाब के गौरव थे, महान मनीषी थी। वह इस प्रांत के कण २ मे विराजमान है। पंजाब ही नही वरन समस्त भारत के उपकार को भूल न सकेगा। आज उनके जन्म-दिवस पर हम उन्हे शत २ प्रणाम करते है। ★★

तपोधन हंसराज पञ्चकम्

[श्री त्रिलोकचन्द : शास्त्री सम्पादक]

देव भाषा संस्कृत से मुझे आरम्भ से ही प्यार रहा है। कभी-कभी मन की उमंग-तरंग के कारण आर्यजगत के विशेषांक मे संस्कृत मे श्लोक बनाकर दिया करता हू। इस विशेषांक मे भी तपोमूर्ति स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी के बारे मे पांच श्लोक अर्थ सहित दिए जा रहे है ! —स०

वटुरयं प्रतिभासुविभासितः ।
पठति नित्यमहो गुरु संगतः ॥
विनय भारभरेण तपः प्रियः ।
जयति हंस इवात्र प्रियोजनः ॥१॥

अर्थ —यह बालपन मे बडी प्रतिभा वाला अपने गुरु जी से विद्या पढते थे। बडे ही विनीत व तपस्वी थे। हंसराज हंस के समान सर्वप्रिय थे।

विविध ज्ञान मवाप्य सुधीस्ततः ।
जनसुखाय हिताय समर्पितम्: ॥
निजवयस्तु प्रियं प्रियवन्दितम् ।
शुभ विचार-प्रसार-परायणः ॥२॥

अर्थ :—मेधावी हंसराज विविध को प्राप्त करके लोक सेवा में लग गए तथा अपना प्यारा सारा जीवन शुभ विचारो के प्रचार में लगा दिया।

व्रतमनेन कृतं निज-यौवने ।
यदिह घोरतरं सफली कृतम् ॥
फलमदो मधुरं विततं गिराम् ।
जयति राजसु हंस इवापरः ॥२॥

महात्मा जी ने जवानी मे बलिदान का कठिनव्रत धारण किया। उसी का मीठा फल विद्या का प्रचार है। उस राजहंस हसराज की जय हो।

निगम ज्ञान प्रसार व्रतो महान् ।
लवपुरे स चकार सभाकृतम् ॥
जनपदेषु प्रचार- परायणः ।
हरति कस्य मनो न तपोधनः ॥४॥

अर्थ :—जिसने वेद-ज्ञान का प्रचार करने के लिए लाहौर मे सभा आर्य प्रादेशिक सभा स्थापित की। वेद-प्रचार मे जुट गये। किस का मन नही हरते ?

विमल कर्म करो मतिमान्यती ।
नभसि पूर्ण निशापतिरंशुमान ॥
अपनयन्ननु विश्वतमो महत् ।
जयति ज्ञान करं गरिमागुरुः ॥५॥

अर्थ :—शुभ कर्म करने वाला चन्द्र के समान अन्धेरे को मिटाता रहा। ज्ञान की किरणो वाले हसराज की जय हो।



अमर जीवन की अमर ज्योति

स्वर्गीय महात्मा हसराज जी का सारा जीवन ही सचमुच अमर है। उनके समस्त कार्य उनको अमर बना गए हैं। आर्य जगत् के प्रसिद्ध तपस्वी महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज ने महात्मा हसराज जी का पवित्र चरित्र पुस्तक के रूप मे लिखा। उसमे कतिपय जीवन प्रसग, जिसे साक्षात् अमर जीवन की अमर रश्मिया कहना चाहिए—आर्यजगत् के प्रेमी पाठको की सेवा मे प्रस्तुत करते है। तब और अब का अनुमान लगाये—स

जीवन की कोई चिंता नहीं

दयानन्द कालेज को जीवन अर्पण कर देने के बाद महात्मा हसराज जी को इतना काम करना पड़ा कि स्वास्थ्य गिरने लगा शरीर दुर्बल हो गया। रग पीला। हल्का-हल्का बुखार भी रहने लगा। एक दो डाक्टरों ने यहां तक कहा कि यदि यही अवस्था रही तो तपेदिक हो जाने का भय है। महात्मा जी के मित्रो और सम्बन्धियो ने जब यह सुना तो उन्हे चिंता हुई। पहले अलग-अलग फिर इकट्ठे उन्होंने उन् से कहा कि वह कुछ समय के लिये कालेज का काम छोड कर किसी पहाड पर चले जाये। महात्मा जी ने अपने सभी परामर्शदाताओ की सब युक्तिया मानी, परन्तु उत्तर दिया—इसके बाद भी मैं अपना जीवन बचाने के लिए किसी पहाड पर न जा सकता। अपने काम को छोड नही सकता क्योकि यह जीवन तो मेरा है नही। मैं तो पहले ही इसे दयानन्द कालेज को सौंप चुका हू। अब यह रहे या न रहे। मेरा इससे कोई सम्बन्ध नही है।

आतिथ्य सत्कार

महात्मा जी को अपने विद्यार्थियो से बडा प्यार था। गरीबी के दिनो मे भी वह इन लडको को अपने घर बुलाते। उन्हे आर्यसमाज का सन्देश देते। जब अतिथि सत्कार का समय आता तो और कुछ न होने पर उबले आलू ही नमक लगा-लगा कर खिलाते थे।

हंसमुख स्वभाव

महात्मा जी कितने हंसमुख थे, इसकी एक साधारण-सी झांकी इस घटना मे आंकिए। स्वर्गीय ला० लालचद जी का देहान्त हो गया। महात्मा जी को उनसे बडा प्रेम

था। किसी ने पूछा लाला लाल चन्द जी की मृत्यु का कारण क्या है ? महात्मा जी बोले—वह हसते न थे।

सिनेमा नहीं देखा

महात्मा जी ने अपनी सारी लम्बी आयु मे एक बार भी सिनेमा नही देखा। एक बार श्री बलराज जी ने उनसे कहा कि—यदि आप को भीड भाड मे सिनेमा देखने मे झिझक हो तो मैं प्रबन्ध करा सकता हूं कि केवल आप के लिए ही एक **Show** शो करवा दू महात्मा जी ने सदा की भान्ति इन्कार करते हुए कहा—सिनेमा मे चलती फिरती तस्वीरें ही तो होती हैं। जब मैं आप लोगो को चलते फिरते देखता हू तो फिर सिनेमा देखने की आवश्यकता क्या है ?

प्रभु के परम विश्वासी

जब कभी महात्मा जी कही जाने लगते थे तो घर के बाहर मोटरमे बैटते समय ओम विश्वानि देवसवितर्दु रितानि परासुव यद् भद्र तन्न आसुव। मन्त्र पढा करते थे। जब कभी आपका कोई बन्धु कही बाहर जाने लगता तब भी आप उसे मोटर मे बिठाते समय इसी मन्त्र को बोला करते।

त्यागी व परमतपस्वी

पण्डित नानकचन्द जी बैरिस्टर जब पढने थे तो महात्मा जी की निर्धनता व सादगी देख कर उनके आश्चर्य की सीमा न रही। एक दिन पण्डित जी महात्मा जी को मिलने उनके घर गये तो देखा कि आधी फटी हुई परन्तु बिल्कुल साफ धुली हुई कमीज पहने खडे हैं।

इसी तरह एक बार उनकी आख पर चोट लगी। भाई परमानन्द जी वही थे। डाक्टर आया। पट्टी बांधने के लिए थोडा कपड़ा मागा तो महात्मा जी के घर से फटे हुए कपडे का टुकडा तक नही मिला।

पांच सकार

सिख गुरुओ ने जिस प्रकार पांच ककार का अपने सिखो मे प्रचार किया और उनको जीवन मे घटाने का उपदेश किया। उसी प्रकार महात्मा जी पंच सरकार का उपदेश किया करते और और समस्त आर्य जनता को उन्हे अपने जीवन मे घटाने का उपदेश किया करते थे। ये पाच सरकार ये है—१ सन्ध्या २ समाज ३ स्वदेश ४ स्वाध्याय ५. सेवा।

युवक जीवन निर्माण

महात्मा जी ने अपने कुछ सुयोग्य कालेज के विद्यार्थियो को प्रोत्साहन देकर एक सभा चलवाई जिसका नाम 'आत्मोन्नति सभा' रखा गया। मास्टर बरकतराम जी, श्री रामसहाय जी तथा प्रिंसिपल मेहरचन्द जी, ला० बलराज जी आदि इस सभा के सदस्य थे। इनका सायकालीन सन्ध्या मे सम्मिलित होना अनिवार्य था। इस सभा के कुछ सभासद सायकाल को आपके स्थान पर सत्यार्थ प्रकाश तथा सस्कार विधि पढने को जा करते थे।

सेवा में आगे ही आगे

महात्मा जी जब आर्यसमाज के प्रधान थे तो हर एक सभासद से निजी परिचय और सम्पर्क पैदा किया करते। उनके प्रत्येक दु.ख-सुख मे शामिल होते। जब कोई आर्यसमाज का सदस्य बीमार हो जाता वा उसका कोई सम्बन्धी रोगी होता तो महात्मा जी स्वय उसकी खबर लेने जाते और उन्होने जो सेवक मण्डली कायम की थी उसके सदस्यों की ड्यूटिया लगा दिया करते।

आज प्रत्येक भाई-बहन सोचे कि तब क्या था और अब क्या है ?



महात्मा हंसराज के प्रति

(कु० सुशीला देवी आर्या एम. ए. विद्यावाचस्पति चरखी दादरी)

धन्य धन्य हे हंस जिसने हंस हंस जीवन वार दिया,
तन,मन,धन बलिदान किया निज, ऋषि ऋण सकल उतार दिया।

नीर क्षीर का सही विवेकी, हंसराज था सचमुच हंस,
प्रिय पंजाब का जीवन दाता, आर्यों का गौरव अवतंस ।

मान के मान सरोवर में ही जीवन भर सुख से खेला,
जब तक परम हंस से नहीं हंस का हुआ जोड़ मेला,

वैदिक संस्कृति का बन हंस (सूर्य) हंसराज जब आया था,
ऋषि के दिखलाये पथ पर नूतन आलोक फैलाया था ।

धन पाया विद्या का यश का और नहीं धन आया था।
सत्य सरलता और सादगी से जीवन सर आया था।

दयानन्द की दिव्य देन वैदिक विद्या के सद्धन को,
रहे बांटते वे जीवन भर पथ में भटके जन-जन को ।

एक बार जो कदम बढ़ाया पीछे नहीं हटाये हटा,
जीवन के संग्राम क्षेत्र में सीना ताने रहा डटा ।

चुने 'हंस' ने मोती ही सीपी घोंघों का काम नहीं,
चमके मां की मणिमाला में शोभा बने हृदय की ही ।

जीवन का आदेश यही था सादा जीवन उच्च विचार,
कंटक कुल में सुमन सदृश खिल गया सुयश सौरभ प्रसार।

आज कुशिक्षा के चक्र में पड़ा हुआ है देश महान,
आर्यो, एक हमीं से संभव है इसका होना निर्माण ।

झीना तंतु आशा का यह झटका कर मत देना तोड़,
अपनी शिक्षा संस्थाओं को देना हमने नूतन मोड़।

श्रद्धांजलि यही है उनको, यह कर्तव्य हमारा है,
महात्मा का जन्म दिन लाया यह संदेश प्यारा है ॥

जीवनमेधी महात्मा हंसराज

[श्री त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री]

आर्यसमाज के व्यापक महान् विश्वसेवा-यज्ञ के पवित्र कुण्ड मे जिन महान आत्माओं ने अपने जीवन की आहुतियां दी हैं, जिनके अमर बलिदान से यह वैदिक मिशन की प्रदीप्त ज्वाला इस समय भी अपने प्रकाश और अपनी सुगन्धि से सारे समाज को आलोकित एवं सुगन्धिमय कर रही है। उन मे स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी का प्रथम पंक्ति मे आता है। आज तो धर्म व परमेश्वर के नाम पर अजमेधी, पशु-पक्षीमेधी लोग बहुत दिखलाई देते हैं जो दूसरो की जान लेकर भगवान को रिझाने का काम करने में गर्व अनुभव करते हैं। वे पशुहत्या या पशुबलि के नाम पर कितना बडा पाप करते हैं यह बात अभी तक उनकी समझ मे नही आई। दूसरे को मार कर अपना मनोविनोद करना सरल है। किन्तु अपने यौवनभरे जीवन का बलिदान कर देना बहुत कठिन है। यह सर्वमेध यज्ञ तो तेज तलवार की धार पर चलने से भी बडा मुश्किल है। वस्तुमेधी या द्रव्य का यज्ञ करने वाला बहुत मिलते हैं—किन्तु जीवनमेधी विरले ही मिलते हैं। ऐसे जीवनमेधियो से धर्म फैलता है, लोकसेवा का पथ-प्रशस्त होता है। जीवन मे प्रेरणा मिलती है। ऐसे मेधीजन ही वास्तव में प्रभु के प्यारे हैं, अमर हैं तथा जनता के नायक बनते हैं। स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी भी जीवन मेधी थे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का स्मारक बनाने के लिए दयानन्द कालेज की स्थापना करने का निश्चय किया गया। किन्तु इसके लिए किसी जीवनदानीकी आवश्यकता थी। इसके बिना यह महान मिशन कैसे चलता? ऐसे समय मे युवक हंसराज ने आगे आकर कालेज के लिए अपनी सारी जवानी दे दी। जीवन का ही सर्व मेध कर दिया। समाज के अग्निकुण्ड मे ऐसे देवता की पवित्र जीवन-आहुति पडी तो धर्म-ज्वाला चमक उठी। सारे देश मे डी. ए वी. आन्दोलन चल पड़ा। शिक्षण में क्रान्ति मच गई। सारा श्रेय उसी जीवनदानी हंसराज को है। समाज ने उनको महात्मा मान कर मस्तक झुका दिया। एक समित ने कितनी जीवन समिधाओं को जगमगा दिया। प्रति वर्ष उनका दिवस मनाते हैं। किन्तु आज के दिन दिल को टटोलें कि हम भी समाज को कुछ भेंट करते हैं या नही? वह समाज के लिए विश्व सेवा के निमित, वैदिक धर्म के प्रसार के लिए अपना सब कुछ ही अर्पित कर दिए। अपना कुछ भी नही बनाया। हम विचारे कि इस समाज के महान् यज्ञ मे हम किस वस्तु की आहुति देते है? क्या मैं समाज मे जाता हू समाज को पैसे देता हूं? इसके लिये व्याकुल होता हू या नही? मेरे परिवार में समाज प्रेम है या नही? आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता प्रिंसिपल भगवान दास जी के शब्दों मे कहा जाए तो मैं देखू कि मेरा तो आर्य समाज में वर्षों से प्रवेश है। क्या मुझ में, मेरे जीवन मे तथा मेरे परिवार में भी आर्य समाज ने प्रवेश किया है या नही? यह विचारना होगा। इस महापुरुष का यह दिवस मनाते हुए जीवन की जांच-पड़ताल करनी होगी कि मैं आर्य समाज को क्या देता हूं। यदि कुछ देता हूं तब तो ठीक है—वरना मैं केवल शब्दमेधी हूं केवल बातें बनाने वाला हूं और कुछ नहीं आर्य समाज को इस समय बातें बनाने वालों ऐसे मेधियो की आवश्यकता नहीं अपितु जीवन मेधियों की जरूरत है। अब तो श्रद्धा की अञ्जलियां देने वाले नहीं चाहिएं किन्तु जीवन की अंजलि देने वाले चाहिएं। तभी कुछ काम हो सकेगा।



सच्चा योगी महात्मा हंसराज

[प्रो० ब्रह्मदत्त शर्मा, डी० ए० वी० कालेज, जालन्धर]

कितना पुनीत तथा महत्वपूर्ण दिन था १९ अप्रैल १८६४, जिस दिन पंजाब के प्रसिद्ध नगर होशियारपुर से दो तीन मील के अंतर पर स्थित ऐतिहासिक कस्बा बजवाड़ा मे पूज्य लाला चूनीलाल भल्ला के घर सूर्योदय की प्रथम किरण के साथ ही उनकी धर्मपत्नी ने एक तेजस्वी बालक को जन्म दिया था। उस अवसर पर, जो अड़ोस-पड़ोस की जान पहचान वाली कुछ महिलाएं इकट्ठी हो गई थी, उनमे से एक बुढ़िया ने नवजात शिशु की माता को सम्बोधित करते हुए कहा था, 'भगवान गऊ मा की सेवा करते तुझे यह बालक मिला है। बड़ा सुलच्छना है यह। जैसे गाय सूखा घास खाकर अमृत जैसा दूध देती है वैसे ही यह बालक देश की निष्काम सेवा करेगा। गाय की भांति ही परोपकारी देश हितैषी और जाति का रक्षक होगा।' इस घटना को घटित हुए १०५ वर्ष बीत गए हैं। कौन जानता था कि बूढ़ी मा की यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य सिद्ध होगी। ऐसी बाते तो हर किसी के जन्म पर कह दी जाती हैं। परन्तु हंसराज तो एक असाधारण प्रतिभा तथा योग्यता लेकर अवतरित हुए थे। उन्होंने आत्मोत्सर्ग-पूर्ण अपने जीवन से उस वृद्धा की उक्ति को अक्षरश सत्य सिद्ध कर दिया।

महात्मा हंसराज के जन्म के समय देश की परिस्थिति बड़ी विकट थी, जनता मे अशिक्षा का बोलबाला था, कुरीतियां, पौराणिक विचारधारा, छूतछात, ऊंच नीच का भेदभाव, आपसी फूट आदि दुर्गुण एवं दुर्व्यसन लोगो को घेरे थे देश गुलाम था। उस निराशा-पूर्ण अवस्था में यदि देव-दयानन्द ने देश की दुरवस्था को देखकर उसका निदान करके इस रोग का उपचार करने की चेष्टा की, तो उन का घोर विरोध किया गया। फिर भी उन्होंने बहुत-सा देशो द्धार का कार्य करके जाति की दुरवस्था को सुधारने का प्रयास किया तो उन्हें अपनोंने ही जहर पिलाकर उपकारकको मौत की गहरी नींद सुला दिया। देश की डगमगाती नैया को दयानन्द के रूप मे जो एक केवट मिला था उसे नैया के सवारो ने ही नदी मे धकेल दिया। और जब उन्होंने देखा कि केवट हीन हिंदू समाज की नैया को सागर की लहरें खा जाने के लिए मुंह बाय बढ़ी चली आ रही है, तब आतंक छा गया। निराशा का घोर अन्धकार चारो ओर फैल गया। चिंतित हिंदू जाति कि कर्तव्य विमूढ होकर बिछड़ने की चेष्टा करने लगी, 'अब क्या होगा।' तभी देव दयानन्द की दिव्य ज्योति से प्रकाश पाकर एक युवक ने इस निराशा को चीरकर नैया की पतवार अपने हाथ मे लेने का निश्चय किया और अपने इस निश्चय को कार्यरूप देने के लिए उसे अपना जीवन बलिदान कर देना पड़ा।

महात्मा हंसराज चाहते तो अपने अन्य समकालीन सांसारिक लोगो की तरह ही उच्च से उच्च पद प्राप्त करके लाखो की सम्पत्ति जुटा लेते, क्योंकि उस समय अंग्रेजी सरकार को सुचारू रूपेण चलाने के लिए अंग्रेजी पढ़े लिखे नव युवको की महती आवश्यकता थी। परन्तु हंसराज तो सच्चे कर्मयोगी थे। उन्होंने तो जाति की निष्काम सेवा करने का व्रत लिया था, अत नाना प्रलोभनो के होते हुए भी वे अपने संकल्प से विचलित न हुये और जाति की दुरवस्था को सुधारने के लिये बलिदान के मार्ग पर अडिग बने रहे। उन्होंने देखा कि हिन्दू युवक अपनी प्राचीन वैदिक संस्कृति तथा धर्म का ज्ञान न होने के कारण ईसाइयो और मुसलमानो के तीव्र प्रचार तथा ईसाई संस्थाओ द्वारा प्रस्तुत आर्थिक सहायता और अन्य प्रलोभनो मे फसकर अपने धर्म से विमुख हो रहे हैं। तब इस प्रबल लहर को रोकने के लिये महात्मा हंसराज स्वयं को रोक न सके और उस तूफान मे कूद पड़े। सारी आयु निर्धनता, तपस्या और

त्यागमे बिताते हुये संसारके कल्याणके धर्म देशऔर जातिकी सेवा का प्रण लिया। होश सम्भालने से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होने हर स्वास के साथ देश से अज्ञान को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। हिन्दू समाज की सुधारो और दुखी, भूकम्प, अकाल, दुर्भिक्ष और महामारी पीडितो की सेवा-सहायता करने के लिए सदैव उद्यत रहे। जीवन के ७४ वर्षो मे से ५८ वर्ष उन्होंने परोपकार मे ही बिताए। महर्षि दयानन्द जी के अमर स्मारण दयानन्द कालेज की स्थापना करके उसे सफल बनाने के लिए उन्होने १८८५ मे अपना जीवन अर्पण किया और एक कौडी भी लिए बिना शीत, आतप, बिमारी दुख, निर्धनता कष्ट क्लेश तथा विरोध की तनिक भी अपेक्षा किये बिना उन्होने आजीवन अपने प्रण को निभाया। उनकी निस्वार्थ सेवाओ और निष्काम प्रयत्नों से उन्हे हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त हुई। कई ईर्ष्यालु प्रकृति के लोग उनकी इस सफलता को देखकर जलने लगे और महात्मा जी के विरोधी बन गये। उनके विरुद्ध कई षडयन्त्र रचे जाने लगे। भ्रान्ति-भ्रान्ति के आरोप उन पर लगाये गये। पर भारत मा का यह सच्चा सपूत शान्त रहा और विरोधियो द्वारा की रही आलोचना प्रत्यालोचना को इस प्रकार सह गया, जिस प्रकार वर्षा ऋतु मे बून्दो के आघात को गिरिराज हिमालय अविचल भाव से सह लेता है। उन्हे लक्ष्य से भ्रष्ट करने के लिये नाना प्रलोभन दिये गये, देश के नेतृत्व का लालच भी दिया गया। राजनैतिक आदोलनो के समय उन्हे यह कर ललचाया गया कि यदि आप इसमे सम्मिलित हो जाएगे तो सारे देश के नेता बन जाएगे। परन्तु इन प्रलोभनो की आधी के बावजूद भी यह धीर वीर अपने पथ से, जिसे इसने न्यायोचित समझ कर एक बार चुन लिया था विचलित न हुआ और होता भी क्यो? जब कि भर्तृहरि की उक्ति 'न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पद न धीराः' उनके सामने थी। वास्तव मे मनुष्य की परीक्षा ही उस समय होती है, जब कि मार्ग चिकना हो और सावधानता से चलने पर भी पैर फिसल जाने की सभावना प्रतिक्षण बनी रहे। क्योकि अनुकूल परिस्थिति मे कार्य कर गुजरना उतना महत्व नही रखता, जितना प्रतिकूल हालात मे! भारवि के कथन 'विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतासि त एव धीराः' को सार्थक करते हुए इस महापुरुष ने अपने प्रण का पालन किया। इस निष्काम कर्म योगी की जीवन-दीपक के समान स्वय तिल-तिल जल कर दूसरो को प्रकाश देता हुआ निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देता है। आशा है उनके अनुयायी उनके जन्म दिन पर आदर्श जीवन से मिलने वाले सन्देश को क्रियात्मक रूप मे ग्रहण करके उन्हे सच्ची श्रद्धाजली अर्पण करेंगे।

परम त्यागी महात्मा हंसराज जी

[श्री मथुरा दास, नवाकोट, अमृतसर]

इस असार ससार में लगभग दो करोड मनुष्य रहते है परन्तु इनमे से बहुत थोडे ऐसे पुरुष होते हैं, जो अपने त्याग, तपस्या तथा महान कार्य से इस ससार से जाने के पश्चात भी अपना नाम अमर कर जाते हैं। उनमें से ही हमारे पूज्य महात्मा हसराज जी भी है। एक छोटे से ग्राम मे हुआ, छोटी आयु मे ही पिता जी साथ छोड़ गए, लाहौर मिशन स्कूल मे विद्या प्राप्त की। स्वामी दयानंद जी के स्वर्गारोहण के पश्चात लाहौर आर्यसमाज के अधिकारियो ने स्वामी दयानन्द जी की स्मृति मे विद्यालय खोलने का निश्चय किया ताकि महर्षि स्वामी दयानन्द जी का कार्य जो वह अधूरा छोड़ कर चले गए हैं उसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया जा सके।

उन दिनों लाला हसराज जी ने बी ए पास किया था और पजाब भर मे द्वितीय रहे थे। आप भी उस सभा मे उपस्थित थे जिसमे स्वामी दयानन्द जी की स्मृति मे कालेज खोलने का प्रस्ताव हुआ था, परन्तु आपने देखा कि धन इतना एकत्तर नही हो रहा जितने से कि कालेज चल सके। यह वह समय था जबकि केवल एक ईसाइयो के कालेज के, पजाब भरमे और कोई कालेज न था और फिर उस समय (१८८६ ई० मे) पजाब आज का कटा फटा पजाब न था यह पजाब पेशावर से कराची तक देहली से शिमला की दूर की पहाडियो तक फैला हुआ था उस समय कालेज खोलकर और फिर उस समय कालेज खोलकर ओर फिर उस समय उसको चलाने के लिए योग्य प्रिंसीपल की भी आवश्यकता थी (इस समय के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद खालसा कालेज अमृतसर में खुला परन्तु उन्हे कितने वर्ष अग्रेज प्रिंसीपल रखना पडा था) इस समस्या मे को सारे अधिकारी विचार रहे थे। लाला हसराज जी अभी एक नवयुवक ही थे परन्तु विवाह हो चुका हुआ था। उनके मन मे भी इस समस्या के हल करने का विचार आया और कुछ दिन विचार करने के पश्चात उन्होंने सोचा कि यदि मैं अपनी अवैतनिक सेवाए कालेज के लिए दे दू तो कालेज खुल सकता है और चल भी सकता है, दूसरा विचार सामने यह भी था कि परिवार का निर्वाह कैसे होगा, इन्ही विचारों को लिए घर आये और अपने बडे भाई श्री लाला मुल्खराज जी भल्ला, जो इन दिनों केवल ८० रुपये मासिक पर सरकारी नौकरी कर रहे थे, उन से अपना विचार प्रकट किया तो उन्होंने उनकी सात्विक वृत्ति को देख कर सहर्ष आज्ञा दे दी और कहा कि यदि आपकी ऐसी उत्तम इच्छा है तो आप इस कार्य को अवश्य करिये और मैं आप को ४० रुपये मासिक जब तक आप अवैतिक कार्य करते रहेंगे देता रहूगा आप सेवा कीजिये।

स्वामी दयानन्द जी महाराज को महर्षि के दरजा तक पहुचाने वाले स्वामी विरजानन्द जी थे और हसराज जी को महात्मा हसराज बनाने वाले उनके बडे भाई लाला मुल्खराज जी भल्ला थे, जिस प्रकार स्वामी दयानन्द जी के नाम के साथ स्वामी विरजानन्द जी का नाम भी अमर हो गया हुआ हे, नहीं तो स्वामी विरजानन्द जी के और भी शिष्य थे जो स्वामी दयानन्द जी के साथ पढते थे जिन के नाम को भी कोई नही जानता परन्तु एक ही ऐसा शिष्य निकला जिसने ससार भर मे धलका मचा दिया और केवल आर्यसमाज ही नही, हिन्दू मात्र ही नही, ससार भर के लोग स्वामी दयानन्द जी की जलाई हुई ज्योति से प्रकाश प्राप्त कर चुके है और कर रहे है, इन्ही स्वामी दयानन्द जी ने ही स्वामी विरजानन्द जी का नाम भी अमर कर दिया है। इसी प्रकार महात्मा हसराज जी को भी यह उत्साह देने वाले उनके बडे भाई श्री लाला मुल्खराज जी भल्ला ही थे जिन्होंने उनकी लगभग २५ वर्ष सहायता की और वह निश्चित होकर कालेज का कार्य करते रहे। इस प्रकार उनके नाम के साथ यदि उनके बडे भाई का नाम न लिया जावे तो यह कार्य अधूरा रह जाता है हम लाला मुल्खराज जी भल्ला के भी आभारी हैं।

महात्मा हंसराज जी ने अपनी सेवाए समाज को दे दी, १८८६ मे स्कूल खुला आपको इसका मुख्याध्यापक बनाया गया दो वर्ष पश्चात इसी स्कूल को कालेज बना दिया गया और आपको दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज लाहौर का प्रिंसीपल बना दिया गया। आपने पूरे २५ वर्ष १८८६ से १९११ तक कालेज की सेवा की और कालेज या समाज से एक पैसा भी नही लिया। आपके त्याग, तपस्या और योग्यता का और उदाहरण कही भी मिलना कठिन है। छोटी-सी आयु और इतना बडा डी० ए० वी० कालेज जिसका मुकाबिला उस समय कोई नही कर सकता था और उनके त्याग और तपस्या से उस समय का लगा यह वृक्ष अब इतना बडा हो चुका है कि जिसकी भारतवर्ष मे ही नही विदेशो मे भी अनेक

शालाएं हैं और करोड़ो रुपये का वार्षिक व्यय इन पर हो रहा है। अब जबकि भारत भर मे अनेक कालेज खुल चुके हुए हैं फिर भी जो श्रेय डी० ए० वी० कालेज की तथा आर्य समाज की संस्थाओं को है वह किसी को भी प्राप्त नहीं है।

मुझे महात्मा हंसराज जी के चरणो मे अनेक बार बैठने का अवसर प्राप्त होता रहा है उनके पास जाने से उनके सात्विक विचारो का मन पर एक विशेष प्रभाव पड़ता था क्योंकि उनके कमरे की, उनके रहने-सहने की सादगी और उनके ऊंचे विचार मनुष्य को प्रभावित किये बिना न रहते थे, कालेज छोड़ने के पश्चात आप आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान बने तो सभा के वार्षिक अधिवेशनों में भी उनके पास बैठने का अवसर मिलता रहा, उनको निकट से देखने पर पता चलता था कि जहा आप तप, त्याग की साक्षात मूर्ति थे वहा धैर्य रखते हुए भी अनुशासन को न तो स्वयं भंग करते थे न ही किसी को भंग करने की आज्ञा ही देते थे।

एक बार आप प्रातः घर से कालेज को जान लगे तो वर्षा बड़े ज़ोर से हो रही थी, छाता लिया, बाहर निकले वर्षा के कारण गली बाजारो मे जल ही जल बह रहा था, बड़ी मुश्किल नजर आई, मन मे विचार आया कि वर्षा कुछ कम हो तो चलेंगे, परन्तु एक दम उसी समय दूसरा सात्विक विचार आ गया कि कालेज लगने का समय होने वाला है, यदि मैं ही देरी से गया तो मैं दूसरो को समय पर आने के लिये कैसे कह सकता हू फिर दूसरी बात यह भी सूझी कि लोग क्या कहेंगे कि वेतन जो नहीं लेता तभी देर से आया है यदि वेतन लेता होता तो कभी ऐसा न करता। इस विचार के आते ही उसी समय पाजामा ऊपर को किया और छाता लगाये जूते समेत दो-दो फुट पानी मे से पैदल चलते हुये कालेज लगने से पाच मिनट पहले ही कालेज में जा पहुंचे। यह था उनका सात्विक स्वभाव जिसे उन्होने स्वयं अपनाया और अपने आचरण से दूसरो को अपनाने का उपदेश दिया।

त्याग की तो वह मूर्ति ही थे—एक बार पुराना-सा कम्बल ओढ़े अपने कमरे मे बैठे स्वाध्याय कर रहे थे कि एक सज्जन पुरुष उनसे मिलने के लिये आये तो उन्होंने जो बात करनी थी वह तो कर ली परन्तु जाते समय उस सज्जन पुरुष के मन मे विचार आया कि इतना बड़ा और ऊचे विचारो का यह महापुरुष और एक फटे-पुराने कम्बल मे बैठा है, वह सज्जन गए और बाजार से एक बढ़िया गरम दुशाला लेकर अगले दिन महात्माजी के पास आये और कहा—महात्मा जी! आपका कम्बल पुराना और फटा हुआ है, कृपया यह दुशाला ले लीजिये, परन्तु महात्मा जी ने उत्तर दिया कि आपका बहुत धन्यवाद है आपने मुझ पर कृपा की है परन्तु मुझे यह पुराना फटा कम्बल ही पसन्द है मैं आपके दुशाले को स्वीकार नही कर सकता, आप इसे ले जाइये। परन्तु सज्जन पुरुष ने बहुत आग्रह किया तो फिर महात्मा जी उन्हे उत्तर दिया कि यदि आपने जरूरी देना ही है तो दे दीजिये परन्तु यह कालेज को दिया जावेगा मैं नहीं रखूंगा। यह है सच्चा त्याग।

इसी प्रकार एक बार भ्रमण करनेके लिये आप काश्मीर गए वहां भ्रमण करते हुए जब श्रीनगर पहुचे तो वहां आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था, समाज के मन्त्री महात्मा जी से उत्सव मे व्याख्यान देने के लिये प्रार्थना की, महात्मा जी ने स्वीकार किया और उत्सव मे दो तीन व्याख्यान दिये, उत्सव की समाप्ति पर मन्त्री महोदय ने महात्मा जी को दो सौ रुपया मार्ग व्यय के लिये दिया परन्तु महात्मा जी ने उत्तर दिया कि मैं समाज के उत्सव पर तो नही आया था मैं तो यू ही भ्रमण करते-करते आ गया हू। इस कारण मेरा आप से मार्ग व्यय लेने का अधिकार नहीं है परन्तु मन्त्री जी ने बहुत विवश किया तो महात्मा जी ने कहा कि यदि आप की यही इच्छा है तो रुपया दे दीजिये परन्तु यह वेद प्रचार फण्ड में दे दिया जायेगा मैं स्वयं नहीं लूंगा। इसे कहते हैं सच्चा त्याग।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण आप के जीवन मे तप, त्याग, अनुशासन, दयालुता, धैर्य आदि आदि के मिलते हैं जो लिखे नही जा सकते, जब आप के बडे लडके श्री बलराज जी को षडयन्त्र किस मे पकड लिया गया तो उन के शिष्यो ने, बडे-बडे धनवानो ने तथा सभाओ ने उन को रुपया देना चाहा ताकि वह केस लडें परन्तु आप ने 'किसी से एक पैसा भी नही लिया, लाला लाजपत राये ने एक बहुत बडी राशि को भेट की परन्तु आप ने वह स्वीकार नही की।

आप सादा जीवन, ऊचे विचार वाले सच्चे वैदिक धर्मी थे आप पूरी लगन वाले मिशनरी थे और फिर दूसरों को उपदेश, शिक्षा देने से पहले उन्होंने वह सब कुछ अपने मे धारण कर रखा था यही कारण था कि जो बात भी उन्होने किसी से कही उसका पूरा प्रभाव दूसरो पर पडा। इस पतन समय मे ऐसा महा-पुरुष मिलना कठिन है जिसकी अन्य जाति वाले भी भी प्रशसा करे।

सर सय्यद अहमद जिन्होंने मुसलिम यूनी-वर्सिटी अलीगढ बनाई थी, डी० ए० वी० कालेज लाहौर देखने आए तो देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने कहा कि 'हमारी यूनीवर्सिटी के भवन आपके भवनो से बहुत अच्छे है हमारा कालेज का हर प्रकार का सामान आप से अच्छा है परन्तु अफसोस कि हमारे पास कोई हसराज नही।'

एक सनातनधर्म कालेज के उत्सव मे जहा महात्मा हसराज जी भी उपस्थित थे महाराजा जम्मू व काश्मीर ने महात्मा जी को सम्बोधित करते हुए कहा था कि 'महात्मा जी इन को भी एक हसराज दे दे।

आओ ! आज उनके जन्म-दिन पर हम उनको हार्दिक श्रद्धाजलि भेट करे और प्रभु से प्रार्थना करे कि प्रभु हमे, हमारे कालेजो के अधिकारियो, समाज के प्रचार करने वाली समाओं के अधिकारियो को शक्ति प्रदान करे कि हम सब उनके बताए हुए मार्ग चल कर देश और जाति का उद्धार कर सके।



युवक-स्तम्भ

क्रान्तिकारी हंसराज

[करनैल सिह 'विद्यार्थी' विद्यावाचस्पति]

प्रत्येक देश मे कुछ लोग ऐसे जन्म लेते है जिनका स्वभाव, काम, विचार और लोगो से अलग ही होते हैं। उनका देखना और आम लोगो का देखना उनका पढना और लोगो का पढना अलग-अलग ही होता है। ऐसे लोग प्रत्येक युग मे होते हैं और उनका कार्य औरो से अलग ही होता है।

आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती भी अपने समय के एक महान् क्रातिकारी थे। ऋषि का का देखना, उसका कार्य करना और लोगो से निराला ही था। लोग तो रात को सोकर आराम करते थे पर महर्षि रात को भी लोगों की भलाई के बारे मे सोचता रहता था। अपने अल्प से समय में ऋषि ने बहुत कुछ कर दिखाया। पर फिर भी सारा-काम न कर पाए थे। उसके स्वप्न अभी बाकी थे। दिल की तमन्ना अभी बाकी थी जिनको पूरा करने वालो मे महात्मा हसराज का नाम प्रमुख आता है।

महात्मा हसराज के सारे जीवन को देखने वालोको यह सहस कहना पडेगा कि हसराज एक महान् क्रातिकारी था और उसने वो सब दुख, कष्ट सहे जो एक क्रातिकारी को सहन पडते हैं। एक नवयुवक, एक इसाई स्कूल मे अपने देश, धर्म, सभ्यता पर अत्याचार न देख सका और मुख्याध्यापक से झडप हो गई जिसके कारण कुछेक दिन

स्कूल से बाहिर भी रहना पड़ा पर अपनी लग्न के मस्त हुए इस युवक ने अपनी विचार धारा से मुख्याध्यापक को प्रभावित कर ही लिया। क्या यह क्रान्ति नहीं है? असल में देखा जाए तो यहां से ही क्रांति शुरू होती है।

महर्षि दयानन्द के सम्पर्क में आने के बाद हंसराज की क्रांति में **सोने पर सुहागा** हो गया। फिर क्या था हंसराज जो पहले मुन्शी राम था अब महात्मा हंसराज बन गया अर्थात दयानन्द के प्रचार में अपने तन, मन, धन को लगा दिया। हंसराज पहले क्रान्ति की अग्नि मे स्वयं जला स्वयं अपने परिवार को जलाया। उसके बाद क्या हुआ, लोग जलती हुई शमा पर परवानों की तरह आने लगे। और इस तरह से उस दीवाने ने, परवाने ने, मस्ताने ने स्वयं को जला कर दयानन्द के स्वप्नों को साक्षात चरितार्थ कर दिया। उसकी लगाई हुई **डी. ए. वी. संस्थाएं** रूपी आग अब भी जल रही लोग अब भी इस से रोशनी ले रहे हैं। आओ हम भी इस क्रान्ति में अपना हिस्सा डाले, अपने कुछ सुखों की इस यज्ञ में आहुति डाले।

—करनैल

देश-प्रेमी महात्मा

[श्री सत्यप्रिय शास्त्री, सिद्धांत शिरोमणि उपाचार्य दयानन्द ब्रह्ममहाविद्यालय हिसार]

महात्मा हंसराज जी ने अपने जीवन में राष्ट्र की महती सेवा की, सामान्यतः लोग उनकी सेवाओं को केवल मात्र शिक्षा-क्षेत्र तक ही सीमित करके उनके प्रति अपनी न्यायवृत्ति का परिचय प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं, मैं तो उन्हें अपने आचरण से भारत राष्ट्र के युवको के अन्तःकरण मे राष्ट्रिय स्वाधीनता की ज्वाला प्रज्वलित करके उन्हें स्वातन्त्र्य-समर में जूझने को प्रेरित करके राष्ट्र-जागरण के मन्त्र-दाता के रूप में देखता हूं, दयानन्द कालेज पद्धति के द्वारा युवको को तत्काली न विद्याए ग्रहण कराते हुए भी, उन्हें अपने धर्म का ज्ञान कराकर देश तथा धर्म के प्रतिश्रद्धालु बनाकर लार्ड मैकाले की कुटिल-नीति का चौराहे पर भण्डा-फोड करके उन्होंने उस समय देश स्वातन्त्र्य के मार्ग को प्रशस्त करने का महती ये कार्य किया, कालेज मे धर्म-शिक्षा का पिरीयड महात्मा जी स्वयं पढाया करते थे, उस अध्यापनकाल मे ही वे युवको स्वाधीनता के भाव भरा करते थे, 'न शूद्रराज्ये निवसेत' की व्याख्या करते हुए कहा करते थे कि अधार्मिक राजा के राज्य मे अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति न बनावे क्योंकि उससे मोह हो जावेगा तो राजा की अधार्मिकता का विरोध नहीं कर सकेगा अतः उस अवस्था मे घरबार छोड़कर विद्रोही हो जावे, और ऐसे राजा के अन्याय के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर देवे, महात्मा जी के इन्हीं उपदेशों का प्रभाव था कि हमारे इन कालेजों से बगावत कर झण्डा हाथ मे लेकर बृटिश सरकार को ललकारने वाले युवकों की अनेक टोलियां निकली, लार्ड हार्डिंग पर बम फेंककर भारतीय शौर्य का परिचय देते हुए सहर्ष फांसी के फन्दे चूमने वाले आर्य वीर भाई बालमुकुन्द महात्मा जी के शिष्यों में से ही थे, और की क्या कहें स्वयं महात्मा जी के बड़े सुपुत्र श्री बलराज अंग्रेज-सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने के अपराध में फांसी की कोठरियों में पड़े भयकर यातनाएं सहते रहे, परन्तु महात्मा जी ने न केवल उन्हें इस मार्ग से न तो रोका ही और ना ही अनुत्साहित किया, जबकि उसके पीछे उसकी माता अपने प्यारे पुत्र का मुख देखने की अपूर्ण इच्छा लेकर स्वर्ग सिधार जाती है, पाठको ? कल्पना करो उस हृदय-द्रावक तथा धैर्य डिगा देने वाली घड़ी की, क्या महात्मा जी का किसी से कम त्याग था।, जिसने कि एक साथ ही अपनी जीवनसंगिनी और अपने पुत्र को भी गंवा दिया था, संस्थाओं के जीवन मे अनेक उतार-

चढ़ाव आते हैं; जब डी ए वी स्कूल प्रारम्भ किया गया, तब स्कूल की मान्यता का प्रश्न सामने आया परन्तु स्वाभिमानी हंसराज की मान्यता के लिए विदेशियो के आगे गिडगिड़ाना अच्छा नही लगा, अत स्कूल का प्रथम-वर्ष ही जब मैट्रिक का अत्युत्तम परिणाम आया तब एक उच्चशिक्षाधिकारी ने महात्मा जी को बधाई का पत्र लिखा, उसके उत्तर मे महात्माजी ने धन्यवाद का पत्र लिखा, उनके उसी पत्र को प्रार्थना-पत्र मानकर स्कूल को सरकारी मान्यता प्रदान कर दी गई थी,पाठको! यह है उस मानधनी महात्मा के गौरव तथा स्वाभिमान की कहानी, कालेज के छात्रावास मे आर्य कुमार-सभा बनी हुई थी, महात्मा जी उस मे बहुत ही रुचि लिया करते थे, उन्होने उन छात्रो मे इस अदा तक राष्ट्रियता भर दी थी कि एक बार किसी विदेशी साबुन कम्पनी का एक एजेण्ट वहा आया और उन छात्रो मे मुफ्त साबुन बांट कर अपना प्रचार करने लगा, परन्तु राष्ट्रीयता के रगे उन आर्य वीर-छात्रो ने उस के सामने ही साबुन को विदेशी कह, घृणा प्रकट करते हुये फेक दिया और मूल्य के स्वदेशी साबुन खरीद कर प्रयोग किया, महात्मा जी की प्रेरणा से ही उस युग सर्वप्रथम एक आर्य समाजी ने आर्य समाज अनारकली मे स्वदेशी वस्त्रो की दुकान खोली थी, पाठको को यह ध्यान रहे कि कांग्रेस ने तो सर्वप्रथम सन् १९२० या २१ मे खद्दर को अपनाया था, उस से पूर्व तो कांग्रेस के मंच पर विदेशी सूटबूटो की मानो होड लगी रहती थी, महात्मा जी स्वय जीवन भर सवदेशी वस्त्रो का ही प्रयोग करते रहे, उन के बाद होने वाले प्रधानाचार्यो ने भी उन की इस परम्परा को स्वाधीनता-प्राप्ति पर्यन्त चालू रखा, उस समय कालेज के कर्मचारी और प्रबन्धकर्त्री सभा के अधिकारियो का पारस्परिक जो पत्र-व्यवहार होता था। उस मे अन्त में आप का धर्मबन्धु, या आप का राष्ट्र-बन्धु यह लिखा जाता था, उस समय कालेज सरकार से किसी भाति की भी आर्थिक सहायता नहीं लेता था, कालेज के प्रोफेसरो मे एक भी अग्रेज नही था कालेज मे सारे विषय हिन्दी में ही पढाये जाते थे, विशेषकर इतिहास पढाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि उसमे युवा छात्रो के मन मे राष्ट्र के प्रति अनुराग तथा धर्म के प्रति विश्वास एव दृढ आस्था उत्पन्न करने वाला अश अधिक मात्रा मे मौजूद होना चाहिये, इसीलिये देवता स्वरूप भाई परमानन्द जैसे राष्ट्र सेवी पुरुष वहा इतिहास के अध्यापक होते थे, दीक्षान्त समारोह तथा वार्षिकोत्सवो के अवसरो पर सरकारी अधिकारियो को प्रतिष्ठित करके अपनी राजभक्ति का पदर्शन करने का तो नामो-निशान भी न था, जबकि अलीगढ का मुस्लिम कालेज वहा के एक अग्रेज प्रिसिपल के इशारो पर नाच-नाच कर ही आगे बढा है, शिक्षा क्षेत्र मे यह दयानन्द कालेज अग्रेज सरकार के प्रति एक महान असहयोग के रूप मे विद्रोह सिद्ध हुआ, वहा के छात्र कितने स्वाभिमानी और राष्ट्रभक्त थे यह निम्न घटना से अनुमान कर सकते है एक समय छात्रावास के छात्र पक्तिबद्ध हो आर्यसमाज के सत्सग मे जा रहे थे, तब एक अग्रेज पुत्र अपना घोडा दौडाता आया और पक्ति को छिन्न-भिन्न करता हुआ चला गया, दूसरे पुन जब उसने ऐसी कुचेष्टा करने का साहस किया तब एक आर्य वीर छात्र ने अपना देशी जूता निकाल कर जोर मे उसके मुह पर मारा जिससे कि उसके गाल पर जूते मे जडी तरनाल का अर्ध-चन्द्राकार चिह्न बन गया, दूसरे दिन राष्ट्रगौरव ला० लाजपतराय जी ने दोनो मे समझौता कराया, जिसमे दयानन्द कालेज के छात्र ने उस अग्रेज पुत्र को लिखकर दिया कि मैंने तुम्हे देशी जूते से मारा है, इसका मुझे अत्यन्त ही खेद है, पाठक ! क्या शक्ति सम्पन्न अग्रेज के मुह पर जूता मारने का ऐसा उदाहरण और किसी सस्था के पास है, यह कालेज अंग्रेजो की आखो मे किस तरह खटकता था, यह बात पाठक निम्न घटना से अनुमान लगा सकते है, २ —एक बार प्रो० दीवान चन्द जी (पश्चात प्रसिद्ध दार्शनिक प्रि . दीवानचन्द जी

एम : ए :) लाहौर मे रावी के तट पर भ्रमण करने गये तब उनको इस प्रकार स्वेच्छा से भ्रमण करते हुए देख कर नाभा के महाराज को अपनी शान मे फर्क पडता नजर आया, तो उसने दीवानचन्द जी से पूछा तुम कौन हो और कहां काम करते हो, इनके मुख से दयानन्द कालेज का नाम सुनकर वह बोला, कि तुम आर्यसमाजी अपने आपको बहुत बडा समझते हो जाओ हसराज को कह देना कि अंग्रेजो से न टकराए, क्योकि तुम सारे आर्यसमाजियो के लिए तो मुझ अकेले की फौज ही काफी है, पाठकवर्ग ! इस घटना की छत्रछाया मे दयानन्द कालेज के प्रति ब्रिटिश सरकार की सशक मनोवृत्ति का अनुमान लगा सकते हैं, यही एकमात्र कारण प्रतीत होता है कि जब कभी स्वार्थी नेता के आदोलन चले तभी हमारी ये सस्थाएं उस समय सर्वप्रथम सरकार का क्रोध-पात्र बनी, १९१९ के भयानक मार्शल ला के समय इस कालेज के प्राध्यापको तथा छात्रो को कई २ मील पैदल कडकती धूप मे चलाने की कठोर सजाए दी जाती थी, ला : लाजपतराय जैसे प्रखर राष्ट्रवादी का सम्बन्ध तो जन्म से ही इसके साथ था, यही कारण था कि जब सांडर्स को मारकर पजाब केसरी के अपमान का प्रतिरोध लिया तब वीर भगतसिंह के दल को आत्मरक्षार्थ छिपने का स्थान देने का गौरव इसी राष्ट्रप्रेमी सस्थाको प्राप्तहै, सन १९४२ के भीषण समरमें तो इस कालेजका योगदान अद्भुत एव अविस्मरणीय है, जबकि अग्रेज सरकार की पुलिस ने कालेज के छात्रावास में घुसकर गोली चार्ज किया था, और इसी राष्ट्र-प्रेम के कारण वह स्थल एक लम्बे अरसे तक राष्ट्रभक्त जनता के लिए तो शर्वस्थली के सदृश बना रहा, क्योंकि वहा के छात्रावास की दीवारो पर बर्बर पुलिस की गोलियो से जख्मी हुए देशनिष्ठ छात्रो के खून के धब्बे-उनकी उत्कृष्ट देशभक्ति के मौन इतिहास को अकित किए हुए थे, उस समय उक्त कालेज के प्रो० भगवानदास जी (वर्तमान प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री प्रि० भगवानदास जी अम्बाला) को छात्रावास में बडी बेरहमी से पशुओं की भांति पीटा था, हमारी ये संस्थाए आरम्भ से ही राष्ट्र-निष्ठा, धर्म स्नेह, आत्मगौरव को जनमन जागृत करने का केन्द्र रही हैं, मैं समझता हूं कि इसके मूल में राष्ट्र-प्रेमी महात्मा हसराज का तप-त्याग, भावना और उद्देश्य काम कर रहा था, यही कारण था कि इसके पढे-लिखे सरकार के प्रलोभन देने पर भी मोटी-मोटी सरकारी नौकरियो मे न जाकर अत्यन्त अल्प वेतन पर अपने कालेजो मे सेवा करते थे, इससे एक तो सरकार योग्य अधिकारियो से वचित हो जाती थी, दूसरे उन युवको में देश-प्रेम के भाव जागृत रहते थे, यह थी महात्मा जी दूरदर्शिता, आज आवश्यकता है इस पवित्र पर्व पर हम अपने अन्दर राष्ट्र प्रेम, धर्मस्नेह, के भाव को धारण करें, उस समय पराधीनता काल मे महात्मा जी ने हमे बचाया, परन्तु पराधीनताकाल मे महात्मा जी ने हमे बचाया, परन्तु आज तो स्वतन्त्र होते हुए हम उस परित्यकत मार्ग की ओर दौड़े जा रहे हैं।

महात्मा हंसराज जी और भावी नागरिक

[श्री प्यारे लाल जी बेरी M. A. B. T. प्रिंसिपल सईदास Hr. Sec स्कूल जालन्धर]

भावी नागरिकों से मेरा अभिप्राय विद्यार्थियो से है। डी. ए. वी. संस्थाओ के सचालक तथा लाहौर डी. ए. वी. कालिज के प्रथम प्रिंसिपल रहने के नाते पूज्य महात्मा जी का विद्यार्थियो से पर्याप्त सम्पर्क रहा है। महर्षि दयानन्द के विचारों के अनुसार पूज्य महात्मा जी भी विद्यार्थी जीवन को त्याग और तप का जीवन समझते थे अर्थात विद्यार्थी गृह त्याग करके विद्या प्राप्ति- रूपी तप मे जुट जाता है। इस काल के सांसारिक झमेलों से

उसे कोई मतलब व सरोकार नही होता। यदि अन्य क्षेत्रों में वह विचरण करेगा तो उसका ध्यान बट जायेगा और अनेक बातें उसके दिमाग मे चक्कर लगाती रहेंगी, फलतः वह एकाग्रचित्त होकर विद्या प्राप्त नही कर सकेगा। भलीभांति विद्या या ज्ञान प्राप्त न कर सकने के कारण वह भावी जीवन मे पूर्णतया सफल नही हो सकेगा। जिस मकान की नीव कच्ची रह जाए वह शीघ्र गिर जाता है। विद्यार्थीकाल मनुष्य जीवन की नीव है। यह नीव ज्ञान अथवा विद्या से सुदृढ होगी तो मनुष्य का जीवन आदर्श बन सकेगा।

आज का विद्यार्थी त्याग और तप का जीवन नही बिता सकता। ऋषि प्रणाली छिन्न-भिन्न हो जाने से आज का विद्यार्थी घर अथवा नगर मे रह कर विद्या प्राप्त करता है, आज की परिस्थितिया ही ऐसी बन गई हैं कि उन मे त्याग का प्रश्न ही नही पैदा होता। आज के नगरो की चकाचौंध ने विद्यार्थी को शृगारप्रिय बना दिया हैं, वह अपने को सजाने मे पर्याप्त समय नष्ट कर देता है। शीशा-कघी प्राय विद्यार्थी की जेब मे देखे जा सकते हैं। ये बाते विद्या प्राप्ति मे बाधक सिद्ध हो रही हैं। रही-सही कमी सिनेमा और रेडियो ने पूरी कर दी है।

इसके अतिरिक्त वह दल बनाकर विविध सामाजिक क्षेत्रो में भाग लेता-लेता राजनीति के क्षेत्र मे भी जा पहुंचा है। इससे राजनीतिक आंदोलनो मे चाहे प्रत्यक्ष-रूप मे सफलता प्राप्त हुई हो किंतु राष्ट्र की एकता को धक्का ही पहुंचा है। यह बात प्राय लोगो के मन मे घर कर गई है कि बहुमत को सदा सफलता प्राप्त होती है। आजका युग ही ऐसा है, चाहे उद्देश्य गलत हो अथवा सही, यदि प्रोपेगण्डा मे आपने बहुमत बना लिया तो सफलता अवश्यभावी है। राजनीति के खिलाडी विद्यार्थियो को अपने पक्ष मे करके अपना उल्लू सीधा करते हैं और शिक्षा से जी चुराने वाले तथा भविष्य पर दृष्टिपात न करने वाले विद्यार्थी उनके आदोलनो में बढ़कर भाग लेते है। कांग्रेस के आदोलनो को विद्यार्थियो ने सफल बनाया किंतु उनका भविष्य धूमिल बनकर रह गया, वह उच्च-शिक्षा नही प्राप्त कर सके। इस बात की गहराई तक पहुचने मे यह समझना कठिन नहीं कि विभिन्न क्षेत्रो विशेषकर राजनीतिक क्षेत्र मे भाग लेने वाला विद्या प्राप्ति के लक्ष्य मे भटक जाता है।

पूज्य महात्मा हसराज जी भी इसी बात पर बल देते थे कि विद्यार्थी को राजनीति मे पृथक् रहना चाहिए और विद्यालयो को राजनीति का अखाडा नही बनाना चाहिए! पूर्णतया शिक्षित होने से पहले कोई भी व्यक्ति राजनीति की चालो को नही समझ सकता। महात्मा गाधी राजनीति मे सत्य को स्थान देते थे, पर प्राय लोग राजनीति को धोखा-धडी, फरेब, झूठ, छलकपट की मण्डी समझते है, अत उनकी सफलता सामयिक अथवा अस्थायी होती है। आज यदि हम पूज्य महात्मा हसराज जी को सच्ची श्रद्धाजलि देना चाहते है, तो आर्य सस्थाओ के विद्यार्थियो को, राजनीति मे पृथक् रखकर, उन्हें वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त करने की ओर प्रेरित करे।

आदेश महात्मा की याद

[श्री पडित चन्द्रसेन आर्य हितैषी उपदेशक सभा, सोनीपत वाले]

धर्म बन्धुओं वर्तमान युग मे विशेष कर भारत मे अनेकों सुधारक महात्मा तथा सन्त हुए। जिन्होने युगो को बनाया है जैसे कि युग प्रवर्तक ऋषि दयानन्द सरस्वती हुए इन्होंने जो देश को चेतना दी वे जगत विख्यात है ही। कुछ काल बाद तपस्या और त्याग की आदेश मूर्ति आर्य समाज के क्षेत्र मे उतरी जिन्होने अपनी

जवानी आर्य समाज के प्रचार कार्य क्षेत्र में लगा दी जीवन की अन्त घडियो तक भारत जैसे विशाल देश को शिक्षा वेद प्रचार का जाम पिलाने मे लगे रहे। वे थे हमारे आदेश महात्मा हसराज श्री महाराज जिनकी हम याद तथा जन्मदिन मनाने चले है। महात्मा जी का जीवन एक विशाल ग्रन्थ है जिस ओर से देखे उस ओर से हमे शिक्षा मिलती है, महात्माओ का जीवन मिठास से भरा हुआ होता है। महर्षि दयानन्द के परलोक सिधारने के कुछ ही दिन बाद महात्मा हस राज जी सरीखे नवयुवको ने महर्षि की याद में डी ए वी कालिज रूपी सस्था को जन्म दिया ये सम्भवत सन् १८८३ की बात होगी। इस सस्था को ऊचे शिखर पर ले जाने के लिए हमारे प्यारे महात्मा ने कमाल की भूमिका निभाई, सारे देश मे डी ए वी सस्थाओ का जाल सा बिछने लगा विदेशो मे इस कार्य की धाक बैठी-- सरकारी अग्रेजी पादरियो की सभी योजनाए विफल हो गई। महात्मा जी यही तक न रुके बल्कि आगे बढे वेद प्रचार से काय को बढावा देने के लिये आर्य प्रादेशिक

ईश्वर की महिमा

[श्री सुरेन्द्र पाल शर्मा, व्यवस्थापक आर्य जगत, जालन्धर]

ईश्वर की महिमा का नही पारावार है,
देख के उसकी लीला आता विचार है।

उस की शक्ति मे यह नदिया और दरिया बने है।
उस की ही से यह ऊचे आज पहाड खडे हैं॥
उसकी शक्ति से बना ससार है बना ससार है।
आज भी है और आगे भी रहेगा, ईश्वर ॥

चन्दा की चादनी मे उस को आज पाते हैं।
सितारे भी आज हमे उसी की याद दिलाते है॥
सूर्य की रौशनी मे उसी का प्रकाश है।
आज भी है और आगे भी रहेगा, ईश्वर ॥

फूलो की सुगन्धी भी हमे यह बताती है।
ईश्वर की शक्ति भी उसी म आन समाती है॥
देख के उस की महिमा मन लाचार है, मन लाचार है।
आज भी है और आगे भी रहेगा, ईश्वर ॥

इन गहरी नदियो मे उसी की छाप नजर आती है।
इन ऊंचे पहाडो की हवा जब मन को भाती है॥
तभी "शर्मा" कहता है वह निराकार है।
आज भी है और आगे भी रहेगा ईश्वर ॥

प्रतिनिधि सभा की स्थापना की लगभग ८० वर्षों से यह सभा कार्य कर रही है क्या देश क्या विदेश सभी देशो मे वेद के प्रचारार्थ पग रखे । जहा कही भी आकाल पडा वहां ये महात्मा पहुचे जहा भुचाल आया वहा ये पहुचे सभा के प्रचारक पहुचे—भीलो में आदिवासियो मे सभी छोटी जातियो मे सुधार का कार्य इस प्यारे महात्मा ने किया। यू कह दू शिक्षा और वेद-प्रचार ये मुख्य कार्य इन्होंने किये शिक्षा का कार्य रात-दिन बढ़ता जा रहा है। स्वर्गवासी ला० मेहरचन्द जी महाजन जैसे सज्जनो न अपना जीवन इधर लगाया, आज माननीय डा० जी० एल० दत्ता साहब तथा माननीय ला० सूर्यभानु जी आदि इस कार्य को योग दे रहे हैं। परन्तु दुख है महात्मा जी का वेद-प्रचार कार्य बिल्कुल शिथिल है इस ओर किसी का ध्यान नही जाता वर्तमान अधिकारी जिनके हाथ मे सभा की बागडोर है इन्हें और महात्मा जी के सभी प्रेमियो को चाहिए आर्य प्रादेशिक सभा जो केवल धर्म प्रचार के लिए बनी थी सभा को सुदृढ बनाया जाए, आज देश मे इसाईयत आदि फिर फैल रही है। कही जात-पात का प्रश्न है कहीं भाषा का, कही गौ रक्षा का, इन सब की औषधि आर्य प्रादेशिक सभा है इसमे आर्थिक कमी के कारण प्रचारक कम है। ये कार्य बहुत ही अधूरा पडा है यदि आदर्श महात्मा की याद, मनाते हो तो प्रतिज्ञा करो इस धर्म प्रचार के कार्य को ढीला नही होने देगे यही प्यारे आदर्श महात्मा की याद है। ★★

कोई सुराग नहीं मिला

मेरे प्रिय युवक बेटे दयानन्द एम ए को साधुआश्रम होशियारपुर से लापता हुए हुए पूरे पांच महीने हो गए है, अभी तक बडी कोशिश करने पर भी किसी प्रकार का उसका सुराग नही मिल सका। अपने पुराने प्रचारक उपदेशक के पढे-लिखे युवक बेटे को यदि सारा समाज व सभाए सरकारी अधिकारियो व पुलिस पर जोर देकर तलाश न कर सकी तो उपदेशक के परिवार के दिल पर समाज की शक्ति का क्या प्रभाव पडेगा ? पता नही वह युवक बेटा दयानन्द जीवित भी है या उसके जीवन को समाप्त कर दिया गया है ? मेरा सारा परिवार तो रो लिया। अब तो आखो के आसू भी सूख गए हैं। क्या आर्यसमाज का यह युवक इसी प्रकार ही समाप्त हो जाएगा। उसका पता तक भी न लग सकेगा ? क्या होशियारपुर के साधुआश्रम से कोई भी पूछने वाला नही है ? बेटे के जीवन के साथ जो हुआ सो हुआ यह तो प्रभु ही जानते हैं—किंतु मुझे उसकी जीवन लीला का पता तो लगना चाहिए। —दुखी-त्रिलोकचन्द्र शास्त्री

जालन्धर

पर सेवा ही जीवन है

महात्मा हंसराज जी के जीवन से सम्बन्धित

[सुरेन्द्रपाल शर्मा व्यवस्थापक आर्य जगत्]

जननी जने तो भक्तजन, या दाता या शूर।
नही तो बांझ भलि काहे गंवावे नूर ॥

उपरिलिखित पद्य मे कवि ने अपने मन के सब विचार पूर्ण रूप से हम लोगो के समक्ष रखे है। इस विशाल संसार में प्रतिदिन लाखों मनुष्य जन्म लेते हैं और लाखों ही इस ससार से अपना नाता तोड़ते हैं। इन मे से कोई एक ऐसा पुरुष होता है जिसका दुनिया यश गाती है उसके गुणो का गुनगान करती है। मनुष्य की मृत्यु के बाद अगर कोई उसको याद करता है तो उसके सदगुणो या अवगुणो दोनो मे से एक की चर्चा जरूर करता है। अवगुण वाले की तो प्रत्येक स्थान पर निंदा ही होगी। सदगुणो वाला पुरुष मृत्युपरान्त भी यश का भागी बनता है।

ऐसे ही हम लोगो के सामने म० हसराज जी का जीवन है । उनके सदगुणो, देश प्रेम, त्याग, तपस्या का अमिट इतिहास है जो हमे सदैव उनकी मुन्दर शिक्षाप्रद राह पर चलने को उद्यत कर रहा है । इस विश्व मे बहुत कम ऐसे व्यक्ति है जो कि देश धर्म या किसी जाति के लिए अपने जीवन का दान देते है । अपनी-अपनी क्षमता अनुसार थोडा बहुत दान हर कोई प्राणी करता है परन्तु म० हसराज का जीवन दान तो स्वर्ण अक्षरो मे लिखने योग्य है । जब तक यह ससार रहेगा म० हसराज जी का नाम हमारे लिए इस ससार के लिए ज्योति स्तम्भ का काम करेगा ।

पुज्य म०हसराज जी का जन्म सन् १९ अप्रैल १८६४ मे बजवाड़ा नामक ग्राम होशियारपुर (पजाब) मे हुआ । जन्म से ही एक पडोसिन बुढ़िया की भविष्यवाणी इन पर अक्षरक्षः सिद्ध हुई । बचपन खेल कूदकर मे बीता। बचपन से आप कुशाग्र बुद्धि वाले थे जिस बात को पढ़ लेते भूलने का नही लेती थी ।

इन्होंने सन् १८८० मे इन्टर की परीक्षा मिशन स्कूल लाहौर से पास की उस के बाद १८८४ मे बी ए की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की ।

उस समय भारत की हालत चिन्ता जनक थी । हिन्दू जाति इसाईत के चगुल मे बुरी तरह फसी हुई थी । धड़ाधड़ हिन्दू इसाई हो रहे थे । म० जी को तो मैट्रिक परीक्षा के समय ही इन ईसाईयो के चक्र का पूरा पता चल गया था । परन्तु उस समय यह कुछ करने सकने मे असमर्थ थे ।

इन के जीवन मे स्कूल के समय घटित घटना का एक वर्णन है कि एक बार एक ईसाई अध्यापक ने पाठ पढाते समय प्रसगवंश कह दिया कि प्राचीन आर्य जड़ प्रादार्थों तथा सूर्य की पूजा करते थे । बस इतना सुन कर म० जी को जोश आ गया झट से उठ कर बोले कि 'प्राचीन आर्य तो केवल निराकार ईश की पूजा करते थे । साथ ही साथ ईसाई मत आलोचना भी कर डाली । उस रोज मुख्यध्यापक से उन को बेत खाने पड़े तथा स्कूल से निकाल दिया बाद मे पुन. बुलवा लिया । म० हस राज जी मे यह प्रतिभा थी । सच्चाई के लिए अड़ जाते थे चाहे जान ही क्यो न चली जाए ।

इन के त्याग मयी, देशप्रेमी ीवन की जितनी भी स्तुति की जाए थोडी है ।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती महाराज जो की मृत्यु के पच्छात् उन की पुण्य स्मृति मे दयानन्द कालेज की स्थापना मे उन्होने पूरा सहयोग दिया । इन के म० जी के बड़े भाई भी मुलख राज जी ने सब तरह से इन की सहायता की, जब महात्मा जी दयानन्द कालेज के अवैतनिक अध्यापक बने तो मुलख राज जी ने कहा कि तुम घबरायो मत मुझे ८० रु० मासिक मिलते है मैं ४० रु० तुम्हे हर महीने दे दिया करूगा । जब तक मुलख राज जी जीवित रहे अपने प्रण को निभाते रहे । मुलख राज जी का भी भ्राता के लिए जो त्याग था वह भी किसी से कम नही था ।

१९३८ मे महात्मा जी की सेहत कुछ खराब हो १५ नवम्बर १९३८ को रात्रि समय प्रभु भक्ति मे मस्त वेद मन्त्रो का पाठ करते हुए इस नश्वर शरीर को छोड गए । ★★

याद आते हैं महात्मा हंसराज

[श्री प भक्त राम जी शर्मा (अफ्रीका वाले) दिल्ली)

जब-जब कोई समाज, जाति अथवा देश अधोगति को प्राप्त होता है तब-तब उस समाज, जाति अथवा देश को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने वाले महा-पुरुषो का स्मरण हो आना स्वाभाविक है । महर्षि दयानन्द सरस्वती और उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने प्राचीन धर्म-रीति नीति का प्रचार कर वैदिक युग लाने के लिए

भरसक प्रयत्न किया। आर्य समाज ने प्रमुख महापुरुषों ने भी उसी कल्याण मार्ग को अपनाते हुए आर्य समाज के मुख्य उद्देश्यानुसार संसार का उपकार शरीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति द्वारा करने की ठानी, पर सबमें पहिले अपनी, अपने देश की, पश्चात हो सके तो और की। महा पुरुषों के जन्म दिन और मृत्यु दिवस हम उनके जीवन के आदर्शों से प्रेरणा लेने के उद्देश्य से प्रति वर्ष मनाते हैं परन्तु क्या हम आचरण के समय उन महात्माओं को भुला नहीं देते ? २७ मार्च को मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी का जन्म दिन देश भर में और विदेशों में भी मनाया गया पर रावण के मार्ग पर चलते हुए राम के गीत गाने का हमें कोई अधिकार नहीं।

ऐन्यिक दृष्टि में पर्व मनाने के कारण ही समाज जातियां और वे अपना गौरव खो बैठते हैं। आर्यसमाज का मान भी इसीलिए घटा कि हम आर्यों ने अपने आदर्श नेताओं के दिव्य गुण अपने जीवनों में धारण न कर केवल मात्र उनके गुणानुवाद गाने में उत्सवों की सार्थकता और अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली। फलस्वरूप हमारी अवस्था दिन-प्रतिदिन बिगडती जा रही है। हम अपने कर्तव्यों से विमुख होकर अकर्त्तव्य कर्म कर रहे है। इस संकट काल में रह-रहकर वह गम्भीर वक्ता शांत धीर वीर उधान महापुरुष (महात्मा हंसराज) याद आ रहे हैं।

जब मैं देखता अथवा सुनता हूं कि आर्य समाज के वर्तमान नेता मुंह में लड्डू दिये जाने पर आर्य समाज विस्मृत कर देते हैं और बिक कर आर्यसमाज के लिए हानिकर सिद्ध होते हैं तो याद आते हैं वह त्याग मूर्ति जिन्होंने आर्य समाज लाहौर की ६ नवम्बर सन् १८८३ की जमी पब्लिक मीटिंग के निश्चयानुसार। जून सन् १८८६ से स्थापित होने वाले दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज के आधार का डी० ए० स्कूल में अवैतनिक मुख्य ध्यापक का उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य सम्भाल कर सन् १८८८ में जब वह स्कूल कालेज हो गया तो अपूर्व स्वार्थ त्याग अनुपम साहस और विलक्षण कार्य कुशलता आदि गुणों के कारण उन्हीं को प्रिंसीपली का काम सौंपा गया। आचार्य पद से मुक्त होकर कालेज की प्रबन्ध कर्तसभा के प्रधान, धर्म प्रचारक समाज-सुधारक रूप में उस कर्मयोगी की महान सेवा पदलोलुपों और स्वार्थियों के लिए जीता जागता उदाहरण है।

आज आर्य स्कूलों के प्रधान अध्यापक और कालेजों के प्राचार्य रोबदाब दिखाने के लिये बढ़िया २ वस्त्र धारण करने और शानदार ठाट-बाठ के साथ रहने दीखते हैं तो याद आते हैं सादगी और साधुता की मूर्ति आचार्य हंसराज जो जीवन भर सज-धज साज सजावट और अकड़ पकड़ से कोसों दूर रहे। जिनका वेश था पगड़ी, बन्द गले का कोट पाजामा, जूता और गृह-सामग्री थी एक तख्त-पोश, दो चार काठ की टूटी-फूटी कुर्सियां कई जगह से फटा हुआ कम्बल। उन्होंने यूरोप यात्रा में भी देशीय वस्त्र न त्यागा था। सादापन की इस पराकाष्ठा के बलिहार।

जब मेरा ध्यान गुरुकुल विभाग द्वारा स्थापित स्कूलों और कालेजों की ओर जाता है तो याद आते हैं शिक्षा शास्त्री महात्मा हंसराज जी जिन्होंने एक आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर अपने व्याख्यान में कहा था—शिक्षा की समस्या बहुत जटिल है और वह कुछ बालकों को एकान्त में ले जा कर पढ़ाने से सुलझाई नहीं जा सकती। धन्य थे वह शिक्षण कला के विशेषज्ञ।

जिस समय हम अपने आप को अल्प स्वल्प संकट आने पर अल्प ही घबराया हुआ पाते हैं तो याद आते हैं धैर्य देवता (हरिश्चन्द्र) महात्मा हंसराज जिन्होंने अपने ज्येष्ट पुत्र श्री बलराज के दिल्ली अभियोग में फंसने धर्म पत्नी के मृत्यु का ग्रास होने, बबराज को पहले काले पानी और फिर अपील पर ७ वर्ष का कड़ा दण्ड होने और फिर दूसरे पुत्र योघराज व पुत्री चन्दन देवी के विषम ज्वर से पीड़ित होने पर अपने आचार-विचार से किसी का पता न चलने दिया था। कि उनके ही सिर पर घोर विपत्तियों के बादल घिरे हुए हैं। 'विपदि धृति.' का कैसा अत्युत्तम दृष्टान्त था।

पदों की लोलुप्ता के लिये प्रतिदिन आर्य-आर्य लड़ते और लडाते देखे जाते हैं तो याद आते हैं । नि:स्वार्थ आर्य सेवक महात्मा हंसराज जिन्होंने सार्वदेशिक सभा मे स्वय स्थान रिक्त कर दिया था जब उन्हे विदित हुआ कि उनकी वहां उपस्थिति अन्यों को पसन्द नही है पर निमन्त्रण पर गुरुकुल कांगडी और कछोवाली समाज मे चले गये, आर्यसमाज के हित की भावना से प्रेरित होकर।

आज जब आर्य समाजो और आर्य सभाओ मे आर्य प्रचारको को नौकर समझने की मनोवृत्ति पाई जाती है निरभिमानी महात्मा हसराज जो घर पर पधारे उपदेशकों का आतिथ्य नौकरों से न कराकर साधारण गृहस्थ की भांति स्वयं करते थे । अब देश प्रसिद्ध वक्ता कुवर सुखलाल जी 'आर्य पथिक' के शब्दो मे :—

'अदाएं शासको की हैं

मगर सेवक कहाते हैं ।

मैं जब सुनता हू कि सन्ध्या मे मन नही लगता, साप्ताहिक सत्संग में जाकर क्या करना है, आर्यसमाज का मुख्योद्देश्य ससार का उपकार करना है और बाद मे देश का पत्र-पत्रिकाओ का पढ़ लेना भी स्वाध्याय है और सेवा का कार्य सरकार कर ही रही है तो याद आते हैं। दीर्घदर्शी महात्मा हसराज जो आर्यसमाज के सत्संगों मे सन्ध्या, समाज, स्वदेश स्वाध्याय और सेवा पांच सरकार का उपदेश दिया करते थे।

आज जब कि आर्यसमाजो के अधिकारियों को यह भी पता नहीं होता कि कौन सदस्य उत्सव मे नही आया (किसी के रुग्ण होने की खबर का तो प्रश्न ही नहीं उठता) तो याद आते हैं प्रधान हंसराज जी जो प्रत्येक सभासद् से निजी परिचय सम्पर्क पैदा किया करते और सुख-दु:ख मे सम्मिलित हुआ करते थे।

जब मैं अपने आर्य भाइयों को परस्पर झगड़ने और लोगो को उनकी खिल्ली उड़ाते देखता हूं तो याद आते हैं समुद्रसम शांत और गम्भीर महात्मा हंसराज जो लड़ाई की नौबत ही न आने देते थे और कहा करते थे 'मैं अपने आलोचकों ओर विरोधियो को इस बात का विश्वास नही दिलाना चाहता- कि मैं उनके लेख पढ़ लेता हूं।'

जब मैं आर्य नेताओं को परस्पर मान प्राप्ति के लिए उलझते देखता हू तो याद आते हैं मान को विष और अपमान को अमृत समझने वाले सच्चे ब्राह्मण महात्मा हसराज जो मलकाना शुद्धि के दिनो मे स्वामी श्रद्धानन्द जी के आगरा पधारने पर उन्हे पलग पर बिठाते थे। कहा करते थे कि 'संन्यासी, शुद्धि सभा के प्रधान और अतिथि के नाते स्वामी जी हमारे पूज्य हैं।

उस 'निष्प्रभ ऋषि' का जीवन ही उपदेश था इसी-लिये उनके त्याग और तपस्या के युगो को अपने जीवनो मे धारण करते हुए अनेक नवयुवको ने उनके समान अपनी जवानी आर्य समाज के लिए लुटा दीं। आर्य समाज की वर्तमान व्यवस्था पर आंसू बहाते हुए आर्यों को देख कर उस त्यागी और तपस्वी महात्मा की याद तड़पा रही है।

'आवश्यकता है। परमावश्यकता है महात्मा हंस राज जैसे चटान की तरह दृढ़ और ध्रुव तारे के समान अटल नेता की जो वर्तमान आर्य समाज को महर्षि दयानन्द का आर्य समाज बना दें।



श्री हंसराज पंचक

[कविवर श्री 'प्रणव' जी शास्त्री एम. ए. फिरोजाबाद)

मातृभूमि के पुत्र वीर आंखों के तारे,
नत मस्तक हैं आर्य चरण में आज तुम्हारे।
नीति रीतियुत शिक्षाकी शुचिकिरण प्रसारी,
यतिवर,तुम पर त्याग तपस्या है बलिहारी ॥१॥

श्री ने उपकृति का ही सात्विक नियम निभाया,
मन मंदिर में अहंकार आने नही पाया ।
हानि लाभ थे आर्यजाति के लक्ष्य मनोहर,
तमो गुणों का नाश वैदिकी ज्योति धरोहर॥२॥

मानव गुण के शुचि मौलिक मुक्ता चुन लाए,
हंस रूप: तुम वन्द्य विवेकी सदा सुहाये ।
समता की क्षमता के मुखरित हे वरदानी,
राष्ट्र भावना शलभ सन्तते प्रिय बलिदानी॥३॥

जगती से आलोक तुम्हारा आज अमर है
जीवन का गुण-गान तुम्हारा आज अमर है
कीर्ति पताका उच्च गगन मे उज्जवल लहरी
सरल बह रही 'प्रादेशिक' गंगा-सी गहरी ॥४॥

दाता तुम-सा धन्य बने जो जीवन दाता
जमी नित्य निष्काम साम गानों का गाता
यह श्रद्धा के सुमन भाव सूत्रों की माला
हो स्वीकृत श्रीमान्, प्रेरणा दे उजियाला ॥५॥

श्रद्धा सुमन (अन्त :–वेदना)

[श्री प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु दयानन्द कालेज अबोहर]

महात्मा हंसराज का गुणगान करने से कुछ न बनेगा। आचार्य दयानन्द जी ने लिखाहै कि आर्यसमाजके सिद्धांतो अथवा मान्यताओ को आचरण का रूप देने से ही कल्याण होगा अन्यथा कुछ भी हाथ न लगेगा। आर्य समाज मे प्रवेश करने मात्र से ऋषि का या महात्मा हंसराज का सपना साकार न बन सकेगा। आर्यसमाज हमम प्रवेश करेगा तो वीर लेखराम, मुनिवर गुरुदत्त, स्वामी श्रद्धानन्द व महात्मा हंसराज का तप फलीभूत होगा।

महात्मा हंसराज का जन्मदिवस झकझोर कर कुछ प्रश्न पूछ रहा है। महात्मा जी न समय आने पर स्वयं ही दयानन्द कालेज के प्राचार्य पद का परित्याग किया। महात्माजी ने सेवा मुक्त होकर सारा समय वेद प्रचार, शुद्धि, समाज सङ्गठन, देश सेवा, समाज सुधार मे लगाया। कालेज मे एक प्राध्यापक वैदिक धर्म विरोधी मान्यताओं का प्रचार करते रहते थे। महात्मा जी को जब पता चला तो आपने एकदम ला० दीवानचंद जी को (जो अंग्रेजी के प्राध्यापक थे) कहा कि आप दर्शन विषय भी पढाए। इस कारण ला० दीवान चन्द जी ने दर्शन मे भी एम० ए० किया।

महात्मा जी बुढापे मे भी आर्य समाज के उत्सवो पर दूर-दूर जाते थे। महात्मा जी सभा के लिए स्वय धन सग्रह करते थे। सभा के उपदेशको, प्रचारको व आर्य भाइयो के सन्मुख महात्मा जी का उज्ज्वल चरित्र एक आदर्श था, प्रेरणा-स्रोत था और प्रतिक्षण आर्यों का महात्मा की धुन अनुप्राणित कर रही थी।

आज हम उपदेशको मे दोष ढूंढते है परन्तु उनके सामने आदर्श क्या है? सभाओ के अधिकारी समाज के नेता किस स्तर के हैं? नेताओ म महात्मा जी का धुन है? त्याग है? कौन-समाज के लिये कितना कितना समय देता है? स्वाध्यायशील कौन-कौन है? महात्मा जी की अध्यक्षता मे शास्त्रार्थ भी हुए। अमर स्वामी (ठाकुर अमरसिंह जी) ने बताया कि एक बार महात्मा जी ने स्वय शास्त्रार्थ किया। क्या उनके उत्तराधिकारी, आर्य समाज के नेता, सभाओ के कर्णधार आज इतनी योग्यता रखते है? क्या हमारा स्तर वही है? खरी बात है, किसी को बुरी नही लगनी चाहिए। हमे सोचना चाहिए और अपनी पडताल करनी चाहिए। आज हमारे समाज की जो अवस्था है मै उसे किन शब्दो मे व्यक्त करू? मेरी अन्त वेदना है कोई मुझे बुरा कहे या भला। मुझे इसके लिए जो मूल्य चुकाना पड रहा है वह मैं ही जानता हू लोग कहते हैं तुम्हारी बात तो ठीक है, तुम सच्च लिखते हो, खरी कहते हो पर, तू और नेतागण प्राय कहते है तुम्हारी धुन, लगन—परन्तु हम ससद मे हो या अन्य दस बीस पद सुशोभित करे हम समाज को समय दे या न परन्तु समाज की आवाज ही सर्वत्र गुञ्जा रहे है।

परन्तु तथ्य क्या है? पुरी के शकराचार्य दनदना कर जातिभेद, अस्पृश्यताका प्रचार कर रहे हैं। वेद-वाणीके पठन पाठन का सबका अधिकार नही मान रहे, ओ३म के जाप से स्त्रियो व ब्राह्मणेतर को वचित कर रहे हैं। सारा देश देश शकराचार्य के अनर्गल प्रलाप से उत्तेजित हो-उठा है। ससद मे गर्मगर्मी हो गई है परन्तु आर्य समाज के नेता व सभाये मौन है।

यह मौत है या मौत ?

मेरी अन्त वेदना है। मैं लिखू क्या? कुछ दिन पूर्व एक समाज के उत्सव पर मैं गया। कुछ दलो की प्रेरणा पर समाज वालो ने कहा कि शकराचार्य जी के आगमन का लाभ उठा कर आज मच को सयुक्त न बनाले। मैने झट कहा, छूतछात मानने वाला, ओ३म के जाप का विरोध करने वाला दम्भ, पाखण्ड

शिरोमणि, जाति धाती विचारों का प्रसारक मेरे आचार्य पतितोद्धारक महर्षि दयानन्द की वेदी को भ्रष्ट करे। यह मैं तो सहन नहीं कर सकता। समझदार आर्यों बन्धुओ ने मेरी भावना का आदर किया। हैदराबाद आर्य महासम्मेलन मे इन्ही शकराचार्य जी को एक सम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर रूढावाद, अज्ञान, अन्धकार का अभिनन्दन किया। आर्यसमाज के कर्णधारो की, सत्ताधारी लीडरो की इस सिद्धान्त हीन समझौतावादी नीति का क्या प्रभाव पड रहा है? लोग यही सोचने है कि आर्यसमाज धर्म प्रचारक सस्था नही रहा, समाज सुधारक सस्था नही है, राष्ट्रीय क्षेत्र मे नगण्य है। अब यह गतिमान नही, एक खडा-पडा पानी है। जिन मे दर्द है, धुन है, जीवन है, गति है, वह सब लोग पर्दो का प्यार छोड कर, लीडरबाजी के चाव से ऊपर उठकर, राजनैतिक दलो के सदस्य के रूप मे या 'फरी सर्विस' राजनैतिक सेवक के रूप को छोड कर, रचनात्मक समाज सेवा कर।

महात्मा हंसराज और भारत का उत्थान

[प्रिंसिपल रलाराम जी एम ए, होश्यारपुर]

स्वामी दयानन्द की मृत्यु ३० अक्तूबर १८८३ को हुई। सारा भारत शोक सागर मे डूब गया परन्तु उन्नत विचारो के व्यक्ति तो विह्वल हो उठे कि इस मानसिक अवसाद के युग मे आशा तथा प्रकाश का एकमात्र प्रतीक ऋषि दयानन्द, भारत से छिन गया। परन्तु दयानन्द का अमर सदेश एक अमर ज्योति जला गया था जो कि कभी बुझ नही सकती थी। शोक का स्थान शीघ्र ही विचार तथा प्रोत्सल ने लिया। लाहौर के आर्य समाजियो ने दयानन्द का एक कालेज के रूप मे उपयुक्त स्मारक बनाने का निश्चय किया। परन्तु वे कि कर्तव्य विमूढ थे कि पर्याप्त धन तथा ठीक योग्य व्यक्ति जो इस महान कार्य का सचालन कर सके, कहा से मिले? ऐसी घबराहट मे एक अनुपम व्यक्ति ला० हसराज के रूप में आगे आया। अभी वह पजाब यूनीवर्सिटी की बी. ए. की परन्तु परीक्षा प्रतिष्ठता पूर्वक उत्तीर्ण कर चुका था। वह किसी धनवान परिवार का सदस्य न था। अपने बड़े भ्राता ला० मुलखराज की सहायता से यह युवक निर्धनता से घोर सग्राम करके इस दशा मे पहुचा था कि प्रचुर धन कमा कर तथा उच्च पदवी प्राप्त करके अपने कुल की प्राचीन-प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित कर सकता था। परन्तु दयानन्द का जादू उस पर गहरा प्रभाव डाल चुका था। उसने एक भीषण व्रत, आजीवन अवैतनिक सेवा का, लेकर फिर अपने आपको तथा अपने परिवार को एक बडे सघर्ष मे डाल दिया। परन्तु अपने अद्भुत तप तथा त्याग और अनुपम योग्यता से उन्होने अपूर्व सफलता प्राप्त की। एक कालिज या स्कूल क्या दर्जनो कालिज तथा स्कूल उनकी कृपा से चालू हो गए। महात्मा हसराज के जीवन का लक्ष्य आजीविका तो था नही, सेवा तथा भारत का पुनरुत्थान उनका एक मात्र आदर्श था। भारत के पुर्ननिर्माण की बलिवेदी पर उन्होंने अपनी उमगो तथा आकाक्षाओ को भेट कर दिया। जो ज्योति दयानन्द ने जगाई थी उसके प्रकाश को भारत के कोने-कोने मे पहुचाने का उहोने सफल प्रयास किया। परन्तु आज स्थिति क्या है, इस पर भी तनिक विचार करना चाहिए।

दयानन्द ने जो भारत के पुराने रोग का निदान किया तथा उनकी बतायी हुई चिकित्सा का प्रयोग हसराज ने क्रियात्मक ढग से आरम्भ किया उस मे दो बाते प्रधान थी। पश्चिमी सभ्यता का निराकरण तथा वैदिक सभ्यता का पुरुत्थान स्वामी दयानन्द शून्य स्थान था अवकाश में विश्वास नही रखते थे। वे पश्चिमी सभ्यता का निराकरण करके प्राचीन वैदिक सभ्यता की हमारे

हृदयों में पुन स्थापना करना चाहते थे। उनकी यह दृढ धारणा थी कि भारत की दासता की जंजीरें उसी समय कट जावेंगी जिस समय शिक्षित वर्ग या बुद्धिजीवी व्यक्ति पश्चिमी सभ्यता के चगुल से छूट जावेंगे। यह नुस्खा अवैज्ञानिक नही था। महात्मा गाधी ने इस औषधि को अपनाया। महात्मा गाधी से जब पूछा गया कि आप भारत की स्वतन्त्रता का क्या नुस्खा प्रस्तुत करते हैं तो इसके उत्तर मे उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' मे लिखा, 'अंग्रेजी सभ्यता को भारत से निकाल दो, अंग्रेज स्वय निकल जायेगा। हम बाघ को तो निकालना चाहते हैं, परन्तु उसके बाघपन को यहा रखना चाहते हैं।' बाघ तो देर हुई चला गया परन्तु उसका बाघपन तो आज घर-घर में प्रविष्ट हो गया है। ग्रामीण भाई भी इस की लपेट मे आ रहे हैं। जिस के पास चार पैसे हो जाते है या जो भी चार अक्षर पढ़ जाता है वह भारतीय वेष-भूषा को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। स्वतन्त्र भारत मे यह बात बढ गई है। जिस के पास चार पैसे हो जाते हैं वह अपने बच्चो की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से कानवेंट स्कूल मे आरम्भ करवाता है जहां दिमागी गुलामी, वैदिक दासता विद्यमान है वहां स्वतन्त्रता क्या आई। वेषभूषा के अपनाने मे प्रवृति प्रधान है। कोई समझावे कि पश्चिमी पोशाक मे भारतीय वेशभूषा से क्या विशेषता है। सौंदर्य विज्ञान शास्त्री तो कहते हैं कि विदेशी पोशाक सौंदर्य के

पूज्य महात्मा हंसराज जीके प्रति श्रद्धांजलि

रचयिता—हरवंशलाल'हस' आर्यनायक २१-९ भार्गवनगर जालधरशहर

जीवन वार दिया पर हित पर दिव्य देवता तूने।
ऋषिवर का जो ऋण था सर पर उसे चुकाया तूने॥

निज प्रतिभा को भूल बनें थे जो पश्चिम दीवाने,
सामगान प्रिय छोड के गाते थे अश्लील तराने,
उन वैदिकता भरने का क्रम चलाया तूने॥

आर्य जगत् के जन-मानस मे भव्य भावना भर दी,
हर प्रति द्वन्द्वी के मुख पर मेढक सम जर दी,
दुर्ग गिराये पाखण्ड के उपकार कमाया तूने॥

शिक्षणालय खोल दिए वैदिक प्रचार की खातिर,
कार्य अधूरा पूरा करने लगा रहा निशिवासर,
मैकाले के षडयन्त्रो को विफल बनाया तूने॥

काटो मे भी घिर कर केतु फूलो सम हसता था;
व्यथित जनो की पीडाओ को दुःख सहकर हरता था,
दु'खियो की औषध बनकर रोतो को हसाया तूने॥

महल ध्वस्त कर अनृत के और धर्म केतु फहराया,
सुफल को पाकर हर राही हर्षाया मुस्काया,
'हंस' विवेक नीर क्षीर का कर दिखलाया तूने॥

दृष्टिकोण से भारतीय पहरावे से कहीं घटिया है परन्तु लोग इसे प्रतिष्ठा और रोब के लिए अपनाते जा रहे है। इसलिए शिक्षित वर्ग तथा जनसाधारण मे भेद भाव की खाड़ी विशाल होती जा रही है।

महात्मा हंसराज जी ने अपना सारा जीवन तप तथा तपस्या में गुजारा आज सादगी एक सामाजिक दोष नही, एक अपराध बन गया है। इसके परिणाम आज हम अपने समाज मे प्रत्यक्ष भ्रष्टाचार तथा दुराचार के रूप मे देख रहे हैं। महात्मा हसराज तथा स्वामी दयानन्द की आत्माए चकित है कि क्या से क्या हो गया है।

महात्मा हंसराज जी ने दयानन्द जी से यह खूब सीख ली थी कि वैदिक धर्म ज्ञान का धर्म है। जितना वैदिक धर्म फैलेगा उतना ही अन्ध विश्वासो का बादल छिन्न भिन्न होगा। इसीलिए विद्यालय खोलने का कार्यक्रम अपनाया गया। यह नितान्त ठीक मार्ग था। हमारे शिक्षणालयो ने सराहनीय काम किया है। जो भी सामाजिक सगठन अपरिपक्व अवस्था से ही मानव के निर्माण का प्रयत्न नियमबद्ध ढग से नही करता वह सामाजिक जीवन को अभिवाञ्छित दिशा मे प्रभावित नही कर सकता। यह स्कूल कालिज न तो व्यर्थ थे और न अब व्यर्थ है। परन्तु हमे समय-समय पर लेखा जोखा तो करना चाहिए। स्वामी दयानन्द के जिन आदर्शो को समक्ष रखते हुए महात्मा हसराज ने डी ए वी सस्थाओ की स्थापना की वे आदर्श प्राय: धुधले एव धूमिल होते जा रहे है। ऐंग्लो - वैदिक मे से केवल 'ऐंग्लो' रहता जा रहा है। 'वैदिक' काफर हो रहा है। हम पूर्वीयता का उत्थान पश्चमीयता के गुण ग्रहण के साथ करने निकले थे, परन्तु वैदिक संस्कृति लुप्तप्राय और पश्चमीयता सर्व प्रधान बन रही है। शिक्षा का आध्यात्मिक पहलू हमारी सस्थाओ मे इतना निर्बल हो गया है कि इसे लुप्त-सा कहें तो अनुचित न होगा। यह ठीक है कि परिस्थितिया हमारे प्रतिकूल हैं, परन्तु दयानन्द तथा हसराज ने तो सारा काम घोर विरोध के वातावरण मे करते हुए सफलता प्राप्त की। हमे स्वामी दयानन्द तथा महात्मा हसराज के जीवन से उत्साह तथा स्फूर्ति प्राप्त करनी चाहिए। यदि हमने अपने आदर्श छोड दिए तो शेष क्या रह गया।

हमारी सस्थाओ ने अब यह ख्याल रखना छोड दिया है उस देश मे अब भी निर्धन व्यक्ति रहते है जिन्हे अपने बच्चो को शिक्षा दिलानी होती है, फीसें धडाधड बढाई जा रही हैं। बच्चो का शोषण सरकारी सस्थाओ से कही अधिक है। विशिष्ट प्रकार के स्कूलो मे फीसें ज्यादा हो इस मे तो कोई आपत्ति नही परन्तु हमारे साधारण स्कूल तथा कालेज अत्यधिक फीस लेते हैं। महात्मा हसराज ने किन आदर्शो के लिए अपने बहुमूल्य जीवन की आहुति दी थी। हमे इन समस्याओ पर गहन गम्भीर विचार करना चाहिए। अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति का फिर से मूल्याकन करना तथा अपने लक्ष्य अथवा निशाने कायम करने चाहिए।

आवश्यक निवेदन

लेखक महानुभावो से प्रार्थना है कि इस विशेषाक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री उचित समय पर उपलब्ध न होने के कारण हम जिन लेखको के लेख इस अक मे प्रकाशित नहीं कर सके उन लेखो को आगे साधारण अको मे प्रकाशित करेंगे। लेखक महानुभाव स्थिति को समझते हुए अगले अक का इतजार करें।

सुरेन्द्रपाल शर्मा
व्यवस्थापक आर्य जगत्

मलय मेरू महात्मा हंसराज जी

[श्री भगवान स्वरूप न्याय भूषण, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान एवं पुस्तकाध्यक्ष परोपकारिणी सभा अजमेर]

राजर्षि भर्तृहरि का एक प्रसिद्ध श्लोक है—

किं तेन हेम गिरिणा रजताद्रिणावा,
यत्र स्थितास्च तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलय मेरू यदा श्रेयण,
कंकोल निम्ब कुटाया अपि चन्दनास्यु॥

अर्थात—उन सोने चादी के पहाड़ो से क्या लाभ जिनके पास रहने वाले वृक्ष सदा अपनी सामान्य स्थिति मे ही रहते हैं। हमे तो मलय मेरू ही मान्य है कि जिसके संसर्ग से कंकोल, नीम, कुट जैसे कडवे वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं।

वास्तव मे ऊपर श्लोक मे वर्णित स्वर्ण रमन के पर्वत विवादास्पद हैं यह कही नही है इसका तात्पर्य साफ स्पष्ट है कि समाज मे बडे-बड़े धनवान और विद्वान् हैं, यदि उनके संसर्ग मे रहने वाले व्यक्तियो की दशा वैसी की वैसी ही बनी रहे। धन्य वह व्यक्ति है जी जिनके संसर्ग से समाज मे गिरे हुए व्यक्तियो का भी जीवन सुधार कर ऐसा बन गया है कि उसकी सुगन्धिमय हो गया है।

महर्षि दयानन्द जी के उपदेश तथा उनके संसर्ग से भी श्री मुन्शी राम जी, गुरुदत्त जैसे नास्तिक तथा श्री अमीं चन्द जी जैसे व्यक्तियों के जीवन कुछ के कुछ बन गए। इसी प्रकार श्री महात्मा हंसराज जी के संसर्ग मे जो नवयुवक डी० ए० वी० कालेज मे आए। उनके जीवन मे महान् परिवर्तन हो गया। [महात्मा जी का जीवन त्याग, तपश्चर्या तथा कर्तव्य परायणता से भरपूर था।] जो भी उनके संसर्ग मे आया उनके जीवन की सुगन्धि से सुगन्धित हो गया।

सन् १९१८ मे मै ज्वालापुर महाविद्यालय मे था। उस समय डी० ए० वी० कालेज के तीन स्नातक वहा आये। उन मे से एक थे स्वर्गीय प० भगवद्दत्त जी। उनके साधारण रहन-सहन, वेश-भूषा को देख कर यह कोई भी विचार कर सकता था कि यह कालेज के स्नातक हैं। तपस्वी जीवन वैदिक धर्म के प्रति अटूट आस्था, ऋषि दयानन्द के प्रति अनन्य भक्ति उनमे कूट-कूट कर भरी हुई थी। श्री प० भगवद्दत्त जी के सम्बन्ध मे कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है। यह महात्मा जी के जीवन के संसर्ग का ही प्रभाव था अन्यथा पडित जी के पिता जी तो शराब के ठेकेदार थे।

यह तो केवल एक उदाहरण दिया है, ऐसे अनेक युवको के जीवन मे महात्मा जी के संसर्ग से महान् परिवर्तन हुआ इसलिए मैं कहता हू कि "महात्मा जी मलय मेरू थे।"

◇◇◇◇◇◆

महात्मा हंसराज जी का यज्ञमय जीवन

[प्रो० वीरेन्द्र डवनिंग कालेज जालन्धर]

महात्मा वही कहलाते हे जिनका जीवन यज्ञमय होता है जिन्होंने यज्ञ के भाव को हृदयङ्गम करके तद्वत आचार-विचार का निर्माण करते हैं जो वेद के एक-मात्र शब्द को भली प्रकार समझ कर अपने एहिक पारलौकिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। शतपथ ब्राह्मण से यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा है। महात्मा हंसराज ने अपने समस्त जीवन मे इसी श्रेष्ठतम कर्म का अनुष्ठान किया। इसका तात्पर्य कदापि यह नही कि महात्मा जी दोनो समय अग्नि कुण्ड मे अग्नि को प्रदीप्त करके घी और सामग्री आहुति देते थे। यह तो केवल प्रतीकात्मक

(**Symbolic**) था उस शाश्वत यज्ञ का जिसमे श्रद्धा रूपी यज्ञकुण्ड की अग्नि मे सत्यरूपी घृत की आहूति दी जाती है३। यज्ञ शब्द का भावार्थ है देवपूजा,, सङ्गतिकरण और दान। यज्ञ हमे समर्पण, त्याग, का उपदेश देता है। जिस प्रकार यज्ञकुण्डकी अग्निमे समिधा स्वयको भस्मशातकरके वातावरणको आलोकित सुवासित करती हुई धवल वर्ण को धारण करके स्वाहा हो जाती है उसी प्रकार मनुष्य को अपने स्वत्व को देश समाज, राष्ट्र को समर्पित कर करके धवलित अन्त करण वाले स्वाह (राख) का रूप धारण कर लेना चाहिए। महात्मा हसराज इसी यज्ञ के ब्रह्मा, होता, उद्गाता अध्वयु थे। गीता मे वर्णित कर्म यज्ञ ज्ञान यज्ञ, उपासना यज्ञ के प्रबल सयोजक थे।

महात्माजी का जीवन आरभ से अत तक इमीकथानक का नाटक है। पिता की जल्दी मृत्यु होने के कारण उनका शैशवकाल का चित्र निर्धनता से चित्रित है जिससे और उनका चरित्र साहसी, तपस्वी, त्यागमूर्ति बन गया जिसके कारण वह आपत्तियो की घनघोर घटाओ मे सदैव अविग रहे। बचपन में पढने के लिए कडकडाती धूप मे अपने ग्राम बजवाडे से होशियारपुर नगे पैर पैदल जाते थे जब पैर धूप से झुलसने लगते तो तरुनी को पाव तले रखकर पैरों को ठण्डा करके आगे बढते। इतनी विकट निर्धनता होने पर उन्होने सदैव अपनी मान-प्रतिष्ठा पर किसी प्रकार आच न आने दी।

बी०ए० पास करने के बाद चाहते तो, अच्छे बडे सरकारी पद पर आसीन हो सकते थे क्योकि उन दिनो में बी०एत वाले बिरले ही मिलते थे परन्तु तपोमूर्ति हसराज ने दयानन्द स्कूल मे अवैतनिक मुख्याध्यापक के रूप मे कार्य करना स्वीकार किया और अपना तथा अपने परिवार का निर्वाह केवल उन चालीस रुपो में करते थे जो उनके बडे भाई मुल्खराज प्रति मास दिया करते थे। मुख्याध्यापक होने पर भी उनका आवास व

एक. शब्द: सम्याज्ञात: सुप्रयुक्त स्वर्ग लोके काम धुग्भवति।

२. यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म। श० ब्रा० १ ७ ४९

३ तेज एवं श्रद्धा सत्यमाज्यम्

आहुयतैव सत्यं श्रद्धायाम्॥ (म० ११ २.४.१)

आर्य समाजों से

जगद् गुरु शकराचार्य पुरी शकर पीठ ने अभी-अभी पटना मे विश्व हिन्दू सम्मेलन के समारोह मे अपने प्रवचन मे हिन्दु धर्म मे अस्पृश्यता एव छूतछात का जो समर्थन किया है। आर्य समाज इसकी बडी निन्दा व विरोध करता है। वेदो मे सबको समानता के अधिकार है। कोई भी जन्मना छोटा -बडा नही है। छूतछात की इसे निन्दनीय प्रवृत्ति ने विशाल हिन्दू समाज को खोखला करने मे कोई भी कसर नही रखी। आर्य समाज के सस्थापक ऋषि दयानन्द सरस्वती ने मानव-जाति की एकता व समानता के सूत्र मे पिरोने का प्रयास किया। आर्य समाज ने इस दिशा मे क्रियात्मक व रचनात्मक कार्य किया है तथा किये जा रहा है। भारत मे जितने भी हिन्दू विधर्मी बने है तथा राष्ट्र का विभाजन हुआ हुआ है इसका विशेष कारण यही छूतछात की प्रवृत्ति ही थी। हम सभी आर्य समाजो को कहना चाहते हैं कि वे अपने-अपने सत्सगो मे शकराचार्य के इस अवैदिक तथा निन्दनीय अस्पृश्यता का प्रतिपादन करने वाले भाषण का विरोध करते हुए प्रस्ताव पारित करके सभा को तथा सरकार को भेजे। हमे प्रसन्नता है कि इस घृणित प्रवचन का सारे भारत की सस्थाओ व बडे-बडे व्यक्तियो ने कडे शब्दो मे विरोध किया है। हम सरकार से भी निवेदन करेगे कि वह राष्ट्र सविधान का विरोध करने वाले के विरुद्ध कडी कार्रवाई करे मनुष्य चाहे कितना बडा हो किन्तु सविधान उससे भी बडा है

— वेदीराम शर्मा
मन्त्री
आर्य प्रादेशिक सभा
जालन्धर शहर

आहार बड़ा सादा था। उनके कमरे मे कोई सोफासेट अथवा आधुनिक मेज कुर्सियो एव पर्दों से सुसज्जित नही था। प्रत्युत वहा सूत की सादी दरी, दो डेस्क एव छोटी-सी तिपाई होती थी। आगुन्तक भी दरी पर ही बैठते थे। उन्होंने कभी विदेशी वस्तुओ का प्रयोग नही किया। सादा खादी के कपडे पहनते थे।

महात्मा जी चाहते तो अपने प्रशसक एव श्रद्धालुओ के उपहारमात्रो से अपनी आर्थिक दशा को खूब सवार सकते थे। परन्तु वे सब उपहार अपने पास न रखकर कालिज को दे दिया करते थे। एक बार एक धनाढ्य महात्मा जी से मिलने के लिए उनके निवास स्थान पर आया। वह महात्मा जी की सादगी एव उनको फटे हुए कम्बल से लिपटे हुए देखकर आश्चर्य चित हो गया और अगले दिन उन दो शाल उपहार स्वरूप ले आया तथा जीर्ण कम्बल के परित्याग के अनुरोध किया परन्तु महात्मा जी ने उसकी श्रद्धा की भूरि-भूरि प्रशसा की और कहा कि मैं इन दोनो शालो को कालिज कोश मे जमा करा देता हू। इस प्रकार जो भी उपहार आते थे वे सब कालेज को दे देते थे और खाद्य पदार्थों को वही बाट दिया करते थे। धन का अभाव होने पर भी वे छात्रो के अपने घर मे आमन्त्रित किया करते थे उनको सुन्दर-सुन्दर सदेश सुनाते तथा अतिथि सत्कार स्वरूप और कुछ न होने पर उबले हुए आलू, नमक लगा कर प्रस्तुत करते थे महात्मा जी की तपस्या का ही प्रताव था कि दयानन्द स्कूल ने कालेज का रूप धारण किया फिर कालेज के साथ आयुर्वेदिक कालेज, महिला विद्यालय, टैक्निकल कालेज और अन्य संस्थाए खोली गई पजाब के अन्य नगरो, स्कूलो मे और कालेजों का जाल-सा बिछ गया। कालेज से निवृत्त होने के बाद वह अपना समय धर्म प्रचार मे लगाने लगे वह आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे और समाजों के उत्सवों में भी उपस्थित हुआ करते थे। महात्मा जी आजकी भी आधुनिक कार्यकर्ताओ की तरह पदलोलुप नहीं थे। १९-१२-१९२६ आर्यसमाज शिमला के मन्त्री मेहरचन्द के नाम पत्र मे उन्होंने लिखा अखिल भारतीय नेतृत्व की मैं परवाह नही करता क्योकि उसमे तत्व का काम बहुत कम होता है ख्याति के साधन अधिक जुटाए जाते हैं। हमारा कर्तव्य है कि जो कुछ हम से बन पडे, हम निष्काम भाव से करें। फल परमात्मा के हाथ मे है।'

महात्मा जी आर्य समाज के सिद्धान्तो के प्रचारक ही नही प्रत्युत व्यवहारिक रूप मे उनसे प्रबल पोषक थे। उन्होंने आर्य समाज के छटे और नौवें नियम के अनुसार समस्त कार्य किए जिसमे कहा गया है कि ससार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्योद्देश्य है और प्रत्येक को अपनी उन्नति मे ही सन्तुष्ट नही रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति समझनी चाहिए। महात्मा हसराज जी परोपकार सम्पादन के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। राष्ट्र के किसी कोने मे करुण क्रन्दन से उनका कोमल हृदय द्रवित हो उठता था। १८९५ मे बीकानेर के भयकर दुर्भिक्ष मे इन्होंने कड़कड़ाती धूप में कई छात्र दल के साथ जठराग्नि से अकालपीडित या ध्वस्त लोगो को बचाने के लिए कूद पडे और सेवाकार्य इस प्रकार १८९५-१८९७ तक चालू रहा। १८९९ मे जब दुर्भिक्ष ने पुन: अपना विकराल मुह फाडा बहुत क्षुधा पीडित लोग विधर्मी बनने लगे तब इन्होंने फिर सक्रिय योगदान किया १९०५ के कांगडे मे ११३४ में बिहार। उसमे प्रलयपयी भूकम्पो जो ताण्डव नृत्य किये उनसे सहस्त्र व्यक्तियो का विनाश हुआ लाखो बेघर होगए महात्माजीने इस दारुण विपत्ति में साम्प्रदायिक एव संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठ कर सब पीडितों की एक दृष्टि से सेवा की। १९०७ को अवध, १९१८ मे गढवाल, १९२० में उडीसा, १९२१ में पजाब, १९३४ मे जब त्राहि-त्राहि की पुकार उठी तब महात्मा जी आर्य सेवको के सैकड़ो लोगो को अन्न, वस्त्र आदि देकर सात्वना दी, १९२४ में मालाबार काहार में पठानों

द्वारा हिन्दुओं पर अत्याचारो एवं १९३२ मे जम्मू व काश्मीर में भडकते हुए साम्प्रदायिक झगड़ों ने जब उग्र रूप धारण किया तब महात्मा हंसराज ने सहायताकोष खोला गया। सकटग्रस्त लोगो को वस्त्र, बर्तन आदि मुफ्त बाटे गए। इस प्रकार महात्मा जी ने लाखो डूबते हुए लोगो को सहारा देकर उन्हे पुन प्रतिष्ठित किया। सहस्रो हिन्दुओ को विधर्मी होते हुए बचाया।

महात्मा जी का सारा जीवन तप-त्याग की गाथा है।

महात्मा हंसराज महान् शिक्षक के रूप में

[श्री नर्मदा शकर भटनागर, भटिण्डा]

महात्मा हसराज का नाम भारतीय शिक्षा के इतिहास मे सदैव उज्ज्वल रहेगा। यही नही पजाब के वह सर्व प्रथक महान पुरुष थे जिन्होने ब्रिटिश शासको को दिखला दिया कि भारतीय भी गैर सरकारी शिक्षा सस्थाओ का प्रचलन सुचारु रूप से करने मे पूर्ण समर्थ है। उन दिनो भारत भर मे कोई भारतीय हिन्दू किसी स्कूल का मुख्याध्यापक नही होता था परन्तु जब जून १८८६ में आर्य समाज लाहौर के भ्वन मे स्कूल आरभ का हुआ तो महात्माहंसराज इसके अवैतनिक मुख्याध्यापक नियुक्त हुए। यह समाचार सुनकर अग्रेज शिक्षाधिकारी सदेह करने लगे कि क्या यह कल का छोकरा एक गैर सरकारी शिक्षा-सस्थान को चलाने मे सफल हो सकेगा। जब इस स्कूल का आरम्भ हुआ तो कमेटी के पास कुल जमा राशि २४८६८ थे परन्तु १९११ में महात्मा जी के तप-त्याग से इसने अद्वितीय गौरवशाली रूप धारण कर लिया जिसका नाम दयानन्द ऐग्लो वैदिक कालेज रखा गया। कालेज की आर्थिक स्थिति बड़ी सुदृढ हो चुकी थी क्योकि अब इसके पास आठ लाख इकतीस हजार रुपया कालेज कोष में जमा हो गया था और प्रतिवर्ष आप ६६,००० भी अब कालेज मे एम० ए० तक शिक्षा का सुप्रबन्ध इजीनियरिंग क्लास आयुर्वेदिक विभाग, उपदेशक विद्यालय, सस्कृत शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। इसकी शिक्षा सस्थानो की देखा देखी सनातनी लोगों एव सिख धर्म के नाम पर स्कूल कालेज खोलने लगे। हसराज जी का शिक्षा के प्रबन्धक के रूप मे इतना सिक्का जम चुका था कि लाहौर मे सनातधर्म कालेज की स्थापना के प्रयोजन से सनातनधमर्मावलम्बियो द्वारा आमन्त्रित सभा मे बोलते हुए जम्मू-काश्मीर के महाराजा सर प्रतापसिंह ने वहा उपस्थित महात्मा जी को सम्बोधित करते हुए कहा 'हसराज जी! एक हसराज इनको भी दे दो ताकि यह कालिज भी सफल हो सके।'

शिक्षा का भाव मन-बुद्धि को परिष्कृत करना एव चिंतनशील तथा विवेकशील बनाना है। अग्रेजी मे शिक्षा को '**Education**' कहते है जो लेटिन शब्द **Educare** का केवल विकास ही जिसका अर्थ है शिक्षित करना, पोषित करना, समुत्थित करना। अत **Education** अथवा शिक्षा का उद्देश्य ही मानव की अन्तर्निहित शक्तियो का समुचित ढग से पूर्ण विकास करना।' महात्मा हसराज जी भी शिक्षा के इसी भाव हृदयङ्गम किए हुए थे। विद्यार्थियो के व्यक्तित्व मे प्रच्छन्न गुणो के निखार के लिए वह उनको विभिन्न परिस्थितियो मे डाला करते थे। दुर्भिक्षमे सेवाकार्य सपादन के लिए, उत्सवके निमित्त चन्दा एकत्रित करनेके लिए आदि इस प्रकार के अनेक सामाजिक एव धार्मिक कार्यों मे छात्रो के सहयोग की अपेक्षा रखते थे। इन मे छात्रो के व्यक्तित्व एव प्रतिभा के विकास के लिये विपुल अवसर प्राप्त होते थे। जिस प्रकार वैदिक कालीन आचार्य छात्र का उपनयन करने के बाद विद्यारम्भ कराने के

लिए मानो अपने गर्भ में धारण कर लेता है१ अर्थात् सत्यद्रष्टा, सत्य वक्ता आचार्य जिस प्रकार स्वयं सत्य का पोषक होता है उसी प्रकार छात्र को इस प्रकार सुरक्षित करता है ताकि वह सत्य पथ की ओर अग्रसर हो सके वह गर्भवती माता की भांति बालक के हित-अहित का पूर्ण ध्यान रखता है इसी आदर्श को अपनाकर महात्मा जी भी अपने छात्रो के कल्याण के सदैव व्यग्र रहते थे । ९ सितम्बर १९२० कलकत्ता मे इंडियन नेशनल कांग्रेस का विशेष अधिवेशन लाला लाजपतराय की अध्यक्षता मे हुआ जिसमें एक प्रस्ताव पारित कर छात्रो से शिक्षा सस्थाओ का बहिष्कार करने का अनुरोध किया गया। महात्मा गांधी ने पजाब का दौरा करके अपने ओजस्वी भाषणो द्वारा इसमें तीव्रता उत्पन्न कर दी जिससे छात्र आदोलन मे कूदने के लिए उद्यत हो गए। महात्मा जी यह भली-भांति जानते थे कि इससे इतना लाभ नही होगा जितनी छात्रों की भविष्य की हानि अत उन्होने इसका प्रबल विरोध किया और छात्रो को पूर्व निश्चित हड़ताल करने से रोक दिया। इसी प्रकार १८ जनवरी ११२१ में 'वन्देमातरम्' समाचार पत्र मे प्रकाशित लाला जी के पत्र में वर्णित यह सुझाव भी स्वीकार नही किया पजाब विश्वविद्यालय से सब प्रकार के सम्बन्ध विच्छेद करके एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की स्थापना की जाए। क्योकि इस प्रकार के विश्वविद्यालय को सरकार द्वारा मान्यता न देने पर इनकी डिग्रियो का महत्व अत्यन्त क्षीण हो जाएगा। छात्र इधर उधर भटकते फिरेंगे। इस प्रकार महात्मा जी का यह सदैव प्रयास रहा है कि किसी प्रकार विद्यार्थी-जीवन व्यर्थ न हो। छात्रा वास मे रहते हुए विद्यार्थी जब बिमार हो जाते तो यह आप और इनकी पत्नी श्रीमती ठाकुरदेवी माता-पिता के रूप में उस छात्र की सेवा करते थे।

१. आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भ-मन्यतः ॥ अथर्ववेद ॥११।५।३॥

महात्मा हसराज के अनुसार शिक्षा की प्राप्ति का उद्देश्य धनोपार्जन नही प्रत्युक्त ज्ञान-वर्धन है जिसके द्वारा मनुष्य क्षीर-नीर विवेक प्राप्त करके अज्ञानता, अधविश्वासो आदि का हनन करता ही और सत्य की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है।

नई कक्षाएं

होशियारपुर पजाब विश्वविद्यालय के विश्वेश्वरानन्द सस्थान साधु आश्रम मे विशारद की कक्षाए खोलने का निर्णय कर लिया गया है! संस्थान मे शास्त्री तथा आचार्य की कक्षाए पहले से ही चलती हैं। विशारद की कक्षाए १९६९-७० के सत्र से प्रारम्भ कर दी जाएगी।

महात्मा हसराज दिवस २० अप्रैल को

नई दिल्ली—आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा दिल्ली, डी० ए० वी० सस्थाओ तथा दिल्ली समस्त आर्य संस्थाओ की ओर से हसराज दिवस रविवार २० अप्रैल को मनाया जायेगा।

इस उपलक्ष मे एक सार्वजनिक सभा डी० ए० वी० स्कूल चित्र गुप्ता मार्ग के विशाल मैदान मे ९ से १२ बजे तक श्री महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती की अध्यक्षता मे होगी। इस सभा में अन्य नेता भी पूज्य महात्मा जी को अपनी श्रद्धांजलिया अर्पित करेंगे।

मेरी सब आर्य समाजो से प्रार्थना है कि इस उपलक्ष मे अब से ही उस दिन वहां आने की सूचना अपने सब सदस्यो को दे और ज्यादा से ज्यादा लोगों को आने की प्रेरणा दे।

भवदीय
दरबारी लाल
मन्त्री
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उपसभा
नई दिल्ली

महात्मा हंसराज वैदिक साहित्य विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा निकट कचहरी, जालन्धर

इस विभाग की स्थापना पूज्य महात्मा हंसराज जी के निधन के बाद उनकी पुण्य स्मृति मे लाहौर मे की थी। आय सज्जनो से प्रार्थना है कि पूज्यवर जी के इस पुण्य स्मृति विभाग को उन्नत करने मे सहयोग दें। आय जनता से प्राथना है कि अधिक से अधिक साहित्य मगाकर धम लाभ उठाने के साथ साथ इस विभाग को उच्च शिखर पर ले जाने मे सहयोग देकर कृताथ कर।

उपयोगी पुस्तकों की सूची —

१	**सामवेद भाष्य** (आचाय वैद्यनाथ शास्त्री)	२० ००
२	**वैदिक गुरमत** (प्रो० धम अनन्त सिंह)	१० ००
३	**महात्मा हंसराज मोडर्न पंजाब के निर्माता** ले० प्रि० श्रीराम जी शर्मा **M A** (अग्रे जी मे)	१ ५०
४	**सन्ध्या पर व्याख्यान** ले०—महात्मा हंसराज जी	१ ००
५	**Dayanand His Life and Work** ले० प्रि० सूय भानु जी **M A**	२ ५०
६	**महात्मा हंसराज जी सचित्र** (ले० आनन्द स्वामी जी महाराज,	२ ५०
७	**प्रभु दर्शन** (आनन्द स्वामी जी महाराज)	२ ५०
८	**महर्षि दर्शन** (ले०—प्रि० दीवान चन्द जी **M A**)	२ ००
९	**स्वाध्याय संग्रह** (ले० प्रि० साइदास जी **M A**)	० ५०
१०	**नवीन प्राचीन समाजवाद** (ले० नारायण स्वामी जी)	१ ००
११	**सत्यार्थ प्रकाश भाग प्रथम समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M A**)	० ५०
१२	**सत्यार्थ प्रकाश भाग द्वितीय समुल्लास** (ले० वाचस्पति **M A**)	० ५०
१३	**मुण्डक उपनिषद्** (ले० प्रि० दीवान चन्द जी **M A**)	० ३७
१४	**राधा स्वामी मत आलोचन** (ले० स्वामी सामानन्द जी) उदू मे	० ३७
१५	**षड्दर्शन समन्वय** (ले० बुद्धदेव जी मीरपुरी)	१ २५
१६	**सीता** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० ३७
१७	**पद्मिनी** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० ३१
१८	**प वती** (ले० म० आनन्द स्वामी जी)	० २५
१९	**Teachings of Ish Upnished** (ले० प्रि० दीवानचन्द जी **M A**) अग्रे जी मे	१ २५

आज ही आडर भेजिए और सभा की सहायता कीजिये, आय समाजें स्कूल कालिज पुस्तकालयो के लिये मगाने की कृपा करें। नियमोनुसार कमीशन दिया जायगा।

पुस्तकें मिलने का पता — महात्मा हंसराज साहित्य विभाग आय प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, निकट कचहरी जालन्धर।

[illegible] प्रकाशक डा० वेदीराम शर्मा एम ए. पी एच डी आर्यप्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर
[illegible] आर्यवत्त कार्यालय महात्मा हंसराज भवन

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का

मुख पत्र

आर्य जगत्

शिवरात्रि विशेषांक

७ मार्च १९७८

वर्ष ४०] [अङ्क १०

वार्षिक मूल्य १० रुपये वार्षिक

इस अंक का मूल्य ३ रुपये



उप राष्ट्रपति भारत
नई देहली
फरवरी २३, १६७८

प्रिय गिरीश जी,

आपका पत्र दिनाक २२ फरवरी, १६७८ का प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप साप्ताहिक 'आर्य जगत'' का ''शिवरात्रि'' के शुभ अवसर पर एक विशेषाक प्रकाशित करने जा रहे है। मै आपके इस विशेषाक की सफलता के लिये अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ भेजता हू।

आपका
ब. दा. जत्ती

श्री गिरीश चन्द्र खोसला,
प्रबन्ध सम्पादक,
आर्य जगत साप्ताहिक
मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-११०००१

आर्यसमाज के प्रवर्तक



विश्व वन्दनीय जगद्गुरु
महर्षि दयानन्द जी सरस्वती



डो०ए०वी० आन्दोलन के जन्मदाता त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी

शुद्धि आन्दोलन के प्रणेता

तथा

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के सञ्चालक



अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी

महात्मा आनन्द स्वामी जी द्वारा देश भर के आर्य समाजों के मन्त्रियों, प्रधानों को मृत्यु शैया से लिखा गया स्वलिखित पत्र—

मेरे प्यारे श्री प्रधान जी, मन्त्री जी

सप्रेम नमस्ते

मुझ फकीर की टेर सुनिये - आर्य समाज की स्थापना वेद प्रचार के लिये की गई थी, परन्तु वेद प्रचार की ओर ही सब से कम ध्यान दिया गया, परिणाम यह है कि वेद प्रचार फण्ड में इतना भी धन नहीं रहा कि उपदेशक प्रचारक महानुभावों को वेतन दिया जा सके, अतः कृपा करके यदि अधिक धन भेजें तो बहुत अच्छा अन्यथा रुपये तो अवश्य ही अति शीघ्र भेजने का कष्ट करें, मैं आप के उत्तर की प्रतीक्षा में रहूंगा

भवदीय - आनन्द स्वामी सरस्वती

आर्य जगत् के मूर्धन्य दिवंगत नेता—



स्वर्गीय महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज
पूर्व प्रधान आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

आज से लगभग १४१ वर्ष पूर्व की उस ऐतिहासिक रात्रि को टकारा वासी १३ वर्षीय बालक मूलशकर का एक छोटी सी घटना से केवल हृदय परिवर्तन ही नही हुआ अपितु भारतवर्ष के धार्मिक सामाजिक क्षेत्र मे एक नव सैद्धातिक क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। ऋषि दयानन्द मानव जगत के प्रचण्ड प्रकाशमान सूर्य थे। स्वामी जी ने धार्मिक, सामाजिक, चारित्रिक तथा राजनैतिक क्षेत्रो मे अनुपम भूमिका निभाई। वस्तुत महर्षि के विशाल जीवन, कार्य शैली एव अमृत ग्रथो तथा रचनाओ का अध्ययन करे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय मे मूल वैदिक प्रचार को महर्षि ने प्रत्येक क्षेत्र मे विशेषता दी है। स्वामी जी उन महान व्यक्तियो मे से है जिन्होने अर्वाचीन भारत का निर्माण किया तथा जो देश की नैतिक तथा धार्मिक पुनरुद्धार के उत्तरदाता है। भारतीय सस्थाओ के पुर्ननिर्माण, सुधार और नवजीवन प्रदान करने मे सर्वाधिक श्रेय आर्य समाज को ही जाता है। ऐतिहासिक तथ्यो के अनुसार ऋषि दयानन्द ने ही देश के स्वाधीनता आन्दोलन की वास्तविक नीव डाली थी। उन्होने अधर्म के नाम पर हो रहे प्रचार को मिटाने के लिये अपने जीवन की आहूति दी। आज ६ हजार आर्य समाजे हजारो डी०ए०वी० तथा आर्य शिक्षण सस्थाए ऋषि द्वारा छोडे गये मिशन के पूरा करने मे लगी हुई है।

प्रादेशिक सभा का मुख पत्र 'आर्य जगत" गत ४० वर्षों से देश, धर्म, साहित्य तथा सस्कृति की बहुमूल्य सेवा कर रहा है। समय-समय पर विशेषाक प्रकाशित कर मानव मात्र मे ज्ञान रूपी सुगध का सचार करता रहा है। इस महा बोध पर्व पर प्रस्तुत है "शिवरात्रि अंक"। आशा है प्रबुद्ध पाठको के लिये यह लाभान्वित सिद्ध होगा। हमारे इस तुच्छ प्रयास से अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर कर समाज मे नवीनता का सचार ही हमारी सफलता का प्रतीक होगा।

— गिरीश चन्द्र खोसला

दयानन्द प्रगतिशील आर्यसमाज के प्रवर्तक थे

श्री आनन्दप्रिय जी

भारतवर्ष मे जब से तर्कवाद एव बुद्धिवाद का स्थान अधविश्वास तथा 'बाबावाक्य प्रमाणम्" वाद ने ग्रहण कर लिया था तब से इसके पतनकाल का इतिहास आरम्भ होता है। विद्या का अभाव होने से जनता प्राय वहमी तथा बिना परीक्षा किये बातो को ग्रहण करने लगी। यही कारण है कि भारत मे अधाधु धी का राज्य हो गया जिसने जो चाहा वह किया, धर्मशास्त्र, स्मृति, वेद सब के मन माने अर्थ कर चालाक लोगो ने भोली जनता मे अपना उल्लू खूब सीधा किया। भारतवर्ष के इस अधविश्वास युग मे वाममार्ग जैसा भ्रष्ट मार्ग भी सर्व साधारण मे धर्म के नाम पर फैल गया। आचार्यो एव उनके मनघडन्त शास्त्रो के प्रति शका अथवा तर्क करना भारी पाप समझा जाने लगा और इस प्रकार भारतीय जनता की विचारक एव आविष्कारक शक्ति का प्राय सर्वनाश हो गया। विद्वान् का लक्षण इस काल मे यह नही रहा कि जो मननपूर्वक तुलनात्मक दृष्टि से बात करे किंतु विद्वानो मे उन लोगो की गिनती होने लगी जो आँखे मू द कर अमुक आचार्य के अथवा स्मृतिकार के श्लोक वा पद तोते के समान रट कर सुनादे। स्थान-स्थान पर भक्तजनो के हितार्थ कथा वार्ता आरम्भ हो गई। जिसमे यह सिखलाया गया कि कथाकार वेदव्यासजी के स्वरूप हैं उनके मुख से जो भी निकले उसे अमृत मान श्रोताजनो को पान करना चाहिये। जिस प्रकार इजीनियर द्वारा सब कल कारखाना चलता है उसी प्रकार हिन्दू समाजरूपी कल कारखाना इन इजीनियरो के हाथ की कठपुतली हो गया। जिस प्रकार जड मशीनो को अपनी गति का कुछ ध्यान नही उसी प्रकार हिंदू समाज भी पूजा पाठ जप तप व्रत ध्यान यत्रवत् होकर करने लगा। किसी ने कहा साप देवता को पूजो तो यार लोग दूध के घडे सर्पों के निमित्त रखने लगे, दूसरे ने कहा नदियो की पूजा करो तो लोग नदियो मे पुष्प दूध चदन का अर्घ्य देने लगे। इस प्रकार साप, बिच्छू, दिशा, हाथी, पत्थर, वृक्ष जो किसी ने कहा वही पूजा गया।

किसी-किसी धूर्त ने अपने पैरो का तो किसी ने अपनी धोती का जल पिलाकर मुक्ति का मार्ग खोल दिया तो किसी ने कान मे मन्त्र फूकते ही गोलोक मे स्थान दे दिया।

हिन्दू समाज इस प्रकार जड हो रहा था, उसकी क्रियाये यन्त्रवत् बिना ज्ञान इच्छा एव बुद्धि द्वारा होती थी, स्वामी दयानन्द भी समाज की रूढी के अनुसार यन्त्रवत् शिवोपासना मे विराजमान थे उन्होने चूहे को शिवजी का अन्न ले जाते देख उनके मन मे तर्क हुआ, तर्क ने विचार को स्थान दिया, विचार ने बुद्धि को, इस प्रकार स्वामी दयानन्द यन्त्रवत् पूजा को छोड बुद्धियुक्त पूजा की खोज मे बढ गये। इस खोज का इतिहास बडा मनोरजक है सब जानते है कि किस प्रकार इस छोटी सी घटना ने स्वामी दयानन्द के जीवन मे एक प्रबल क्रान्ति करदी। स्वामी दयानन्द ने वर्षों से चले आते अधविश्वास के सिहासन की जडे हिला दी और भारतीय जनता को यत्रवत् गति करने से रोक बुद्धिपूर्वक गति करने की शक्ति प्रदान की। स्वामी जी ने जो बलवा किया उसका असर भारतवर्ष के इतिहास मे बडा भारी है। स्वामी जी ने स्वय तर्क का उपयोग कर हिंदू समाजरूपी अन्धे को आँखे प्रदान कर दी। स्वामी जी ने जिस क्रातिकारी समाज की रचना की उसका नाम आर्य समाज रक्खा। आर्य समाज का अर्थ यही है कि जो समाज प्रगतिशील हो। ससार मे इतना सु दर नाम शायद ही किसी अन्य समाज का होगा। आर्य समाज कोई संप्रदाय नही है आर्य समाज का वास्तव मे यही अर्थ है कि जो देश काल के अनुसार प्रगति करे। इस समय जो बाते हम प्रचार करते आये है सर्वसाधारण स्वीकृत करते जाते है, शुद्धि, सगठन, विधवा-विवाह, दलितोद्धार यह सब कार्य हिंदू जनता ने बिना हमारे समाज का सभासद् बने अपना लिये है। अब प्रगतिशील समाज के सभ्यो का कर्त्तव्य है कि वह आगे बढें और जन्ममूलक जाति पाँति को छोड वास्तव मे सक्रिय कार्य कर बतावे। आर्य समाज जिस दिन अपने नाम को भूल जायेगा, आर्य समाज जिस दिन अपने आपको अमुक दायरे मे जकड लेगा, आर्य समाज जिस दिन देश काल की परिस्थिति का विचार करना छोड अपने आरम्भ काल की अमुक परिपाटियो का लकीर का फकीर बन काम करेगा तो उस महाशिवरात्रि के दिन जो महान् नीव स्वामी दयानन्द ने डाली थी उसको खोखला बना देगा। ताज्जुब नही ऐसे समय कोई दूसरा अगुआ बन आर्य समाज का भी मार्गदर्शक बने। हम नही मानते कि कभी ऐसा होगा या ऐसा समय आयेगा, हम नही समझते कि आर्य समाज मे साम्प्रदायिकता अथवा लकीर का फकीर वाद वा 'बाबावाक्य प्रमाणम्' वाद घुस जायेगा हमारा तो यही विश्वास है कि आर्यसमाज उसी सस्था का नाम रहेगा जो ऋ गतौ के धातु अर्थ के अनुसार आगे ही बढता रहे और स्वामी दयानन्द उसी आर्य समाज के प्रवर्तक गिने जायेगे जो प्रगतिशील है।

कर्मवीर स्तोत्र

कर्मवीर मनस्वी होते है।	कर्मवीर रूढि-वादो को बदल देते है।
कर्मवीर त्यागी होते है।	कर्मवीर बुरी-सत्ताओ को बदल देते है।
कर्मवीर जितेन्द्रिय होते है।	कर्मवीर ससार को बदल देते हैं।
कर्मवीर ही जीना जानते है।	कर्मवीर ही सच्चा ज्ञानी है।
कर्मवीर ही मरना जानते है।	कर्मवीर ही सच्चा मानी है।
कर्मवीर ही रुलाना जानते है।	कर्मवीर ही सच्चा योगी है।
कर्मवीर सोते हुए भी प्रबुद्ध होते है।	कर्मवीर विपत्तियो से खेलना चाहते है।
कर्मवीर मरे हुए भी अमर होते है।	कर्मवीर अन्तरापो से मिलाप चाहते है।
कर्मवीर कुरूप हुए भी सुन्दर होते है।	कर्मवीर ईश्वर से सहाय चाहते है।
कर्मवीर जितेन्द्रिय भी हो सकते है।	कर्मवीर कर्तव्य से प्रेम करते है।
कर्मवीर सयमी ही हो सकते है।	कर्मवीर वीर-मृत्यु से प्रेम करते हैं।
कर्मवीर उत्साही ही हो सकते है।	कर्मवीर कर्मण्य-जीवन से प्रेम करते है।
कर्मवीर परसहाय की चिन्ता नही करते।	कर्मवीर लुटते है लुटवाते नही।
कर्मवीर साधनो की चिन्ता नही करते।	कर्मवीर पुजते है पुजवाते नही।
कर्मवीर परिस्थितियो की चिंता नही करते।	कर्मवीर सेवा करते हैं करवाते नहीं।
कर्मवीर उत्साह का उमडता सागर है।	कर्मवीर पूर्ण आत्म-विश्वासी होते है।
कर्मवीर धैर्य का अगाध सागर है।	कर्मवीर पूर्ण-त्यागी होते है।
कर्मवीर सहिष्णुता का अपार सागर है।	कर्मवीर पूर्ण आत्म-विजयी होते है।



शिवरात्रि का सन्देश

स्वामी धर्मानन्द सरस्वती

पूजा करो प्रेम से उसकी, जो है एक महेश्वर ।
उसको छोड नही पूजा के, योग्य देव जो शकर ।।
सर्व-व्यापक सर्व-शक्तिमय, वह सर्वज्ञ दयानिधि ।
विमल हृदय मे उसको ध्यावो, जाओ भव-सागर तर ।।
एक देव के नाम अनेक, ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।
विविध गुणो को सूचित करते, वही देव विश्वम्भर ।।
निराकार है देव न उसकी, मूर्ति कभी बन सकती ।
कल्पित मूर्ति बना जो पूजें, डूबे वे भव सागर ।।
वह कल्याण करे नित सबका, इससे शिव कहलावे ।
शान्तिमूल वह शान्ति विधाता, अत कहावे शकर ।।
घट-घट वासी है जगदीश्वर, क्यो कैलास निवासी ?
सर्पमाल्य डमरू सब कल्पित, ध्यावो अब अविनश्वर ।।
जड की पूजा जडता को ही, लाती है मानस मे ।
चेतन की पूजा को हिय मे, करके पावो फल वर ।।
शिवरात्री सन्देश सुनो सब, जड की पूजा त्यागो ।
दयानन्द ऋषि अनुगामी बन, सदा भजो जगदीश्वर ।।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्यनाम महद् यश: ।। यजु० ३२।३

ऋषि से उऋण हाय होने न पाये

श्री पं० मूरालाल जी कथाव्यास

ऋषि बागवाँ बन के आया धरा पर।
गया भूमि भारत को अति उर्वरा कर।।
चमत्कारिणी कुछ चला चीज देकर।
विशद वेद-विद्या के वर बीज देकर।।
मगर हम यहाँ उनको बोने न पाये।
ऋषि से उऋण हाय! होने न पाये।।१।।

उडाना यहाँ वीर वैदिक पताका।
सुलभ लाभ लेना अमित ऐक्यता का।।
पतित सघ को पाठ पावन बढाना।
गिरे है उन्हे खैंच ऊपर चढाना।।
भटक भिन्नता भूल खोने न पाये।
ऋषि से उऋण हाय! होने न पाये।।२।।

कभी 'कृण्वन्तो विश्वमार्यं' न जाना।
'माहिंसि भूतानि' को कुछ न माना।।
भले भाइयो को बुरे मानते हैं।
निबल पर सबल हो छुरे तानते हैं।।
दिलो के बुरे दाग धोने न पाये।
ऋषि से उऋण हाय! होने न पाये।।३।।

दयालू दयानन्द था दूरदर्शी।
सिखा कर चला था हमें जो महर्षि।।
नही सीख पाए तथा कर न पाए।
शिरोभार सिर पर जरा धन न पाए।।
बचा था जो कुछ बोझ ढोने न पाए।
ऋषि से उऋण हाय! होने न पाए।।४।।

वैदों में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक संकेत

डा० पुरुषोत्तमलाल भार्गव

हमारे पूर्वजो से रिक्थरूप मे हम जो वस्तुए प्राप्त हुई है उनमे सबसे मूल्यवान् वेद है । वेद केवल हमारे धर्म के ही आदिस्रोत नही है वरन् हमारे साहित्य और हमारी सभ्यता के किसी भी पक्ष का पूर्ण ज्ञान वेदो के अध्ययन के बिना नही हो सकता । वेदो मे विशेष रूप मे ऋग्वेद मे, हमारे प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए भी अत्यन्त मूल्यवान् भौगोलिक और ऐतिहासिक सकेत प्राप्त होते है । जो लोग वेदो को अपौरुषेय मानकर उनमे भौगोलिक और ऐतिहासिक सामग्री का अस्तित्व स्वीकार नही करते वे वास्तव मे हमारे देश को उसके इतिहास के कुछ अत्यन्त गौरवशाली पात्रो और प्रेरणादायक घटनाओ मे वचित करके उसे गहरी क्षति पहुचाते है ।

वेदो मे प्रथम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण ऋग्वेद है । उस महान् ग्रन्थ मे हमारी सभ्यता के आदिकाल का गौरवशाली इतिहास सुरक्षित है । भारत के जिस प्रदेश मे आर्य उस काल मे बसे हुए थे उसकी नदियो, पर्वतो समुद्रो आदि का इस ग्रन्थ मे बडा स्पष्ट वर्णन मिलता है । अब हम क्रमश इन सब पर दृष्टिपात करेगे । इन सब भौगोलिक वस्तुओ मे नदियो का महत्त्व सबसे अधिक है । अत सर्वप्रथम नदियो के सम्बन्ध मे जो सूचनाए ऋग्वेद से प्राप्त होती है, उन पर विचार किया जायगा ।

जिस प्रदेश मे ऋग्वेद के सूक्तो की रचना हुई वह ऋग्वेद के एक मत्र (८, २४, २७) के अनुसार सप्तसिन्धु, अर्थात् सात नदियो का देश कहलाता था । यह सात नदिया कौन सी थी, इसको जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ऋग्वेद मे कौन-कौन सी नदियो का उल्लेख हुआ है ।

ऋग्वेद मे लगभग चालीस नदियो का उल्लेख हुआ है यद्यपि सबसे प्रमुख नदिया सिन्धु और सरस्वती है । सबसे अधिक नदियो का जिस एक सूक्त मे उल्लेख हुआ है वह दशम मण्डल का ७५ वा सूक्त है जिसे नदी-स्तुति कहते है । यह ऋग्वेद

का एक मात्र सूक्त है जिसमे गगा नदी का प्रत्यक्ष रूप से उल्लेख हुआ है। इस सूक्त के अनुसार आर्यों के प्रदेश मे बयालीस (सप्तसप्त त्रेधा) नदिया प्रवाहित होती थी। परन्तु इसमे केवल उन्नीस नदियो के नाम आये है। हम पहले इन उन्नीस नदियो पर विचार करेगे और बाद मे ऋग्वेद मे उल्लिखित अन्य नदियो को लेगे।

गगा—इस सूक्त की रचना के समय तक आर्यो का गगा तक विस्तार हो चुका था, अत इसमे सिन्धु के पूर्व की नदियो की गणना गगा से ही प्रारम्भ की गई है। एक अन्य सूक्त (६, ४५, ३१) मे भी गगा का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख हुआ है। गगा जैसी महत्त्वपूर्ण नदी का इतना विरल उल्लेख यह सिद्ध करता है कि ऋग्वेद काल मे आर्य इस नदी से बहुत कम परिचित थे।

यमुना—गगा के बाद इस सूक्त मे यमुना का उल्लेख है। यमुना का उल्लेख दो और सूक्तो (५, ५२, १७ और ७, १८, १९) मे भी हुआ है। इनमे से एक मत्र से सूचित होता है कि इस नदी का तट गौओ से उस समय भी ऐसा ही भरपूर था जैसा बाद के युगो मे।

सरस्वती—यमुना के बाद क्रम से इस सूक्त मे सरस्वती का उल्लेख है। यह नदी ऋग्वेद काल की सबसे पवित्र और महत्त्वपूर्ण नदी थी। इसमे कोई सन्देह नही कि इसकी पहचान आधुनिक सरसुती से होनी चाहिए जो थानेश्वर के पश्चिम मे पेहोवा (पृथूदक) और सिरसा के पास से गुजरती हुई हनुमानगढ अथवा उससे कुछ आगे सूरतगढ के पास मरुभूमि मे विलीन हो जाती है। ऋग्वेद काल मे यह नदी पहाड़ो से निकल कर बहती हुई समुद्र मे गिरती थी एकाचेतत् सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात्। (ऋ० ७, ९५, २)। इसका महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के एक सम्पूर्ण सूक्त (६,६१) मे, पाँच सूक्तो मे आशिक रूप से और कई बिखरे हुए मन्त्रो मे इसकी स्तुति पाई जाती है। इसको अम्बितम नदीतमे देवितमे सरस्वति। (२, ४१, १६) कहकर सम्बोधित किया गया है। इसको सप्तथी (७, ३६, ६) अर्थात सातवी नदी कहा गया है जिसका अर्थ यह है कि सप्तसिन्धु की सात नदियो मे यह अन्तिम मानी जाती थी।

शुतुद्री—सरस्वती के बाद जिस नदी का उल्लेख हुआ है वह शुतुद्री है। बाद मे यह नाम थोडा सा परिवर्तित होकर शतद्रु हो गया, जिससे आधुनिक सतलज शब्द बना। इसका नाम ऋग्वेद के एक और सूक्त (३, ३३,१) मे भी आया है।

परुष्णी—शुतुद्री के बाद इस सूक्त मे परुष्णी का उल्लेख हुआ है। जैसा कि यास्क ने कहा है यह वही नदी है जिसका नाम बाद मे इरावती हो गया जिसका अपभ्र श रूप रावी है। इस नदी का ऋग्वेद मे कई बार और अथर्ववेद मे भी एक बार उल्लेख हुआ है।

असिक्नी—असिक्नी वही नदी है जिसका बाद मे चन्द्रभागा नाम पडा जिसका अपभ्र श रूप आधुनिक चनाब है। इस नदी का नाम ऋग्वेद के एक अन्य सूक्त (८,२०,२३) मे भी आया है।

मरुद्वधा—असिक्नी के बाद इस सूक्त मे मरुद्वृधा का उल्लेख हुआ है। स्टीन नामक विद्वान् ने इसका काश्मीर की एक नदी मरुवर्धवान् से तादात्म्य किया है जो उत्तर से दक्षिण को बहती हुई किष्टवार के पास चनाब मे मिल जाती है।

वितस्ता—मरुद्वृधा के बाद इस सूक्त मे वितस्ता का उल्लेख हुआ है। काश्मीर मे इसे अब भी वेथ कहते है, परन्तु काश्मीर के बाहर इसका आधुनिक नाम झेलम है जो इसके किनारे बसे हुए एक नगर के नाम पर पडा है।

आर्जीकीया—वितस्ता के बाद इस सूक्त मे जिस नदी का नाम आया है वह आर्जीकीया है। यास्क ने इसका तादात्म्य विपाश् अथवा व्यास नदी से किया है, परन्तु इस नदी का वितस्ता के बाद उल्लेख होने के कारण यह तादात्म्य अग्राह्य है। सभवत यह नदी वही थी जिसे आजकल हारो कहते है। और जो सिन्धु की एक पूर्वी सहायक नदी है।

सुषोमा—आर्जीकीया के बाद सुषोमा नदी का उल्लेख है। यह सभवत हरो के दक्षिण मे बहने वाली सिन्धु की सहायक नदी सोहान है।

सिन्धु—सिन्धु के पूर्व मे बहने वाली दस नदियो का उल्लेख करने के बाद ऋषि ने सिन्धु और उसके पश्चिम मे बहने वाली नदियो का उल्लेख किया है। सिन्धु नदी परवर्ती युगो के समान उस युग मे भी देश की सबसे विशाल नदी थी यद्यपि महत्व और पवित्रता मे सरस्वती उससे आगे बढ गई थी। ऋग्वेद मे सिन्धु की बहुत प्रशसा की गई है। वास्तव मे नौ मन्त्रो के इस नदी सूक्त मे पाचवे मन्त्र को छोडकर शेष सभी मे सिन्धु की प्रशसा की गई है। इसके अतिरिक्त अन्य सूक्तो मे भी अनेक ऐसे मत्र मिलते है जिनमे सिन्धु की प्रशसा है। नदी सूक्त के आठवे मत्र मे इसको सुन्दर घोडो वाली, सुन्दर रथो वाली, सुन्दर वस्त्रो वाली, सुवर्ण वाली, अन्न वाली, ऊन वाली, सन वाली और मधुवर्धक पुष्पो को धारण करने वाली कहा गया है।

तृष्टामा—सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियो मे सबसे पहले तृष्टामा का उल्लेख है। सिन्धु जब दक्षिण की ओर घूमती है तो पहली नदी जो इसमे मिलती है वह गिल्गिट है। अत तृष्टामा की पहचान गिल्गिट से ही करना युक्तिसगत है।

कुभा और श्वेती—कुभा नदी आधुनिक काबुल है। इसका पाचवे मण्डल (५३,९) मे भी एक बार उल्लेख हुआ है। श्वेती, जिसका नदी स्तुति मे कुभा के पहले उल्लेख हुआ है, सभवत काबुल की सहायक कूनर है।

क्रुमु और मेहत्नू—क्रुमु आधुनिक कुर्रम नदी है। इसका पाचवे मण्डल (५३, ६) मे भी एक बार उल्लेख हुआ है। नदी-स्तुति मे क्रुमु के बाद मेहत्नू का नाम है। इसकी पहचान करना कठिन है। यदि यह क्रुमु की सहायक थी, तो टोची या कैतू हो सकती है।

गोमती—यह नदी आधुनिक गोमल है। इसका आठवे मण्डल (२४ ३०) मे भी एक बार उल्लेख हुआ है।

रसा और सुसर्तु—इन नदियो की पहचान कठिन है। एक अन्य सूक्त (५,५३,६) मे सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियो का जिस क्रम से उल्लेख हुआ है उससे प्रतीत होता है कि रसा सबसे दूर की नदी थी। यदि ऐसा है तो हो सकता है कि यह अफगानिस्तान मे बहने वाली पजशिर नदी हो। ऐसी दशा मे इसके साथ उल्लिखित सुसर्तु की पहचान पजशिर की सहायक घोरबन्द से करनी होगी।

नदी-सूक्त की उन्नीस नदियो को निबटाने के बाद अब हम अन्य सूक्तो मे उल्लिखित नदियो को लेगे। इन नदियो को भी हम पूर्व दिशा से ही प्रारम्भ करेगे।

दृषद्वती और आपया—ऋग्वेद के तृतीय मडल के एक सूक्त (२३,४) मे सरस्वती के साथ इन दो नदियो का नाम आया है। दृषद्वती सभवत आधुनिक चौतग थी जो थानेश्वर के पूर्व मे बहती है। आपया सभवत थानेश्वर के पास बहने वाली एक छोटी नदी के अभिन्न थी। सरस्वती और दृषद्वती के बीच की भूमि बडी महत्त्वपूर्ण थी। मनुस्मृति मे इसको ब्रह्मावर्त कहा गया है।

राका और बृहद्दिवा—ऋग्वेद के पचम मडल के एक सूक्त (४२,१२) मे सरस्वती के साथ इन दो नदियो का उल्लेख हुआ है। राका सभवत. आधुनिक राक्सी थी और बृहद्दिवा इसी नदी मे मिलने वाली एक छोटी नदी थी।

विपाश्—यह आधुनिक ब्यास है। इसका ऋग्वेद मे दो बार (३,३३.१ और ३ तथा ४,३० ११ मे) उल्लेख हुआ है।

गौरी—सिन्धु के पश्चिम मे बहने वाली जिन नदियो का नदी-सूक्त के अतिरिक्त उल्लेख हुआ है, उनमे एक गौरी नदी थी जिसका दो बार (१,१६४,४१ और ६,१२,३ मे) उल्लेख हुआ है। इसे आजकल पजकोरा कहते है।

सुवास्तु—सुवास्तु नदी का केवल एक बार (८,१९,३७ मे) उल्लेख हुआ है। यह आधुनिक स्वात नदी है।

अनितभा—इस नदी का भी एक ही बार (५,५३,६ मे) उल्लेख हुआ है। रसा और कुभा के बीच मे इसका नाम आने के कारण इसकी पहचान आलिगर से होनी चाहिए।

सरयु—इस नदी का ऋग्वेद मे तीन बार (४,३०,१८, ५,५३,६, १०,६४,६ में) उल्लेख हुआ है। कुछ लोग नाम के आधार पर अवध की सरयू नदी से इसका तादात्म्य करते है परन्तु यह गलत है। ऋग्वेद के पाचवे मण्डल मे इसका सिन्धु तथा उसकी पश्चिमी सहायक नदियो रसा, अनितभा, कुभा और क्रुमु के साथ उल्लेख हुआ है। अत इसमे कोई सन्देह नही प्रतीत होता कि यह आधुनिक सिरीतोई है जो गोमल की सहायक नदी है।

इनके अतिरिक्त ऋग्वेद मे लगभग एक दर्जन और नदियो का भी उल्लेख हुआ है, परन्तु उनकी पहचान असभव है।

अब हमे यह देखना है कि आर्यो का देश सप्तसिन्धु क्यो कहलाता था। हम पहले ही कह चुके है कि सरस्वती को सप्तथी अथवा सातवी नदी कहा गया है। शेष छ नदिया निस्सन्देह इसके पश्चिम मे बहने वाली सिन्धु और उसकी प्रसिद्ध पाच पूर्वी सहायक नदियाँ (वितस्ता असिक्नी, परुष्णी विपाश और शतुद्री) थी। इन्ही सात नदियो के नाम पर आर्यो का देश सप्त-सिन्धु कहलाता था।

वेदो मे जिन अन्य भौगोलिक वस्तुओ का उल्लेख है उनमे सबसे महत्त्वपूर्ण समुद्र है। ऋग्वेद मे समुद्र के इतने प्रचुर और स्पष्ट उल्लेख होने पर भी 'वैदिक आर्यो का समुद्र से परिचय ही नही था'—पाश्चात्य विद्वानो का यह मत आश्चर्य का विषय है। ऋग्वेद मे समुद्र मे नदियो के गिरने का बार-बार उल्लेख है। समुद्र की रयि का, समुद्र से मिलने वाले कृशनो (मोतियो) का, समुद्र के कोहरे का, समुद्र के तूफान का और समुद्र की गभीरता का अनेक बार उल्लेख हुआ है। समुद्र मे चलने वाले जहाजो का भी वर्णन मिलता है। एक स्थल पर (१,११६ ५) सौ अरित्रों अर्थात् डाँडो से चलने वाले जहाज का उल्लेख है जिसका उपयोग समुद्र मे ही हो सकता था। जहाज के विभिन्न भागो के भी नाम मिलते है। पाल को पक्ष कहते थे, मस्तूल को अश्व कहते थे, और पतवार को कर्ण कहते थे। कई सूक्तो मे इस बात का बड़ा रोचक वर्णन है कि तुग्र के पुत्र भुज्यु को नौ-ध्वसन हो जाने पर अश्विनो ने किस प्रकार बचाया था।

ऋग्वेद मे एक ही समुद्र का नही चार समुद्रो का (६ ३३ ६ और १०,४७ २ मे) उल्लेख है। इनमे अपर पर अथवा परावत् समुद्र तो निस्सन्देह वही था जिसे आजकल अरब सागर कहते है। एक समुद्र जो सप्तसिन्धु के पूर्व मे था पूर्व, अवर अथवा अर्वावत् कहलाता था। सप्तसिन्धु के दक्षिण मे सरस्वन् समुद्र था, जिसमे सरस्वती नदी गिरती थी। ये दोनो समुद्र निस्सन्देह वर्तमान राजस्थान के कुछ भाग पर थे। चौथा समुद्र सप्तसिन्धु के उत्तर मे था और शर्यणावत् कहलाता था। हिलब्रांट के अनुसार यह काश्मीर की वूलर झील का ही प्राचीन नाम था।

वेदो मे पर्वतो के नाम भी आये है। सबसे प्रसिद्ध पर्वत तो निस्सन्देह हिमवान् था। इसके अतिरिक्त शर्यणावत्, सुषोम, आर्जीक और मूजवान् पर्वतो के नाम भी मिलते है।

वेदो मे कई प्रदेशो के नाम भी आये है। सप्तसिन्धु मे अनेक छोटे-छोटे प्रदेश रहे होगे। इनमे से एक मात्र प्रदेश जिसका उल्लेख वेदो मे मिलता है गन्धारि अथवा गान्धार है। सप्तसिन्धु के बाहर जिन प्रदेशो के नाम वेदो मे मिलते है वे चेदि, काशी, कुरु, पचाल, अग और मगध है।

वेदो मे कुछ नगरो के नाम भी आये हैं। अथर्ववेद मे अयोध्या का नाम आया है। एक व्यक्ति को अथर्ववेद मे वैशालेय कहा गया है, जिससे प्रतीत होता है कि अथर्ववेद के समय वैशाली नगर भी बस चुका था। यजुर्वेद मे काम्पील का उल्लेख है, जो निस्सन्देह पचाल की राजधानी काम्पिल्य है।

अब यदि हम वेदो मे ऐतिहासिक सामग्री की खोज करे तो उसकी भी वेदो मे कमी नही है। यदि हम वेद शब्द मे ब्राह्मणो और उपनिषदो को भी सम्मिलित कर ले, तब तो यह सामग्री अत्यन्त प्रचुर हो जाती है, परन्तु यदि हम अपनी दृष्टि केवल सहिताओ तक ही सीमित रखे तो भी यह सामग्री बहुत अल्प नही है। वास्तव मे पुराणो मे जो राजाओ की वशावलिया मिलती है, उनकी सत्यता की पुष्टि वेदोत्तर काल मे जिस प्रकार बौद्ध, जैन अथवा थोडे बहुत विदेशी स्रोतो से होती है, उसी प्रकार वैदिक काल मे वेदो से होती है।

पुराणो के अनुसार वैवस्वत मनु के जिन चार पुत्रो ने आर्यो के प्रथम राज्य स्थापित किये, वे शर्याति, सुद्युम्न, इक्ष्वाकु और प्राशु थे। इनमे शर्याति सबसे प्रसिद्ध था। इसका नाम शार्यात रूप मे ऋग्वेद मे अनेक बार आया है।

सुद्युम्न के वश के अनेक राजाओ के नाम ऋग्वेद मे आये है। सुद्युम्न का उत्तराधिकारी पुरूरवा था, जिसका ऋग्वेद मे अनेक बार उल्लेख हुआ है। पुरूरवा के बाद क्रमश आयु, नहुष और ययाति गद्दी पर बैठे। इन सबके नाम ऋग्वेद मे मिलते है। ययाति के पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु का ऋग्वेद मे अनेक बार उल्लेख हुआ है। यदुवश की हैहय शाखा मे जो सहस्रबाहु नामक राजा हुआ, उसका भी ऋग्वेद मे उल्लेख है और उसके वशज वीतहव्य का भी है। अनु के वश मे उशीनर नामक एक राजा हुआ। ऋग्वेद मे उसकी पत्नी उशीनराणी का उल्लेख हुआ है। पुरु के वश मे यशस्वी राजा भरत हुआ जिसके नाम पर इस वश का नाम भरत वश पडा। भरत का ऋग्वेद मे कई बार उल्लेख हुआ है। उसके पुत्र विदथ का भी इसी वेद मे उल्लेख है। इसी वश मे आगे जाकर अजमीढ, अक्ष और श्रुतर्वन् नामक राजा हुए जिनका ऋग्वेद मे उल्लेख मिलता है। इस वश के परिक्षित् प्रथम नामक

नरेश का अथर्ववेद मे उल्लेख मिलता है। इसी वश मे आगे जाकर जो प्रतीप नामक राजा हुआ उसका भी अथर्ववेद मे उल्लेख है। प्रतीप के पुत्र शन्तनु का ऋग्वेद मे उल्लेख है। शन्तनु के पुत्र धृतराष्ट्र का यजुर्वेद की काठक सहिता मे उल्लेख है और धृतराष्ट्र के पिता विचित्रवीर्य का सकेत उसके पैतृक नाम वैचित्रवीर्य मे मिलता है।

भरत-वश मे जो कई शाखाएँ हुई उनके भी अनेक राजाओ के नाम वेदो मे मिलते है। कान्यकुब्ज के जह्नु वश के प्रसिद्ध राजा कुशिक का ऋग्वेद मे उल्लेख है। काठक सहिता मे काशी के राजा दिवोदास का उल्लेख है और उसके पिता भीमसेन का सकेत उसके पैतृक नाम भैमसेनि मे मिलता है। दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन का भी काठक सहिता मे उल्लेख मिलता है।

भरत-वश की एक प्रसिद्ध शाखा तृत्सुकुल के नाम से विख्यात हुई। इस वश के मुद्गल, वध्र्यश्व, दिवोदास, पिजवन, सुदास्, सहदेव और सोमक के नाम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ऋग्वेद मे आये है।

इक्ष्वाकुवशी राजाओ मे इक्ष्वाकु का नाम ऋग्वेद और अथर्ववेद मे आया है। इक्ष्वाकु के वश मे उत्पन्न हुए मान्धाता, पुरुकुत्स, त्रसदस्यु, त्र्यरुण और राम नामक प्रसिद्ध राजाओ का ऋग्वेद मे उल्लेख हुआ है।

जब हम ऐतिहासिक घटनाओ पर दृष्टिपात करते है तो हमारा ध्यान ऋग्वेद मे उल्लिखित एक अत्यन्त रोमाचक घटना पर जाता है। ऋग्वेद के सप्तम मडल का अठाहरवाँ सूक्त हमे बताता है कि तृत्सु वश के राजा सुदास् ने दस राजाओ की सम्मिलित सेना को हराने मे अद्भुत पराक्रम का प्रदर्शन किया। इस आश्चर्यमयी घटना का वर्णन करते हुए सुदास् के पुरोहित ऋषि वसिष्ठ कहते है —

> आध्रेण चित्तद्वेक चकार,
>
> सिह्य चित्पेत्वेना जघान।
>
> अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्र,
>
> प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे॥

इन्द्र ने (शत्रुओ के) सारे भोग्य-पदार्थ सुदास् को दिलवा कर एक दरिद्र व्यक्ति से अनोखा दान करवाया, मेमने से सिह का वध करवाया और सूई से सूप के कोनो को कटवाया।

देश की स्वतन्त्रता एवं उन्नति का प्रेरक : महर्षि दयानन्द

डा० प्रशान्त कुमार वेदालकार
(सदस्य महानगर परिषद दिल्ली)

डी वैन्ने के अनुसार वर्तमान माडर्न स्वतन्त्र भारत की वास्तविक आधार-शिला दयानन्द ने रखी थी। सन् १९०६ मे दादा भाई नौरोजी ने कहा था—'मैने स्वराज्य शब्द सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द के ग्रन्थो से सीखा।'

१८५७ की राष्ट्रीय क्रान्ति में

श्री पृथ्वीसिह मेहता विद्यालकार का 'हमारा राजस्थान' मे अनुमान है कि १८५७ की क्रान्ति की तैयारियो मे दयानन्द का निकटता से सम्बन्ध था। प० जयचन्द्र विद्यालकार का 'राष्ट्रीय इतिहास का अनुशीलन' मे अनुमान है कि १८५७ की हलचल मे स्वामी दयानन्द का किसी न किसी रूप मे हाथ अवश्य रहा होगा। प० जी ने बनारस के उदासी मठ के सत्यस्वरूप शास्त्री के कथन को उद्धृत किया है—साधु सम्प्रदाय मे तो बराबर यह अनुश्रुति चली आती है कि दयानन्द ने १८५७ के सघर्ष मे महत्वपूर्ण भाग लिया था। सत्यार्थ प्रकाश के ग्यारहवे समुल्लास मे १८५७ मे अग्रेजो द्वारा तोपो से मूर्त्तियो को उडा देने और इस सन्दर्भ मे बाघेर लोगो की वीरता का उल्लेख और उनका कृष्ण जैसे किसी नेता होने की इच्छा आदि के वर्णन से भी जयचन्द्र जी का अनुमान है कि दयानन्द ने बाघेरो के सघर्ष को निकटता से देखा होगा।

सन् १८६६ मे अजमेर मे कर्नल ब्रुक्स की विदाई समारोह मे बोलते हुए दयानन्द ने कहा था—'आप लन्दन पहुचकर महारानी विक्टोरिया को कह दे—यदि भारतीयो के धार्मिक जीवन मे शासन इसी प्रकार हाथ डालता रहा और गाय जो भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ और सास्कृतिक जीवन की प्रतीक है, उसका वध

जागी रहा तो १८५७ की क्रान्ति भी दोहराई जा सकती है।' उनकी यह वीर गर्जना भी इस बात का प्रमाण है कि १८५७ की क्रान्ति मे उनका अवश्य योगदान रहा होगा। उन्होने लक्ष्मीबाई तात्या टोपे और अन्य बहादुरो को इस क्रान्ति मे कूच करने की प्रेरणा दी थी।

स्वामी विरजानन्द से देश की उन्नति की शिक्षा

पृथ्वीसिह मेहता विद्यालकार के अनुसार देश की दशा पर भी गुरु शिष्य का सवाद एकान्त मे होता था जिसमे उन दोनो के सिवाय वहा तीसरा कोई व्यक्ति नही रहने पाता था। शिक्षा प्राप्त करने के बाद गुरु ने दक्षिणा मागते हुए कहा था—'वत्स ! भारत देश मे दीन हीन जन है जो मतमतान्तरो के सघर्ष मे कष्ट पा रहे है, जाओ इनके दु ख निवारण करो।' उनसे प्रेरणा पाकर दयानन्द क्रान्ति की मशाल लेकर निकल पडा। हरिद्वार मे एक दिन उन्होने कहा—'मेरी आखे उस दिन को देखने को तरस रही हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तथा अटक से कटक तक आर्यो का एकछत्र राज्य स्थापित होगा।'

पराधीनता और दुर्दशा के कारण

दयानन्द ने कहा था—'जब से विदेशी इस देश मे आकर राज्याधिकारी हुए तब से क्रमश आर्यो के दु ख की बढ़ती होती जाती है।' सन् १८७७ मे एक पादरी के प्रश्न के उत्तर मे कहा था—'आर्य लोग वेदानुसार ब्रह्मचर्य, विद्या प्राप्ति, एक स्त्री से विवाह, दूर देश की यात्रा और स्वदेश प्रेम आदि शुभ कर्मो का परित्याग कर बैठे है, इसलिए उनकी यह अधोगति हो रही है।'

देश की स्वतन्त्रता व उन्नति के प्रयत्न

(क) आर्यसमाज की स्थापना . देश की स्वतन्त्रता व उन्नति के लिए महर्षि दयानन्द ने १० अप्रैल १८७५ को बम्बई मे आर्यसमाज की स्थापना की। आर्यसमाज के प्रारम्भ मे बनाए २८ नियमो मे १७वा नियम था—इस समाज मे स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जाएगा—एक परमार्थ दूसरा व्यवहार। इन दोनो का शोधन तथा समस्त ससार के हित की उन्नति की जायेगी। महर्षि दयानन्द के ग्रन्थो के आधार पर इस नियम के उत्तरार्द्ध की व्याख्या होगी—वैदिक सस्कृति के विशाल मानवीय सस्कृति की ध्वनि सम्पूर्ण जगत् मे प्रसारित की जाए। इन नियमो मे ग्यारहवा नियम भी महत्वपूर्ण है। जिसके अनुसार आर्यसमाज मे केवल सिद्धान्तो पर ही विचार न होगा, उसके व्यावहारिक प्रयोग पर भी विचार किया जाएगा। आज हम आर्यसमाज की जन्म शताब्दी मना रहे है। आर्यसमाज के १०४ वर्षों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि आर्यसमाज ने देश की स्वतन्त्रता

मे महान् योगदान दिया। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, भाई परमानन्द सरदार अजीतसिंह, श्री मदनलाल ढीगरा, श्री रामप्रसाद बिस्मिल, श्री गेदालाल, ठा० रोशनसिह जी, सरदार भगतसिंह, चौ० मुख्त्यारसिह, श्री हरविलास शारदा तथा अन्य अनेक स्वतन्त्रता प्रेमियो ने महर्षि से प्रेरणा प्राप्त कर देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने को बलिदान किया। मालाबार के मोपला विद्रोह, राजस्थान व बगाल के अकाल, विहार के भूकम्प, नोआखली, देश-विभाजन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन् १९५७ मे पजाब मे हिन्दी रक्षा आन्दोलन आदि मे भाग लेकर आर्यसमाज ने सदा अन्याय के विरुद्ध सघर्ष किया।

(ख) राजनीतिक व धार्मिक शक्ति का संघठन

१ जनवरी १८७७ ई० को दिल्ली मे महारानी विक्टोरिया के महारानी होने पर आयोजित दरबार मे दयानन्द ने दिल्ली पहुच कर एक ओर आर्यावर्त्त के समस्त राजाओ के हृदय मे सच्चे आर्य धर्म को जगा कर देश प्रेम जगाने का प्रयत्न किया तथा साथ ही देश के भिन्न-भिन्न धार्मिक नेताओ को एकत्र करके ऐसा महानद ढूंढने का प्रयत्न किया जिसमे सब सम्प्रदाय रूपी नाले आकर मिल जाए। सभी प्रजा के सुधार का दावा करते है, पर सभी परस्पर झगडों मे पडे हुए हैं। स्वामी जी के निमन्त्रण पर बा० केशवचन्द सेन, सर सय्यद अहमद खा, मु शी कन्हैयालाल अलखधारी, बा० नवीनचन्द्र राय, मु शी इन्द्रमणि और बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि महानुभाव इकट्ठे हुए। इसमे बगाल, बम्बई, उत्तर प्रदेश और पजाब से आए इस्लाम, ब्राह्मसमाज, सनातन धर्म तथा आर्य समाज के प्रतिनिधि विद्यमान थे। यह बात दूसरी है कि महर्षि दयानन्द का यह प्रयत्न कोई एकदम रग नही ला सका, पर ऐतिहासिक दृष्टि से इसके महत्व का आकलन किया जा सकता है।

(ग) स्वदेश प्रेम एव स्वराज्य की भावना

महर्षि दयानन्द ने स्वदेश प्रेम एव स्वराज्य की भावना जागृत करके भारत की जनता को विदेशी शासन से मुक्त होने का पाठ पढाया था। अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना करके उसमे अपने देश का गौरव गान किया तथा भारतवासियो के हृदयो मे अपने देश और धर्म के लिए स्वाभिमान उत्पन्न किया। उनके कुछ उद्धरण उल्लेखनीय है .

—यह आर्यावर्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल मे दूसरा देश नही है। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूपी विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

—जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है और आगे होगा, उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें।

—सृष्टि से लेकर पाचो सहस्रो वर्षो से पूर्व समय पर्यन्त आर्यो का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल मे सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश मे माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योकि कौरव पाण्डव पर्यन्त यहा के राज्य और राज्य शासन मे सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलाते थे। (एकादश समुल्लास) आदि अनेक वाक्यो द्वारा महर्षि ने राष्ट्र को यह अनुभव करा दिया कि हम भी कभी शक्ति सम्पन्न और स्वाधीन थे।

स्वदेशी वस्तुओ का उपयोग

एक दिन का वर्णन है कि ठाकुर ऊधोसिह छावली निवासी अपने पिता ठाकुर भूपालसिह जी के साथ स्वामी जी के दर्शन करने के लिए अलीगढ मे आए। उस दिन ऊधोसिह जी के वस्त्र नये ढग के थे और सबके सब विलायती कपडे के बने थे। स्वामी जी ने अति प्यार से कहा 'ऊधव! देखो तुम्हारे पिता कैसे मोटे, सादे और अपने देश के कपडे के बने वस्त्र पहनते हैं। उनका समाज मे कितना अधिक सम्मान है। क्या तुम इस विदेशी कपडे से बने नये वेष से विभूषित होकर अपने पिता से अधिक सत्कृत हो गये हो? ऊधव अपने ही देश के वस्तु वेष को अपनाने मे शोभा है।' स्वामी जी का यह उपदेश ऊधोसिह जी के हृदय मे घर कर गया। उन्होने अपने डेरे मे जाकर वे वस्त्र उतार दिये और पुराने ढग के स्वदेशी वस्त्र धारण कर लिये। महात्मा गाधी के स्वदेशी आन्दोलन से बहुत पूर्व महर्षि दयानन्द ने देशवासियो मे स्वदेशी भावना भरी थी। पट्टाभिसीतारमय्या ने कहा है कि गाधी राष्ट्रपिता है तो दयानन्द राष्ट्रपितामह हैं।

कर्मण्यता और परिश्रम से जीवन यापन

सन् १८७८ मे अमृतसर मे स्वामी जी के एक व्याख्यान मे बहुत से निर्मले आदि साधु आये और खडे-खडे ही भाषण सुनने लगे। दयानन्द ने उस समय कहा— 'सहस्रो भारतवासी पेट भर अन्न नही पाते, दाने दाने के लिए तरसते है। भूख के मारे बिल्ली कुत्ते की मृत्यु मरते जाते है। देश की ऐसी शोचनीय दशा मे धडाधड लोटेशाही और तूम्बेशाही बनने की क्या आवश्यकता है। इस समय तो प्रत्येक को परिश्रम करके आजीविका चलानी चाहिए।' स्वावलम्बन का यह पाठ देश की स्वतन्त्रता मे सहायक रहा।

पूर्ण स्वतन्त्रता की कल्पना

दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास मे लिखा है—'आर्यावर्त मे भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नही है, जो कुछ है, सो भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोडे राजा स्वतन्त्र है। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियो को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पडता है। कोई कितना

ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियो का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नही है।' पूर्ण स्वराज्य की इससे सुन्दर व्याख्या क्या हो सकती है। कांग्रेस ने स्वराज्य का नारा सन् १६२६ मे दिया, पर महर्षि ने इसका बहुत पहले ही स्वप्न देख लिया था।

देशोन्नति के उपाय

(क) भावात्मक एकता—एक दिन पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल जी ने पूछा—'भगवन् भारत का पूर्ण हित कब होगा ? यहा जातीय उन्नति कब होगी ?' दयानन्द ने उत्तर दिया—'एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और जातीय उन्नति का होना दुष्कर कार्य है। सब उन्नतियो का केन्द्र स्थान ऐक्य है। जहा भाषा, भाव और भावना मे एकता आ जाय वहा सागर मे नदियो की भाति सारे सुख एक एक करके प्रवेश करने लग जाते हैं। मैं चाहता हू कि देश के राजे महाराजे अपने शासन मे सुधार और सशोधन करे। अपने राज्य मे धर्म, भाषा और भावो मे एकता उत्पन्न कर दे। फिर भारत भर मे आप ही आप सुधार हो जाएगा। धर्मगुरुओ और सामाजिक नेताओ की असावधानी, प्रमाद और आलस्य से भावना, भाव और भाषा आदि एकता के चिह्न बदल जाते है। जाति के आचार-विचार परिवर्तित हो जाते है। इसके पिछले प्रमाद के कारण करोडो मनुष्य मुसलमान बन गये। अब प्रतिदिन सैकडो ईसाई बनते जा रहे है। ऐसे समय तो अपने सधर्म बन्धुओ को कडे हाथ से इनकी चोटिया पकड कर भी जगाना होगा।'

(ख) नि स्वार्थ भावना से परहित—सन् १८७७ मे मुलतान से महतोलाल जी को दयानन्द जी ने एक पत्र लिखा—'आर्य समाज के ठीक नियमो को समझकर आपको वेदाज्ञानुसार सबके हित मे अवश्य लग जाना चाहिए—विशेषता से अपने आर्यावर्त देश के सुधारने मे अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति होनी चाहिए। सबको अपने समान जानकर उनके क्लेशो के काटने और सुखो के बढाने के लिए प्रयत्न और उपाय करना उचित है। सबका हित करना ही परम धर्म है। इसी के प्रचार की वेद मे आज्ञा पाई जाती है।

दयानन्द ने स्वराज्य के जिस स्वरूप का वर्णन किया उसे हम गणराज्य का नाम दे सकते है। राजा प्रजा द्वारा निर्वाचित हो। शासन मन्त्रियो की सभा द्वारा हो, पुरुषो और स्त्रियो के अधिकार समान हैं। सभी को समान वस्त्र, भोजन और आसन मिलना चाहिए चाहे वे राजकुमार हो या निर्धन की सन्तान। प्रयाग निवास

के दिनो मे जो उपदेश दिए, उनमे अन्य बातो के साथ यह भी कहा कि देश मे बडे-बडे कारखाने खोलने चाहिए ताकि आर्थिक उन्नति हो सके। राष्ट्र अत्यन्त शक्ति सम्पन्न हो।

महर्षि दयानन्द ने राजस्थान के राजाओ के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क रख कर उनको मनुस्मृति आदि के द्वारा राजधर्म की शिक्षा दी थी। यज्ञशाला से ब्राह्मतेज तथा क्षात्रशाला से क्षात्रतेज उत्पन्न करने की प्रेरणा दी। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था के लिए उपदेश दिया। उनमे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि विचार अत्यन्त क्रान्तिकारी एव व्यावहारिक कहे। उनके सिद्धान्तो का आधार सत्य, निष्पक्षता एव मानवता की भावना है। देश के राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी आज वे देशोन्नति के साधक है। देश के सम्मुख आज जो भयकर समस्याए है महर्षि दयानन्द का मार्ग उनका समाधान कर सकता है। इन सब पक्षो पर पृथक रूप से विचार करने की अपेक्षा है। आर्यसमाज की जन्म शताब्दी वर्ष मे आर्यसमाज और उसकी प्रेरणा से भारत सरकार को उनके मार्ग को अपनाने का निश्चय करना चाहिए।

हम इस लेख की समाप्ति २४ जुलाई १८८२ को दयानन्द द्वारा अपने प्रिय शिष्य रामानन्द को लिखे पत्र से करते है— परमात्मा से सदा यही प्रार्थना करता हू कि आप महाशय पुरुषो की बुद्धि को परोपकार के करने मे निरन्तर नियुक्त किया करे। जिससे पुन आर्यावर्त देश अपनी पूर्व दशा को सम्प्राप्त होकर अपने मनुष्य-रूपी वृक्ष मे धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी चतुष्टय फलो से सयुक्त होकर परमानन्द भोगे।'



इन्द्र क्रतु न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णोऽस्मिन् पुरुहूत यामिनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥
ऋ० ७।३२।२६

हे इन्द्र ! जिस प्रकार पिता पुत्र को ज्ञान देता है, उसी प्रकार तू हमे ज्ञान दे। इस अधकार (ससार) मे हमे शिक्षा दे जिससे हम जीवन और प्रकाश को प्राप्त करे।

महर्षि दयानन्द को प्रेरित करने वाली घटनाएें

वेदप्रकाश शास्त्री,

शिवरात्रि का पवित्र पर्व आ गया। पिता अम्बाशकर की आज्ञा से बालक मूलशकर ने भी शिवरात्री का व्रत रखा । शिव का स्वरूप एव उसकी असीम शक्ति की महत्ता उसने पहले ही अपने पिता से सुन रखी थी । साथ ही यह भी सुना था कि व्रत करते हुए, पूजा के बिना पूर्ण हुए ही यदि कोई सो जाय तो उसे इष्टफल की प्राप्ति नही होती । बालक मूलशकर की शिव के प्रति अपार श्रद्धा हो गई । जिस के कारण मूलशकर ने रात्रि भर जाग कर व्रत पूर्ण करने का निश्चय किया और पिता जी के साथ मन्दिर पहुच गए। बडी श्रद्धा एव भक्ति के साथ मूलशकर ने पूजा की । दूसरे पहर की पूजा के बाद शिवभक्त निद्रा की गोद मे पहुचने लगे । परन्तु वह बालक जागता रहा । नीद आती तो पानी के छींटे मारकर उसे भगा देता ।

कुछ क्षणो के बाद उसने देखा कि एक चूहा शिवलिग पर चढकर चढावे को खा रहा । मूलशकर का हृदय इस घटना से उद्वेलित हो उठा। उसने सोचा यह कैसा शिव है जो चूहे से अपनी रक्षा नही कर सकता ! पिता को जगाकर पूछने पर भी सतोष जनक उत्तर न पाकर वह तुरन्त घर आ गया।

यही से मूलशकर को सच्चे शिव की खोज के लिए प्रेरणा मिली ।

× × ×

बहन की मृत्यु पर जहा परिवार के लोग रो रहे थे, वहा मूलशकर एक स्थान पर गुम सुम खडा था । वह रोने के स्थान पर अमरत्व प्राप्त करने के बारे मे विचार कर रहा था । क्या मेरी भी मृत्यु इसी प्रकार होगी ? क्या सभी लोग मृत्यु को प्राप्त होगे ? क्या इससे बचा नही जा सकता ? मृत्यु से बचने का क्या उपाय है ? अभी प्रश्न मूलशकर के हृदय मे उथल पुथल मचा रहे थे, जिनका वह समाधान चाहता था ।

वह इनका समाधान खोजने का प्रयत्न कर ही रहा था कि कुछ दिन बाद ही मूलशकर को चाचा की मृत्यु का आघात भी सहन करना पडा। इस बार मूलशकर फट २ कर रोया।

चाचा की मृत्यु की घटना ने उसे बहुत ही प्रेरणा दी। इसने बहन की मृत्यु के समय उठने वाले विचारो को और भी सुदृढ कर दिया। मूलशकर ने घर छोडने का निश्चय कर लिया जिससे वह सच्चे शिव को प्राप्त करने तथा मृत्यु से बचने का उपाय खोज सके।

× × ×

मूलशकर सच्चे शिव की खोज मे निकल पडा। उस समय वह सोने की अगूठी और कीमती वस्त्र पहने हुए था। एक दिन साधुओ की मण्डली से भेट हो गई। मण्डली के महन्त के द्वारा पूछने पर जब उसे यह पता चला कि मूलशकर सच्चे शिव की खोज मे निकला है। तो महन्त हस पडा और बोला—'सच्चे शिव की प्राप्ति इन कीमती वस्त्राभूषणो के धारण करने से नही होती बल्कि त्याग से होती है, यह सुनकर लग्नशील, धुन के पक्के मूलशंकर ने वे कीमती वस्त्राभूषण त्याग दिये। यह मूलशकर के त्याग का एक और कदम था।

× × ×

सच्चे शिव की खोज करते हुए मूलशकर से दयानन्द बन चुका था। उसने योग की शिक्षा जहा स्वामी पूर्णानन्द से प्राप्त की, वहाँ व्याकरण करने के लिए वह गुरु विरजानन्द की कुटिया पर पहुचा। द्वार खटखटाया। अन्दर से आवाज आई 'कौन है' ?

उत्तर मिला—'यही जानने के लिए तो आया हू कि मै कौन हूं' ? यह सुनाकर गुरु विरजानन्द का हृदय प्रसन्नता से भर गया और अन्दर आने की आज्ञा दे दी।

शिक्षा समाप्त करने के बाद गुरु दक्षिणा का अवसर आया। दयानद कुछ लौग लेकर गुरु की सेवा मे उपस्थित हुए।

गुरु विरजानन्द ने कहा—दयानन्द ! मैं लौग के स्थान पर तुमसे कुछ और ही अपेक्षा करता हू।'

'गुरुवर ! मेरे पास इसके अतिरिक्त भला और है ही क्या जो मै आपकी सेवा मे भेट कर सकू।' शिष्य ने उत्तर दिया। गुरु—'तुम्हारे पास अर्पण करने के लिए बहुत कुछ है दयानन्द ! यदि तुम दे सको।'

दयानन्द बोले—'गुरुदेव ! आज्ञा दे। वह आप के चरणो मे समर्पित करने का वचन देता हूं।'

गुरु— (गभीर होकर) 'आज सर्वत्र अज्ञानान्धकार छाया हुआ है, अधविश्वास, रुढिवाद, आडम्बर, अनाचार, दुराचार का सब जगह साम्राज्य है। जिसे दूर करने की सामर्थ्य मै तुम्हारे अन्दर देख रहा हू। मैं चाहता हू कि तुम अपना समस्त जीवन जन-हितार्थ समर्पित कर ससार को वेदप्रकाश से आलोकित कर दो।'

'मैं वचन देता हू कि अपना समस्त जीवन वेद का सदेश देने मे लगा दूगा' दयानन्द का उत्तर था।

यह सुनकर गुरु विरजानन्द का हृदय आह्लादित हो उठा और उन्होने दयानन्द को गले से लगाकर कहा—'तुम अपने कार्य मे सफल हो।'

× × ×

महर्षि दयानन्द जन २ को वेदो का सदेश देते हुए हरिद्वार के मेले मे जा पहुचे और उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु उन्होने यह अनुभव किया कि मेरे उपदेश का कोई विशेष प्रभाव नही पड रहा है। अतः उन्होने सोचा कि इसमे कोई मेरी ही त्रुटि है, तपस्या का अभाव है। उन्होने अपने समस्त वस्त्रो को त्याग दिया और केवल एक कोपीन को धारण करने लगे साथ ही कठोर तपस्या मे लीन हो गए। तप की अग्नि मे तपकर वह कुन्दन बन कर निकले।

× × ×

स्वामी जी वेदो का प्रचार करते हुए कलकत्ता पहुचे। इस समय स्वामी जी सस्कृत मे ही भाषण देते थे और उनके सहायक पण्डित उसका अनुवाद जन भाषा मे करते थे। इसका फल यह हुआ कि वे अनुवादक स्वामी जी के विचारो को तोड मरोड कर परिवर्तित कर प्रस्तुत करते थे। यह देख कर ब्रह्म समाज के नेता श्री केशव चन्द्र सेन ने स्वामी जी से कहा—'यदि आप हिन्दी मे भाषण दिया करे तो लोगो को अधिक लाभ होगा। क्योकि अनुवादक आपके भाषण का शब्दशः अनुवाद नही करते जिससे जनता आपके यथार्थ विचारो को नही समझ पाती।'

महर्षि दयानन्द ने श्री केशव चन्द्र सेन के परामर्श को सहर्ष स्वीकार कर लिया और इसके बाद वह हिन्दी मे भाषण देने लगे।

शिवरात्रि क्या है ?

अमर स्वामी

हमारे यहा कुछ वैदिक पर्व है वह है अमावस्या और पूर्णमासी, इन दोनो पर्वो का नाम वेद मे "अमावस्या और पूर्णमासी भी है तथा कुहू और राका भी। गृह्यसूत्रो मे इन दोनो पर्वो का नाम दर्श और पौर्णमास है "।

श्रावण माम की पूर्णमासी जिसको रक्षा बन्धन भी कहते है पूर्णमासी होने से यह पर्व वैदिक भी है और मनुस्मृति तथा गृह्यसूत्रो मे इस दिन" उपाकर्म, पर्व मनाने का विधान है इस कारण यह पर्व स्मार्त भी है।

उपाकर्म ब्राह्मणो का, विजयदशमी क्षत्रियो का, दीपावली वैश्यो का और होली श्रमिको का पर्व है यह इनके स्वरूपो से भी प्रकट है।

चैत्र शुक्लपक्ष की नवमी श्री राम जी का जन्म दिन है। और भाद्रपद मास कृष्णपक्ष की अष्टमी श्री कृष्ण जी का जन्म दिन है ये दो ऐतिहासिक पर्व (त्यौहार हैं।

शिवरात्रि न वैदिक पर्व है न स्मार्त, न किसी वर्ण विशेष का है न ऐतिहासिक पर्व है, यह तो साम्प्रदायिक ही प्रतीत होता है। पौराणिको मे तीन सम्प्रदाय मुख्य हैं एक शैव सम्प्रदाय दूसरा शाक सम्प्रदाय और तीसरा वैष्णव सम्प्रदाय है।

वैष्णव सम्प्रदाय वाले भ्रम से श्री राम जी और श्री कृष्ण जी को विष्णु का अवतार मानते है उन दोनो ने कभी अपने को विष्णु का अवतार नही कहा। वैष्व लोग चैत्रशुक्ल नवमी को राम का जन्म दिन पर्व मनाने और भाद्रपद मास कृष्णपक्ष की अष्टमी को श्री कृष्ण जी के जन्म दिन का पर्व मनाते है। ये पर्व वैष्णवो के भी पर्व है और जो लोग इनको ईश्वरातार नही मानते वे भी उनको महापुरुष मान कर उनके जन्म दिनो को मनाते हैं।

शाक्त सम्प्रदाय के लोग आश्विन शुक्लपक्ष की अष्टमी को दुर्गाष्टमी मान कर

दुर्गा (शक्ति) का पर्व मनाते है उस दिन काली मन्दिर कलकत्ता, दुर्गा मन्दिर वैद्य-नाथ (बिहार) साम्बरी मन्दिर साम्बरपुर (उडीसा) आदि मे भैसे और बकरे काटे जाते है शाको के और भी पर्व हैं।

शिवरात्रि—फाल्गुण कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को शिव मन्दिरो मे शिवलिंग पूजा की जाती है नैपाल मे पशुपतिनाथ शिव की पूजा के लिये भारी मेला लगता है काशी आदि के शिवमन्दिरो मे धूमधाम से पूजा की जाती है।

उत्तर भारत मे मास पूर्णमासी को समाप्त होता है इसलिये शिवरात्रि फाल्गुण के कृष्णपक्ष मे चतुर्दशी को मानी जाती है और गुजरात प्रदेश मे मास अमावस्या को समाप्त माना जाता है इसलिये यही दिन माघ मास के अन्तिम पक्ष मे गिना जाता है।

शिव, ब्रह्मा, विष्णु आदि परमेश्वर के भी नाम है और शिव नाम के विख्यात मनुष्य भी हुए है शिवजी योगी माने जाते है और ऐसा लगता है कि शिवजी भूटान देश के राजा रहे हो और कैलाश भी भूटान राज्य का अग उन दिनो माना जाता हो इसीलिये शिवजी को कैलाशपति, भूतनाथ, भूतपति, भूतेश आदि कहा जाता हो क्योकि भूटान वासियो को अब भी भोटिये, भूटिये, (भूतिये) कहा जाता है।

शिवजी का इस चतुर्दशी से क्या सम्बन्ध है यह किसी पुराण मे उल्लेख नही मिला हा शिव पुराण मे चतुर्दशी को शिवपूजन करना कई स्थानो पर लिखा है यह वहा नही लिखा कि किस मास के चतुर्दशी हो।

शिवजी का यह जन्म दिवस है या क्या है कुछ पता नही, शिवपुराण का एक भाग 'धर्म सहिता' नाम वाला है पहिले वह 'शिवपुराण मे गिना जाता था अब शिवपुराण मे उसको नही छापा जाता है वह दुर्लभग्रन्थ मेरे पास है उस पर मुरादा-बादी प० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र की टीका है उसमे उल्लेख है कि—

"क्रीडादिनेऽर्चितस्तस्व, सर्वान् कामान् प्रयच्छति।"

शिवपुराण धर्मसहिता अध्यायन २७ श्लोक ४ इस पर प० ज्वालाप्रसाद जी की टीका इस प्रकार है "चतुर्दशी के दिन पूजित हुए शिवजी सब का, मनाओ को प्रदान करते है।" यहा 'क्रीडा दिन' का अर्थ 'चतुर्दशी' किया है 'क्रीडा दिन' यदि शिवपावर्ती के समागम सम्बन्धो दिन हो तो उसकी कोई विशेषता नही पति पत्नी समागम होता ही रहता है।

कहा जाता है कि—शिवजी ने काम को भस्म किया था, किया होगा योगी जन काम को नित्य ही भस्म करते है उसका कोई दिन विशेष क्या ?

एक कार्य शिवजी का विषपान करना कहा जाता है गोस्वामी तुलसीदास जी का एक सोरठा है—

जासु जपत सुर वृन्द, महा गरलजिन पानकिय।
तेहि न भजसि मतिमन्द, को कृपालु शकर सदृश ।।

पुराणो मे एक कथा समुद्र मन्थन की बना रक्खी है उसमे है कि देवो और असुरो ने मिलकर समुद्र मन्थन किया समुद्र मे से चौदह रत्न निकले उनमे एक अमृत था एक विष भी था ।

अमृत के लिये तो देवो और असुरों मे झगडा हुआ, देव कहते थे कि हम पियेगे और असुर कहते थे हम पियेगे । विष के पीने को कोई तैयार नही था, यह भारी भय था कि—विष से लोक को भारी हानि पहुचेगी । लोक कल्याण की भावना से शिव जी ने उस विष को पी लिया । शिव जी को उस विष से और कुछ हानि नही हुई पर विष के पीने से उनका गला नीला हो गया इस कारण उनका नाम नील कण्ठ प्रसिद्ध हो गया ।

शिवजी ने कौनसा विप पी लिया ? विष तो भूमि पर अनेको रूपो और अनेको नामो के अब भी विद्यमान है उनके द्वारा लाखो मनुष्यो की मृत्यु भी प्रति वर्ष होती रहती है ।

शिवजी से अच्छा काम वैद्यो का है जो उन्ही भाति भाति के विपो से भाति भाति के रोगो को हटा कर लाखो मनुष्यो के प्राण बचाते है ।

शिवजी ने विष क्यो पिया इस पर कवि ने सुन्दर कल्पना की है—परिवार सहित शिवजी का एव चित्र सर्वत्र मिलता है जिसमे सुन्दर स्वरूपवान शिवजी बैठे हुए है त्रिशूल और डमरू आदि उनके हाथो मे है शिवजी वाम अग मे पार्वती जी बैठी हुई हैं बाई ओर हाथी के शिर वाले गणेश जी है दक्षिण भुजा की ओर छ मुख वाले कार्तिकेय खडे है उनका नाम षडानन भी है । शिवजी के शिर मे जह्नु ऋषि की पुत्री जान्हवी (गगा) बैठी है । शिवजी के माथे मे तीसरी आँख है उसमे से अग्नि जल रही है उससे ऊपर चन्द्रमा है । गणेश जी की सवारी चूहा, षडानन की सवारी मोर भी उस चित्र मे है शिवजी का बैल भी बैठा है और पार्वती की सवारी सिंह भी सामने बैठा है । शिवजी के गले पर साँप लिपट रहा है ।

कवि कहता है कि —शिवजी का साप गणेश वाहन चूहे को खाना चाहता है षडानन का मोर उस साप को खाना चाहता है, पार्वती का शेर गणेश के माथे को फाडखाना चाहता है । पार्वती जी नीचे बैठी है और जाह्नवी (गगा) शिवजी के शिर पर बैठी है पार्वती जी यह देख कर कुढ रही है तीसरी आंख की अग्नि चन्द्रमा को जलाती है । कवि कहता है—

"निर्विन्न. स पपौ कुटुम्ब कलहादीशोऽपि हालाहललम् ।"

अपने परिवार की कलह को देख कर शिवजी अति खिन्न हुए । बहुत दु खी

होकर शिवजी ने हलाहल विष पी लिया कि—ऐसे जीवन से तो मर जाना ही अच्छा है । वास्तव मे विष पान की कहानी भी मिथ्या ही है ।

शिवजी का शिवरात्रि से कोई सम्बन्ध हो या न हो पर 'शिवरात्रि' शैवो का ही त्यौहार है यह सत्य है ।

टकारा मे बालक मूलजी को भी शिवजी के मन्दिर मे शिव की पूजा आराधना आदि के लिये ही ले जाया गया था ।

मूलजी ने चौदह वर्ष की आयु मे ही देख लिया था कि—यह गोल मटोल जड पत्थर है यह शिवजी नही है । मूलजी पढकर विद्वान् बनकर ऋषि दयानन्द बन गये, वेदादि सत्यशास्त्रो से भी उनको ऐसे ही प्रमाण असख्य प्रमाण मिले कि—परमेश्वर अमूर्त है इस कारण उसकी मूर्ति हो ही नही सकती है ।

साकार मनुष्यो की मूर्तियाँ होती हैं वह इसलिये कि चित्र को देखे और चित्र वाले के चरित्र को याद करके उससे शिक्षा ग्रहण करे । मूर्तिमानो की मूर्तिया भी खाती पीती सू घती नही कभी सोती जागती भी नही । मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है और बुद्धि विरुद्ध है । जिस शिवरात्रि को मूलजी को इस सत्य का बोध हुआ उससे ही आर्य समाज का शिवरात्रि के साथ अटूट सम्बन्ध हो गया है ।

अब प्रति वर्ष शिवरात्रि आर्य समाज को जगाती और आदेश देती है कि—आर्य जनो ! जिस प्रकार ऋषि दयानन्द जी ने मूर्तिपूजा को हानिकारक समझ कर इसका सारी आयु खण्डन किया इसी प्रकार आप मूर्तिपूजा का खण्डन सदा करते रहो ।

मेरी प्रतिज्ञा है कि—कोई भी पौराणिक पण्डित मूर्तिपूजा को वेदानुकूल और तर्कानुकूल सिद्ध नही कर सकता है । मैं इस वृद्धावस्था मे भी शास्त्रार्थ करने को तैयार हू ।

आर्य समाजियो को समझ लेना चाहिये कि —शिवरात्रि मूर्तिपूजा के खण्डन की याद दिलाने वाला पर्व है प्रत्येक आर्य को मूर्तिपूजा का खण्डन अवश्य करते रहना चाहिये मूर्तिपूजा छोडने मे मनुष्य मात्र का हित है मूर्तिपूजा छोडने मे सब का हित है ।

महा कवि शकर जी के दो पद्य देकर लेख समाप्त करूंगा उनको पढिये विचारिये और सबको सुनाइये ।

शैल विशाल महीत फोड
बढे तिनको तुम तोड कढे हो ।
लैलढकी-लधार धडाधड ने,
धरि गोल मटोल गढे हो ।।

जीवन हीन-लेवर धारि
विराज रहे न लिखे न पढे हो।
हे जड देव शिलासुत शकर,
भारत पै करि कोप चढे हो॥

चेतन के ठौर जड-पूजे जड मूरति को, बन्धन अवोध के न जाने कब टूटेगे।
भूतप्रेत भैरव भवानी कालिका के मिस कबलो कटेगे पशु पान घट फूटेगे॥
कबलो न जाल कुण्डलीन के उडेगे रग, कबलो पिण्डदान की पृथा सो आए छूटेगे।
शकर न जबलो अचार होय वेदनुको, भारत को तबलो लबार लण्ठ लूटेगे॥



शृणुत जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनत गिर ।
ईशाना पिप्यत धिय ॥

ऋ० ७।९४।२

हे इन्द्र ! (परमश्वर्यवन्), हे अग्ने ! (ज्योतिः स्वरूप) परमेश्वर ! मुझ स्तुति करने वाले के वचन सुनो, प्रार्थना को स्वीकार करो। हे शासक ! हमारी बुद्धि को परिपक्व और पूर्ण करो।

शिवरात्रि का महत्व और हमारा कर्त्तव्य

कमल मालवीय

समार मे जब हम चारो ओर देखते है तो नाना प्रकार के प्राणियो के दर्शन होते है जिसमे अनेक प्रकार की सूरते अपने रंग रूप को क्षण प्रति क्षण बदलती नजर आती है। यह सारी शक्तिया न जाने कौन-कौन से स्रोत से निकलकर किन-किन कार्यक्षेत्रो मे कार्य कर रही है, फिर भी इस हर पल की ऊट फेर की अनगिनत तरगो पर झूलता यह इन्सान अपने को फसा हुआ पाता है। इस नाशवान शरीर मे होने वाले परिवर्तनो को देखकर हमे आश्चर्य होता है कि क्या विधाता ने हमे इसलिये ही बनाया था ? क्या यही उसका अनुपम कार्य है ? मनुष्य इस दु ख सुख, भले बुरे के चक्कर मे घूमता हुआ उनके परिणामो विनाश एव सवर्धन मे चक्कर खाता हुआ अपनी जीवन रूपी नाव को चलाता रहता है।

शारीरिक, आत्मिक, एव मानसिक दु खो एव क्लेशो का तो कभी अन्त होता नही है। हमारा यह जीवन तो अपने बाल-बच्चो, माता-पिता, सगी-साथी एव इष्ट मित्रो के लिये सुखदायी और उपयोगी होकर स्वर्गमय सिद्ध हो सकता है वही यह उसे नरकमय बना सकता है फिर वह कौन सी ताकत है जिससे मनुष्य अपना जीवन चैन से, सुख से, बिना किसी प्रकार के कष्ट के, जी सकता है और मनुष्य दु ख तथा सकट से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

प्रत्येक प्राणी जाने अनजाने मे इसी चिन्ता, विचार और प्रयत्न मे अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देता है कि किस प्रकार वह इस पहेली का सुगम हल ढूंढ' ले जिससे कि उसका जीवन सुख और चैन से व्यतीत हो सके। यदि गम्भीरता मे विचार करे तो यह बात स्पष्ट हो जावेगी कि प्रत्येक ने कोई न कोई मार्ग निकाल रखा है। और उसी को लक्ष्य, आधार मान कर अपना जीवन भी जी रहा है।

धन दौलत को—किसी ने अपने जीवन का आधार माना तो किसी ने जीवन का सार नारी (विषयभोग) ही माना, किसी ने भूमि को ही सब कुछ समझ कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति को इसी मे बराबर कर दिया। समस्त शक्ति क्षीण हो जाने

पर फिर उसे मानसिक क्लेश आ घेरता है। उससे छुटकारा पाने के लिये वह इधर-उधर भटकता रहता है और इस भटकन को दूर करने के लिये फिर वह गुरूद्वारे, मदिरो मे अनेकानेक देवी देवताओ के आगे माथा झुकाता, मस्जिद मे नमाज पढता, तथा दरगाहो आदि पर बार-बार अपनी नाक रगडता है।

परमेश्वर सभी सुखो का दाता है। वही मन की इच्छा की पूर्ति करता है। वह ही हर तरह की मुसीबत से बचाता है जो एक है। दो चार नही है। हालाकि हम ज्ञानी अज्ञानी इसे अनेक कहते है। परन्तु इस मर्म का नही जान पाते कि अनेकता मे ही एकता है। इस मर्म को तो बिरले ही समझ पाये है।

शिव रात्रि बार-बार आती है और चली जाती है। एक बार की शिवरात्रि ऐसी थी। एक सनातनी बालक मूलशकर ने अपने पिता के साथ शिवरात्रि का व्रत रखा, व्रत तो सारे दिन सभी ने रखा परन्तु रात काटनी कठिन हो गई। बालक मूलशकर शिव लिग के निकट अपने पिता के साथ मन्दिर मे बैठा अन्य भक्तगणो के साथ शिव की आराधना कर रहा था। पुराणो के अनुसार लोगो की धारणा है कि इस दिन पूर्ण रात्रि जागकर जो व्यक्ति शिव की आराधना करता है उसे परम आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी धारणा को लक्ष्य मे रखकर बालक मूलशकर ने अन्य भक्तो की भाति अपने को निद्रा की गोद मे नही डाला। जब सब भक्त सो गये तब बालक मूलशकर ने एक साधारण सी परन्तु अनोखी घटना देखी। मूलशकर ने देखा कि एक चूहा शिवलिग पर चढी हुई खाने की वस्तुओ मे से कुछ उठा कर ले जा रहा है। इस पर उसे आश्चर्य हुआ कि क्या यही वह महादेव है ? महादेव जब स्वय की रक्षा नही कर सके तो दुनिया की रक्षा क्या करेगे ? इसी भावना ने बालक मूल शकर को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती बना दिया, जिसने समाज मे व्याप्त रूढि-वादिता और अन्धविश्वासो से युद्ध किया। यह शिवरात्रि मूलशकर के लिये शुभरात्रि सिद्ध हुई क्योकि जीवन का मर्म उन्हे उनके जीवन प्रभात मे ही मिल गया। फिर उन्हे जीवन मे किसी सुख अथवा आनन्द के लिये धन की आवश्यकता न रही उन्होने लगोटा कसा और चल दिये सासारिक लोगो को पथ बताने।

आज शिवरात्रि के अवसर पर हम सबको आत्मविश्लेषण करना चाहिये। शिवरात्रि के पुनीत पर्व पर प्रत्येक आर्य को चाहिये कि वे इस पर मनन करे कि कहाँ तक वह अपने को ऋषि द्वारा प्रतिपादित मार्ग पर चला पाये है, कहा तक चल रहे है।

आज भी देश मे उसी प्रकार का वातावरण बना हुआ है जैसा कि महर्षि के समय मे था। क्या हम इसका सकल्प लेते हुये गाँठ बाँध ले कि जीवन पर्यन्त महर्षि के आदर्शों को अपने जीवन मे उतारने का प्रयास करेगे ? आज आर्य समाज के प्रसार और प्रचार की काफी आवश्यकता है यह कार्य सबको करना है और उन्हे ही अन्य लोगो को मार्ग प्रशस्त करना पडेगा। □

बोधरात्रि: समागता

डी० एन० शास्त्री एम० ए०

शिव सत्य शिवो नित्य· न तु देहधर क्वचित् ।
बोधयन्ती निजान् भक्तान् बोधरात्रि. समागता ॥

कैलाशपतिरेषोऽत्र ब्रह्माण्ड पतिरेव सः ।
वेदयन्ती महादेव बोधरात्रि समागता ॥

प्रतिमा प्रस्तरमयी शकर. चेतनामय ।
चेतनोपासना धृत्वा बोधरात्रि समागता ॥

मिथ्या शिव परित्यज्य सत्य शिवमुपास्महे ।
पूजकानुपदिशन्ती बोधरात्रि समागता ॥

मृत्यु जय शिव कोऽय दयानन्दो मृतिजय ।
ब्रह्मचर्यबलेनासौ बोधरात्रि समागता ॥

मूषका अपि ते धन्या मूलशकर वीक्षिता ।
सशयोद्भावेन पट्वी बोधरात्रि समागता ॥

मृत्यो शिवस्य कि तत्व, वेदतत्वं च कि पुन ।
जिज्ञासून् ज्ञापयन्तीय बोधरात्रि समागता ॥

टकारा मन्दिर धन्य, धन्य कर्षण जी सुत. ।
भारत च भृश धन्य बोधरात्रि समागता ॥

आत्म बोध का पर्व

सत्यप्रिय शास्त्री एम० ए० साहित्याचार्य्य

ससार मे मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता चिन्तन एव मनन की योग्यता के कारण ही है, जीवन विषयक मूलभूत प्रश्नो के यथार्थ उत्तर खोजने की क्षमता केवल मनुष्य मे ही है, इतर प्राणियो का जीवन तो अपनी भौतिक आवश्यकताओ की परिधि तक ही सीमित है, महर्षि यास्क ने इसीलिये कदाचित् मनुष्य शब्द की निरूक्ति करते हुए कहा है 'मनुष्या क स्मान्मत्त्वा कर्माणि सीव्यन्ति' जीवन के चरम लक्ष्य को समझ-कर उस तक पहुचने की क्षमता होने के कारण ही मनुष्य कहा जाता है, वैदिक साहित्य मे पदे-पदे ज्ञान प्राप्ति पर जोर दिया गया है, वैदिक दर्शनकार तो एक स्वर से तत्वज्ञान प्राप्ति कर अपवर्ग को प्राप्त करना ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य स्वीकार करते हैं, सम्पूर्ण कर्मकाण्ड का अन्तिम प्रयोजन जीवन की गुत्थी को सुल-झाना ही है, वैदिक सस्कारो के द्वारा बालक के कान मे सर्वप्रथम जो शब्द डाला जाता है, वह भी मानव जीवन के इसी अन्तिम लक्ष्य की ओर इगित करता है, 'कोऽसिकतमोऽसि' अर्थात् तू कौन है ? इसी गुत्थी को सुलझाने के हेतु मानव जीवन मे आत्मा आता है, प्रतिदिन यज्ञीय अग्नि मे जो कि बराबर तीन आश्रमो अर्थात् पचहत्तर वर्ष तक सेवन की जाती है वैदिकधर्मी अपने जीवन के इसी प्राप्तव्य एव चरमबिन्दु को देखने का प्रयास करता है, और जब उक्त तत्व को साक्षात् कर लेता है, तब जाकर उस भौतिक यज्ञ के चक्कर से मुक्ति प्राप्त कर लेता है और अपने ज्ञानव्य के स्वरूप को धारणा कर लेता है, सन्यासी की वेशभूषा अग्नि के समान हो जाती है, और वह सारे कर्मकाण्ड के झझटो से मुक्त हो जाता है, क्योकि अब वह स्वय ही अग्निस्वरूप हो गया है, आत्मस्वरूप का साक्षात्कार हो जाने से अब उसे बाह्य अग्नि से प्रेरणा लेने की आवश्यकता नही रह गई है, हमारा शरीर मृत्यु के पश्चात् अग्नि की लपटो मे समर्पित किया जाता है—परन्तु सन्यासी तो जीविता-वस्था मे ही अपने वेश के माध्यम से उस दशा को प्रत्यक्ष करता है, मानो गैरिक

वाने को धारणकर वह अपने भौतिक जगत् की निस्सारता को प्रकट कर रहा होता है और केवल प्राप्तव्य आत्मतत्व को ही यथार्थ मान रहा होता है, बाद मे होने वाले नाटक का यह पूर्वाभ्यास ही समझना चाहिये, कितना तत्त्वज्ञान भरा हुआ है हमारी इस वर्णाश्रम व्यवस्था मे ? इसीलिये तो चार आश्रमो मे से तीन आश्रम त्याग के तथा एक भोग का है, परन्तु उसमे भी भोग पर काल का अकुश लगा दिया है, वर्णव्यवस्था मे भी प्रत्येक पुरुष समाज के प्रति अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, जहा कर्त्तव्य भावना होती है वहीं पर यथार्थ ज्ञान की सत्ता होती है, सम्पत्ति के अर्जन एव सचय का अधिकार एक आश्रमी को है, परन्तु वह भी अपने लिये न होकर शेष तीन आश्रमियो के पालनार्थ वितरण करने के विशाल सदुद्देश्य से ही होता है, क्योकि जीवन का सार भौतिक सम्पदा का सग्रह न होकर आत्मबोध की स्थिति है, इसलिये उस अवस्था के आने पर अपरिमित ऐश्वर्य तथा चतुर्दिग्व्यापी सत्ता एव अबोध अधिकारियो को भी भौतिक पदार्थों से संबधविच्छेद कर अध्यात्म-मार्ग के पथिक बनना होता है, ऋग्वेद शरीर को लक्ष्यकर कहता है कि 'इ० ते यज्ञिया तनू' मनुष्य तेरा यह शरीर यज्ञकार्य सम्पादनार्थ है, यज्ञ मे 'स्वाहा' तथा 'इदन्न मम' का बडा ही महत्त्व है, जो जीवनयज्ञ मे भी अपनी सम्पदा का योग्य पात्रो को समर्पण करना ही स्वाहाकार है, परन्तु इतना करने के बावजूद भी उससे अपना मानसिक लगाव न रखना उसकी सफलता के लिये परमावश्यक है, क्योकि उस सब का अन्तिम ध्येय तो अपने आपको जानना ही है, वेद मनुष्य को सदा ही जागरूक बने रहने को कहता है, 'यो जागार तमृच का मयन्ते' जो जागता है वैदिक ऋचायें सदैव उसके अन्त करण को ही प्रकाशित करती है, यहाँ जागने से अभिप्राय तत्त्वज्ञान प्राप्ति के हेतु सदैव तत्पर रहने से है, इसीलिये गीता मे भगवान् श्रीकृष्ण ने यो कहा है---

या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ।
यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने ।।

अर्थात् सामान्य जन जिन पदार्थों के प्रति सदैव जागरूक रहते हैं, आत्मदर्शी जन उन भौतिक पदार्थों के प्रति उदासीन रहते हैं, और ऐसे तत्त्वज्ञानी जिस परम-तत्त्व आत्मज्ञान के लिये सदा सावधान बने रहते है, सांसारिक लोग उस परमप्राप्तव्य सत्य तत्त्व 'मैं कौन हू' के प्रति उपेक्षित बने रहते हैं, कठोपनिषद् का नचिकेता तीसरे वर के द्वारा उसी प्रापणीय तत्त्व की याचना करता है, वास्तव मे नचिकेता 'जीव' ही है, जो कि यम अर्थात् 'परमात्मा' से आत्मज्ञान की याचना करता है, क्योकि यह परमज्ञान समाधि की स्थिति मे ही प्राप्त होता है, वेद जीवन की सफलता के लिये इसी की ओर सकेत करता है कि 'नान्य. पन्था विद्यतेऽयनाय' इसके अतिरिक्त और

कोई मार्ग जीवन की सफलता का नही है, परन्तु यह ज्ञान केवलमात्र एक बार ही सुननेमात्र से नही आ पाता है, क्योकि महर्षि कपिल सॉख्यदर्शन मे कहते हैं कि 'नश्रवण मा त्रात्तत् सिद्धिरनादि वासनाया बलवत्वात्' अनादि वासना बलिष्ठ है, अत केवल एक बार ही सुनने से यह तथ्य प्राप्त नही होगा, इसके लिये जीवन भर सतत श्रम करना अपेक्षित है, तब जाकर अनेक जन्मो के पश्चात् मस्कारी जीव बन पाता है, ऐसे मस्कारी जीव इस विश्व मे अगुलियो पर ही गिने जा सकते है, ऐसी आत्माये एक युग मे अनेक तो क्या यदि अनेक युगो के पश्चात् एक भी आ जावे तो इसे सामान्य आत्माओ का परमसौभाग्य ही समझना चाहिये, ऋषि दयानन्द उन्ही विशेष व्यक्तित्वो मे से थे, ऐसे सस्कारी जीव सामान्य घटनाओ के पीछे छिपे महान् रहस्यो का साक्षात्कार किया करते है, साधारण सी दीखने वाली घटनाये उनके प्रसुप्त मस्कारो को उद्बुध कर उनके जन्म जन्मान्तरो के मार्ग का अवलोकन करा दिया करती है, इसी कारण ऐसे दिन 'पर्व' बन जाया करते है क्योकि समाज मे विद्यमान न्यूनताओ को दूर कर पूर्णता भरने का सकेत देते है, दिन तो पर्व बनते ही है, परतु यहाँ तो रात्रि ही पर्व बन गई, रात्रि की निरुक्ति करते हुए महर्षि यास्क लिखते है 'रातेर्वा स्याद्दा नकर्मण' अर्थात् दानार्थक राति धातु से रात्रि शब्द बनता है, और यदि वह रात्रि जो कि सर्वसाधारण होते हुए भी चेतन के लिये दान का ही कारण बनती है यदि उसका सम्बन्ध 'शिव' के साथ हो जावे तो जीवन के मूलशकर की प्राप्ति की प्रतीक बन जाती है, ऋषि दयानन्द स्वय ही मूलशकर थे, वह रात्रि उसके लिये शिव जीवन के चरम लक्ष्य शिव की जिज्ञासा की प्रेरिका बन गई, दिन तो प्रकाशक होता है, परन्तु यहाँ तो प्रकाशविहीन रात्रि भी दूसरो के अन्त करण की प्रकाशिका बन गई, ज्ञान का काम मनुष्य के अन्त करण को शुद्ध करना होता है, इसलिये ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् 'मूलशकर' से शुद्ध चैतन्य बन गये, शुद्ध अन्त करण के अन्दर ही प्रभु के गुण प्रकाशित होते है, इसीलिये शुद्ध चैतन्य से वे 'महर्षि दयानद सरस्वती' के पद को प्राप्त कर गये, जैसे अग्नि मे पडकर लोहा भी तत्सदृशता को धारण कर लेता है, और तब उसका नाम, रूप तथा धर्म बदल जाते है, अग्नि मे से तप्त लोहे को जब निकाला जाता है, तब उसे लोहा न कहकर अग्नि पद से पुकारा जाता है, उसका रग अग्नि मे जाने से पहले काला था, परन्तु अग्नि मे से निकालते समय लाल होता है, इसी प्रकार उसका स्पर्श शीत से बदलकर सर्वथा ही ऊष्ण हो जाता है, इसी प्रकार आत्मारूपी लोहा जब 'अग्नि' परमात्मा रूप अग्नि मे पड जाता है तो वह भी तत्सादृश्य को धारण कर लेता है, ऐसे विशिष्ट जीवो के जन्म को ही 'अवतार' कहा जाता है, जो कि समय-समय पर अन्तर्यामी परमात्मा की व्यवस्था से आकर संसार का मार्गदर्शन करा जाते हैं, किसी भी महापुरुष के जीवन मे जब कभी कोई भी घडी ऐसी दिव्य प्रेरणा या प्रसुप्त उत्तम सस्कारो को जगाने का कारण

बनती है, वह चाहे दिन हो या रात्रि वह कल्याणकारक होने से 'शिव' कहलाने लगती है, ऐसे दिव्य समय राष्ट्रो के लिये महत्त्वपूर्ण होते है, जैसे समुद्र मे लाईट-हाऊस भूले भटके जलयानो को राह दिखाता है, इसी प्रकार ऐसे समय भी पथ भ्रष्ट राष्ट्रो तथा व्यक्तियो के मार्गदर्शन का कारण बन जाया करते है, विशेषकर उन लोगों के लिये तो ऐसे दिनों का और भी अधिक महत्त्व होता है जो कि उस दिन से सम्बन्धित महापुरुषो के उत्तराधिकारी होते है, हम सभी वैदिक धर्मी ऋषि दयानन्द सरस्वती की आध्यात्मिक सन्तान है, सस्कृत मे 'सन्तान' शब्द का अर्थ है कि अपने पूर्वजो के विचार, परम्परा, रीति, सभ्यता एव सास्कृतिक सम्पत्ति को आगे फैलाने वाली, हम सब वैदिकधर्मी ऋषि दयानन्द सरस्वती के आत्मिक पुत्र है, शिवरात्रि हमारे अध्यात्म जनक की जननी तिथि है, यदि ऋषि के जीवन मे यह अवसर न आता तो क्या बालक मूलशकर ऋषि दयानन्द बन सकता था ? इस अवसर पर हम सबका परमकर्त्तव्य है कि हम भी अन्तर्मुखी होकर आत्मबोध की ओर अग्रसर होने का सकल्प ले, क्या वह शिवरात्रि हमारे जीवन मे यो ही आकर जाती रहेगी ? क्या हमारे लिये यह बोध या जागृति का हेतु नही बनेगी ? अन्तर्यामी जगदीश्वर आर्यो को सत्प्रेरणा करे कि वे इस पावन पर्व पर आत्मबोध की दिशा मे प्रगति कर सके तथा पारस्परिक मतभेदो, अधिकारो की भागदौड को तिलांजलि देते हुए महर्षि के मिशन की पूर्ति के लिये अपनी शक्ति एव समय का सदुपयोग कर ऋषि के ऋण से अऋण हो सके और इस प्रकार वास्तविक अर्थो मे इस पर्व को जागृति का प्रतीक बना सके ।



मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधत निदे ।।

ऋ० ७।९४।३

हे मनुष्यो के नेता ! हे इन्द्र ! हे अग्ने ! हमे पापो की ओर न जाने दीजिए, हमे दुष्कर्मों, और निन्दित कामो की ओर न जाने दीजिए ।

संसार के महापुरुषों में महर्षि दयानन्द की विशेषता

प्रिंसिपल कृष्णचन्द्र

राजनीति के क्षेत्र मे एकतन्त्रवाद तथा प्रजातन्त्रवाद दो प्रकार की प्रमुख शासन प्रणालियाँ हैं। एकतन्त्रवाद की शासन प्रणाली की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमे प्राय समस्त सत्ता देश के एक ही व्यक्ति के हाथ मे होती है। उसको प्रजातन्त्रवाद की शासन प्रणाली की भाँति विधि विधानो के पचडे मे पडने की आवश्यकता नही होती। यदि वह चाहे तो अपने क्षेत्र मे शीघ्र ही सुधार ला सकता है तथा अपने देश को शीघ्र ही प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकता है। टर्की एक रोगी राष्ट्र माना जाता था परन्तु वहाँ पर कमाल अतातुर्क ने डिक्टेटर बनते ही तुरन्त ही टर्की मे सुधार लागू कर दिए। वहाँ की देवियां पर्दे मे बन्द रहती थी। कमाल अतातुर्क ने कानून द्वारा पर्दा प्रथा को बन्द कर दिया तथा अन्य सुधार भी कानून द्वारा लागू कर दिए। इसी प्रकार अफगानिस्तान मे अमानुल्लाखा ने सत्ता प्राप्त करते ही अनेक सुधार किए। परन्तु एकतन्त्रवाद की शासन प्रणाली मे एक बडा दोष यह है कि समस्त शक्ति केवल एक ही व्यक्ति मे अर्न्तनिहित होती है। वह जैसा चाहता है, करता है। उसके दोष-पूर्ण कार्यों की आलोचना भी जनता नही कर सकती है। यदि करती है तो जनता को गोलियो का निशाना बनाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो एक गडरिया देश की जनता को भेडे समझकर हांक रहा है। वहा के लोग एक प्रकार की घुटन अनुभव करते है।

प्रजातन्त्रवाद की शैली की शासन-प्रणाली की सबसे बडी विशेषता यह है कि वहाँ जनता को अपने विचारो को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। यदि सरकार कोई गलत पग उठाती है तो उसके गलत कार्य की आलोचना प्रेस एव प्लेट फार्म द्वारा की जा सकती है। परन्तु इस प्रकार की शासन-प्रणाली मे एक दोष भी है कि इसमे मतदाताओ की सख्या को देखा जाता है। उनकी योग्यता को नही आँका जाता। अल्लामा इकबाल से किसी ने पूछा कि आपकी दृष्टि मे प्रजातन्त्रवाद

किसे कहते है ? उन्होने इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार दिया :—

"जमहूरियत जिसे कहते है यह तरजे हुकूमत ।
बन्दो को गिना करते है, तोला नही करते ।।"

अर्थात् यदि एक सौ लोगो की सभा मे पचानवे मूर्ख जिस पक्ष के हो जाएँ तो उन पचानवे मूर्खो के मतदान के अनुसार निर्णय होगा । पॉच विद्वानो के मत की उपेक्षा कर दी जाएगी ।

दोनो प्रकार की शासन-प्रणालियो मे गुण-दोष होते हुए भी मेरे विचार में जनता का बहुमत फिर भी यही होगा कि प्रजातन्त्रवाद, एकतन्त्रवाद की तुलना मे भी अपेक्षाकृत फिर भी अच्छा है क्योकि प्रजातन्त्रवाद की शासन-प्रणाली मे अपने विचारो को प्रकट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता का होना उसे एकतन्त्रवाद की शासन-प्रणाली की अपेक्षा उत्कृष्ट बना देता है ।

वैदिक धर्म को किसी व्यक्ति ने नही चलाया । वह ईश्वरीय धर्म है । इस धर्म का प्रवर्तक कोई व्यक्ति न होकर ईश्वर है । अत वैदिक धर्म मे किसी व्यक्ति पर ईमान अथवा विश्वास लाना आवश्यक नही है ।

महात्मा बुद्ध, बुद्ध मत के प्रवर्तक थे । वे अपने समय के महान सुधारक थे । उन्होने यज्ञो मे पशुबलि करने का विरोध किया । धर्म के स्वरूप को ऐसा प्रस्तुत किया कि वह राजाओ, सेठो तथा साहूकारो से सम्बन्धित न होकर जन-साधारण से सम्बन्धित हो गया । महात्मा बुद्ध ने बुद्धमत के द्वार उपेक्षित लोगो के लिए खोल दिए । परन्तु ऐसे महान् सुधारक ने भी बुद्धमत मे प्रवेश करने वाले के लिए जहाँ 'धर्म शरण गच्छामि', 'संघ शरण गच्छामि' का कहना आवश्यक निश्चित किया, वहाँ अपने अनुयाइयो के लिए 'बुद्ध शरण गच्छामि' वाक्य कहना भी आवश्यक रूप से निश्चित कर दिया । इस प्रकार महात्मा बुद्ध जैसे महान् सुधारक ने भी बुद्धमत मे अपने व्यक्तित्व को सदा के लिए सम्बन्धित कर दिया । इस दृष्टि से महात्मा बुद्ध भी एकतन्त्रवादी अथवा उनके शिष्यो द्वारा बना दिए गए थे ।

हजरत ईसा भी अपने समय के महान् सुधारक थे । उन्होने अपने अनुयाइयो को प्रेम करने तथा सेवा भाव की शिक्षा दी । यहाँ तक कहा कि यदि कोई तुम्हारे एक गाल पर थप्पड मारे तो अपना दूसरा गाल भी उसके सम्मुख कर दो । परंतु हजरत ईसा जैसे महान् पुरुष ने भी अपने अनुयाइयो को यह कहा कि मेरे व्यक्तित्व पर ईमान लाना अत्यावश्यक है । इन अर्थो मे हजरत ईसा भी एकतन्त्रवादी थे । बहुत सम्भव है कि उन्हे भी उनके अन्ध भक्त शिष्यो द्वारा ऐसा रूप दिया गया हो ।

हजरत मुहम्मद साहब भी अपने समय के महान् सुधारक थे । उन्होने अरब देश मे एकेश्वरवाद का किसी न किसी अश मे प्रचार किया । मूर्तिपूजा का

विरोध किया। अरब निवासी छोटी-छोटी बातो पर परस्पर झगडा कर बैठते थे। मौलाना अलताफ हुसेन 'हाली' पानीपती ने अपनी पुस्तक 'मुसद्दस हाली' मे इसका दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

"कही घोडा आगे बढाने पे झगडा।
कही पानी पिलाने पे झगडा ।।
गरज एक रहती थी तकरार उनमे।
यू ही चलती रहती थी तलवार उनमे ।।"

हजरत मुहम्मद साहब ने उन लोगो मे भ्रातृभाव की भावना को जागरूक किया। अरब निवासी कन्या का जन्म होने पर उसे जान से मार डालते थे। मौलाना अलताफ हुसैन 'हाली' ने इस विषय पर लिखा है —

"जो होती थी पैदा किसी घर मे दुख्तर,
तो खौफे शमातत से बेहरम मादर।
फिरे देखती थी जो शौहर के तेवर,
कही जिन्दा गाढ आती थी उसको जाकर।
वह गोद ऐसी नफरत से करती थी खाली,
जने सांप जैसे कोई जनने वाली।"

हजरत मुहम्मद ने इस कुप्रथा को भी बन्द किया। परन्तु हजरत मुहम्मद जैसे अपने समय के महान् सुधारक ने भी अपने व्यक्तित्व को इस्लाम के साथ सदैव के लिए सम्बन्धित कर दिया। 'कलिमा' मे जहा प्रत्येक मुसलमान को कहना पडता है कि—"ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई उपास्य नही है।" वहाँ उसे हजरत मुहम्मद साहब के व्यक्तित्व पर ईमान लाना भी आवश्यक है। हजरत मुहम्मद की सिफारिश के बिना कोई भी व्यक्ति जन्नत मे प्रवेश प्राप्त करने का अधिकारी नही है। उन्होने यह भी दावा किया कि मैं अन्तिम रसूल हू। मेरे पश्चात् कोई अन्य रसूल नही आएगा। इन अर्थो मे हजरत मुहम्मद साहब भी एकतन्त्रवादी थे अथवा बना दिए गए थे।

परिणाम यह हुआ कि ईश्वर पूजा के स्थान पर व्यक्ति पूजा होने लगी। ईश्वर का स्थान उन व्यक्तियो ने अथवा महापुरुषो ने ले लिया जिनकी सिफारिशो से मनुष्य परमात्मा का प्रिय हो सकता है।

परन्तु महर्षि दयानन्द एकतन्त्रवादी अर्थात् डिक्टेटर न थे। आर्य समाज के प्रवर्तक होते हुए भी आर्य समाज के दस नियमो मे अपना नाम तक रखना गवारा न किया। अर्थात् आर्य समाज का सदस्य बनने के लिए महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व पर विश्वास लाने की कोई शर्त नही है। महर्षि दयानन्द तो व्यक्तिपूजा के इतने

विरोधी थे कि जब उनको किसी ने कहा कि आपके स्मारक के रूप मे आपकी कोई समाधि क्यो न बनाई जाए ? तो महर्षि का एक कवि के रूप मे निम्न उत्तर था —

"जलाना मुझको मगर न मेरी समाधि कोई वहा बनाना ।
यह बट्टा नाम पे मेरे हरगिज सुनो न आर्यो ! लगाना ।।
वह ताकि बे फायदा न जाए किसी मसरफ के काम आए ।
जो खाक हो मेरी हड्डियो की वह जाके खेतो मे डाल आना ।।"

आत्मा का परमात्मा से सीधा सम्बन्ध हो सकता है । परमात्मा की प्राप्ति के लिए महर्षि दयानन्द ने अपनी सिफारिश प्राप्त करने की कोई शर्त नही लगाई । इस दृष्टि से महर्षि दयानन्द एकतन्त्रवादी अर्थात् डिक्टेटर नही अपितु प्रजातन्त्रवादी थे ।

ससार के बडे-बडे मतो के प्रवर्तक अपने समय के महान् सुधारक होते हुए भी अपने एकतन्त्रवादी अथवा डिक्टेटर होने के लोभ को सवरण नही कर सके । परन्तु महर्षि दयानन्द की एक विशेषता यह है कि उन्होने अपने व्यक्तित्व को वैदिक धर्म के साथ कदापि सम्बन्धित नही किया ।



मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुराषासो अमन्महि ।।
ऋ० ८।१।१३

हे इन्द्र ! नीच पुरुषो के समान हम तुझसे दूर न हो और न पराये पुरुषों के समान हो । हे दुष्टो के नाशक ! हम शाखा-रहित वृक्षो के समान (अर्थात् सन्तानहीन) न होवें ।

दयानन्द सरस्वती : जीवनी लेखन विषयक अन्वेषण तथा समस्यायें

डॉ० भवानीलाल भारतीय

उन्नीसवी शताब्दी के भारतीय धार्मिक तथा सास्कृतिक पुनर्जागरण के उन्नायक तथा पुरोधा दयानन्द सरस्वती की गणना इतिहास के उन शलाका पुरुषो मे होती है जिनके कृतित्व एव विचारो से उनके समकालीन लोग ही प्रभावित नही हुये, अपितु जिन्होने समस्त भूमण्डल के विचारशील नागरिको को मनो तथा मस्तिष्को पर व्यापक प्रभाव स्थापित किया था। दयानन्द के विचारो का प्रचार और प्रसार उनके जीवनकाल मे ही स्वदेश सीमा का उल्लघन कर यूरोप और अमेरिका आदि महादेशो मे हो गया था। फलत देश और विदेश के अनेक प्रबुद्ध व्यक्ति न केवल उनकी विचार सुरभि से ही परिचित होना चाहते थे, उनकी यह भी इच्छा थी कि स्वामी दयानन्द की जीवन यात्रा के विभिन्न आयामो से भी परिचय प्राप्त करे। दयानन्द सरस्वती वैदिक समाज व्यवस्था की आश्रम प्रणाली के अनुसार चतुर्थाश्रम (सन्यास) की मर्यादा का पालन करने के कारण यद्यपि अपने वश जन्म स्थान, माता-पिता तथा जीवन के प्रारम्भिक अ श के बारे मे विस्तारपूर्वक बताने मे सकोच करते थे, फिर भी उन्होने अपने जीवनकाल मे एकाधि बार स्वविषयक कुछ बाते बतलाने का प्रयत्न किया था।

प्रथम बार उन्होने अपने जीवन के विषय मे कतिपय तथ्यो का उद्घाटन उस समय किया, जब वे पुणे (महाराष्ट्र) मे न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे के अनुरोध से एक व्याख्यान माला प्रस्तुत कर रहे थे। भाषण माला की अन्तिम कडी के रूप मे उनका यह आत्मकथन दि० ४ अगस्त १८७५ को प्रस्तुत किया गया जब बुधवार पैठ स्थित भिडे के बाडे मे उन्होने अपने जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओ का उल्लेख किया। इस आत्म निवेदन मे दयानन्द ने अपने जन्म से लेकर काशी की

पण्डित मण्डली से किये गये अपने प्रसिद्ध शास्त्रार्थ (१६ नवम्बर १८६९ ई०) तक की घटनाओ का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया।

स्वदेशवासियो की ही भाति अन्य देशवासी भी दयानन्द के जीवन के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज की कीर्ति पताका को अल्पकाल मे ही सर्वत्न फहराते देख अमेरीका मे स्थापित थियोसोफिकल सोसाइटी के सभासदो का ध्यान भी इस महापुरुष की ओर आकृष्ट हुआ। कालान्तर मे जब थियोसोफिकल सोसाइटी का मुखपत्न 'थियोसोफिस्ट' बम्बई से प्रकाशित होने लगा तो पत्र के सम्पादक के आग्रह पर स्वामी जी अपने जीवन वृत्त को धारावाही रूप मे प्रकाशित कराने के लिये राजी हो गये। यद्यपि इस पत्न मे प्रकाशित दयानन्द का जीवन वृत्तान्त तो और भी सक्षिप्त है तथा वह नर्मदा स्रोत गवेषण काल तक ही समाप्त हो जाता है, तथापि लिखित रूप मे उपस्थित होने के कारण उनके जीवन-प्रभात को प्रामाणिक रूप मे चित्रित करने के कारण इस विवरण की महत्ता निर्विवाद है।

स्वामी दयानन्द के जीवनकाल मे ही उनका जीवन वृतान्त लिखने का एक प्रयत्न तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तरप्रदेश) की शिक्षा सेवा के एक अधिकारी प० गोपाल राव हरि द्वारा किया गया। प० गोपाल राव महाराष्ट्र वासी थे तथा फर्रुखाबाद मे स्कूलो के सब डिप्टी इन्सपेक्टर थे। १९३७ वि० मे इन्होने दयानन्द दिग्विजयार्क शीर्षक से दयानन्द की जीवनी का प्रणयन आरम्भ किया। ग्रन्थ का प्रथम खण्ड १९३८ वि० मे समाप्त हुआ। इसमे स्वामी जी के सक्षिप्त जीवन वृतान्त के पश्चात् उनके कुछ शास्त्रार्थो का विवरण दिया गया है जो क्रमश पौराणिक, जैन मुसलमान तथा ईसाई विद्वानो से हुये। द्वितीय खण्ड मे दयानन्द रचित वेद भाष्य विषयक चर्चाओ और आलोचनाओ की समीक्षा के पश्चात् उनके द्वारा किये गये धर्म प्रचार वृतान्त का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यह खण्ड भी १९३८ वि० मे प्रकाशित हो गया था। ग्रथ का अवशिष्ट अश (तृतीय खण्ड) यद्यपि १९४२ वि० (स्वामी दयानन्द के निधन के दो वर्ष पश्चात्) मे ही लिखा जा चुका था, किन्तु उसका प्रकाशन १९४४ वि० मे हुआ। यह खण्ड प्रथम दो खण्डो से आकार मे बडा था, तथा उसमे स्वामी दयानन्द द्वारा किये गये गो रक्षा आन्दोलन, थियोसोफिस्टो से उनके मतभेद, मुन्शी इन्द्रमणि विषयक विवाद, उदयपुर, शाहपुरा, जोधपुर की यात्रा, उनके अस्वस्थ होने, तथा अजमेर मे परलोक गमन आदि घटनाओ का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। स्वामी जी के देहावसान के पश्चात् तत्कालीन पत्न पत्निकाओ मे जो शोक व्यक्त किये गये, उनका सकलन करते हुए ग्रन्थकार ने स्वामी जी की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के प्रथम अधिवेशन की कार्यवाही को भी उद्धृत किया है। वस्तुत इस ग्रन्थ के द्वारा दयानन्द के

जीवन चरित्र की वह आधारभूत सामग्री प्रथम बार प्रस्तुत की गई, जिसका लाभ परवर्ती सभी जीवन लेखको ने उठाया है। इसमे समकालीन पत्र पत्रिकाओ के उद्धरणो, लघु-पुस्तिकाओ, प्रत्यक्षदर्शियो के कथनो तथा स्वामी जो के पत्र व्यवहार को प्रचुर मात्रा मे उद्धृत किया गया है।

दिसम्बर १८८५ मे परोपकारिणी सभा ने अपने द्वितीय अधिवेशन मे एक प्रस्ताव स्वीकार कर यह निश्चय किया कि सभा के उपमत्री प० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया के द्वारा स्वामी दयानन्द का विशद् एव तथ्यपूर्ण जीवन चरित्र लिखाया जाना चाहिए। देशवासियो से अपील की गई कि वे स्वामी जी के सम्बन्ध मे जो कुछ जानकारी रखते है, उसे पण्ड्या जी को भेजने की कृपा करे। परन्तु जीवन लेखन का प्रयास क्रियान्वित नही हो सका। शायद पण्ड्या जी का अनुत्साह ही इसमे कारण रहा हो। दयानन्द सरस्वती के परलोक गमन के पॉच वर्ष पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर आर्यसमाज के प्रवर्तक का विशद एव प्रामाणिक जीवन लिखवाने का निश्चय किया। प० लेखराम जैसे समर्थ, योग्य, अध्ययनशील एव अन्वेषण प्रिय व्यक्ति को यह महत् कार्य सौपा गया। प० लेखराम ने अपने आचार्य के जीवन विषयक तथ्यो का सग्रह करने मे रात दिन एक कर दिया। वे उन सभी प्रान्तो मे घूम घूम कर जीवनी विषयक आधार-भूत तथ्यो और सामग्री का सकलन करते रहे, जिन्हे स्वामी जी ने अपने भ्रमण से पवित्रीकृत किया था। यह निश्चित है कि यदि प० लेखराम अकाल मे ही काल कवलित नही हुये होते तो दयानन्द का समग्र व्यवस्थित एव प्रामाणिक जीवन चरित उनकी लौह् लेखनी से प्रसूत हो गया होता, किन्तु ६ मार्च १८९७ ई० को एक आततायी के घातक प्रहार से आहत होकर लेखराम परलोकगामी हुए तथा उनका सकल्पित जीवनी लेखन का कार्य अपूर्ण ही रहा गया। उसी वर्ष के अक्टूबर मास मे जब लाला मुन्शीराम ने प० आत्माराम अमृतसरी को प्रेरणा देकर प० लेखराम द्वारा सकलित सामग्री को व्यवस्थित रूप मे प्रकाशित कराया तो वह उपलब्ध सामग्री का सग्रह मात्र ही था, साहित्यिक शैली मे लिखी गई जीवनी के तत्त्व उसमे नगण्य ही थे।

तथापि यह तो स्वीकार करना ही होगा कि कालान्तर मे स्वामी जी की जीवनी लिखने के जो भी प्रयत्न हुये उनका आधार प० लेखराम द्वारा सकलित यह उर्दू जीवन चरित ही था। दयानन्द के व्यापक कार्यो तथा धर्म, समाज एव राष्ट्र के बहुविध क्षेत्रो में किये गये उनके महत्त्वपूर्ण प्रयत्नो का यह एक ऐतिहासिक आलेख है, जिसे तैयार करने मे लेखक को घोर अध्यवसाय करना पडा था। सहस्त्रो व्यक्तियो की प्रत्यक्ष साक्षियो, नाना भाषाओ मे प्रकाशित तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं

के उद्धरणो तथा अन्य प्रमाणो के आधार पर लिखित यह ग्रन्थ लेखक के प्रभूत परिश्रम का परिचायक है।

हम यह लिख चुके है कि देशवासियो का ही भाति विदेश के रहने वालो ने भी वैदिक धर्म के पुरुद्धारक तथा अतीतकालीन आर्य जीवन दर्शन के पुरस्कर्ता इस महापुरुष की दैनन्दिन जीवनचर्या के प्रति रुचि प्रदर्शित की। तभी तो हम देखते हैं कि यूरोपीय भाषाओ का एक शब्द भी न जानने वाले तथा पाश्चात्य चिंतन से लेश-मात्र भी परिचय न रखने वाले उस व्यक्ति के अदम्य विचारो तथा व्यापक प्रभाव को पटिलसित कर सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० मेक्समूलर दयानन्द की जीवनी पर कुछ लिखने के लिये लालायित हो उठा। स्वामी जी के निधन के एक वर्ष पश्चात् उसने इगलैंड से प्रकाशित होने वाले एक मासिक-पत्र मे उनके विषय मे एक निबध प्रकाशित किया। पुन. उसी निबध को उन्होने अपने Biographical Essays शीर्षक ग्रन्थ मे पृष्ठ १६७ से १८० तक उद्धृत किया। इसी प्रकार जब रामकृष्ण मिशन की प्रेरणा से प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् रौमाँरोला ने रामकृष्ण परमहस की जीवनी लिखी तो उसके Builders of unity शीर्षक अध्याय में उन्होने स्वामी दयानन्द के जीवन और उनके विचारो का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम दशक मे बगाली लेखक का ध्यान स्वामी दयानन्द की जीवनी की ओर गया। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय इससे पूर्व सत्तपाल का जीवन चरित लिखकर ख्याति अर्जित कर चुके थे। जब कलकत्ता आर्यसमाज के अधिकारियो ने उन्हे स्वामी दयानन्द की विस्तृत जीवनी लिखने का अनुरोध किया तो वे उस महत् कार्य को सम्पन्न करने के लिये अविलम्ब तैयार हो गये। देवेन्द्रनाथ ने एकान्त निष्ठा और साधना के साथ दयानन्द के जीवन विषयक अद्यतन अज्ञात, अल्पज्ञात अथवा अन्यथा ज्ञात तथ्यो का पता लगाने का महत्त्वपूर्ण कार्य सफलता-पूर्वक किया। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये उन्हे देश के विभिन्न भागो मे भ्रमण करना पडा, तथा विभिन्न लोगो से भेटकर दयानन्द विषयक जानकारी का सग्रह करना पडा। देवेन्द्रनाथ ने स्वामी जी का एक लघु जीवन चरित दयानन्द चरित शीर्षक से बगला मे लिखा, परन्तु अभी तक वे दयानन्द के जीवन विषयक अन्वेषण और अनुसधान से पूर्णतया सतुष्ट नही थे। अत वे एक बार पुन तथ्य सग्रह के कार्य मे लगे। १९१५-१६ तक जब देवेन्द्रनाथ ने समस्त सामग्री का सग्रह कर लिया तो वे निश्चय होकर दयानन्द की विस्तृत जीवनी लिखने बैठे।

देवेन्द्रनाथ ने स्वामी दयानन्द के विषय मे जिन विशिष्ट तथ्यो का पता लगाया उनमे पिता के वास्तविक नाम तथा स्थान का निर्धारण महत्वपूर्ण हैं। इससे पूर्व प० लेखराम ने यह अभिमत व्यक्त किया था कि स्वामी जी का जन्म

स्थान सौराष्ट्र का मोरवी नगर तथा उनके पिता का नाम अम्बाशकर था। परन्तु देवेन्द्रनाथ ने अन्वेषण के पश्चात् यह सिद्ध किया कि दयानन्द की जन्मभूमि मोरवी राज्य के अन्तर्गत टकारा ग्राम है तथा उनके पिता करसन जी लाल जी तिवाडी थे। देवेन्द्रनाथ वाराणसी मे बैठकर दयानन्द का वृहत् जीवन चरित लिखने लगे अभी उन्होने इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की भूमिका और चार अध्याय ही लिखे थे कि उन पर अर्द्धांग रोग का प्रहार हुआ और वे काल कवलित हो गये। इसे एक दुर्योग ही मानना चाहिये दयानन्द का जीवन चरित न तो प० लेखराम ही पूरा कर सके और न देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ही स्वमनोनुकूल उसे समाप्त कर पाये। कालान्तर मे प० घासीराम जी ने देवेन्द्र बाबू द्वारा संकलित जीवन चरित विषय-सामग्री को प्राप्त कर उस अधूरे जीवन चरित को पूरा किया, परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि दयानन्द के प्रति अत्यन्त श्रद्धाभाव युक्त देवेन्द्रनाथ जिस दृष्टिकोण से जीवन चरित लिखना चाहते थे, वह उनके दिवगत हो जाने के कारण नही हो सका।

देवेन्द्रनाथ के पश्चात् स्वामी सत्यानन्द ने भी दयानन्द के जीवनी लेखन मे अपना हाथ लगाया। उन्होने देवेन्द्रनाथ की सामग्री का उपयोग किया तथा स्वय भी विभिन्न स्थानो पर जाकर तथ्य सकलन का कार्य किया। उनके द्वारा रचित 'दयानन्द प्रकाश मे ऐतिहासिक दृष्टि का उतना समावेश नही हुआ है अपितु वह भावना प्रवण लेखन की भावुकता पूर्ण शैली मे लिखित भक्ति प्रधान जीवनी है। लेखराम और सत्यानन्द द्वारा रचित जीवनियो की अपनी सीमाये है। लेखराम अग्रेजी से अनभिज्ञ होने के कारण इस भाषा की पुस्तको एव पत्रो मे प्राप्त सामग्री का उपयोग नही कर सके। यही बात स्वामी सत्यानन्द जी के लिये भी कही जा सकती है। देवेन्द्रनाथ ने अग्रेजी, बगला आदि भाषाओ मे प्राप्त सामग्री का भरपूर उपयोग किया। उन्होने महाराष्ट्र और बगाल जैसे प्रान्तो मे पर्याप्त भ्रमण कर दयानन्द विषयक अनेक अज्ञात बातो का पता लगाया।

यह कहा जा सकता है कि प० लेखराम और देवेन्द्रनाथ के पश्चात् दयानन्द की जीवनी विषयक अनुसधान का कार्य अपेक्षित ही रहा। परन्तु जयचन्द्र विद्यालकार तथा पृथ्वीसिंह मेहता विद्यालकार ने जीवन चरित का एक नई दिशा की तलाश करने का प्रयत्न अवश्य किया। पृथ्वीसिंह मेहता ने 'हमारा राजस्थान' शीर्षक पुस्तक लिखते समय इस बात के सकेत दिये कि १८५७ की उथल पुथल मे दयानन्द को क्या सम्भावित भूमिका रह सकती है? दयानन्द की जीवनी मे उपलब्ध अनेक अन्त साक्ष्यो के आधार पर उन्होने उन सम्भावनाओ का विवेचन किया है। हम देखते हैं कि नर्मदा के स्रोत की गवेषणा तक का इतिवृत्त तो दयानन्द के स्वलिखित आत्मचरित मे उपलब्ध होता है, परन्तु आगे के तीन वर्षों मे कहाँ रहकर क्या करते

रहे, इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नहीं है। मेहता ने इसी प्रसग को उठाकर लिखा है—"यह कहना तो कठिन है कि क्रान्ति युद्ध या उसके सगठन के प्रति उसका रूख क्या रहा और उसने भी उसमे भाग लिया या नही। तो भी उसकी जीवन घटनाओ की तिथियो का जो सक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है। उससे यह बात तो स्पष्ट हो ही जाती है कि क्रान्ति की तैयारियो आदि से उसे निकट परिचय करने का अवसर अवश्य मिला। यह बात मान लेना आसान नहीं है कि दयानन्द के सदृश भावना प्रवण और चेतनावान् हृदय और मस्तिष्क का युवक उसके प्रभाव से अछूता बचा रहा हो और उस युद्ध की सफलता विफलता की उस पर कोई प्रतिक्रिया न हुई हो। अत उसकी उन तीन वर्षो के बारे मे यह पूरी चुप्पी भी कम अर्थ भरी प्रतीत नही होती।" जयचन्द्र विद्यालकार ने भी मेहता के ही तर्को को दुहराया है तथा साधु सम्प्रदाय मे प्रचलित एक अनुश्रुति का भी उल्लेख किया है जिसमे दयानन्द के १८५७ के सघर्ष मे भाग लेने की बात कही गई है।

जब तक स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो, इस सम्बन्ध मे कुछ भी कहना सम्भव नही है कि १८५७ की हलचल भरी परिस्थितियो मे दयानन्द की क्या भूमिका रही। यो गृह त्याग के समय सत्यधर्म की जिज्ञासा मुक्ति पथ का अन्वेषण तथा भोग साधना मे अभिरुचि को लेकर ही दयानन्द देशाटन मे प्रवृत्त हुए थे। उनके मानसिक धरातल का अध्ययन करने तथा उनमे तत्कालीन अ त स्थिति तथा वैचारिक भूमि की जानकारी कर लेने के पश्चात् उपर्युक्त धारणाये हमे आपात रमणी ही प्रतीत होती है क्योकि उस समय तक दयानन्द का राजनैतिक चिन्तन कथमपि प्रौढ नही हुआ था और न परकीय शासन के प्रति उनके हृदय मे कोई उग्र धारणा ही उत्पन्न हुई हो सकी थी। तथापि मेहता और विद्यालकार ने उस सबध मे जो सम्भावनाये व्यक्त की है, उन पर सावधानीपूर्वक विचार अपेक्षित है। खेद है कि १८५७ मे दयानन्द की भूमिका की तथ्यात्मक खोज करने की अपेक्षा वासुदेव वर्मा तथा पिण्डीदास ज्ञानी जैसे लेखको ने १८५७ की विभिन्न हलचलो का श्रेय दयानन्द को देने मे तो शीघ्रता की, परन्तु ऐसा करने मे ऐतिहासिक औचित्य का किस प्रकार हनन होता है, इसका किञ्चित मात्र भी ध्यान नही रखा।

१८७१-७३ मे स्वामी दयानन्द ने किंचित् काल तक बगाल मे निवास किया था। बगला के तत्कालीन पत्रो मे उनकी बग यात्रा का विवरण भी प्रकाशित हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व कलकत्ता आर्यसमाज के प० दीनबन्धु वेदशास्त्री ने एक हस्तलिखित पुस्तक का पता लगाया जो उनके कथनानुसार बगाल मे स्वामी दयानन्द को आमन्त्रित करने वाले ब्राह्म नेता हेमचन्द्र चक्रवर्ती की डायरी थी। कलकत्ता मे चक्रवर्ती महाशय स्वामी जी के सान्निध्य मे रहे तथा उनसे योग साधना भी सीखी।

वेदशास्त्री जी ने इस डायरी का प्रकाशन अनेक पत्रो द्वारा कराया तथा उनके अनुसार स्वामी स्वतत्रानन्द जी ने 'दयानन्द प्रसग' शीर्षक से इस डायरी का हिन्दी अनुवाद भी किया जो आर्यसमाज कलकत्ता ने प्रकाशित किया। पर्याप्त समय तक हम इस तथाकथित डायरी को प्रामाणिक समझते रहे तथा इसकी सहायता लेकर दयानन्द के बग प्रवास की घटनाओ को समझने का प्रयत्न भी करते रहे परन्तु इधर कुछ समय से इस सामग्री के प्रति हमे शकाशील होना पडा। जब हमने कलकत्ता आर्यसमाज मे स्वामी स्वतत्रानन्द द्वारा अनूदित 'दयानन्द प्रसग की प्रति प्राप्त करनी चाही तो हमे उक्त समाज के मत्री का उत्तर मिला कि पुस्तक उपलब्ध नही है, हाँ उसकी सामग्री को दीनबधु जी ने कलकत्ता आर्यसमाज के मुख पत्र 'आर्य ससार' के कई अको मे प्रकाशित करा दिया है। आर्य ससार तथा अन्य (आर्यमित्र, वेदवाणी) पत्रो मे प्रकाशित इस सामग्री को हम इससे पूर्व ही पढ चुके थे।

तत्पश्चात् हमने स्वामी स्वतत्रानन्द जी द्वारा स्थापित दयानन्द मठ दीना नगर (पजाब) के स्वामी सर्वानन्द जी (जो स्वनामधन्य स्वामी स्वतत्रानन्द जी के शिष्य है) को पत्र लिखकर जानकारी चाही कि मठ मे 'दयानन्द प्रसग' शीर्षक स्वामी स्वतत्रानन्द जी द्वारा बगला से अनूदित कोई पुस्तक है? इसका उत्तर भी हमे 'ना' मे ही मिला। यह आश्चर्य की बात है कि स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी द्वारा किया गया अनुवाद ग्रन्थ न तो कलकत्ता मे है और न उनके निजी पुस्तकालय मे ही। हमारी धारणा और भी दृढ हो गई जब दीनबन्धु जी द्वारा प्रस्तुत दयानन्द विषयक सर्वथा अप्रमाणिक और जाली सामग्री योगी का आत्मचरित अथवा 'दयानन्द की अज्ञात जीवनी' के नाम से हमारे समक्ष आई। बगाल मे उपलब्ध पाण्डुलिपि के रूप मे प्राप्त इस तथाकथित सामग्री को जब अनूदित कर दीनबधु जी सार्वदेशिक साप्ताहिक मे धारावाही प्रकाशित कराना आरम्भ किया, तभी हमारा माथा ठनका था और धीरे धीरे जब इस सामग्री की अविश्वसनीयता स्पष्ट होने लगी तो हमने पत्रो के माध्यम से तीव्र आन्दोलन कर दयानन्द की जीवनी को विकृत करने के इस घृणित प्रयास का प्रखर विरोध किया था। हमे सतोष है कि दयानन्द के जीवन चरित के विमर्शकर्ता एतद्देशीय तथा अन्य देशस्थ डा० जॉर्डन्स जैसे विद्वानो ने हमारे प्रयास की भूरि-भूरि प्रशसा की तथा चमत्कार और अलौकिक तत्त्वो को जान बूझकर दयानन्द चरित मे प्रविष्ट करने वाले लोगो के कार्य की तीव्र निन्दा की। आज न तो प० दीनबन्धु और न उनके समर्थक योगी सच्चिदानन्द इस स्थिति मे हैं कि इस जाली पुस्तक की प्रामाणिकता सिद्ध कर सके।

पिछले वर्षों मे पजाब के स्वर्गीय नेता दिवान अलखधारी के किसी लेख के आधार पर १८७३ मे भारत के गवर्नर जनरल लार्ड नार्थब्रुक की स्वामी दयानन्द से कलकत्ते मे एक तथाकथित मुलाकात का विवरण भी पत्र पत्रिकाओ मे

चर्चित होता रहा। परन्तु इस प्रसग की प्रामाणिकता का अनुसधान करने का प्रयत्न किसी ने भी नही किया। विवश होकर हमे इस चर्चा को भी पत्रो के माध्यम से उठाना पडा। हमने आर्यसमाज की सर्वोच्च सभा सस्थाओ से निवेदन किया कि भारत के राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा लदन स्थित पुरातात्त्विक लेखागारो मे सुरक्षित तत्कालीन सामग्री का अनुसधान कर इस प्रसग की प्रामाणिकता का निर्धारण करे। हमे खेद है कि हमारी प्रार्थना बहरे कानो से सुनी गई। आर्यसमाज मे अन्वेषण और शोध की शोचनीय स्थिति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है।

निष्कर्षत हम कह सकते है कि स्वामी दयानन्द के जीवन चरित लेखन की समग्रता और प्रामाणिकता तभी निष्पन्न हो सकती है जबकि अद्यतन लिखी गई सभी जीवनियो का तुलनात्मक परिशीलन कर उनमे व्यक्त तथ्यो एव घटनाओ का पूर्वापर क्रम स्थापित किया जाय। इसके साथ ही तत्कालीन देशी विदेशी पत्र-पत्रिकाओ को प्रकाशित दयानन्द विषयक सदर्भों की पुन खोजबीन की जाय तथा उन्हे यथास्थान नियोजित किया जाय। इसके साथ ही अन्य सामग्री, जो अभी तक सामने नही आ सकी है, का भी अन्वेषण किया जाय। निश्चय ही दयानन्द का जीवनी लेखन पर्याप्त शुभ, अध्यवसाय तथा निष्ठा की माँग करता है।



त्व न पश्चादधरादुत्तरात् पुर इन्द्र निपाहि विश्वत।
आरेऽस्मत्कृणुहि दैव्य भयमारे हेतीरदेवी॥

ऋ० ८।५०(६१)१६

हे इन्द्र! तू हमारी पीछे, नीचे, ऊपर, सामने की ओर से, (अर्थात् सब ओर से) रक्षा कर। हमसे आधिदैविक भयो को दूर कर, और आधिदैविक के अतिरिक्त अन्य दुखो को भी दूर कर।

महर्षि के बोध पर्व पर महर्षि को जानने का संकल्प कीजिए

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर

हम अपने आपको महर्षि का शिष्य कहते है। तनिक सोचिए कि क्या हम ऋषिवर का शिष्य कहलाने के अधिकारी है ?

(१) मदिरा आदि का का महापाप बढ रहा है परन्तु हम इसे रोकने मे असमर्थ सिद्ध हो रहे है फिर हम महर्षि के शिष्य कैसे ? हम सोचे कि अभक्ष्य पदार्थो के सेवन से औरो को बचाने मे हमारा कुछ योगदान है भी क्या ? क्या हम अथवा हमारे सगे सम्बधियो व मित्रो मे तो यह रोग व्याप्त नही ? बोध पर्व मनाने वालो इतना अवश्य सोचो।

(२) सामाजिक कुरीतिया अजगर के समान इस देश व समाज को खा जाने के लिए निरन्तर बढती जा रही है। क्या हमने प्रस्ताव पारित करने के अतिरिक्त कोई ठोस पग उठाकर कुरीति उन्मूलन के लिए कुछ किया है ? कुरीतियो के उखाडने के लिए भाषण देने के अतिरिक्त हमारा क्या योगदान है ? ऋषि बोध पर्व मनाने वालो, यह सोचने का समय कब आएगा ?

(३) जाति भेद आप नही मानते हैं परन्तु बोध पर्व पर यह तो बताइए कि आपने जातिभेद निवारक समाज की स्थापना के लिए अब तक क्या किया है ? क्या आपने अपने परिवार के नाते जोडते समय आर्य समाज को प्रधानता दी या जन्म की बिरादरी को ? यदि जातपात नही तोड पाये तो ऋषि बोध पर्व मनाने का आपको क्या अधिकार है ?

(४) आर्यसमाज और उसकी सस्थाओ ने राष्ट्र भाषा के प्रसार के लिए बडे कष्ट झेले हैं। बडा तप किया है। महात्मा हसराज प्रिंसिपल होते हुए कालेज के छात्रो को क, ख, ग, पढाते रहे। यह महात्मा जी ने एक बार अपने एक भाषण मे बात भी कही थी।

क्या अब आपने राष्ट्र भाषा के प्रश्न पर पराजय तो स्वीकार नही कर ली ? आपने अपने घर, विवाह सस्कार आदि पर व उत्सवो पर या बैंक खाते मे हिन्दी को प्राथमिकता कभी दी है ? फिर बोध पर्व कैसे मना रहे हो ? कुछ सोचिए ।

(५) महर्षि दयानन्द जी महाराज ने लिखा है कि मानव जीवन की साफल्य तो 'प्रभु की भक्ति करने' मे है। यह मानव जीवन, प्यारे ऋषि के मन्तव्य के अनुसार 'परमानन्द के भोगने के लिए है । बोध पर्व पर विचारिए कि आपने परमानन्द की प्राप्ति के लिए कभी तडपन दिखाई है ? धर्म के सेवन' व अधर्म के छोडने मे आपने कभी पुरुषार्थ किया है ?

यदि आपको इस दिशा मे रुचि होती तो सब समाज मन्दिरो मे प्रात साय वेद कथाए व हवन यज्ञ के कारण वेद की ऋचाओ की पवित्र ध्वनि की गूञ्ज वातावरण को सुवासित करती । फिर कोई धूर्त आर्य समाज को सध्या हवन एण्ड कम्पनी कहने का दु.साहस न करता ।

(६) हमारे प्यारे ऋषि ने लिखा है कि "शरीर, प्राण भी जाए तो भी इस धर्म के विरुद्ध कभी नही हो सकता।" ऋषिवर ने अपने इस कथन का कर्म मे अनुवाद किया । जीवन आहूत करने की बात कही ही नही जीवन की भेट चढा कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया । बोध पर्व मानने वालो तनिक सोचो कि आपने कभी वैदिक धर्म को अपने जीवन मे धारण करने का यत्न किया है ? क्या धर्म हित कभी कष्ट सहन करने का स्वाद चखा है ? यदि नही तो आप ऋषि को जानते ही नही फिर बोध पर्व क्या मनाओगे ?

(७) ऋषि लिखते हैं कि "शतरज, हास्य और विनोद आदि मे मूर्ख लोग अपना समय खोते है।" सोचिए क्या हम लोग ताश शतरज आदि मे समय तो नही गवाते ? क्या कभी धर्म कर्म मे सक्रिय रुचि दिखाई है ? यदि जीवन मे ऐसी प्रवृत्ति नही बन पाई तो जीवन विफल है । बोध पर्व मनाने वालो तनिक इन दोषो को दूर कीजिए ।

(८) क्या आपने कभी वेद प्रचार की, उपकार की चिन्ता की है ? पद की प्रतिष्ठा की चिन्ता तो अज्ञानियो को भी है । आज ज्ञानी व वेद अभिमानी माने जाते हैं । आपकी क्या विशेषता है । ऋषि दयानन्द जी महाराज लिखते हैं, "शरीर पात की तो मुझे चिन्ता नही, परन्तु जो उपकार कार्य मैं कर रहा हू वह अधूरा रह जायेगा ।"

बोध पर्व मनाने वालो क्या आपको भी वैदिक धर्म की इतनी चिन्ता हुई है ? क्या शरीर पात का भय आपको है ? यदि यह भय नही गया तो ऋषि के शिष्य कहलाने का अभी हमे अधिकार नही ।

(९) महर्षि मे इतना आत्मबल था कि आपने एक प्रमुख विरोधी विशु-

द्यानन्द जी को एक शास्त्रार्थ का मध्यस्थ बनाने का ऋषिवर ने स्वय प्रस्ताव किया। क्या इतना विद्या बल, आत्म बल व नैतिक बल हममे है कि हम इस प्रकार की बात कह सके। महर्षि का एतदविषयक लेख पढकर भक्ति विलीन 'जिज्ञासु' के मुख से अनायास ये शब्द निकलते है —

धन्य है सन्यास तेरा, धन्य है सौजन्य तेरा।
धन्य तेरी साधना है, ज्ञान गुरुवर धन्य तेरा ॥

इस प्रकार के निर्वैर, सर्वहितकारी, परोपकारी महामानव ही सन्यास आश्रम के अधिकारी है। दस २ पैसे का गेरू लेकर कपडे रग कर स्वामी कहलाने वाले तो कोर्टो मे धक्के खाते देखे जा सकते है।

(१०) कुछ पढे लिखे लोगो मे यह भ्रान्ति उत्पन्न हुई है कि महर्षि दयानन्द घातक को क्षमा कैसे कर सकते हैं ? ऋषि तो राज व्यवहार मे दण्ड देने (और दण्ड भी कठोर) का उपदेश दिया करते थे । यथा योग्य के नीति सूत्र का ऋषि भला क्षमा कैसे कर सकता है। इस भ्रान्ति का बडा प्रचार आरम्भ हुआ है। बोध पर्व पर यह सङ्कल्प कीजिए के ऋषि के जीवन-चरित्र का वर्ष मे दो चार बार पाठ करना है। ऋषि जीने लिखा है कि "जो मूर्ख लोग 'अपनी बुराई को नहीं छोडते तो बुद्धिमान धर्मात्मा लोग अपनी धर्मात्मता को क्यो छोड कर दु ख सागर मे पडे।"

एक बात और जान ले मु शी इन्द्रमणि जी को भी ऋषि ने लिखा था कि यदि मेरा निजी धन होता तो मैं क्षमाकर देना लोक धन की रक्षा करना तो मेरा कर्त्तव्य है। इससे स्पष्ट है कि क्षमा व अहिंसा सन्यास का शृङ्गार है। ऋषि को जाने व वेद को माने।



मा न इन्द्र परावृणग्भवा न सधमाद्य ।
त्व न ऊती त्वमिन्न आप्य मा न इन्द्र परावृणक् ॥
ऋ० ८।८६(९७)७

हे इन्द्र ! तू हमारा त्याग न कर, तू हमे एक साथ आनन्द देने वाला हो। हे इन्द्र ! तू ही हमारा रक्षा (का आश्रय) और तू ही हमारा प्रार्थनीय है, अतः तू हमारा त्याग न कर।

ऋषि ऋण कैसे चुकाऊं ?

राजेन्द्र जिज्ञासु अबोहर

मन सदन को आज तेरी,
याद से स्वामी सजाऊ ।
समझ मैं पाया नही यह,
तेरा ऋण कैसे चुकाऊँ ? · ·
तेरे कारण ऐ ऋषि हम,
ईश विश्वासी बने ।
महर्षि उपकार तेरे,
है असम्भव मैं गिनाऊ ।।·····
ग्रथ नूतन बन रहे थे,
पथ नूतन बढ रहे थे ।
ऐक्यवादी ऐ ऋषिवर,
शीश मैं तुझको निवाऊं ।।· ··

हम तो वञ्चित हो गये थे,
ईश के सदज्ञान से भी ।
अब ऋचाओ का श्रवणकर,
मैं सुपावन मन बनाऊ ।।· · ··
हम तो थे जड के पुजारी,
अपनी जड हमने उखाडी ।
आज मैं जग के नियन्ता,
की स्तुति से मन रिझाऊ ।।
बन चुके थे ब्रह्म भ्रम से,
खो चुके थे अपनेपन को ।
तज दिया था धर्म ने,
कर्मण्यता कर्त्तव्य को ।

आज शौर्य शख तेरा,
भक्ति भावो से बजाऊ ।।.... ... .
छेद डाले भेद कृत्रिम,
महर्षि तू धन्य था ।
एकता की तान स्वामी,
तेरा गौरव गीत गाऊ ।।.........

'वेद का डका बजा दो',
था ऋषि आदेश तेरा ।
लक्ष्य सिद्धि के लिए मैं,
भेट जीवन की चढाऊँ ।।
तेरा ऋण कैसे चुकाऊ ?.... .



त्व हि् न. पिता वसो त्व माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

ऋ० ८।८७(९८)११

हे सबको अपने मे बसाने वाले, हे अनन्त पराक्रमयुक्त भगवन् तू ही हमारा पिता और तू ही हमारी माता है, इसलिए हम तुझसे ही सुख की याचना करते है ।

"मानवमात्र के सच्चे मार्ग दर्शक"
'ऋषिवर दयानन्द'

आचार्य डा० सुरेन्द्र देव शास्त्री

महर्षि दयानन्द के प्रारम्भिक जीवन-काल मे दो ऐसी प्रमुख घटनाये घटी थी कि जिनका उनके ऊपर अति गम्भीर प्रभाव पडा था। इनमे प्रथम घटना तो शिवरात्रि के व्रत से सम्बन्धित थी। उस समय ऋषिवर की अवस्था १४ वर्ष की थी। पिताजी का इस व्रत के लिये पूर्णनिष्ठा के साथ करने हेतु अत्यधिक अनुरोध था। परिणाम-स्वरूप उन्हे उक्त व्रत बाध्य हो कर करना पडा। इस व्रत सम्बन्धी कथानक को उन्ही के शब्दो मे देखिये —

"मेरे यहाँ नगर के बाहर एक बडा देवल है। वहाँ शिवरात्रि के दिन रात के समय बहुत लोग एकत्रित होते है और पूजा करते है। मेरा पिता, मैं और बहुत से मनुष्य एकत्रित थे। पहिले पहर की पूजा कर ली, दूसरे की पूजा भी हो गई। अब बारह बज गये और धीरे-धीरे आलस्य के कारण लोग जहाँ के तहाँ झुकने लगे। मेरे पिता को भी निद्रा आ गई। इतने मे पुजारी बाहर गया। मैं इस भय से न सोया कि कही मेरा उपवास निष्फल न हो जाय। इतने मे यह चमत्कार हुआ कि मन्दिर मे बिल से चूहे बाहर निकले और महादेव की पिण्डी के चारो तरफ फिरने लगे। पिण्डी पर जो चावल चढाये हुये थे उन्हे ऊपर चढकर खाने भी लगे ····। इसलिये चूहो के इस खेल को देख कर मेरी लडक पन की बुद्धि आश्चर्य मे पड गई और मैंने सोचा कि जो शिव अपने पाशुपत-अस्त्र से बडे बड़े दैत्यो को मारता है, क्या वह ऐसे तुच्छ चूहो को भी अपने ऊपर से नही हटा सकता ? इस प्रकार की अनेक शकाये मेरे मन मे उठने लगी। मैंने पिता को जगाकर पूछा कि ये महादेव इस छोटे चूहे को क्यो नही हटा देते ? पिताजी ने कहा कि तेरी बुद्धि बडी भ्रष्ट है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है। तब मैंने निश्चय किया कि जब मैं इसी त्रिशूल धारी शिव को

प्रत्यक्ष देखू गा तब ही पूजा करू गा ।" [उपदेशमञ्जरी-स्वय कथित जीवन चरित्र पृ० स० २१६-२२१]

इनके इन शब्दो से उनकी अन्तर्निहित भावना का स्पष्ट रूप से पता लग जाता है। उनका भाव यही था कि वे सच्चे शिव के दर्शन करे। शिव परमात्मा का ही एक नाम है। अत भगवत् साक्षात्कार ही उनका मन्तव्य बन गया था। भगवात् के साक्षात्कार को दूसरे शब्दो मे इस भांति कहा जा सकता है कि हम सभी प्राणी जीवात्मा हैं तथा शिवनायक प्रभु ही परमात्मा है। परमात्मा सत्, चित् तथा आनन्द स्वरूप है और जीवात्मा केवल सत् और चित् स्वरूप है। दोनो मे मात्र आनन्द का ही अन्तर है। परमात्मा के इस आनन्द की अनुभूति कर लेने का ही नाम 'भगवत् साक्षात्कार' है। इसी को दूसरे शब्दो मे मोक्ष अथवा मुक्ति कहा जाता है। भारतीय सस्कृति मे इसी को चतुर्थ-पुरुषार्थ माना गया है। मानव-जीवन का अन्तिम अथवा चरमलक्ष्य भी यही है।

इसी प्रकार दूसरी घटना उनके घर मे यह घटी कि उनकी बहन की मृत्यु हो गई। इस घटना का प्रभाव भी ऋषिवर पर विचित्र हुआ। उन्ही के शब्दो मे देखिये —

"जब मेरी बहन मर गई तो मुझे बडा भय हुआ। मेरे मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि सबको इसी प्रकार मरना है। सब लोग रोते थे, पर मेरी छाती भय से धडक रही थी। इसलिये मेरी आँखो से एक आँसू भी न गिरा। मेरी यह दशा देखकर पिता ने मुझको 'पाषाण हृदय' कहा। . । उन्नीसवें वर्ष मे मुझ से अत्यन्त स्नेह रखने वाले मेरे दादा को भी मृत्यु ने आन दबाया। मरने समय उन्होने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाडी देखने लगे। मैं उनके पास बैठा था। मुझे देखकर उनके टपटप आँसू गिरने लगे। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया। मैंने रो रो कर आँखे सुजा ली। ऐसा रोना मुझे कभी न आया। इस समय मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि दादा की तरह मैं भी मर जाऊँगा। ऐसा विश्वास हो जाने पर अपने मित्रो और पण्डितो से अमर होने का उपाय पूछने लगा।" [उपदेशमञ्जरी-स्वयकथित जीवन चरित्र पृ० स० २२२-२२३]

इस भाँति ऋषिवर के हृदय मे अमर होने का भाव जाग्रत हुआ। अमर होने का अभिप्राय भी यही है कि आवागमन अथवा जन्म और मृत्यु के बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर लेना। मानव-जीवन का लक्ष्य भी यही है। मानव ऐसे साधनो का आश्रय प्राप्त करे कि जिससे इस लक्ष्य की पूर्ति की जा सके।

पाठको !

उपर्युक्त दोनो ही प्रकार की घटनाओ से सम्बन्धित समस्याओ के बारे मे गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर अन्ततोगत्वा यही परिणाम निकलता है कि दोनो

का अन्त समान है। दोनो ही का हल मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करना ही है। किन्तु सर्वप्रथम ऋषि को यही जानना था कि सच्चे शिव का स्वरूप क्या है ? तथा उसकी प्राप्ति के साधन क्या हैं ? वास्तविक शिव को जान लेना ही वस्तुत अमरता प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है।

अतः सच्चे शिव के स्वरूप को जानने तथा उसकी प्राप्ति हेतु साधनो को जानने की अभिलाषा से ऋषिवर घर से निकल पड़े। अनेक सन्तो, साधुओ तथा महन्तो से मिले। उनके बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण किया, तप किया, योग किया। उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु ऐसा कोई भी साधन उन्होने नही छोडा कि जिसको उन्होने किसी से जाना हो और तदुपरान्त उसे अपने जीवन मे कार्यान्वित न किया हो। तथा इन साधनो को करने मे महान् कष्टो को न सहन किया हो [उनके जीवन चरित का अध्ययन करने से इन सभी का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।] यहाँ तक कि कई बार उन्हे अपने को मृत्यु के मुख मे डाल देना पडा किन्तु भगवान् के सच्चे उपासक होने के नाते भगवान् ने सदैव उनकी रक्षा की।

किन्तु इतना सब कुछ होने पर भी उन्हे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकने मे सफलता प्राप्त न हो सकी। परिणामस्वरूप उन्होने यही निश्चय किया कि मुझे एक ऐसे गुरु को प्राप्त करना चाहिये कि जो मुझे ऐसी शिक्षा प्रदान करे कि जिससे मैं अपनी उपर्युक्त समस्याओ का सही हल निकाल सकू।

ऐसे गुरु की खोज मे सलग्न ऋषिवर ने अन्ततोगत्वा अपने योग्य गुरु को प्राप्त कर ही लिया और वे थे ऋषिवर विरजानन्द। उन की शिष्यता को प्राप्त कर ऋषिवर दयानन्द ने अपने लक्ष्य से सम्बन्धित ज्ञान को प्राप्त कर लिया। विरजानन्द जी द्वारा प्रदत्त ज्ञान का मुख्य निचोड यही था कि यदि वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि करना है तो ऋषिकृत ग्रन्थो का ही अध्ययन करना उचित है, मनुष्य कृत ग्रन्थो का नहीं। उनके इस कथन का अभिप्राय यही था कि मनुष्यो द्वारा लिखित ग्रन्थो मे त्रुटियो का होना सभव है किन्तु ऋषि कृत ग्रन्थो मे किसी भी प्रकार की त्रुटि का होना सभव नही है।

महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु के उक्त कथन का अक्षरश पालन किया और परिणाम यह हुआ कि उक्त आधार पर उपलब्ध ज्ञान को प्राप्त कर वे इस योग्य बन गये कि उन्होने अपने उस ज्ञान रूपी साधन के द्वारा अपने अभीष्ट लक्ष्य को शनैं शनैं प्राप्त कर ही लिया और इस भाँति अपनी उपर्युक्त दोनो समस्याओ का हल भी प्राप्त कर लिया।

अत "जहाँ चाह वहाँ राह" की उक्ति के अनुसार यह कहा जाना उचित ही होगा कि जब मनुष्य को सच्ची तथा वास्तविक लगन लग जाया करती है और वह

अपनी लगन की पूर्ति मे जुट जाया करता है तो किसी न किसी समय उसकी लगन अवश्य सफलता को प्राप्त कर लिया करती है।

यहाँ यह भी कह देना अनावश्यक न होगा कि उन्होने अपने अर्जित ज्ञान के बल पर ही मृत्यु सम्बन्धी समस्या का समाधान भी खोज लिया था कि जिसको अपने जीवन मे चरितार्थ कर उसके प्रायोगिक स्वरूप को जीवन के अन्तिम क्षणो मे वहाँ उपस्थित अनेक लोगो के समक्ष प्रदर्शित भी कर दिया था कि मृत्यु पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जा सकती है ?

परिणामत यह निश्चित है कि सच्ची लगन के साथ जो व्यक्ति जिसकी खोज मे लग जाया करता है वह अन्ततोगत्वा तदनुकूल प्राप्ति अवश्य कर लिया करता है। अतएव यह कहना नितान्त सत्य ही है कि ऋषि दयानन्द—

"जिन खोजा तिन पाइयाँ"

इस कथन के अक्षरश प्रतीक थे।

इस भाँति उन्होने अपने लक्ष्य की पूर्ति तो की ही, साथ ही हम सभी के लिये एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत कर दिया कि यदि हम उसका आश्रय प्राप्त कर तदनुकूल अपना आचरण करे तो यह निश्चित है कि हम भी मानव जीवन के लक्ष्य की पूर्ति अवश्य कर सकते है।

यही नही कि उन्होने इस प्रकार हम सभी का केवल मार्ग-दर्शन ही किया हो, उन्होने तो अपनी अनुभूतियो को तथा अपने अर्जित वास्तविक ज्ञान को अपने द्वारा रचित ग्रन्थो के माध्यम से हम सभी के भावी कल्याण के लिये प्रदान किया कि जिसका अनुसरण कर हम अपने जीवन का कल्याण तो कर ही सकते हैं, साथ ही अपनी सगति मे आने वाले पुरुषो का भी कल्याण कर सकते हैं।

अतएव हम सभी आर्य पुरुषो का कर्त्तव्य है कि ऐसे मार्ग-दर्शक के बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण कर अपना भी कल्याण करे और दूसरो का भी। जैसा कि ऋषिवर द्वारा निर्देशित प्रार्थना मन्त्रो के प्रथम मन्त्र मे परमप्रभु से याचना भी की गई है —

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्र तन्न आसुव।।

अर्थात् हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखो के दाता परमेश्वर आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दु खो को दूर कर दीजिये। और जो कल्याण है वह हमको प्राप्त कराइये।



आर्यसमाजी विद्वानों, शिक्षाशास्त्रियों तथा राजनेताओं के विचारार्थ

महर्षि दयानन्द की कुछ मान्यताएं

लक्ष्मीदत्त दीक्षित

हम इस देश के वासी हैं

देश के प्रमुख राजनीतिज्ञ श्री फ्रैंक ऐन्थोनी ने एक वक्तव्य मे कहा था— "Sanskrit is a foreign language because is wat brought to India by foreign invaders, the Aryans" (Indian Express dated 5.9 77) वास्तव मे आधुनिक परम्परागत इतिहास के आधार पर हम उतने ही विदेशी हैं जितने अंग्रेज या मुगल। गाव की छोटी सी पाठशाला से लेकर बडी से बडी यूनिवर्सिटी तक मे अभी तक यही पढाया जाता है कि "पहले इस देश मे और लोग बसते थे। कुछ समय पहले आर्यों ने इस देश पर आक्रमण किया और इस देश के आदिवासियो को जीत, उन्हे पहाडो और जगलो मे खदेड कर इस देश पर अधिकार कर लिया और शासन करने लगे।" ये आर्य लोग कब, कहा से और क्यो आये तथा पहले यहा कौन बसते थे—इसमे मतभेद हो सकता है किन्तु वे बाहर से आये और उनसे पहले यहा कोई और लोग बसते थे—इस विषय मे प्राय सभी एकमत हैं। लोकमान्य तिलक की कोटि के बडे-बडे देशभक्त और देश की स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटिश सरकार से लोहा लेने वाले बडे-बडे स्वातन्त्र्य वीर भी ऐसा ही मानते रहे और आज भी मानते हैं। परन्तु विचार पूर्वक देखा जाये तो ऐसा मानने पर हमारे लिये भी 'भारत छोडो' उतना ही आवश्यक हो जाता है जितना अंग्रेजो के लिए। यदि २०० वर्ष पूर्व देश पर अधिकार कर शासन करने वाले अंग्रेज विदेशी थे और १००० वर्ष पूर्व देश पर आक्रमण कर अधिकार करने वाले मुसलमान

विदेशी थे तो ४००० वर्ष पूर्व आक्रान्ता के रूप मे यहा आकर अधिकार जमाने और यहा के मूल निवासियो को बीहड जगलो और पहाडो मे भाग कर जान बचाने के लिए मजबूर करने वाले हम लोग भी विदेशी और अत्याचारी क्यो नही ? देश के स्वतन्त्र होने का अर्थ है कि शासन की बागडोर उन लोगो के हाथ मे आये जो मूलत उस देश के रहने वाले है, न कि उन लोगो के हाथ मे जो कुछ समय पूर्व यहा पर आकर बलात् बस गये। इस आधार पर भारतवर्ष उस दिन स्वतन्त्र हुआ माना जायेगा जब देश का शासन सूत्र आदिवासी' कहलाने वाले विशुद्ध भीलो, सन्थालों और अन्य इस प्रकार के लोगो के हाथ मे आयेगा। १५ अगस्त १९४७ को तो कब्जा बहाल हुआ उन लोगो का जिनके हाथ से कुछ समय पहले छिन गया था। इस मान्यता के आधार पर इस प्रकार की मागे करने वाले वर्ग देश मे सिर उठा रहे हैं और श्री फ्रैंक ऐन्थोनी की भाति हमारी वर्तमान सस्कृति, सभ्यता, भाषा और साहित्य को विदेशी बताकर विघटन के बीजो की क्यारियो मे खाद-पानी दे रहे है। इतिहास की इस भयकर भूल की ओर सबसे पहले स्वामी दयानन्द का ध्यान गया और उन्होंने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश मे घोषणा की—"इस (आर्यावर्त्त) से पूर्व इस देश का कोई भी नाम न था और न कोई आर्यों के पूर्व इस देश मे बसते थे। आर्य लोग सृष्टि के आदि मे कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सीधे इसी देश मे आकर बसे थे। किसी सस्कृत ग्रन्थ या इतिहास मे नही लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहा के जंगलियो से लडकर, विजय पाके, उन्हे निकाल कर इस देश के राजा बन बैठे। पुन विदेशियो का लेख माननीय कैसे हो सकता है।"

आर्य समाजी कहाने वाले विद्वानो, शिक्षाशास्त्रियो तथा राजनीतिज्ञो का कर्त्तव्य है कि अपने-अपने क्षेत्र मे ऋषि की इस मान्यता का प्रचार एव प्रसार करने के लिये आवश्यक साधनोपायो को अपनाये। राजनेताओ को चाहिये कि 'आदिवासी' शब्द का चलन राजकीय स्तर पर बन्द कराये जिससे देश के सभी लोग अपने को समान रूप से इस देश का समझे और सभी इस देश को समान रूप से अपना समझे। इतिहास की इस भूल का शीघ्रातिशीघ्र सशोधन होना अभीष्ट है।

राष्ट्रीय एकता का आधार

देश के स्वतन्त्र होने से पहले, परिस्थिति की विषमता के कारण किंकर्तव्य-विमूढ होकर लोग एक ही सास मे दो बाते कहते थे—हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना अग्रेज नही जा सकते और अग्रेजो के रहते एकता नही हो सकती। वास्तव मे ये दोनों ही बातें गलत थी। पहला नारा गाधी जी का था जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति मे बडी भारी बाधा बन कर खडा हो गया। इस नारे की विभिन्न वर्गो मे भिन्न-भिन्न

प्रतिक्रिया हुई। ७५ प्रतिशत हिन्दुओ मे हीन भावना जगी कि हम इतनी बडी सख्या मे होते हुए भी कुछ नही कर सकते। २५ प्रतिशत मुसलमानो मे अभिमान जागा कि हमारे बिना इस देश मे कुछ नही हो सकता। उधर अग्रेजो को यहाँ बने रहने का आधार मिल गया। सुरसा के मुह की तरह मुसलमानो की मागें बढती गई। गाधी जी उन्हे पूरा करने के वायदे करते गये और अग्रेज उन्हे सचमुच पूरा करते गये। आखिर एक दिन आया जब अंग्रेजो ने कहा - "हम तुम्हे स्वतन्त्रता देने के लिए तैयार है किन्तु इस शर्त पर कि तुम हिन्दू मुसलिम एकता को तिलाजलि दे दो।" हमने उनकी बात मान ली। अग्रेज चले गये—हिन्दू और मुसलमान सदा के लिए एक दूसरे से दूर हो गये—गाधी जी देखते रह गये।

तर्कशास्त्र के अनुसार 'कारणाऽभावात्कार्माभाव'—कारण के न रहने पर कार्य नही रहता। यदि अग्रेज एकता मे बाधक होते तो उनके जाते ही देश मे एकता हो जानी चाहिये थी। किन्तु वैसा नही हुआ। एकता की समस्या आज पहले से कही अधिक भीषण रूप मे उपस्थित है। पहले केवल हिन्दू-मुस्लिम झगडा था। आज वह हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई का रूप धारण कर चुका है। कितने ही नये मोर्चे खुल गये है—भाषा, प्रदेश, बिरादरी, नित नये राजनैतिक दल, धार्मिक सम्प्रदाय, अवतारो की भीड, व्यक्तिवाद, युवा मोर्चे, श्रमिको और छात्रो के भिन्न-भिन्न सगठन, हर पेशे वालो के आन्दोलन आदि के नाम पर देश मे अराजकता की सी स्थिति है।

वास्तव मे पारस्परिक फूट विदेशी राज्य का कारण होती है न कि कार्य। स्वामी दयानन्द के मत मे "जब भाई-भाई आपस मे लडते है तभी तीसरा विदेशी आकर पच बन बैठता है। विदेशियो का आर्यावर्त्त मे राज्य होने का कारण आपस की फूट है।" (सत्यार्थ प्रकाश) स्वामी जी विभिन्न वर्गों मे एकता की आवश्यकता को पूरी तरह अनुभव करते थे। सर सैयद अहमद खा आदि को बुलाकर भारत के इतिहास मे सबसे पहला एकता सम्मेलन करने का श्रेय महर्षि दयानन्द को ही है। यह सम्मेलन सफल न हो सका। सम्मेलन समझौते का आधार बन सकते है, एकता का नही। समझौतो से तत्कालीन समस्या का हल भले ही हो जाये किन्तु वह व्यापक नही हो सकता। उसका प्रभाव तात्कालिक हो सकता है किन्तु उसमे स्थायित्व सभव नही। ऐसे उपायो से रोग दब सकता है किन्तु नष्ट नही हो सकता। इतना ही नही कालान्तर मे वह और भी उग्र रूप धारण करके फूट पडता है। आज देश मे यही हो रहा है। आये दिन आयोगो की नियुक्ति कर कर के समस्याओं के समाधान खोजे जा रहे हैं। परिणाम स्पष्ट है—*'मर्ज बढ़ता गया ज्यो-ज्यो दवा की।'*

एक दिन श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने ऋषि से पूछा—"भारत का पूर्ण हित कब होगा ? यहा जातीय उन्नति कब होगी ?" ऋषि ने उत्तर दिया—"एक धर्म, एक भाषा, के बिना भारत का पूर्णहित होना दुष्कर है। जहा भाषा, भाव और भावना मे एकता आ जाये वहा सागर मे नदियो की भाति, सारे सुख एक-एक करके प्रवेश करने लगते है।" सत्यार्थ प्रकाश के आठवे समुल्लास मे स्वामी जी ने अपनी स्पष्ट सम्मति दे दी है—"जब तक सर्व भूगोल मे एक मत था, उसी मे सबकी निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख-दु ख हानि-लाभ आपस मे समान समझते थे तभी तक भूगोल मे सुख था। अब बहुत से मत होने से बहुत सा विरोध बढ गया है। परमात्मा सबके मन मे सत्य का ऐसा अकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र प्रलय को प्राप्त हो। इसमे सब विद्वान् लोग विचार कर विरोध भाव को छोडे। परन्तु भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का छूटना अति दुष्कर है। बिना उसके छूटे पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"

जिन्हे धर्म से राष्ट्र अधिक प्यारा है उनसे मुझे कुछ नही कहना। परन्तु जिन्हे धर्म और राष्ट्र प्यारा है और जिन्हे स्वामी दयानन्द की मान्यताओ की उपयोगिता मे विश्वास है उन्ही आर्य समाजी कहाने वाले राजनेताओ तथा शिक्षा शास्त्रियो से कहना है कि विचारों की भिन्नता रहते एकता सम्भव नही। विरोध तो मानसिक रोग है। मानसिक रोगो को शान्त करने मे बाह्योपचारो से सहायता भले ही मिल जाये वे उन्हे नष्ट नही कर सकते। उनसे पथ्य का काम लिया जा सकता है, औषधि का नही। लोगो के अज्ञान-अविद्या का लाभ उठाकर नये-नये सम्प्रदायो एव मतमतान्तरो के प्रचार तथा प्रसार को रोकने के लिए आवश्यक कानून बनवाना राजनेताओ का काम है। सारे देश मे सर्वथा एक ही शिक्षा पद्धति, एक ही शिक्षा का माध्यम हो और सारे देश मे व्यवहार की एक ही भाषा हो, क्षेत्रीय भाषाये केवल पुस्तकालयो तक सीमित रहे और देश मे सघात्मक के स्थान पर एकात्मक शासन पद्धति लागू हो—राष्ट्र की एकता के लिये 'नान्य पन्था विद्यते' और कोई उपाय नही है। ईश्वर की कल्याणी वाणी वेद के एकता सूक्त के अनुसार जब तक "समानं मन, सवोमनाषि जानताम्, समानमस्तु वो मन, समानो मन्त्र, समिति समानी और समानी व आकूति" हमारे खानपान, रहन-सहन बोलचाल, रस्म रिवाज, पढाई-लिखाई कायदे कानून आदि मे अधिक से अधिक समानता नही

होगी तब तक व्यापक तथा स्थायी एकता नही होगी। सरकारी कागजो मे कही भी किसी प्रकार की जन्मगत जाति का उल्लेख नही होना चाहिये। 'अनुसूचित जाति' आदि शब्दो का व्यवहार तुरन्त बन्द होना चाहिये। नौकरियो आदि मे किसी के लिये कोई स्थान सुरक्षित नही होने चाहिये। मात्र योग्यता के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र मे सबके साथ समान व्यवहार होना चाहिये। मिथ्या मार्ग का अवलम्बन कर कितना ही पुरुषार्थ क्यो न किया जाये कभी फलीभूत नही होगा। आर्य समाजी व्यक्तियो, सगठनो तथा सस्थाओ को लीक से हट कर चलना चाहिये। उनके दृष्टि-कोण मे सर्वत्र विलक्षणता दीखनी चाहिये।



इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृड्य।
त्वामवस्युराचके ॥

ऋ० १।२५।१९

हे वरणीय परमेश्वर! मेरे इस वचन को सुन और आज ही (बिना विलब के) मुझे सुखी कर। मैं अपनी रक्षा चाहता हुआ तुझसे प्रार्थना करता हू।

बोधोत्सव आया है, जागोगे ?

प्रेमचन्द्र श्रीधर

मिथो विघ्नाना उपयन्तु मृत्युम् ।
—अथर्ववेद ६।३२।३

परस्पर लडने वाले मृत्यु का ग्रास बनते है, नष्ट और भ्रष्ट हो जाते हैं ।

महर्षि दयानन्द के ही शब्दो मे "आपस की फूट से कौरव-पाण्डव और यादवो का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है, न जाने यह भयकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दु ख सागर मे डुबा मारेगा ? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग मे आर्य लोग अब तक भी चलकर दु ख बढा रहे हैं । परमेश्वर कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यो मे से नष्ट हो जाए ।

—स्थापना शताब्दी प्रकाशन पृष्ठ २६६, सत्यार्थ प्रकाश, दशम समुल्लास ।

आर्य बन्धुओ फूट को महर्षि ने राजरोग की सज्ञा दी है । कितने बोधोत्सव आए और चले गए । मूलशकर तो शिवरात्रि के दिन बोध प्राप्त कर महर्षि दयानन्द बन गए । दया के सागर दयानन्द स्वामी ने अपने हत्यारे को भी ५०० रु० देकर भाग जाने को कहा । स्वय विष पीकर हमे अमृत पिला गए । आज फिर बोधोत्सव हमे महर्षि के वचनो का स्मरण कराने आया है । आज का दिन आत्मनिरीक्षण का दिन है । क्या हम ऋषि के अनुयायी होने का दम्भ करते रहेगे या सच्चे सैनिक बनकर दिखाएगे भी ।

अभी आर्य जगत के एक अ क मे भाई गिरीश जी खोसला ने कितने मार्मिक शब्दो मे आर्य समाज मे फैली फूट की ओर हमारा ध्यान दिलाया । अपनी स्पष्ट वादिता के लिए वे साधुवाद और बधाई के पात्र है । पिछले कुछ सप्ताहो मे हमने दिल्ली की दिवारों को पोस्टरों से जड दिया और अपने को आर्य समाज का सच्चा सेवक प्रमाणित करने मे कोई कसर नही छोडी । उन पोस्टरो को दिवारो पर लगा

देख, सिर शर्म से झुक जाता था। विश्वास नही आता था कि अपने को आर्य समाजी और आर्य नेता व अग्रणी कहने व मानने वाले लोग वास्तव मे ऋषि के अनुयायी हैं भी या नही।

महर्षि ने जिस फूट को राज रोग की सज्ञा दी है हम उसके शिकार है। आज आर्यसमाजो मे उपस्थिति प्राय नगण्य रहती है। विरली आर्य समाजे होगी जहा दो दलो मे आर्य बन्धु विभक्त होकर पदो के लिए लालायित अवस्था मे आपसी फूट का शिकार नही है। इस प्रकार वेद प्रचार का कार्य न करके हम अपने आरोपो प्रत्यारोपो का उत्तर देने मे अधिक व्यस्त है। यह अवस्था शोचनीय है। इस प्रकार महर्षि के स्वप्नो को साकार करने की अपेक्षा हम स्वय वेद प्रचार के कार्य मे बाधा बने हुए है। कितना अच्छा हो यदि इस बोधोत्सव पर हमे इतना ही बोध हो जाए कि हम गलत मार्ग पर जा रहे हैं, इससे आर्य समाज और वेद प्रचार का कार्य अवरुद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त आर्य जगत के वेद प्रचारको, सन्यासियो और वानप्रस्थियो को भी अपने अन्दर झाकने की आवश्यकता है। मुख्य ध्येय क्या है? इस पर विचार करने की आवश्यकता है। आर्य समाजे भी इनको यथायोग्य सम्मान देकर वेद प्रचार के लिए प्रोत्साहित करे।

आवश्यकता है समर्पण की भावना की। जब तक इसका अभाव रहेगा, सफलता प्राप्त नही होगी।

आर्य समाजो मे पदो पर आसीन सब बडी आयु के आर्य बन्धुओ को अपना कार्य भार स्वेच्छा से युवको को सम्भाल देना चाहिए। केवल युवको का मार्ग दर्शन स्नेह और साधुवाद देकर करे। उनके मन मे आर्य समाज के प्रति निष्ठा जागृत करने का सतत प्रयत्न करे। हा, यदि आवश्यक समझे तो प्रधान और उपप्रधान के पद पर बने रहे और अपने अनुभव से युवको को आर्य जगत के कार्य का प्रशिक्षण दें। इस प्रकार युवको को आर्य समाज की ओर आकृष्ट किया जा सकता है।

आर्य युवको के वार्षिक शिविर लगाने का क्रम प्रारम्भ किया जाए। प्रत्येक राज्य मे अलग-अलग और फिर पूरे देश के स्तर पर। इससे युवको मे जागरण, सगठन और सहयोग बढेगा। इस प्रकार उनमे उत्साह पैदा कर नया जीवन फूका जा सकता है। परन्तु शिविरो का कार्यक्रम रुचिकर एवं व्यवस्थित हो। इस प्रकार हम आर्य समाज के कार्य मे अपना सहयोग प्रदान करे।

कुछ आर्य बन्धु आर्य समाज और महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित प्रकाशन निकाल कर सेवा कर रहे हैं, यह अच्छी बात है। उनके भिन्न-भिन्न प्रकाशन सराहनीय हैं। परन्तु अधिकतर बन्धु अपना उद्देश्य प्रचार न मानकर केवल धन इकट्ठा

करने की चिन्ता मे मग्न है । सस्ते से सस्ता आर्य साहित्य उपलब्ध करने की आवश्यकता है । सब सुविधापूर्वक खरीद सके । इसके लिए गीता प्रैस की भाति सार्वदेशिक सभा ही सस्ता साहित्य बडी मात्रा मे उपलब्ध कराने का प्रयत्न करे ।

कुछ रचनात्मक कार्य करने की आवश्यकता है । अब वाद-विवाद, आरोप-प्रत्यारोप, पदो की प्राप्ति की लालसा मे अधिक भटकने का समय नही रहा । केवल अपनी स्थिति को मत देखते रहिए । विनय पूर्वक आप सब बन्धुओ से जो आज की स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं, प्रार्थना है कि दया के सागर महर्षि दयानन्द और आर्य समाज पर अब दया करे ।



त्वा शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुपब्रुवे शतक्रतो ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥

ऋ० ८।८८(९८)१२

हे बलशालिन् ! हे अत्यन्त प्रार्थनीय ! हे अनत पराक्रमशील प्रभो ! हम तुझ बल से प्यार करने वाले से प्रार्थना करते हैं कि हमे उत्तम बल दे ।

नवयुग के प्रवर्तक महर्षि दयानंद

देशभक्त कुंवर चांदकरण शारदा अजमेर

धर्म के नाम से समाज मे से अधकार के साम्राज्य को नष्ट करने वाले, रूढि परम्परा तथा जाति पाँति के बन्धन के नाम पर सामाजिक अत्याचारो के भयानक अग्निकुण्ड से हाथ पकडकर दुखी मनुष्य समाज को बाहर निकालने वाले, विधवाओ का क्रन्दन, मातृजाति की दासता, बालवृद्ध बेजोड़ विवाहो के भयकर अत्याचारो से बचाने वाले महर्षि के प्रति कौनसा हृदय कृतज्ञता से गद्गद् नही होता, समाज का सम्पूर्ण विकास कर धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गुलामी की जजीरों को काटने वाले महर्षि की जय कौन नही चाहता और आर्यसमाज का विजय सन्देश घर-घर पहुचाकर ससार मे सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा किस अभागे को नही है । महर्षि दयानन्द ने अनन्त ज्ञान के भण्डार वेदो का नवीन प्रकार से उपदेश कर सारे ससार को जगा दिया है । उन्होंने मधुरातिमधुर शान्ति सुधासागर के अगाध अन्त स्थल मे निमग्न होकर वैदिक मन्त्रो की अपूर्व व्याख्या द्वारा वह विश्व ज्ञान प्रदायिनि शक्ति प्रदान की कि सारा संसार आज वेदो के गुण गा रहा है ।

हर्ष है कि उनकी स्थापित की हुई आर्यसमाज का गौरव बढ रहा है, आर्य-समाज की सुखमय गोद मे बैठकर लोग अपने को धन्य समझ रहे है । इसी वास्ते आज के निर्वाणोत्सव का दृश्य बडा मनोहर है । महर्षि की कृपा से वेदो के मधुर गान सुनने के लिये ससार के सभी प्राणी दौड-दौडकर आर्यसमाज की शरण मे आ रहे हैं । यद्यपि कुछ लोग अज्ञान के वश आर्यसमाज का विरोध करते हैं और कुछ लोग श्रद्धा और साहसी की कमी के कारण केवल तटस्थ है । परन्तु बुद्धि और तर्क से काम लेने वाले सारे ससार के विद्वान् आर्यसमाज का लोहा मानते हैं । धर्मपरायण आर्य पुरुषो के हृदयों मे वह जोश उमड रहा है कि वे महर्षि के उपदेशानुसार बराबर रणक्षेत्र मे कूद कर अपने प्राणो की आहुति दे रहे हैं ।

दयामयि ज्ञानप्रदायिनि दुष्टदलनकारिणी आर्यसमाज का आह्वान सुनकर नवयुवक रणक्षेत्र मे कूद रहे हैं और निर्भय और निश्चिन्त होकर सारे ससार को सुखी बनाने के प्रयत्नो मे लगे हैं । भारत मे ही नही वरन अखिल विश्व मे मतवाले युवको के बलिदान की धूम है । चारो ओर युवक समुदाय पुरानी रीति नीति की जजीरों को तोडकर ब्रह्मचर्य के आधार पर सदाचारी बनकर ससार को सुखी बनाने के प्रयत्न मे लग रहे है । चारो ओर नवीन भाव, नवीन प्रयास, नवीन कार्यक्रम की धूम है । सारा ससार नवीन विचारधारा से ओतप्रोत हो रहा है । आर्य युवको ने सब ओर हलचल और सनसनी पैदा कर रक्खी है । यह सब उस महर्षि की कृपा का फल है । महर्षि के वाक्य-वाक्य मे तेज, ओज और बिजली भरी हुई थी इसी वास्ते उनके प्रचण्ड उपदेशो को आज ४५ वर्ष बाद पढकर भी वृद्धो मे नवयुवकसा उत्साह आ जाता है ।

नवीन भारत के तरुण हृदय मे आर्यसमाज द्वारा ही क्राँतिकारी भावो का प्रचार हुआ है । राष्ट्रोद्धार के पुनीत यज्ञ मे आर्यसमाज ने जो रचनात्मक कार्य सगठित रूप से किया है । वह भारत मे किसी ने नही किया । जनता का अज्ञान हटाने वाला प्लेग महामारी, अकाल, जलविप्लव आदि भयकर अवसरो पर मनुष्य समाज को सहायता पहुचाने वाला, पर्दा प्रथा को हटाने वाला और रोटी के सवाल को हल करने वाला आर्यसमाज ही है । भारत-माता की भयकर दरिद्रता के निवारण के उपाय आर्यसमाज ही सोचता रहता है । ब्रह्मचर्य विहीन रूढियो की गुलामी मे जकडे पुरुष कदापि व्यापारिक, औद्योगिक, राजनैतिक किसी प्रकार की उन्नतियाँ नही कर सकते । आर्यसमाज, बालविवाहो का निषेध कर ब्रह्मचर्य का प्रचार कर लोगो को अधिक बलिष्ठ बनाता है । आर्यसमाज के पुराने सेवक रायसाहब हरबिलास जी शारदा ने महर्षि के उपदेशानुसार बालविवाह निषेधक शारदा बिल लाट साहब की कौन्सिल से पास कराकर उसे कानून बनवाया जिससे भारतवासी बलवान् बनकर अत्याचारियों को नाश करते हुए अपनी रोजी भली प्रकार कमाकर अपना जीवन सुख से बिता सके । आर्यपुरुष विरोध की कभी परवाह नही करते ।

ससार तो रणभूमि है उसमे तो जूझने के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये यहा निराशा को स्थान नही । महर्षि दयानन्द ने जहा बताया कि विदेशी शासन से तुम मुक्त होओ वहा यह भी बताया कि तुम सामाजिक बन्धनो से भी मुक्त होवो वे सर्वतोन्मुखी उन्नति चाहते थे । परमात्मा करे कि आर्यसमाज की उत्तरोत्तर उन्नति हो । हम बाहुबल से स्वराज्य प्राप्त करें । हमारा धार्मिक जोश बढे, आर्यपुरुष कष्ट-पीडितों दीनहीनों की सदा सहायता करते रहे और ससार के सब मतमतान्तरो का नाश होकर एक एकता के सूत्र मे बधकर पवित्र वैदिक धर्म की शरण मे आवे और नवयुग के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की आज्ञाओ का पालन करे । योरुप और अमेरिका

आज पूंजीवाद मजदूर दल और बोल्शेविज्म से दुखी है। जहाँ हम भूखे भारत का रोटी का सवाल हल करना चाहते हैं। वहाँ हम अमेरिका योरुप की आरभिक उन्नति भी चाहते हैं। हमारे प्रचारक विदेशो मे जाकर फिर वही वेद और दर्शनों के सूक्ष्म विचार गीता की निष्काम भाव की पवित्र फिलासफी भक्तिभाव, सेवा सुश्रूषा और त्याग के भावो का प्रचार करे। जिनके लिये आज योरुप और अमेरिका लालायित है। अत आर्य पुरुषो ! प्रण करो कि हम आज की पवित्र दीपावलि के दिन महर्षि दयानन्द का कार्यक्रम कार्यरूप मे परिणत करने का प्रयत्न करेंगे और जो यज्ञ उन्होने रचा था उसमे अपनी हवि देकर उस यज्ञ की सुगन्धि से सारे ससार को सुगन्धित कर देंगे। बोलो महर्षि दयानद की जय।



अग्ने त्व पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः॥
ऋ० १।१८९।२

हे सबके नेता अग्ने ! हमे अपने नये नये कल्याणकारक आशीर्वादो के द्वारा सब अत्यत दुसह कष्टो से पार कर। हमारे नगर बडे हों, हमारी भूमि उपजाऊ हो, हमारे पुत्र पौत्रो मे सुख और शाति रहे।

तमसो मा ज्योतिर्गमय

सत्यदेव शास्त्री

उज्जैन नगरी मे कुमारिल भट्ट जा रहे थे उज्जैन नरेश सुधन्वा की पुत्री अपने प्रासाद की छत पर घूम रही थी तथा आर्त स्वर मे पुकार रही थी 'किं करोमि क्व गच्छामि को वेदानुद्धारष्यति ।' बाला के आलाप मे विलाप था क्योकि उसका पिता जैन धर्मावलम्बी होकर नास्तिक बन गया था।

वेदना भरी ध्वनि को सुनकर कुमारिल मे नही रहा गया। वह बोल उठा "मा विभेषि वरारोहे, भट्टाचार्योऽस्ति भूतले।" उसने इस महान् जन का यथाशक्ति पालन किया। मरते समय वह स्वामी शकराचार्य से वेदोद्धार का वचन लेकर निश्चिन्त हो गए। पर शकर तो अद्वैतवाद के माया जाल मे उलझ गये।

इस अपूर्ण कार्य को पूर्ण करने हेतु गुरु विरजानन्द ने दयानन्द को तैयार किया। महर्षि दयानन्द जब वेदोद्धार के भीष्मव्रत के साथ कार्यक्षेत्र मे उतरे वह समय विषम परिस्थितियो से घिरा हुआ था। एक ओर स्वामी शङ्कराचार्य, मध्वाचार्य और रामानुज के अनुयायी विद्वान् थे जो शूद्रो और स्त्रियो के सम्मुख वेद-मन्त्रोच्चारण नही करते थे। ऐसा करने से वे पाप के भागी बनते थे। स्वामी शङ्कराचार्य ने यह व्यवस्था दे रखी थी "अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपु जतुभ्या श्रोत्रपरिपूरण मिति। वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद।" अर्थात् यदि शूद्र वेद के शब्द सुन ले तो उसके कान को सीसे से और लाख से भर देना चाहिए। वेद के उच्चारण करने पर उसकी जीभ काट डालनी चाहिए और वेद के अनुसार आचरण करे तो शरीर के टुकडे-टुकड़े कर डालने चाहिए।

बृहदारण्य कोपनिषद् मे "अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत।" इस वाक्य की व्याख्या करते हुए स्वामी शङ्कराचार्य जी लिखते हैं—"दुहितु पाण्डित्य गृहतन्त्रविषयमेव वेदेऽमधिकारात्।" अर्थात् कन्याओ के पाण्डित्य का प्रतिपादन गृहविषयक ही समझना चाहिए, क्योकि उनको वेद पढने का अधिकार नही।

दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वान् थे जो दिन-रात परिश्रम करके वेदमन्त्रो के अर्थ का अनर्थ करने पर तुले हुए थे। उनके सारे अथक श्रम का लक्ष्य था ईसाईयत

की वरीयता को सिद्ध करना। मैक्समूलर ने १८६८ मे भारतमंत्री ड्यूक आर्याचल को लिखा था "The ancient religion of India is doomed and if christianity does not step in, whose fault will it be ?"

पाश्चात्य विद्वानो मे सर्वाधिक धूम प्रो० मैक्समूलर की थी। १८६८ मे अपनी पत्नी के नाम पत्र मे उन्होने लिखा, "I hope I shall finish that work. This translation of the Vedas will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in the country."

ब्रिटिश राज्य होने के कारण भारतीय नवयुवको को एम. ए. तथा पी एच डी. परीक्षाओ मे इन्ही पाश्चात्य विद्वानो के ग्रन्थ पढाये जाते थे। फलत राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन आदि नेता भी इसी विचार धारा के प्रभाव मे बह गये। लोकमान्य तिलक भी अछूते न रहे। उन्होने भी वेदनिर्माण काल ८००० वर्ष पूर्व निश्चित किया जबकि सब हिन्दू वेद को अपौरुषेय मानते चलते आए हैं।

इन विपरीत परिस्थितियो मे महर्षि दयानन्द को कार्य प्रारम्भ करना था। कोई और होता तो निराश व हताश होकर बैठ जाता पर दयानन्द तो विरजानन्द का शिष्य था। दोनो वज्र समान कठोर थे। भीष्मव्रत धारण कर महर्षि मैदान मे उतरे और प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानो को ललकारा। वाणी और लेखनी को तीव्र गति दी। पौराणिको का गढ काशी था। वहा पहुचकर बार-बार विद्वानो को सचेत किया। जो सीधी तरह नही माने उनके लिए शास्त्रार्थ का आह्वान किया। काशी का गढ हिल जाने से सारे भारत मे ही मानो भूकम्प-सा आ गया। जहा भी लोग एकत्र होते, एक ही चर्चा का विषय था—'दयानन्द।' उसने शास्त्रार्थों की झडी लगा दी। पहले तो महर्षि के तर्कपूर्ण प्रवचनो का साम्मुख करने का साहस ही किसे होता और यदि कोई दुस्साहस करता भी तो बुरी तरह पिटता। चतुर्वेद ज्ञाता महर्षि ने भारतीय विद्वानो को तो पछाडा ही पर पाश्चात्य विद्वान् भी इस प्रचड प्रचार कार्य के भूचाल से कम्पित हुए बिना न रह सके।

भारत मे तो सर्वाधिक प्रभावित हुए पांडीचेरी के योगी श्री अरविन्द। उन्होने महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य का खुले दिल से स्वागत किया। उन्होने लिखा,

"There is nothing fantastic in Dayanand's idea that Veda contains truth of Science as well as truth of religion. Dayanand will be honoured on the first discoverer of the Right Clar. He has found the keys of the doors that time had closed and rent as under the seals of the imprisoned fountants."

महर्षि दयानन्द की 'ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका' को पढने के उपरात मैक्स-मूलर को भी बदलना पडा । अपने अतिम ग्रथ "The six systems of Philosophy" मे उसने स्वीकार किया "The conception of one being (God) had been formed, a being that was meant by such names as Indra, Agni, matarishur and Prajapati." इस प्रकार अपने पूर्व कथित हीनोथीइज्म का खडन कर उसने एकेश्वरवाद को मान लिया ।

रूस के विद्वान् बौलगर ने मैक्समूलर के वेदभाष्य की निंदा इन शब्दो मे की है—'What struck me in Maxmuller's translation was a lot of absurities, abscene passages and a lot of what is not lucid "

फ्रास के विद्वान् जैकोलियट लिखते है—"Astonoshing and it ! The Hindu revelation (Veda) of all revelations is the only one whose ideas are in perfect Zarmony with Modern Science is it proclaims slow and gradual formation of the world."

अमरीका की विदुषी महिला मिसेज ह्वीलर विल्लौक्स लिखती है—

"We have all heard and read about the ancient religion of India. It is the land of the great Vedas the most remarkable works containing not only religions ideas for a perfect life but also facts which all the science has since proved true, Electricity, Radium, Electrons, Airships all seem to be known to the seers who found the Vedas."

इस प्रकार हम देखते है कि महर्षि दयानद ने अविद्या के तमक्ष् के घटाटोप को छिन्न-भिन्न कर वेद के सच्चे ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया । वैसे तो उनके जीवन का कार्यकलाप सर्वतोमुखी था पर वेद प्रचार उनके जीवन का परम लक्ष्य था ।

दु ख का विषय तो यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के ३० वर्ष पश्चात् भी उन्ही पाश्चात्य विद्वानो के ग्रन्थ विश्वविद्यालयो मे पढाये जा रहे है । जिस सायणाचार्य को वेदो मे कर्मकाण्ड के अतिरिक्त कुछ उपलब्ध नही हुआ । उसके ग्रथो को प्रामाणिक माना जाता है और ऋषि दयानन्द के ग्रन्थो को सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त नही हुई । चाहिए तो यह कि अन्य लेखको के भाष्यो के साथ महर्षि का भाष्य भी पढाया जाय । पढने वाले स्वय ही निर्णय कर लेगे सत्यासत्य का । यदि आर्य समाज के नेता थोथी राजनीति के पचडो से पृथक् रहकर सरकार से मिलकर महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयो मे ऋषि-भाष्य को स्थान दिला दे तो एक बहुत बडी कमी पूरी हो जायेगी । यह एक महती बौद्धिक क्रान्ति होगी ।

हमें बोध कब होगा ?

कन्हैया लाल पाराशर

हिन्दुओ मे प्रतिवर्ष फाल्गुनी अमावस्या को महाशिवरात्रि का महापर्व बडी धूम-धाम मे मनाये जाने की सनातन प्रथा चली आ रही है। महर्षि दयानद के जीवन की एक चमत्कारी घटना को लेकर आर्य जगत मे महाशिवरात्रि को 'ऋषिबोधोत्सव' के रूप मे मनाया जाता है। यही वह पुण्यमयी तिथि है जिस दिन टकारा के शिव मंदिर मे महादेव-पूजन के निमित्त जगराता (रात्रि जागरण) चल रहा था कि सहसा एक चूहे के द्वारा शिव की मूर्ति पर चढकर पूजा के लिए अर्पित तण्डुल उठा-उठाकर खाये जाने पर, बालक मूलशकर (बाद मे ऋषि दयानद) को अन्त प्रेरणा हुई। उसके मन मे विचार उठा कि जो चूहे से भी अपनी रक्षा नही कर पाता वह पत्थर का शिव सच्चा शिव, नही हो सकता। ....और, उसी दिन से 'सच्चे शिव' की खोज मे वह शिवभक्त बालक निकल पडा। बडे-बडे महापुरुषो के जीवन मे छोटी-छोटी घटनाएँ भी महत्त्वपूर्ण बनती रही हैं।

उपर्युक्त एक छोटी सी घटना से प्रेरणा पाकर ऋषि दयानद जी ने न केवल स्वय ही सच्चे शिव की खोज की अपितु, हमे भी वह मार्ग निर्दिष्ट किया। उनके सत्यार्थ प्रकाश की एक-एक पंक्ति उसी रहस्य के उद्घाटन के लिए लिखी हुई प्रतीत होती है। सच्चे शिव की खोज के लिए पहले सत्य को जीवन मे सर्वोपरि स्थान देना होगा। उनके ग्रथ 'सत्यार्थप्रकाश' इस शीर्षक का शब्दार्थ ही बताता है कि सत्य से ही प्रत्येक 'अर्थ' (वस्तु) का प्रकाश (वास्तविक ज्ञान) हो सकता है। असत्य के अन्धकार से आच्छन्न कोई भी पदार्थ अन्यथा ही प्रतीत होगा। इसी सत्य के परि-पालन हेतु महर्षि ने घर-परिवार के नेह-बन्धन त्यागे, जीवन मे प्राप्त होने वाले सभी प्रलोभनो को ठुकराया।

महर्षि के बाद की पीढी मे स्वा० श्रद्धानद जी, महात्मा हसराज जी, श्री लेखराम, गुरुदत्त विद्यार्थी, भाई परमानद, पजाब केसरी लाला लाजपतराय जी आदि मे भी ऋषि की वही ज्योति देदीप्यमान रही। किंतु, आज दिनों दिन उस ज्योति का ह्रास होता दीख पड रहा है। यह बडी ही चिंताजनक स्थिति है। आर्य सस्थाएं भी आज परस्पर दलबदी का अखाडा बनकर रह गई हैं। गुरदत्त-भवन, जालन्धर की पीछे हुई तालाबंदी, गुरुकुल कागडी का चल रहा विवाद, यह सब पढ-सुनकर आर्य समाज के भविष्य की चिंता भी स्वाभाविक ही है। इधर बाहर की शक्तिया भी इतनी प्रबल होती जा रही है कि आर्य समाज मे उनको टक्कर लेने की शक्ति ही मानो नही रही है। श्री प्रकाशवीर शास्त्री जी के अस्वाभाविक निधन पर खेद व्यक्त करने के अतिरिक्त और क्या हुआ ? विघटन-वादी शक्तिया अब भी देश मे तोडफोड और हिंसात्मक कार्यवाहिया करने पर उतारू है। अकेली सरकार कहाँ तक उनसे निबटेगी। आर्य समाज को ऐसी शक्तियो के प्रतिरोध के निमित्त सरकार के कन्धे मे कन्धा मिलाकर कुछ पग उठाने चाहिए। सरकार की ओर से ही निष्क्रियता दिखाई पडे तो उसे जगाना चाहिए। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से तो कुछ काम न चलेगा।

यह एक तीखा करारा व्यग्य ही सही, किंतु है सत्य कि आर्य समाजियो मे अब पहले जैसी आत्मत्याग और बलिदान की भावना मर रही है और उसकी जगह ले रही है, स्वार्थ और लिप्सा की कुत्सित भावना। आर्य समाज के महान् कार्यों मे प्रगति के विरोध का एक बडा कारण यह भी है कि युवाशक्ति को आगे नही आने दिया जा रहा है। वयोवृद्ध आर्य नेताओ को यह समझना चाहिए उनके बाद आर्य समाज के कार्य को कौन आगे ले जाएगा ? युवको के आगे आने से ही आर्य समाज आगे बढेगा नही तो, समझ लीजिए कि उसकी बधिया अब बैठी कि तब बैठी।

दूसरी बात यह सोचनी है कि आर्य समाज ने पुराने जो कार्य अपने हाथ मे लिये थे वह तो सरकार ने बहुत कुछ स्वय ही सभाल लिए है। अब समयानुकूल नये कार्यक्रम बनाकर चलना चाहिए। पुराने कार्य भी तभी सम्भल पाए गे जबकि नये कार्यक्रम हाथ मे लिए जाए गे। नये कार्यक्रमो मे गरीबी और अमीरी के बीच की खाई को पाटने के लिए प्रयास होना चाहिए। इस देश मे गरीबी और अमीरी मे इतना धरती-आकाश का अन्तर है कि जिसके रहते हुए कोई भी अन्यथा समाज-सुधार हो सकना असम्भव है। समाज-सुधारो के लिए आर्थिक वैषम्य जितनी रुका-वट उत्पन्न करते हैं उतनी अन्य कोई बाधा नही।

'वर्तमान विकट परिस्थितियो मे 'ऋषि बोधोत्सव' के इस पर्व पर सोचना होगा कि हमे भी कभी बोध होगा अथवा इस महर्षि के बोध की कथा को कीर्त्तन

ही करते रहेंगे। यह तो सत्य है कि अब वैसी चूहे वाली घटना किसी आर्य समाजी के जीवन मे न आएगी क्योकि शिवरात्रि के दिन कोई भी आर्य समाजी पत्थर पूजने न जाएगा किंतु आर्य समाज को अपने भीतर आती जा रही पत्थर जैसी जडता तथा आर्य-भावनाओ रूपी तण्डुलराशि को हडप करने वाले घर के अन्दर तथा बाहर के चूहो से सतत सावधान हो जाना चाहिए।

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिता ।
(यजु. ६-२३)

अर्थात्, हम राष्ट्र के नेता सदा जागरूक रहे।
आज की परिस्थिति 'ऋषिबोधोत्सव' का यही सदेश है।



प्रियं मा कृणु देवेषु प्रिय राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥
अथर्व० १९।६२।१

हे भगवन ! मुझे विद्वानो का प्यारा बना, मुझे राजाओं (शासको, वीर पुरुषों) का प्यारा बना, मुझे सब देखने वालों (प्राणियो) का और शूद्रो का और वैश्यो (प्रजा) का प्यारा बना ॥

वैदिक काल की ओर प्रत्यावर्तन

भक्त राम पाराशर

आर्यसमाज ने पुराणवाद का उन्मूलन कर वैदिक आदर्शों की ओर प्रत्यावर्तन किया। वह वेद को पढना सब का अधिकार मानता है। भारतीय सस्कृति की मूल स्थिति का वर्णन करते हुए ऋषि दयानद ने कहा कि ईश्वर के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान वेदो मे है। वेद ही प्रमाण ग्रथ हैं। रोम्याँ रोला ने स्वामी दयानद को वेदो का प्रकाड विद्वान् माना है। स्वामी जी की वेद सम्बधी मान्यता ने एक वैचारिक क्राति को जन्म दिया। वे ही ऐसे सर्वप्रथम धार्मिक सुधारक थे, जिन्होने वेदो को समस्त ज्ञान-विज्ञान का आदि स्रोत माना। श्री अरविन्द के अनुसार स्वामी दयानद वेदो के "सत्य सूत्रो के प्रथम आविष्कर्ता के रूप मे सदा सम्मानित किये जायेगे।" विश्व धर्म-दर्शन के अनुसार वेदो के उद्धार और प्रचार का कार्य उनका अद्भुत हुआ। बडे-बड़े पाश्चात्य विद्वान् उनकी प्रतिभा पर मुग्ध थे। ·· "····'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' लिखकर उन्होंने वेदो को अपौरुषेय प्रमाणित किया। वैदिक तर्म की तुलना मे ससार के प्राय. समस्त धर्मों की समीक्षा की।

वेदो के नित्यत्व, अपौरुषेयत्व एव प्रमाणत्व के सम्बन्ध मे ऋषि दयानद के विचार वेदाती है। वेदात के विषय मे स्वामी जी की धारणा परपरा से हटकर है। वेदात के आधार ग्रथ उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र माने जाते है। वेदात से स्वामी जी का वेदो (मत्र भाग) द्वारा स्वीकृत अथवा प्रतिपादित सिद्धातो से है। ऋषि ने आचार्य शकर के सिद्धातो को, सहिताओ पर आधारित न होने के कारण, नवीन वेदात की कोटि मे परिगणित किया है। सहिताओ का आधार ग्रहण कर उन्होने त्रैतवाद की स्थापना की। वस्तुत. त्रैतवाद को ही वे वास्तविक वेदात मानते है।

महर्षि का स्वप्न था—"वैदिक युग की गौरव-गरिमा के अनुरूप भारत का पुनर्निर्माण।" इसी सपने को साकार रूप देने के लिए उन्होने आर्यसमाज की

स्थापना की थी और वेदो के पठन-पाठन को प्रत्येक आर्य का मुख्य धर्म उद्घोषित किया था। स्वामी जी के हृदय मे वेदो के प्रति अगाध श्रद्धा का रहस्य वही समझ सकते है जिन्होने पूर्ण आस्था से वेदो का अध्ययन-मनन किया है।

वैदिक-सस्कृति का वातावरण आनंद और उल्लास से युक्त था। उसमे भय, शोक, पश्चाताप आदि की छाया भी नही थी। वैदिक विचारधारा सयम की सीमाओ मे रहते हुए भी सासारिक जीवन को पूर्ण आनद से भोगने का प्रतिपादन करती थी। वैदिक आदर्श आध्यात्मिक आनद और भौतिक सुख को एक ही तराजू पर तोलते थे। भौतिक ऊर्जा और आध्यात्मिक अमृतत्व, दोनो का वैदिक सस्कृति मे एक ही सा महत्त्व था। वैदिक चिन्तन-परपरा मे गृहस्थ जीवन की महिमा सन्यासी जीवन से अधिक थी।

वेदो मे ज्ञान और कर्म दोनो मार्गों का संतुलित प्रतिपादन था। उपनिषदो मे आत्मज्ञान को विशेषता देकर आत्मा को जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त करने के उपायो पर बल दिया गया। उन्होने कहा कि भौतिक शरीर नश्वर है, आत्मा ही अमर है। अतएव शारीरिक सुखो की चिन्ता न करके केवल अविनाशी आत्मा का आनद ही उपादेय है। उपनिषदो की इस विचारधारा से ही कालातर मे भारतीय दर्शन मे निराशावाद की परपरा का प्रारभ हुआ। यही चिंतनक्रम बाद में जैन और बौद्ध धर्म का अग बनकर वैराग्य का प्रवर्तक बन गया। उपनिषदो के मनीषी अरण्य-वासी होने लगे और बाद मे भारत मे वैरागियो की बाढ-सी आ गयी। परिणामत वैदिक सस्कृति का क्रमश ह्रास होता गया।

स्वामी दयानद ने पुन वैदिक सस्कृति का स्वर निनाद कर सस्कृति के क्षेत्र मे नयी क्राति उत्पन्न कर दी। उन्होंने सहिताओ को तो प्रमाण माना, किन्तु उप-निषदो पर वही श्रद्धा नही प्रकट की। छ शास्त्रो और अठारह पुराणो को तो उन्होने एक ही झटके मे साफ कर दिया और राम-कृष्ण को अवतार मानने से इन्कार कर दिया। बुद्धिवाद की कसौटी पर चढे हुए हिन्दुत्व को इस निखार ने देश मे एक नये स्वाभिमान एव आत्मविश्वास को जन्म दिया। इसी के साथ उन्होने वेदो की ऋचाओ का आधार लेकर घोषणा की कि हिन्दू धर्म पौराणिक सस्कारों की धूल मे ढक गया है। भारतीय संस्कृति का सम्यक् स्वरूप वैदिक आदर्शों मे निहित है। भारत का एक ही धर्म है—'वैदिक धर्म' और भारत की एक ही सस्कृति है—'वैदिक सस्कृति।' स्वर्गीय श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दो मे—' दयानद की यह वाणी केवल सुधार की वाणी नही थी, अपितु जागृत हिन्दुत्व का समरनाद था।" उन्ही के शब्दो मे—"रणारूढ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता दयानद हुए वैसा और कोई नही हुआ। दयानद के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे,

किन्तु दयानद क्राति के वेग से आये और उन्होने निश्छल भाव से यह घोषणा कर दी कि हिन्दू धर्म ग्रथो मे केवल वेद ही मान्य है। शकराचार्य के बाद भारत मे कोई भी व्यक्ति ऐसा नही हुआ जो स्वामी जी से बडा सस्कृतज्ञ, उनसे बडा दार्शनिक, उनसे अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियो पर टूट पडने मे उनसे अधिक निर्भीक रहा हो।"

वस्तुत स्वामी दयानद भारत मे आध्यात्मिक जागृति के मार्टिन लूथर थे। जिस भाँति लूथर ने शाश्वत सत्य के बल पर बाईबल के सिद्धान्तो का समर्थन किया उसी प्रकार स्वामी दयानद ने सनातन सत्य को वेद ज्ञान के अनुसार जीवन मे उतारा। सन्त पाल और मार्टिन लूथर की सयुक्त शक्ति से इस अकेले योगी ने विदेशी धर्मों से टक्कर लेने के लिए बाइबिल और कुरान की तुलना मे वेदो को सर्वोच्च स्थान देकर आक्रान्ताओं की नीति से ही उनका सामना किया। उन्होने देशी पौराणिको को उसी प्रकार सबल चुनौती दी जैसे जर्मन सत मार्टिन लूथर ने रोमन चर्च को दी थी। मार्टिन लूथर का नारा 'बाइबिल की ओर लौटो' भारतीय सदर्भ मे ऋषि दयानद का 'वेदो की ओर लौटो' बन गया। इस धार्मिक नारे की राजनीतिक निष्पति 'आर्यावर्त', आर्यों के लिए है' के रूप मे हुई। इस प्रकार युग-स्रष्टा दयानद ने भारतीय जनता के लिए न केवल राष्ट्र धर्म अपितु राजधर्म का भी स्पष्ट शब्दो मे निर्धारण कर दिया।

निष्कर्षत महर्षि दयानद द्वारा वेदो को सत्य का एकमात्र स्रोत मानना, भारत की समन्वयवादी परपरा से भिन्न विचार है। जैमिनी और व्यास से लेकर राममोहन राय तक सभी ने वेदो को महान मानते हुए भी उनको सत्य-ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत नही माना। लेकिन स्वामी दयानद ने यह परपरा तोडकर भी राष्ट्र की महान सेवा की। हिन्दुत्व पर ईसाईयत और इस्लाम जो प्रहार कर रहे थे, उससे टक्कर लेने के लिये वेदो को सर्वोच्च स्थान देकर विदेशियो की नीति से ही उनका सामना करना, रणचातुर्य था। उनके विचारो की कट्टरता, प्रखरता ही उनकी सर्वाधिक शक्ति बन गई। इस प्रकार स्वामी दयानद ने धार्मिक-सास्कृतिक एव राजनीतिक दृष्टिकोण से जहा राष्ट्रवाद को निश्चित मोड दिया, वहा राष्ट्रीय अस्मिता को क्षीण कर रहे ईसाईयत एव इस्लाम के प्रहारो से हिन्दुत्व का सरक्षण किया।



आर्यसमाज है तो देश का वैद्य, पर..... ?

आनन्दप्रिय पण्डित

आर्यसमाज एक महान् शक्तिशाली सस्था है। इसका ध्येय अत्यन्त प्राणवान् है। आर्यसमाज मे आने के पश्चात् कोई भी व्यक्ति निश्चेष्ट नही रह सकता।

एक प्रकार से आर्यसमाज कर्मवीरो का संगठन है। आर्यसमाज मे आने के पश्चात् एक व्यक्ति विश्व को आर्य बनाने के स्वप्न लेता है, उसे सामाजिक एव राजनैतिक शिथिलता खटकती है। यही कारण है कि आर्यसमाजी को काम के बिना चैन नही पडता।

हमारी शक्ति को जब निश्चित कार्यक्रम नही मिलता, तब इसका अपव्यय आपसी सघर्ष से हो जाता है। कभी कभी यह भी होता है कि आर्यसमाज मे दीक्षित नवयुवक किसी निश्चित कार्यक्रम के अभाव मे आर्यसमाज का क्षेत्र छोड़कर अन्य क्षेत्रो मे चले जाते है।

अभी-अभी श्रद्धानन्द शताब्दी देहली मे हो गयी। उससे पूर्व १९७५ मे भी आर्यसगठन का दर्शन जगत् ने किया। जलूस शानदार रहे। उपस्थिति अत्यन्त प्रभावशाली रही थी। नेताओ का जमघट भी खासा रहा। वक्तृतायें भी प्रभावशाली थीं। उत्साह एव जोश भी प्रचुर मात्रा मे था। दोनो वार आर्य मेला शानदार रहा, ऐतिहासिक रहा, यूँ कहे तो भी अत्युक्ति न होगी। परतु सब कुछ होते हुए भी हमने अपने भावी कार्यक्रमो की ना ही चर्चा की, ना ही कोई व्यवस्थित प्रोग्राम बना पाये।

शताब्दी के अवसर पर आर्यकुमार सम्मेलन हुआ उसमे सम्मिलित होने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ पर दुःख के साथ अनुभव किया कि आर्यसमाज की युवक-शक्ति निराश है, असगठित है, कार्यक्रम के बिना छिन्न-भिन्न है।

आर्यसमाज इस समय बूढों की मोनोपोली बन गई है। बूढे मैदान मे डटे हैं। युवक उपराम हैं। एक वृद्ध चला जाता है, उसका स्थान रिक्त रहता है। हमारे भाग्य मे तो केवल शोक प्रस्ताव पास कर आत्मसतोष मान लेना ही पर्याप्त है।

गत महायुद्ध के समय ही सब राष्ट्रो ने युद्धोत्तर काल के लिये योजना समितिया बना डाली थी। जिनका उद्देश्य था राष्ट्र के सन्मुख बदली हुई परिस्थिति मे निश्चित योजना एवं कार्यक्रम प्रस्तुत कर जनता को उस पर लगा देना।

हमारे अदर अब दो समय ही नवजीवन के दर्शन होते है एक जलूस के समय और दूसरा चुनाव के समय। और इसके सिवाय और कोई कार्यक्रम है भी नही।

इस समय आर्यसमाज भी राजनैतिक दलबदी का अनुकरण कर एक दूसरे को गिराने मे अपना समय एव शक्ति नष्ट कर रहा है। हमारे आर्यसमाज मदिर और सत्सग केवल डिबेटिंग क्लब वा चुनाव की चर्चा के स्थान हो रहे है। हमारे भजन प्रवचन तथा कार्य नई प्रजा को नीरस लगते है।

हमने सस्थाये भी बनाई, पर आज सस्थाये कुछ त्यागवीरो को छोड दे तो बाकी हमारी सस्थाये केवल हमारी शक्ति की परिचायक है। इसाई मिशनरियो की तरह उसमे काम करने वाले ऋषि तुल्य व्यक्तियो का अभाव है। और तभी परिणाम शून्यवत् ही है।

हमने सब सस्थायें बनाई पर उपदेशक तथा सुयोग्य कार्यकर्ता बनाने की एक भी ऐसी सस्था न बनाई जो सत्ता पर हो। उसी की कृपा पर सस्था तथा कार्यकर्ता जीते हैं और कार्य होता है।

आज हम अपनी सस्थाओ का गौरव लेना भी भूलते जा रहे हैं। हरेक सस्था के पीछे समालोचक दल दुहाइयो मे दयानद का नारा लगा हमारे कार्य की प्रतिष्ठा घटाने मे अपनी शान समझता है।

आर्यसमाज की गाडी पटरी पर नही चल रही जब गाडी पटरी पर न हो इजिन खैचे कैसे ? फिर इजिन भी युग-धर्म के अनुसार पुराने ही हैं।

सिद्धात चर्चा तथा महर्षि का नाम हमारे लिये खिलवाड है। प्रतिस्पर्धी को गिराने का यह ब्रह्मास्त्र है।

ऐसी परिस्थिति मे यदि हम नही संभले तो कल हमारे हाथ से निकल जाएगा। निश्चित पचवर्षीय योजना बना व्यवस्थित रूप से हमे कार्य करना चाहिये। नये रक्त को आकर्षित करना ही होगा। समाज की चर्चा का स्तर परस्पर सहिष्णुता का स्तर सुधारना होगा। कागवृत्ति को छोडकर हसवृत्ति धारण करनी होगी।

आर्यसमाज भारत का सच्चा वैद्य है, पर जब वैद्य रोगग्रस्त हो, उसे प्रथम अपना इलाज कर फिर जग का इलाज करना चाहिये। हमारी बहुमूल्य वस्तुएँ भी हमारी कुछ त्रुटियो के कारण नगण्य हो रही है।

हमारे आगामी वर्षों मे पचवर्षीय कार्यक्रम क्या हो इसकी चर्चा सब करें अपने विचार भेजे और हमारा सम्मेलन निश्चित योजनाओ का निर्माण कर कार्यक्रम बनावे। बाकी दिग्विजय बहुत हो चुकी, उसका समय नही रहा।



ऋषि दयानन्द ने क्या किया ?

चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा

बधा चारों ओर से था क्रूर भावना के द्वारा,
गजब ढहाया ही था घोर भ्रम-फंद ने।
सीधे-सादे मानवो को खूब भटकाया और,
किया स्वत्व-हीन इस नीच छल-छद ने।।
देखा गया नही जब ईश से अघोर क्लेश,
भज दिया 'उसे' चट आनद निकद ने।
पूरा किया काम अंधकार का अशेष कर,
ज्ञान-भानु का प्रकाश दिया दयानन्द ने।।

बुद्धि अथवा वृत्ति

भुवनेश खोसला

सायकाल का समय था, वृक्षो की शीतल छाया मे गाये विश्राम कर रही थी। पास मे ही कल-कल करती नदी बह रही थी और दोनो किनारो पर सु दर घास बिछी हुई थी।

कुछ कन्यायें घूमती, उधर आ निकली।

यह सुदर दृश्य देखकर रम्भा बोली, "यदि मैं गाय होती तो कैसा आनद आता।"

उसकी सहेली शीला बोली, "तो सबसे पहले हमारी पढाई छूट जाती और प्रतिदिन पाठ याद करने का भार दूर हो जाता। देखो ना, यह गायें कैसी मस्त है। घास खाती हैं, पानी पीती हैं और आनद से विश्राम करती है।"

"तो फिर तुम्हे क्या गाय बना दे" रम्भा की मौसी बोली।

"नही, हमे गाय तो नही बनना, मनुष्य बने है यही अच्छा है। पर, यदि गायो जैसा हमारा जीवन होता तो ?"

"तो तुम मनुष्य न हो कर पशु बन जाते" मौसी ने कहा।

गगा बोली—"तो भगवान ने हमे मनुष्य क्यो बनाया है ?

"तुम मनुष्य इसलिये हो कि तुममे बुद्धि है" मौसी ने कहा। रम्भा बोली, "अब समझ आ गया यह बुद्धि ही हमारे कष्ट का कारण है।"

गगा बोली, "पशुओ को भगवान् ने बुद्धि क्यो नही दी ?" प्रतिभा ने पूछा। मौसी बोली, "वृत्तिया हैं पर हमारी वृत्तिया भी बुद्धि द्वारा संचालित है।"

"तो हमारी बुद्धि को कौन चलाता है ?" रम्भा ने पूछा। मौसी बोली, "कोई नही, तुम स्वय अपनी बुद्धि से काम करती हो। ईश्वर ने तुम्हे काम करने की स्वतन्त्रता दी है।"

"यदि हम कोई दिन वृत्ति से ही काम करे तो ?" गगा ने पूछा।

मौसी ने हसकर कहा, "तो तुम भी पशु हो जाओ।"

रम्भा बोली, "पर हमे बुद्धि दी क्यो ?"

मौसी बोली, 'तुम्हे क्या करना' और 'क्या नही करना' इसका विवेक कर सको इसलिये भगवान् ने बुद्धि दी है।" सब लडकियाँ बोली "अब हम समझ गई जिसका सचालन बुद्धि से हो वह मनुष्य, और जिसका वृत्ति से सचालन हो वह पशु।"

मौसी बोली, "इसीलिये वृत्ति से काम करने वाले बच्चे मनुष्य रूप हो कर भी पशु समान हैं।"



वीतराग अवधूत दयानन्द

विश्वनाथ शास्त्री भिलाई (म० प्र०

आधुनिक युग के मूर्धन्य मनीषियो मे महर्षि दयानन्द का नाम लिया जाता है। लोग अपनी श्रद्धा के अनुसार इनको ऋषि, महर्षि, योगी, सन्त, महात्मा, फकीर और समाज सुधारक कहते है। हम इन पक्तियो मे उनके वीतराग अवधूत रूप का वर्णन करेंगे।

जावालोपनिषद् मे आया है कि—

यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद् वनाद् वा गृहाद् वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्।

अर्थ— जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उस दिन से सन्यास ग्रहण कर लेवे, वानप्रस्थ आश्रम से संन्यास लेवे, अथवा गृहस्थ आश्रम से ले लेवे अथवा सीधे ब्रह्मचर्य आश्रम से ही सन्यास ले लेवे।

उपर्युक्त वचन से सिद्ध है कि सन्यास का प्रमुख तत्व वैराग्य है। जिस किसी आश्रम मे रहते हुए वैराग्य उत्पन्न हो जाए तभी सन्यास ले लेवे। महर्षि दयानन्द ने उग्र वैराग्य से प्रेरित होकर ब्रह्मचर्य आश्रम से ही संन्यास ले लिया। महर्षि के जीवन को आन्दोलित करने वाली पहली घटना तो स० १८९४ वि० मे घटी जब वह चौदह वर्ष के थे। चौदह वर्ष के बालक ने शिव रात्रि का व्रत रखा। अर्द्ध रात्रि के समय शिव मूर्ति पर एक चूहे को चढते देख कर उनके मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह मूर्ति सच्चा शिव नही है। यह कैसा भगवान् है कि क्षुद्र जन्तु को भी अपने आप से नही हटा सकता। यही से चौदह वर्ष का बालक वीत राग मार्ग का पाथक बन जाता है। अब उस की आस्था मूर्त्ति पूजा से हट जाती है और वह निराकार ईश्वर की खोज के लिए निकल पडता है, सोलह वर्ष की आयु मे इस साधक की बहिन की मृत्यु हो जाती है। यह उस के जीवन की पहली शोक घटना थी। इस के तीन वर्ष पश्चात् उस के चाचा का देहान्त हो जाता है। इन मृत्यु घटनाओ से उस का वैराग्य और तीव्र हो जाता है। उसने सोचा कि ससार की सारी वस्तुए

अस्थायी और नश्वर हैं । ससार असार है, साधक ने दुख सागर से तरने के लिए योगाभ्यास करने की ठानी, उन्होने बाईस वर्ष की अवस्था मे गृह त्याग किया और चौदह वर्ष निरन्तर योग विद्या सीखने के लिए कठिन और दुर्गम स्थानो की यात्रा की । उन्होंने अपनी आयु के पच्चीसवे वर्ष मे दण्डी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लिया और दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए । वे छत्तीस वर्ष की आयु मे मथुरा मे दण्डी विरजानन्द की पाठशाला मे पहुचे और ढाई वर्ष पर्यन्त वहा अध्ययन किया। इस के अनन्तर वे उन्तालीस वर्ष की आयु मे प्रचार क्षेत्र मे उतरे, पहले वे आगरा पधारे । यहा वे मूर्ति पूजा का खडन किया करते थे । आगरा से ग्वालियर, और फिर जयपुर पधारे । यहा वे मनुस्मृति, उपनिषद् और गीता आदि ग्रथो के प्रकरण सुना कर प्रवचन दिया करते थे । इस के अनन्तर स्वामी जी पुष्कर पधारे । यहा उन के सन्तोष, क्षमा, शान्ति, सरलता का सभी लोग यश गाया करते थे । उन दिनो वे विभूति रमाया करते थे ।

महर्षि अवधूत सन्त थे । वे कंचन कामिनी से दूर रहते थे । एक दिन बहुत सी देविया महर्षि के समीप उपदेश लेने आई , उन्होने उन देवियो से कहा कि हम स्त्रियो को उपदेश नही दिया करते। अपने पतियो कोह मारे पास भेज देना ।वे यहा से उपदेश सुनकर आप को भी सुना देगे ।

महर्षि हरिद्वार मे कु भ मेले पर फाल्गुन १६२३ वि० को पहुचे । उन्होंने सप्त सरोवर पर वर्तमान वैदिक मोहन आश्रम मे "पाखड खडिनी" पताका गाड दी और उपदेश करना आरम्भ कर दिया। आज तक लोगो ने सयासी के मुख से मूर्ति पूजा का खडन, मृतक श्राद्धो का निराकरण, अवतारों का अमूलकपन, पुराणों तथा उपपुराणो का काल्पनिक होना और पर्व स्नान माहात्म्य का मिथ्यात्व नही सुना था । इस मेले पर स्वामी जी ने अनेक व्याख्यान दिए कई शास्त्रार्थ किए और बीसियो वादियों को जीता परन्तु अन्त मे उन के चित्त मे उदासीनता छा गई । उन्होने भारत की दुर्दशा देखी थी । उन्होंने ईसाई धर्म की बढती हुई बाढ को देखा। उन्होने पश्चिमी सभ्यता के बढते प्रभाव को देखा। उन्होंने ब्राह्मणों, पडितो और पुरोहितो को समझाया परन्तु वे एकदम शिथिल हो चुके थे । उन्होंने कुभ के मेले पर साधु सन्यासियो को प्रभावित करने का यत्न किया परन्तु निष्फल, महर्षि ने अपने आप को अकेला पाया । उन्होंने सोचा कि परोपकार एक महायज्ञ है, यह यज्ञ तब तक सिद्ध न होगा जब तक इसकी पूर्णाहुति मे सर्वस्व स्वाहा न किया जायेगा । उन्होंने पुस्तक आदि उपवास वहीं त्याग दिए । वे सर्वस्व त्याग कर तन पर राख रमा एक कौपीन मात्र धारी मौनावलम्बी हो गए । उन्होने "मौनात सत्यं विशिष्यते" पाठ पढ रखा था एक दिन एक मनुष्य ने

महर्षि की कुटि द्वार पर आकर कहा कि वेद से भागवत पुराण उत्तम है । महर्षि ने यह वाक्य सुनते ही मौन तोड़ दिया और भागवत पुराण का खडन आरम्भ कर दिया । महर्षि ने प्रण किया कि जितना ज्ञान मैंने प्राप्त किया है उसको धर्म प्रचार और लोक हित करने मे सफल बनाऊ गा । वे सस्कृत मे ही उपदेश देते थे । एक बार तीन दिन के भूखे वीत राग सन्यासी ने खेत के मालिक से बैंगन खा कर भूख मिटाई ।

१० भाद्रपद १६२४ वि० को महर्षि अनूपशहर मे गए । वहाँ उनका एक भक्त गगा की शुद्ध मिट्टी लाता और चन्दन की भाति रगड कर महर्षि के शरीर पर रमा देता था । अनूपशहर मे ही महर्षि का एक भक्त सय्यद मुहम्मद वहा का तह-सीलदार था । एक दिन एक ब्राह्मण ने महर्षि को विषयुक्त पान दिया उस बात का पता तहसीलदार को लग गया और उसने उस ब्राह्मण को बदीग्रह मे डाल दिया । जब वह महर्षि को मिलने आया तो महर्षि ने कहा कि मैंने सुना है कि मेरे लिए आज आपने एक मनुष्य को कैद किया है, परन्तु मैं मनुष्यो को बंधवाने नही आया हू, किन्तु छुडवाने आया हू । यदि दुष्ट अपनी दुष्टता को नही छोडते तो हम क्यो स्व श्रेष्ठता का परित्याग करे । ये शब्द सुन कर तहसीलदार के रोमाच हो गए । उसने आज तक क्षमा कर ऐसा धनी प्रशान्त पुरुष न देखा था । उसने जाते ही ब्राह्मण को छोड दिया ।

माघ बदी १५ सवत् १६२४ को सूर्य ग्रहण के मेले पर महर्षि कर्णवास पधारे । वे बसेन्दू के नीचे बैठे हुए धर्म कर्म और आचार विचार का उपदेश करते थे । वे निम्नलिखित आठ गप्पो का भी खडन करते थे—(१) प्रथम गप्प अठारह पुराण व्यासकृत हैं (२) मूर्ति पूजन (३) शैव, शक्ति और रामानुज आदि वैष्णव सप्रदाय (४) तन्त्र ग्रन्थ वाम मार्ग आदि (५) मदिरा, भाग इत्यादि मादक वस्तुएँ (६) व्यभिचार (७) चोरी करना (८) छल कपट अभिमान, झूठ इत्यादि ।

महर्षि लोगो के प्रश्नो का उत्तर सस्कृत मे ही देते थे । जो लोग सस्कृत नही जानते थे उनको टीकाराम जी भाषानुवाद करके समझा दिया करते थे । एक समय लाला इन्द्रमणि जी ने महर्षि को कहा कि आप अवधूत होकर इतने खडन मडन के झगडे मे क्यो फस गए हैं ? उन्होने उत्तर मे कहा कि स्वार्थी लोग इस समय ऋषि सन्तान को कुमार्ग पर चला कर उसे कुरीतियो के नुकीले काटो पर घसीट कर छलनी बना रहे है । मुझ से आर्य सन्तान की यह दीन दुर्दशा देखी नही जाती । मैंने प्रण कर लिया है कि इसे सन्मार्ग पर लाने का प्राण पण से यत्न करूंगा ।

महर्षि की ज्ञान दृष्टि कभी-कभी आँखो से ओझल बात का भी पता दे दिया करती थी । एक दिन नन्दकिशोर उपाध्याय महर्षि के समीप आते समय एक खेत से

रमास की कुछ फल्लियाँ तोड ले गए और वहाँ पहुचकर महर्षि को भेंट की । महर्षि ने कहा तुम चोरी से यह फल्लिया लाये हो इसलिए हम ग्रहण नही करते । नन्द-किशोर का सर नीचा हो गया ।

महर्षि बडे तपस्वी थे । उन्होने भूख प्यास, शीत उष्ण आदि सब द्वन्द्व जीते हुए थे । पौष माघ का शीत पडता था, जौहडी का जल जम जाता था पर कौपीन मात्र धारी परमहस जी कभी-कभी गगा की शीतल रेती मे ही पद्मासन लगाए सारी सारी रात बिता देते थे । एक दिन प्रात काल महर्षि कुटिया के बाहर बद्धपद्मासन बैठे थे और दर्शन को आए हुए ठाकुर लोग उपदेश श्रवण कर रहे थे । उस समय ठाकुर गोपालसिंह ने हाथ जोडकर पूछा—भगवन् ! घोर शीतपात के कारण हम सबके शरीर सिकुड रहे है परन्तु आप पर इसका कोई प्रभाव दिखाई नही देता । महर्षि ने मुस्कराकर कहा कि ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास ही इसका कारण है । तो उसने कहा तो हम कैसे जाने, उस समय महर्षि ने अपने हाथो के अगूठे घुटनो पर रखकर ऐसे बल के द्वारा कि तत्काल ही उनके भाल पर पसीने के बिन्दु चमकने लगे । तन पर रमाई हुई सारी मिट्टी भीग गई । इस पर सभी लोग मुक्त कठ से महर्षि के योग बल की प्रशसा कर उठे ।

प्रचार करते हुए महर्षि चासी पधारे । वहाँ उनके दर्शन करने के लिए ग्रामीण लोग बहुत आने लगे । इससे वहा रहने वाला एक वैरागी चिढ गया । महर्षि का नियम था कि जो पहले भोजन ला देता वे उसे ही खा लेते । वैरागी सबसे पहले एक दो जले भुने टिक्कड महर्षि के आगे रख देता और वे वीतराग वही खा जाते । कुछ काल के बाद वही वैरागी महर्षि का अनुयायी हो गया ।

एक धुनिया महर्षि के सत्सग मे आया करता था । महर्षि ने उसे ओम् जप करना सिखाया । एक दिन धुनिया ने पूछा कि मुझे जप के अतिरिक्त और क्या कर्म करना चाहिए । महर्षि ने कहा कि सदाचार पूर्वक जीवन बिताओ जितनी रूई किसी से लो तुम कर उतनी ही उसे पीछे लौटा दो ।

महर्षि पुन· अनूपशहर पधारे । वहा एक उमेदा नाई रहता था, वह एक दिन महर्षि के लिए भोजन ले आया । महर्षि भोजन खाने लगे । उस समय वहा बीस पचीस ब्राह्मण विद्यमान थे । वे कह उठे छि. छि· छि यह रोटी तो नाई की है । महर्षि ने हंसते हुए कहा नही, यह रोटी तो गेहू की है ।

उस वीतराग के कितने प्रकरण सुनाए । इन प्रकरणो का तो कोई अन्त ही नही है । वह अवधूत तो विश्व कल्याण के लिए आया था । उसके सत्सग मे राजा, रंक, ब्राह्मण, अन्त्यज, हिंदू, मुसलमान सभी समान आप से सम्मिलित होते थे । उनकी वाणी मे वह अमृत था जो शताब्दियों पर्यन्त जनता को तृप्त करता रहेगा ।



शिवरात्रि का 'दिव्यसंदेश'

चमनलाल

मानव जाति के प्रत्येक वर्ग मे अपनी-अपनी मान्यताओ व परम्पराओ के अनुसार त्यौहार मनाये जाते है। यह समाज व राष्ट्र चेतना का एक जीता-जागता स्वरूप है। इसमे सभी अबाल, वृद्धो के मनोरजन के साथ-साथ समाज के ऐतिहासिक सास्कृतिक एव बौद्धिक प्रसग अर्न्तनिहित रहते है। प्रतिवर्ष इनका स्मरण और अनुष्ठान व्यक्ति, समाज व राष्ट्र मे उल्लास और साहस उत्पन्न करता है और आध्यात्मिकता का भी चिन्तन करा जीवन की गति मे एक नई चेतना उत्पन्न करता है।

ऐसे ही अनेक पर्वों मे से शिवरात्रि का भी एक पुनीत पर्व प्रतिवर्ष आकर एक विशेष जीवन सन्देश देता है। यह पर्व प्रतिवर्ष फाल्गुन बदी चतुर्दशी होली से लगभग १६ दिन पूर्व और बसन्तपचमी से सामान्यत २४ दिन पश्चात् आता है। वैसे तो यह महापर्व प्राचीनकाल से मनाया जाता आ रहा है। शिवरात्रि अर्थात् कल्याणकारी रात्रि एक पौराणिक गाथा के अनुसार एक व्याध के जीवन के उत्थान का कारण बनी बताई जाती है। गत सहस्रो वर्षों से इस मनाये जाने वाले पर्व से लोगों का कुछ कल्याण हुआ या नही, यह तो एक इतिहास की बात है परन्तु इसमे लेशमात्र भी सदेह नही है कि आज से लगभग १४० वर्ष पूर्व जब बालक मूलशकर ने इस व्रत को रखा था तो सचमुच उसका तो कल्याण हुआ ही साथ ही ससार का विशेषकर भारतनिवासियो का कायाकल्प तो हो ही गया।

इस गतिशील ससार मे प्रतिक्षण व प्रतिदिन मानव जीवन मे घटनाचक्र चलता ही रहता है। सहस्रो छोटी-छोटी व क्षुद्र घटनाये व्यक्ति के जीवन मे घटती रहती हैं जिनकी ओर जन साधारण का जरा भी ध्यान नही जाता और 'ऐसा तो होता ही रहता है" कहकर उनकी उपेक्षा कर देते है और इनको क्षुद्र समझकर छोड देते हैं। परन्तु वही सस्कारी जीवो की ऊची से ऊची भावनाओ को जगाने के लिए

पर्याप्त होती हैं । वे संस्कारी उन्नत व प्रकृष्ठ बुद्धि वाले आत्माओ के जीवन की ही दिशा को मोड नही देती अपितु उनके माध्यम से राष्ट्र, देश और समाज मे एक भारी क्राति लाने का कारण बनती है । जो लोग पुनर्जन्म के सिद्धान्त को नही मानते और पुर्नजन्म के सस्कारो की प्रबलता को स्वीकार नही करते, वे ऐसी घटनाओ का कोई सतोषजनक उत्तर तो नही दे सकते परन्तु इसमे भी कोई सदेह नही कि ऐसी घटनाएं ससार मे बडी-भारी उथल-पुथल कर देती हैं और जिनकी स्मृति मानस पटल पर अमिट छाप छोड जाते है ।

इतिहास ऐसे अनेको महापुरुषो के जीवन मे घटी घटनाओ से कुछ कम भरा नही है । एक बूढे और एक मृतक शरीर को देखकर लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व एक भारतीय बच्चे पाटलीपुत्र के राजा शुद्धोधन के पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ ने जब इस प्रकार के दृश्य को देखा तब उसने अपने तप और त्याग से एक क्राति पैदा कर दी और आज भी एक तिहाई जनसख्या उनकी अनुयायी है । इसी प्रकार एक प्रकृष्ट बुद्धि वाले न्यूटन नाम के व्यक्ति ने बगीचे मे बैठे वृक्ष से धरती पर सेब गिरते हुए देखा और जब जेम्सवाट ने अपनी चाय की देगची के ढक्कन को भाप के कारण ऊपर उठते हुए देखा तो कौन नही जानता कि सारे औद्योगिक जगत मे कितनी क्राति पैदा कर दी । इसी प्रकार बालक मूलशकर के पिता कर्षण जी (पडित अम्बाशकर जी) ने १४ वर्षीय बालक मूल को जब शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा, जिसने बालक मूल के जीवन मे एक अदभुत् पलटा दिया और उस समय एक विचित्र घटना घटी जिससे केवल उसके विचारो मे ही परिवर्तन नही हुआ अपितु उससे समूचे भारत मे एक धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक क्रान्ति का आधार रखा गया । उस रात्रि बालक मूलशकर अपने पिता के आग्रह करने पर शिव की पूजार्थ टकारा नगर के कुबेरनाथ के मन्दिर मे सारी रात जागरण कर शिव दर्शन की प्रतीक्षा करता रहा । रात्रि बीतते-बीतते जब सभी भक्तजन गाढ निद्रा देवी की गोद मे शयन कर रहे थे तो यह बालक मूलशकर जग रहा था । शिवदर्शन की प्रतीक्षा मे । भला यह जड शिव दर्शन काहे को देता परन्तु उसने देखा वहाँ शिव मन्दिर मे एक चूहे का खेल का चित्र । अर्थात् उसने एक छोटे से चूहे को शिवमूर्ति पर चढ और उस पर चढे मिष्ठान फल आदि को खाते देखा तो मूलशकर के मन मे शंकाओ की बाढ उमड़ पडी उसने अपने पिता को जगाकर अपनी शकाओ का समाधान चाहा परन्तु कोई सन्तोषजनक उत्तर न पाकर सच्चे शिव की तलाश करने की जिज्ञासा दिल मे घर कर गई और एक दिन वह इसी सत्य शिव की खोज मे मा-बाप बन्धु-बान्धव और परिवार के सुखों को छोड घर से भाग निकले । वह बडी-बडी यातनाएं, दुख, क्लेश और कष्टो को सहकर और निर्जन जगलो वह पहाडो को पारकर मथुरा मे गुरु

विरजानन्द की कुटिया मे जा पहुचा और वहा निरन्तर तीन वर्ष गुरु सेवा मे रत हो उनसे सच्चा ज्ञान प्राप्त कर लोगो को अज्ञान अन्धकार से मुक्ति दिलाने में लग गया और वह बालक एक दिन महर्षि दयानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ। आजकल भी अच्छे साधु महात्माओ की कोई कमी नही है परन्तु वे मठाधीश हो अपने आनन्द मे ही निमग्न रहते हैं। उन्हे अपने दुखी भाईयो के प्रति जरा भी सहानुभूति नही होती परन्तु वाह रे दयानन्द ! तू कैसा अद्‌भुत सत था जिसने लोकहित के लिए जिस ब्रह्म आनन्द की कोई उपमा भी नही और जिसके सामने सैकडो चक्रवर्ती राज्यो का आनन्द भी एक क्षुद्र विन्दु के सदृश्य है, ऐसे १८-१८ घण्टे की समाधि के आनन्द को भी लात मार जन-साधारण के अन्धकार को दूर करने मे सारा जीवन अर्पण कर दिया। निस्सदेह, आत्मत्याग का ऐसा अद्‌भुत उदाहरण इतिहास मे खोजने से भी कही न मिलेगा।

ऋषि ने वेद प्रचार का बिगुल बजाया और वेद के आधार पर "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" का नारा लगाया। ऋषि का कार्यक्रम बहुमुखी था। उनसे पूर्व अनेको आचार्य हुए परन्तु उनके कार्यक्रम इतने व्यापक न होकर एक विशेष दृष्टिकोण के ही होते थे। महर्षि दयानन्द को लोगो ने सन्त योगीराज, शिक्षाशास्त्री, समाज सुधारक, राष्ट्रनिर्माता, वेदवेत्ता, देशभक्त, गोरक्षक तथा आर्य सस्कृति के पुन उद्धारक के रूप मे देखा। परन्तु इनमे से समाज-सुधारक कार्यों से प्रभावित होकर अधिकतम जनता उनकी अनुयायो बनी और आर्य समाज के कार्यक्रमो मे सलग्नता से सहयोग देने लगी क्योकि यह जनता उस विश्वतोमुखी क्राति के देवता को केवल एक महान समाज सुधारक के रूप मे ही देखती थी।

परन्तु खेद है कि जिस कल्पवृक्ष को ऋषि ने अपने रक्त से सीचा था आज हम उनके अनुयायी उसकी जडो मे नमक डालने को उतारू हो रहे हैं। आर्य जगत मे एक अच्छे नेता के अभाव मे निराशा द्वेष स्वार्थ, किंकर्त्तव्य-विमूढता और विघटन की आग जल रही है। यदि शीघ्र ही हमने जागरूक होकर इस स्थिति को न सम्भाला तो ऐसा न हो कि कभी हम अपनी गौरवपूर्ण परम्परा को ही न खो बैठें।

आज हम सोये हुए से प्रतीत होते है जबकि आर्य समाज को आज सब ओर से चुनौती है। सारे राष्ट्र की आँखें इसकी ओर लगी है। भारतमाता, गरीब, असह्य जनता अपने सुधार के लिए इसकी ओर आँखे फाड झाँक रही है। आज भी इस ज्ञान प्रकाश के युग मे लाखो व्यक्ति विपुल धन, सम्पत्ति व्यय कर और तरह-तरह की यातनाएं और दुख सहकर देश के कोने-कोने से इस भावना से कि "गगा मे नहाने से पाप कट जाए गे" कुम्भ आदि के अवसरो पर प्रयाग हरिद्वार और कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ स्थानों पर जाते दीखते हैं। भारत मे मानो ईश्वरो की तो बाढ आ गई

है जिनके चेले-चपटे गरीब और अनपढ जनता को ठगने से नही चूकते । आज कानून के होते हुए भी हरिजनो पर स्वर्णों के अत्याचार और द्रव्यहोश मे कमी नही आई। छूत-छात का बोलबाला है । जाति-पाति की दीवारें और भी दृढ और पक्की होती जा रही है जिस कारण समाज मे विघटन की ज्वाला तीव्रता से जल रही है । इन परिस्थितियो मे शिवरात्रि का दिव्य सन्देश इस वर्ष यही होगा कि हम अपने स्वार्थ को छोड पदो की लोलुपता को त्याग जनसाधारण मे निम्न वर्गों के उठाने के काम मे लग जाये और इसके लिए इस वर्ष ग्राम प्रचार के लिए विशेष योजनाए बनाकर ऋषि का सन्देश घर-घर पहुचाने मे लग जावें, क्योकि भारत की अधिकतर जनता देहातों और ग्रामो मे रहती है । कहना न होगा कि आज आर्य समाज के सौ से भी अधिक वर्ष बीतने पर भी उन तक ऋषि की आवाज नही पहुंच पाई । इसी कारण वह जनता बिगडी हुई रूढियो मे ग्रस्त है और स्वार्थी तथा लम्पटी छली लोगो का शिकार बनी है । अतः प्रचार की ठोस योजना बनाकर कार्य आरम्भ करे ताकि शीघ्रातिशीघ्र ऋषि के स्वप्नो का एक जातिपाति से अलग सुसगठित तथा समृद्ध समाज बन सके आर्य बन्धुओं जागो और दूसरो को जगाने का व्रत लो ।



रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुच७ राजसु नस्कृधि ।
रुच विश्येषु शूद्रेषु मीय धेहि रुचा रुचम् ॥

यजु० १८।४८

हे भगवन् ! हमारे ब्राह्मणो में तेज दे, हमारे क्षत्रियों मे तेज दे, वैश्यो मे तथा शूद्रों मे तेज दे, मुझमे अतिशय तेज धारण करा ।

दयानन्द बोधरात्रि

श्री रामगोपाल शालवाले

ससार को दु खी देखकर सिद्धार्थ के मन मे विचार पैदा हुआ कि उन उपायो को ढूंढें जिन से दु ख की निवृत्ति हो जाय। लाठी के बल एक वृद्ध पुरुष को धीरे-धीरे चलते और मुर्दे को श्मशान मे ले जाते हुए देखकर सिद्धार्थ पर जीवन की क्षण भगुरता और मृत्यु की वीभत्सता अकित होकर अमर पद प्राप्त करने की इच्छा जागृत हुई। यो तो वृद्धावस्था, दु ख और मृत्यु दिन प्रति दिन की घटनाये है जिन्हे मनुष्य देखता और सुनता है परन्तु यही बाते सस्कारी बच्चो और जनो के लिए असाधारण घटनाए बन कर उनकी जीवनधारा को बदल कर उन्हे महापुरुष बना देती है। इन्ही बीजरूप घटनाओ ने सिद्धार्थ से अपना राजपाट, अपनी प्यारी पत्नी और पुत्रादि एव बाधवो का परित्याग कराके उन्हे सद्मार्ग और सद्ज्ञान की खोज करने के लिए घर से निकल जाने को विवश किया और उन्हे युग प्रवर्त्तक महान पुरुष बना दिया।

फलो को पृथ्वी पर गिरते हुए मनुष्य प्राय प्रतिदिन देखते थे। यह बात उनके लिए साधारण थी। परन्तु जब न्यूटन ने एक फल को पृथ्वी पर गिरते हुए देखा तब वही बात उनके लिए असाधारण बन गई और उन्होने आकर्षण शक्ति के नियम को प्रकाशित किया।

बगाल मे मृत पति के साथ विधवा के सहमरण की प्रथा एक साधारण बात बनी हुई थी। परन्तु जब राममोहन राय ने अपनी भाभी के बलात सहमरण की वीभत्स घटना देखी तो उनकी आत्मा पर इतनी प्रबल प्रतिक्रिया हुई कि उन्हे उस समय तक शान्ति प्राप्त न हुई जब तक उन्होने अपने अनवरत प्रयत्न से उसका वैधानिक रूप से उन्मूलन न करा दिया।

असंख्य मनुष्यो ने मूर्ति पर चूहे को चढ़ते देखा होगा, परन्तु बालक मूलशकर के हृदय पर इस घटना का ऐसा चमत्कारी प्रभाव पडा कि वह सच्चे शिव (ईश्वर) की खोज के लिए आतुर हो गया और इस प्रतिक्रिया ने उन्हे वैराग्य धारण करने एवं माता पिता आदि सासारिक स्नेहो के बधनो को तोडने के लिए विवश करके उन्हे युग प्रवर्त्तक महर्षि बना दिया।

यह शिवरात्रि की रात भारतवासियो के लिए सौभाग्य की रात थी। इस रात्रि के प्रभाव से एक बार ज्वलन्त दैवीय प्रकाश हुआ जो न केवल भारत का अपितु सारे ससार के अधकार और दु ख के नाश करने का सामर्थ्य रखता है।

इस बोध रात्रि ने भारत मे महर्षि दयानद के द्वारा जो जागृति उत्पन्न की वह किसी से छिपी नही है। यह जागृति सत्य की जागृति थी। इस बोध रात्रि ने सबसे बडा पाठ यह पढाया कि अन्धविश्वासो को छोडकर अपनी बुद्धि और ज्ञान से प्रत्येक नर नारी को काम करना चाहिए। यदि समस्त देशवासी तथा ससार के लोग यह निश्चय कर लेवे कि जो बात सत्य है उसी को हम मानेगे और जो बात बुद्धि ज्ञान और सृष्टि के नियमो के विपरीत है उसको नही मानेगे तो ससार का वैमनस्य और दु ख बहुत कम हो जावे।

स्वामी दयानद ने मनुष्य मात्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक समझा कि सबके धार्मिक विचार एक से होवे और वे विचार सृष्टि नियम बुद्धि तथा वेद ज्ञान के अनुकूल होवे। उन्होने यह भी अनुभव किया कि किसी जाति की राजनैतिक व्यवस्था उसके धार्मिक विचार और पारस्परिक व्यवहार के गठन पर निर्भर रहती है जिस जाति के धार्मिक विचार ऊचे हो, जिसका आचार-विचार उत्तम और जिसके पारस्परिक व्यवहार मे सच्चाई और प्रेम हो उसकी राजनैतिक व्यवस्था भी उत्तम होगी और किसी अन्य जाति को उस पर राज करने का साहस न होगा। भारत को उच्च बनाने का उन्होने आर्य समाज को साधन बनाया और उच्च बनने के प्राय: सभी साधनो का प्रचार किया। आज स्वराज्य मिल जाने पर आर्य समाज को देश की राजनैतिक व्यवस्था को दृढ और उत्तम रखने के लिए लोगों के विचार आचार और पारस्परिक व्यवहार को सही दिशा मे बनाये रखने का विशेष काम करना है। महर्षि द्वारा प्रदर्शित मार्ग ही एक मात्र मार्ग है जो मानव मात्र को एक जगह एकत्र कर सकता है और एक दूसरे के वैमनस्य को यदि उसमे सत्यता है तो दूर कर सकता है। ऐसे महान गुरु की शिक्षा को कभी न भुलाना चाहिए और जिन लोगों के हृदय मे सत्य को जानने और परोपकार करने की लगन है उनको अवश्य स्वामी जी के जीवन और साहित्य का मनन एव परायण करना चाहिए।

शिवरात्रि की रात को हिन्दू लोग तो पवित्र मानते ही है परन्तु उन लोगो के लिए भी जो स्वामी जी को अपना शिक्षक मानते है यह आवश्यक है कि इस रात्रि को स्वामी जी महाराज के सिद्धान्तो पर विचार करे। सत्य और ईश्वर मे विश्वास रखते हुए अपने हृदय और आत्मा को बलवान बनाए और अन्धविश्वास और असत्य की लहरो से बचे। इसी रात्रि को प्रत्येक आर्य को शान्त भाव मे आत्म निरीक्षण करके अपनी त्रुटियो को दूर करने का भी सकल्प करना चाहिए।



आर्यसमाज, तू कितना महान् है ?

सत्यभूषण "वेदालंकार"

मेरे प्यारे आर्यसमाज, श्रेष्ठ मनुष्यो के समाज, दोष रहित, निष्कलक, पवित्र गगा जल के समान आर्यसमाज, तू कितना महान् है। कल्पना वहा तक पहुच ही नही पाती। यदि तेरी शिक्षा न होती, तेरी कृपा का सुधा-कण न मिल पाता, तो हमारी क्या दशा होती। क्या हिन्दू हिन्दू रह पाता ? क्या चोटी, जनेऊ बचते ? क्या वेदो का पुनरुद्धार होता ? क्या अछूतों, अनाथो, अबलाओ की रक्षा होती ? क्या ब्रह्मचर्य का पालन होता ? क्या गुरुकुल और डी० ए० वी० स्कूलो से शिक्षा प्राप्त कर बिस्मिल, भगतसिंह, आजाद जैसे नवयुवक स्वतंत्रता-सग्राम मे कूदते ? क्या अबलाओ की कोई पुकार सुनता ? क्या विधवा-विवाह होते ? क्या देवियां वेद मत्र बोलती ? सस्कृत मे धारा-प्रवाह भाषण करती ? रिसर्च व पी० एच० डी० करती ?

देश-जाति के रखवाले, महर्षि दयानन्द के मतवाले, सच्चे प्रहरी आर्यसमाज ! तू तो इतना महान् है, उच्च है, पवित्र है, कि मैं तो तेरे चरणो की धूल के बराबर भी नहीं हू।

अहा, यह खडा है आर्यसमाज मदिर कितना भव्य, कितना मगलकारी। यह वेदमत्रो की ध्वनि से गुजायमान हो रहा है। शिशु, युवक, वृद्ध सब मिलकर ईश-भक्ति के भजन गाते है। सन्ध्या होती है, यज्ञ होता है। वेद के विद्वान् आकर भाषण देते हैं। देश-जाति के उद्धार पर मत्रणा होती है। कुछ स्वार्थी तत्व आकर इसे भी दूषित कर रहे है। पर यह तो अपनी अनोखी शान से अडिग खड़ा है। इसकी चोटी पर ओ३म् की पुण्य पताका लहरा रही है। धर्म की खातिर पेट मे छुरा खाने वाले अमर शहीद पं० लेखराम का विशाल चित्र देखकर किसका मस्तक नही झुक जाता। तीन गोलिया छाती पर सहर्ष खाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द की तस्वीर बोल रही है। आर्यो ! जागो उठो ! फिर आवाज आती है, "आर्यसमाज तू कितना महान् है।"

हार्दिक शुभ कामनाओं सहित





प्रिन्सीपल तिलक राज गुप्ता

हंसराज माडल स्कूल

पंजाबी बाग

दिल्ली-११००२६

बोध-रात्रि

देवेश

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी

शिवरात्रि तो प्रति वर्ष आती है, प्रश्न यह है कि क्या हम इस योग्य है कि इसे बोध-रात्रि की सज्ञा दे सकें ? इसमे कोई सशय नही कि हमारे आचार्य प्रवर महर्षि दयानन्द सरस्वती को बचपन मे जब उनकी उम्र लगभग तेरह साल की थी, इनके पिता श्री ने इस पावन पर्व पर व्रत या कहिये उपवास रखने को कहा और उन्होंने पिता की आज्ञा का सहर्ष पालन किया क्योकि दिन की बेला मे उन्होने इसका महत्त्व तथा शिव के बारे मे जो प्रचलित गाथा है, सुनी थी। अत. किशोर हृदय मे शिव की अद्भुत कथा सुन कर एक ऐसी अटूट लालसा शिव के प्रति पैदा हो गई थी कि वे बड़े ही उल्लास के साथ व्रत की बेला मे टकारा ग्राम के बाहरी आंचल वाले शिव-मन्दिर मे अनेक नर-नारियो के मध्य निज परिवार सहित पहुंचे। पुजारी ने रात्रि के प्रथम प्रहर की पूजा कराई तथा मध्य रात्रि मे द्वितीय प्रहर की पूजा भी कुछ लोगो ने उत्साह पूर्ण वातावरण मे की। तदुपरात एक एक करके सभी भक्तगण निद्रादेवी की गोद मे जाने लगे। पुजारी भी पैर फैला कर लेट गया और मूलशङ्कर के पिता जी भी। अब रह गया केवल मूलशकर जिसने निद्रा को पास नहीं फटकने दिया और इस आशा से कि शिवशकर के दर्शन होगे, बैठा रहा। कुछ समय के बाद क्या देखता है कि एक चूहा मन्दिर के कोने मे बिल से निकला और लगा शिव की पिंडी पर चढे चावल, मिठाई आदि खाने। यह दृश्य देखकर मूलशकर के मन में विचार आया कि जो शिव इस महान सृष्टि का नियामक है, जिसका वर्णन उसने दिन मे सुना था तथा जिसका रुद्र रूप अति विकराल है, वही शिव अपने ऊपर चढे एक मूषक को भी नही हटा सकता ?

तीन वर्ष के बाद बहिन की मृत्यु पर एक और प्रश्न चिह्न बन गया। इसके चार वर्ष उपरात चाचा की मृत्यु पर तो यह पहेली ऐसा विकराल रूप धर कर आई कि मूलशंकर ने संकल्प की पूर्ति हेतु घर छोड दिया। अनेक साधु महात्माओं से पूछ-

ताछ की और घूमते घामते सिद्धपुर के मेले मे जाने की सोची। मार्ग मे उनके गाव का एक जोगी मिल गया और सहज स्वभाव वश बतला दिया कि सिद्धपुर के मेले मे जा रहा हूं। जिसका परिणाम यह हुआ कि उसने इनके पिताजी को सूचना दे दी और तुरन्त ही कुछ सिपाही साथ लेकर मेले मे जा पहुचे। मूलशकर पकडा गया पर क्या कोई उसको रोक सका ? चार सिपाहियो के पहरे पर होते हुए भी, पुन भाग निकले और फिर हाथ नही आये। जिसकी आत्मा मे जिज्ञासा घर कर जाती है, जागृति पैदा हो जाती है, उसे किसी प्रकार का भी ससारिक बन्धन नही रोक सकता।

यह है शिव-रात्रि का महत्त्व, जिसने बालक शूलशकर के हृदय मे एक ऐसा विचार-बीज बोया कि वह महर्षि दयानन्द सरस्वती बन कर दुनिया के सामने आया और अधकार रूपी अज्ञान के महाराक्षस को उसकी सैना सहित-पाखंड, ढोग, रूढिया आदि जो समाज को व्यथित कर रहे थे—सहार कर वेद-माता की पुन प्रतिष्ठा की। उसने जो व्रत धारा था वह महाव्रत मे परिणित हो गया, जिसका उसने आजीवन पालन किया और पार्थिव शिव की जगह सच्चे शिव के दर्शन की जो अभि-लाषा थी, उसको दृढ निश्चय, घोर पराक्रम, अदम्य साहस एव सयम शीलता द्वारा पूर्ण किया। ऐसा था वह ब्रह्मचारी जिसने ऐसा जागरण किया कि फिर आयु पर्यन्त नही सोया, औरो को जगाता रहा तथा अनेक प्रकार के दुसह कष्ट उठा कर मानव जाति के कल्याण हेतु, वेदो का पुनरुद्धार किया।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत

एक बार स्वामी जी महाराज किसी नदी के किनारे सन्ध्या कर रहे थे कि किसी देवी ने आकर उनके चरणो को छूकर प्रणाम किया। महाराज को बडा पश्चात्ताप हुआ और उन्होने दो दिन का उपवास किया। उनके जीवन मे क्या क्या कष्ट नही आये ? पद पद पर विरोधी लोग कुछ ना कुछ बखेड़ा खडा कर देते थे। कुछ धूर्तों ने षडयत्र रचा और स्वामी जी के डेरे पर एक सु दरी को सजा धजा कर भेज दिया। स्वामी जी तो ध्यान मे बैठे थे। अत जब वह देवी महर्षि के पास पहुची और उनका दिव्य मुख मडल देखा तो उसको अपने कृत्य पर बडी ग्लानि अनुभव हुई और स्वामी जी से क्षमा याचना माग कर वापिस लौटी। अनेक बार महाराज पर आक्रमण किये गये और सोलह बार विष दिया गया पर ब्रह्मचर्य के बल पर ये सब विफल हुए। आजीवन ब्रह्मचर्य के पालन से जो विलक्षण शक्ति का संचय किया उसकी आधारशिला बना कर तपस्या व त्याग उभय व्रतो को सजोकर ब्रह्म ज्ञान से दीप्त हो, ससार मे जो घोर अधकार व्याप्त था, उसका नाश किया। उस महामानव ने दिव्य दृष्टि से परखा कि मनुष्य जाति अनेक प्रकार की कुरीतियो मे फसकर नाना-

विध कष्टो और क्लेशो से क्लान्त है और इसका एकमात्र त्राण वेदों की ओर लौटने मे है । नान्य पथा विद्यतेऽयनाय—वास्तव मे उनके घर छोडने का प्रबल कारण भी माता-पिता का उनको विवाह बधन मे बाधने का प्रयास ही था ।

एक भक्त ने स्वामी जी महाराज मे कहा कि मानव आज बहुत परेशान है, विविध प्रकार की कठिनाइया और आपत्तिया घेरे हुए हैं । काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहकार, ईर्षा, द्वेष की अग्नि चहु ओर प्रज्वलित है । आखिर इस समस्या का क्या समाधान है ? महर्षि का उत्तर था 'ब्रह्मचर्य' । एक ही शब्द मे उन्होने कितनी बडी बात बतला दी है यदि हम ब्रह्मचर्य के व्यापक अर्थ को जानने का प्रयत्न करे । सीधा सादा, संयम-नियम पूर्वक जीवन यापन करना तथा इन्द्रियो पर और मन पर काबू रखना, ब्रह्मचर्य का साधारण अर्थ है—दूसरे शब्दो मे ऋतुगामी बनना । इसमे एक सीढी ऊपर चढें तो ब्रह्म+चर्य का अर्थ है वेदोदि सत् शास्त्रों का अध्ययन करके उन पर आचरण करना । ब्रह्म नाम वेद विद्या का है । यदि और एक सीढी चढे तो ब्रह्म मे चरना; अथवा उस परमपिता परमात्मा के बारे मे जानना और चिन्तन करना । यो कहिये कि ब्रह्म रूपी वीर्यशक्ति को इंधन बना कर, ब्रह्म रूपी वेदादि शास्त्रो का अनुशीलन कर, ब्रह्म मे रमण करना वास्तव मे 'ब्रह्मचर्य' है ।

माना कि ससार का कार्य-कलाप भौतिक प्रगति पर आधारित है पर जब तक इस सारी क्रिया प्रणाली मे, आध्यात्मिकता का पुट नही होगा, यह ससार नर्क ही बना रहेगा । यही कारण है कि प्राचीन ऋषियो ने, मनीषियो ने मानव जीवन की तुलना एक रथ से की है जिसके दो पहिये, एक भौतिक तो दूसरा आध्यात्मिक पक्ष हैं । महर्षि ने उभय पक्षो पर बार बार जोर दिया और दुनिया का ध्यान सच्चे सही वैदिक धर्म की ओर आकर्षित किया । इसी की सपुष्टि मे उन्होने अपना महान ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश लिखा । इस अमर पुस्तक मे स्वामी जी ने मानव जीवन की सारी गुत्थिया खोल दी हैं । वर्णाश्रम प्रणाली का कितना सुन्दर विवेचन है । यदि इसी एक पुस्तक को ही हम भली प्रकार से मनन करले तो सारी समस्यायें सुलझ जाये ।

वेद सृष्टि के आदि से हैं और वेद-भाष्य भी मिलते थे । पर वेद-भाष्य के नाम पर जो वेद मंत्रो के अर्थों का अनर्थ किया गया था, वह तो प्रभु की वाणी का अपमान या उपहास ही था । महर्षि ने इस अनाचार को देखा और वेद भाष्य की जो दिशा इगित की वह स्पष्ट ही 'यो जागार तम् ऋचा कामयन्ते' को साकार करती है । अलङ्कारिक भाषा मे यदि यह कहा जाय कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उस महादानव का हनन किया जो वेदों को पाताल ले गया था और इस प्रकार परमात्मा की अमर वाणी की सुरक्षा की तो ये कोई साहित्यिक अत्युक्ति न होगी ।

विद्ययाऽमृत मश्नुते

संसार में वेद विद्या का प्रकाश फैलाने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने

सन् १८७५ मे आर्य समाज की स्थापना की । गत एक सौ दो वर्ष की अवधि मे कई हजार आर्य समाजे स्थापित हुई है और इन्होने अनेक प्रकार से महर्षि के मन्तव्य को आगे बढाने का सद्प्रयास किया है । कुछेक महान विभूतिया, जैसे स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा हसराज, प० लेखराम प्रभृति विशिष्ट आर्य समाज की देन हैं । पर गत चन्द वर्षों मे आर्य समाज अपने ध्येय से भटका सा प्रतीत होता है । कुछ लोगो का कहना है कि आर्य समाज भी तो विशाल जन समुदाय का एक भाग ही है । अत जैसे समुद्र का पानी खारी होता है, उसमे कही भी मीठे जल की आशा करना व्यर्थ है, वैसे ही यह विचारना कि आर्य समाज साधारण जन-समूह से कुछ भिन्न होगा, भूल है । लका मे सब बावन गज के ।

परन्तु लङ्का मे राक्षसो के मध्य विभीषण भी था । कुछ और भी रावण के सीता हरण कृत्य को पूर्णरूपेण समर्थन नही करते थे, पर विरोध करने का साहस केवल विभीषण ही जुटा सका । किन्तु यहा कोई राम नही है । विचारने की बात है है कि जब शिवरात्रि बोधरात्रि मे परिवर्तित हुई, दयानन्द ने जब वैदिक धर्म का झण्डा उठाया, उसका साथ देने वाला अन्य कोई था ? उसने ऐसा नही सोचा, वह धुन का पक्का था, टूटने वाला न था, झुकने वाला न था, बढता ही गया आगे और आगे, केवल उस परमात्मा के सहारे । ऐसी गहन तिमिस्रा छाई थी पर उस दृढ सकल्पी ने अपनी मशाल जला ही दी । तप और त्याग ने रग दिखलाया और देखते ही देखते, शनै शनै, सत्य को समर्थन मिला तथा ये जो आज आर्य समाज का विशाल वृक्ष नजर आता है, उसका बीज बो दिया गया । पर लगता है आज यह वृक्ष टूट कर गिरना चाहता है—इसके विशाल टहने प्रतिकूल दिशाओ मे जोर मार रहे है । युग के झोको मे यह वृक्ष आ गया है, झझावात मे फस गया है । क्या यह चिन्ता की बात नहीं है ?

चिन्ता व्यर्थ है, चिन्तन करने की आवश्यकता है । गत सौ वर्षों मे इसके बीज से अनेक इसी के सदृश विटप उग आये हैं । प्रतीत होता है कि दृष्टि धु धला गई है और यह कह कर 'ये वे वृक्ष नही है, ये वे वृक्ष नही है' इनको गिराना चाहते हैं । अपने ही हाथो अपनी वशबेल को काटना चाहते है । हे प्रभो ! हम कितने रूढि ग्रस्त हो गये है ? यही तो रूढिवादिता की निशानी है कि आकार-प्रकार, विधि-विधान ऊपर से दिखावा मात्र बना रहे, पर सार, तत्त्व और आत्मा समाप्त । आज का आर्य-समाज भी बिल्कुल ऐसा ही बन गया है । अरे ! ऋषि की नकल करना ही सीखो । उसने तो विष देने वालो को भी, पत्थर मारने वालो को भी, गालियाँ देने वालो को भी प्यार किया था; विरोधियो को भी गले लगाया था । यही कारण था कि शत्रु भी मित्र बन गये थे । वह तो अकेला निकला था और उसकी महान-यात्रा मे एक एक करके अनुयायी जुडते चले गये जो एक विशाल जलूस मे परिणित हो गया ।

आज हम अपने ही भाइयो को, जिन्होने भरी जवानी मे घर छोडा, सैकडो की सख्या मे दयानन्द के मार्ग को अपनाया और आर्य समाज के कार्य को आगे ले चलने का प्राणपण से आजीवन व्रत लिया, उन्ही को भाति भाति के लाछन लगा कर बदनाम करना चाहते हैं। किस लिये ? क्या यही है युवा वर्ग को आर्य समाज मे लाने का तौर तरीका ? आर्य-समाज किसी की बपौती नही है। यह तप और त्याग की महान सस्था है। इसकी वास्तविक सेवा तो इस समय यही होगी कि सभी अपने हृदयों को टटोलें, आत्म-चिंतन, स्व-निरीक्षण और मन-हृदय मार्जन करें तो अवश्य ही सही दिशा मिलेगी। सज्जनो, आर्यों के लिए सरल उपाय है —आत्मा की आवाज को सुनो—परमात्मा, आत्मा और धर्म को साक्षी करके उचित निर्णय होने दो। झगडो का अन्त तप और त्याग मे निहित है। ऐषणाओं को छोडो—इसको प्रतिष्ठा का प्रश्न मत बनाओ—प्रतिष्ठा तो उदारता से मिलती है श्रेष्ठता का तकाजा है कि अपने दोष और दूसरो के गुणो को देखना हितकर होता है।

कचहरियों मे जाना आर्यों के लिए शोभा नही देता। कानून के टेढे दाव पेंचो के बारे मे कौन नही जानता—वहा झूठ को सत्य और सत्य को असत्य प्रमाणित किया जाता है। अत आर्यों की तो अपनी कसौटी होनी चाहिये। क्या वे भी दूसरों से निर्णय करायेंगे ? ये तो गिरावट की पराकाष्ठा है। अत आर्य जनता चाहती है कि सभी झगडे वापिस ले लिये जाये। आर्य-समाज के प्रतिष्ठित सन्यासी वर्ग इसका निर्णय करें।

अन्त मे निवेदन है कि क्या बड़ो को बूढ़ों को यह शोभा देता है कि वे युवको से, छोटो से, बच्चो से इस प्रकार झगड़ते रहे ? आर्य-समाज की आश्रम-प्रणाली कहती है कि अब ये अधिकार युवको को सभलवा दो। क्यो व्यर्थ मे झगड़े कर रहे हो ? वेद-विद्या पढने से अमृत प्राप्त होता है—यदि हम वेद के अनुकूल आचरण करते हैं तो कोई कारण नहीं कि हम इस प्रकार के विष रूपी झगडो मे पड़े रहेगे। अमरता प्राप्त करने का वेद ने यही सदेश दिया है कि उसकी शिक्षा पर आचरण करे—आचार हीनं न पुनन्ति वेदा। शिव-रात्रि का यही महान उपदेश है कि हम अपने आचार्य के बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण करे। जिस दिन भी हमारी आत्मा उद्‌बुद्ध हो जायेगी, इसमे जागृति आजायेगी, वही बोध-रात्रि होगी और रूढ़ि को तोडने का यही सहज तरीका है कि वही रात्रि बोध-रात्रि होगी—हो सकता है ऐसी बोध रात्रि सबकी अपनी अपनी हो।



प्राणशक्ति का प्रेरक सर्य

ब्रह्मदत्त स्नातक

"सविता ते हस्तमग्रभीत्"
(अथर्ववेद)

हमारे प्राचीन शास्त्रो मे सूर्य का वर्णन विभिन्न स्थलो पर उपलब्ध होता है। कही तो उसको देवता कहा गया है तो कही पर उसको प्राण शब्द से कहा गया है। इसका विवेचन करने से हमको ज्ञात होता है कि सूर्य एक अग्नि का पिण्डमात्र नही है, अपितु अनेक लाभदायक गुण भी है। पूर्व समय मे प्रत्येक ब्रह्मचारी और गृहस्थ का कर्त्तव्य होता था कि वह नित्यप्रति स्नान करने के बाद सूर्य की उपासना और दर्शन किया करे, जिसके करने से उनके मुख कान्तियुक्त और वे प्रसन्न वदन होते थे और इसके साथ उनके नेत्रो की ज्योति भी बढती थी। शायद अब तो मनुष्य उस पर विश्वास न करें। परन्तु बात सत्य है जबकि एक व्यक्ति को १० वर्ष की अन्धेरे बन्द रखने की सजा दी गई, और जब उस समय के बाद उसे बाहर निकाला तब उसने वहा से निकलने से इन्कार कर दिया। कारण क्या था ? उसने इतने दिनों तक सूर्य नही देखा था। उसकी नेत्र की ज्योति नष्ट हो गई थी। प्राचीन परम्परा के अनुसार इसलिये ही अब भी भारतवासी भोजन करने के बाद हाथ-मुह धोकर सूर्य की ओर दृष्टिपात करते है।

हमे सूर्य की वास्तविक स्थिति की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। सूर्य क्या वस्तु है ? कहा पर वह ठहरा हुआ है ? वह पृथ्वी के चारो ओर घूमता है, अथवा पृथ्वी उसके चारो ओर ? आदि-आदि। इन बातो पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि सूर्य एक वायवीय पदार्थों का पिण्ड है, जो कि इस लोक के साथ लोक-लोकान्तरो को प्रकाश दिया करता है। बचपन मे हमने पढा था कि—

एकचक्रो रथो यन्ता, विकलो विषमा हया ॥

अर्थात् सूर्य के सात घोडे होते हैं। इस बात विचारने से ज्ञात होता है कि

हमारे पूर्वजो ने इस बात मे भी तत्व भर दिया है । सूर्य की सात किरणें हैं जो कि वेदो मे सप्ताश्व नाम से वर्णन की गई है ।

वस्तुत सूर्य की स्थिति क्या है ? सूर्य सदैव अपनी कीली पर स्थित रहकर ही चक्कर लगाता है, और पृथ्वी उसके चारो ओर चक्कर लगाती है, और पृथ्वी उसके चारो ओर चक्कर काटती हैं । ऐसी धारणा है कि सूर्य का एक स्थान पर रहना और पृथ्वी का उसके चारो ओर चक्कर लगाना—ऐसा सिद्धान्त न्यूटन अथवा गैलिलियो ने निकाला था, परतु वेद मे सृष्टि की आदि से ही सूर्य का यथार्थ वर्णन मिलता है और प्राचीन आर्यों को इस बात का भली-भाति ज्ञान था । देखिये वेद मे—

आय गौ. पृश्निरक्रमीदसदन्मातर पुरः । पितर च प्रयन्त्स्य ।।

इस मत्र का भाष्य करते हुए ऋषि दयानद ने सूर्य का एवरस्थ होना और पृथ्वी का उनके चारो ओर घूमना सिद्ध किया है । परतु इसको देखकर यह मत समझिए कि वेद मे तो सब कुछ ही निकला आता है । अब से हजारों वर्ष पूर्व के विद्वान आर्यभट्ट से अपने प्रसिद्ध ग्रथ आर्यभटीय मे भी वैदिक प्रमाणो को देकर यही सिद्ध किया था ।

हमे यहाँ सूर्य से होने वाले अन्य लाभो पर भी विचार करना चाहिये । नेत्रज्योति की प्राप्ति का लाभ तो ऊपर वर्णन किया जा चुका, जिसके कारण कि वैदिक काल मे सर्वत्र यही प्रार्थना की जाती थी ।

शन सूर्य उत्वक्षा उदेतु ।।

अर्थात् उतवक्षा सूर्य हमारे लिये कल्याणकारी उदय होवे । इसी तथ्य को देख-कर शास्त्रकार मनु महाराज ने ब्रह्मचारी को आज्ञा दी है कि—

त चेदभ्युदियात्सूर्यः शयान कामचारत । त चेदभ्युदियात्सूर्यः शयान
निम्लोवेद्वाप्यविज्ञानात् जपन् उपवसेत् दिनम् ।।

अर्थात् जिस दिन भी सोते रह जाने के कारण मनुष्य (ब्रह्मचारी) सूर्य-दर्शन न कर सके तो उस दिन जप करता हुआ उपवास करें । इसीलिये हमारी वैदिक यज्ञोपवीत तथा विवाह की विधि मे अब भी सूर्यदर्शन करना आवश्यक माना गया है ।

ये तो वैदिक-काल की बात रही । अब भी हमारे देश मे सूर्य-नमस्कार, सूर्य-व्यायाम, सूर्य-आसन-स्नान आदि विधियां हैं, जिनके द्वारा सर्वसाधारण नाना रोगों से शीघ्र ही छुटकारा पा जाते हैं । सूर्य की धूप के सेवन से मनुष्य की त्वचा शुद्ध होना आदि अनेक लाभ होते हैं, जिनको अब पाश्चात्य देशो ने भी अपना लिया है । अमेरिका मे आजकल सूर्य की गर्मी इकट्ठी करके बडी-बडी भट्टियां बनाई गई हैं, जिनमे हीरे जैसी कठोर वस्तुएं पिघलाई जाती है ।

उपनिषद् के पढने पर हमको सूर्य के लिये प्राणशब्द मिलता है। इसके द्वारा सूर्य का प्राण-शक्ति देना भी सूचित होता है। देखिए प्रश्नोपनिषद् मे कहा गया है—

सूर्य एव प्राण चन्द्र एव रत्रि । प्राण एते वा प्रस्कन्दन्तिये दि्वा रत्या सयुज्यन्ते ।।

अर्थात् सूर्य नाम प्राण का है, जो कि मनुष्य को प्राण-शक्ति दिया करता है। उपनिषद् इतना कहकर ही विराम नही करती, अपितु उदाहरण द्वारा समझाती है। जो लोग दिन मे रतिक्रिया करने हैं, वे मानो प्राणो को ही नाश कर रहे है। इसी प्रकार वैदिक शास्त्रो को देखने पर हमको सूर्य की महत्ता भलीभाँति ज्ञात होगी। सूर्य से लाभ पाने के लिए वेदों की ओर पुन लौटना पडेगा, तभी हमको उसमे से अनमोल रत्न मिलेंगे।



उदुत्तम मुमुग्धि नो विपाश मध्यम चृत ।
अवाधमानि जीवसे ।।

ऋ० १।२५।२१

हे वरणीय भगवन् । हमे ऊपर के बीच के और नीचे के (लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा रूपी) जालो से छुडाइये ताकि हम (सुख पूर्वक) जी सके।

महर्षि दयानन्द एवं वेदोक्त आठ सत्य—एक सर्वेक्षण

डा० तीर्थराज शास्त्री,

जिस समय वैदिक धर्म एव मस्कृति पर चारो ओर से भीषण एव कठोर प्रहार हो रहे थे, भारतीय सस्कृति एव सभ्यता पर अज्ञानान्धकार की घनघोर घटाए छाई हुई थी, अविद्यान्धकार का पूर्ण साम्राज्य यत्र तत्र सर्वत्र छाया हुआ था, उस समय अज्ञान-तिमिरजन्य दिग्दिगन्त व्याप्त घटाओ को छिन्न-भिन्न करते हुए तथा दिव्यालोकपुञ्ज को चतुर्दिक् विकीर्ण करते हुए, महर्षि दयानद सरस्वती भारतीय रङ्गमञ्च पर एक युग पुरुष के रूप मे अवतीर्ण हुए।

उसी युगपुरुष ने वेद चतुष्टय के गम्भीर अध्ययन, चिंतन एव मनन के पश्चात् *सशक्त शब्दो मे घोषणा की—"वेदो की ओर उन्मुख होओ"* (**Back to the Vedas**)। इसी पुनीत भाव की अभिव्यक्ति देव दयानद द्वारा स्थापित आर्य समाज के तृतीय नियम से भी होती है—"वेद सब सत्य-विद्याओ का पुस्तक है। वेद का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।"

इतना ही नही, महर्षि दयानद सरस्वतीकृत वैदुष्यपूर्ण वेद-भाष्य को पढकर उनके प्रति *अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए योगेन्द्र अरविन्द ने* उच्च स्वर से उद्घोषित किया—

"In the matter of Vedic interpretition, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of direct vision that pierced to the tree and fastened on to that which was essential He has found the

keys of the doors that time had closed and rent ascender the seals of the imprisoned fountains "

(Dayananda the man)

अर्थात् वैदिक व्याख्या के विषय मे मेरा यह दृढ निश्चय है कि वेदो की सम्पूर्ण अतिम व्याख्या चाहे कुछ भी हो, महर्षि दयानद उपयुक्त शैली के प्रथम आविष्कारक के रूप मे सदा सम्मानित रहेगे। प्राचीन अज्ञान एव प्राच्य-युगीन अव्यवस्था तथा भ्रम के मध्य मे यह उन्ही की दिव्य दृष्टि थी, जिन्होने सत्य का अन्वेषण कर उसे वास्तविकता के साथ सम्बद्ध किया। जिन वेदों के द्वार को समय ने अवरुद्ध कर रखा था, उनकी कुञ्चिकाओ को उन्होने प्राप्त कर लिया एव अवरुद्ध स्रोत की मुहरो को छिन्न-भिन्न कर दिया।

इस प्रकार वैदिक धर्म एव संस्कृति के कर्णधार महर्षि स्वामी दयानद सरस्वती ने सामाजिक कार्यक्षेत्र मे अवतीर्ण होकर न केवल पादरी राबिन्सन एव शूलब्रेड इत्यादि ईसाईमतावलम्बियो से शास्त्रार्थ तथा हरिद्वार के कुम्भ-मेले के अवसर पर 'पाखण्ड-खण्डिनी' पताका की स्थापना करके साम्प्रदायिक सघन वन पर समालोचना का कठोर कुठाराघात ही किया अपितु पौराणिको की मूर्तियो का जल-विसर्जन, राजपूतो को यज्ञोपवीत परिधारण, आठ गप्पो का खण्डन एव निम्नलिखित आठ सत्यो का मण्डन भी किया।

वस्तुत आनद कद देव दयानद ने विविध सामाजिक कुरीतियो एव पाखण्डो का खण्डन करते हुए फर्रुखाबाद एव कन्नौज इत्यादि स्थानो का प्रचारार्थ परिभ्रमण करते हुए कानपुर मे पदार्पण कर स्थानीय लोगो को सत्यान्वेषण के लिए प्रेरित किया। सस्कृत भाषा मे उपनिबद्ध विज्ञापन मे महाराज ने चार वेद, चार उपवेद, षड्शास्त्र, श्वेताश्वतर एव कैवल्य सहित दशोपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, कात्यायनादिसूत्र, योग-भाष्य, वाकोवाक्य, मनुस्मृति एव महाभारत—इन ग्रथो को प्रमाणरूप मे स्वीकार कर आठ सत्यो का मण्डन किया। आठ सत्य—

१ उपर्युक्त ऋग्वेद से महाभारत पर्यन्त परमेश्वर एवं ऋषिप्रणीत ग्रथ सत्य हैं।

२. ब्रह्मचर्याश्रम मे गुरु-शुश्रूषापूर्वक स्वस्वधर्मानुष्ठान निभाते हुए वेदाध्ययन करना चाहिए।

३. वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म, सन्ध्यावन्दन एवं अग्निहोत्रादि कर्म करने योग्य है।

४. धर्मशास्त्रानुसार ऋतुकाल आदि के नियमो का गृहस्थ धर्म मे अनुसरण करना। पञ्च महायज्ञों एवं श्रौत-स्मार्त कर्मों का अनुष्ठान कर्त्तव्य है।

५ शम, दम, तपश्चरण, यम से समाधि पर्यन्त उपासना का आचरण एवं सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान विधिविहित है।

६. विचार-विवेक, वैराग्य, पराविद्या का अभ्यास एवं संन्यास ग्रहण कर समस्त कर्मों की फलेच्छा का परित्याग उचित है।

७. जन्म-मरण, हर्ष-शोक, काम-क्रोध, लोभ-मोह एवं संग-दोष—ये अनर्थकारी हैं, अत इनका परित्याग शुभ है।

८. अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश रूप पांच क्लेशों तथा सत्व-रजस्-तमोगुणो से निवृत्ति पाकर पंचमहाभूतों से अतीत मोक्षरूप स्वराज्य को प्राप्त करना परम लक्ष्य है।

उपर्युक्त आठ सत्यो के अतिरिक्त महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिन आठ गप्पों पर भीषण प्रहार किया, वे भी निम्नलिखित हैं—

१. प्रथम गप्प—अट्ठारह पुराण व्यासकृत हैं।

२. प्रतिमा-पूजन।

३. शैव, शाक्त एवं रामानुजादि वैष्णव सम्प्रदाय।

४. तन्त्र-ग्रंथ, वाममार्ग आदि।

५. मदिरा, भाँग इत्यादि मादक वस्तुयें।

६ व्यभिचार

७. चोरी करना

८. छल, कपट, अभिमान, झूठ इत्यादि।

परिव्राट् सम्राट् महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपदेशों एवं आठ गप्पों के खण्डन से समस्त कानपुर निवासियों का चित्त चलायमान सा हो गया। स्वामी जी के श्रद्धालुओं में जहाँ उनके उपदेश पद व अमृततुल्य उपदेश से एक प्रकार का आवेश था, वहाँ उनके ईर्ष्यालुओ एवं विरोधियो मे एक प्रकार का क्रोधावेश भी था। देव दयानन्द के विरोधियों के शिरोमणि ब्रह्मानन्द सरस्वती, श्री प्रयागनारायण एवं श्री गुरुप्रसाद थे। इन दोनों महानुभावों ने 'कैलाश' तथा 'बैकुण्ठ' नामक दो देवालयों का निर्माण भी करवाया था। स्वामी दयानन्द जी महाराज ने इन दोनों महानुभावों को मन्दिर निर्माण के लिए व्यय की गई अपार धनराशि के दुरुपयोग के लिए पुनः पुनः लज्जित किया। स्वामी जी ने कहा—क्या ही अच्छा होता यदि यह विपुल धन राशि देश के रचनात्मक कार्यों एवं निरीह मानवता के कल्याण मे व्यय की जाती। कन्नौजियों के घरो मे तीस वर्ष की कुमारी एवं अविवाहिता लड़कियां बैठी हैं, इस धन-राशि से उनके हाथ पीले किए जा सकते थे, बालक-बालिकाओं के अध्ययन के

लिए पाठशालाएं एव कला-कौशल के प्रचारार्थ शिल्पशालाएं स्थापित की जा सकती थी। श्रद्धेय स्वामी जी की इन कटूक्तियो से क्रुद्ध होकर श्री प्रयागनारायण व श्री गुरुप्रसाद ने स्वामी ब्रह्मानन्द से मिलकर महर्षि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने के लिए श्री हलधर ओझा एव श्री लक्ष्मण शास्त्री को समुद्यत किया।

परिणामस्वरूप बीस-पच्चीस सहस्र मनुष्यो की भीड के मध्य मे कलेक्टर श्री थेन महाशय की मध्यस्थता मे हलधर ओझा इत्यादि विपक्षियो का महर्षि दयानन्द सरस्वती से विधिवत् शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। महाभारत के एक श्लोक के आधार पर श्री ओझा ने कहा कि एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति सामने रख कर धनुर्विद्या सीखी थी। इस पर स्वामी जी महाराज ने ललकारते हुए हलधर से कहा कि वेदशास्त्र मे कही भी प्रतिमा-पूजन का विधान नही है। भील ने प्रतिमा-पूजन के लिए द्रोणाचार्य की प्रतिमा की स्थापना कदापि नहीं की थी। एकलव्य की धनुर्विद्या मे प्रवीणता का कारण मूर्ति नही, अपितु उसका निरन्तर अभ्यास था।

हलधर—यदि वेद मे प्रतिमा-पूजन का विधान नहीं तो निषेध भी कहा है?

स्वामी दयानन्द—जब कोई स्वामी अपने सेवक से कहता है कि तुम पश्चिम दिशा की ओर चलो, तो अन्य तीन दिशाओ का निषेध स्वत: समझ लिया जाता है।

लक्ष्मण शास्त्री—ईश्वर की सर्वव्यापकता के कारण प्रतिमा मे भी उसकी विद्यमानता निसर्गत सिद्ध है पुन: प्रतिमा-पूजन मे क्यों दोष मानते है?

स्वामी दयानन्द—परमेश्वर जब सर्वव्यापी है तो प्रतिमा मे क्या विशेषता है, जो उसकी पूजा की जाये? किं बहुना, चेतन को छोडकर जड-पूजन मे कोई गौरव भी नहीं। इस प्रश्नोत्तर काल मे स्वामी जी के प्रतिपक्षी अवाक् से रह गये तथा इसके प्रत्युत्तर मे उन्होंने स्वामी जी पर ईंटें भी बरसाईं। समाचारपत्रो के माध्यम से विपक्षियो की क्षणिक घोषणा प्रचारित की गई। जब थेन महाशय को विपक्षियों की इस भ्रान्त घोषणा के विषय मे सूचित किया गया तो उन्होने स्वामी जी के सहायको को निम्नलिखित व्यवस्था लिख कर दी—

"महाशयो! मेरी सम्मति मे शास्त्रार्थ के समय स्वामी दयानन्द सरस्वती की विजय हुई। उनकी युक्तियाँ वेदानुकूल थी। यदि आप चाहें तो मैं अपनी व्यवस्था की पुष्टि मे कुछ दिनो मे प्रमाण भी दे दूँगा।

कानपुर — आपका
थेन

स्वामी दयानन्द के इस विजय-घोष से प्रभावित होकर अत्यधिक जनता ने अपनी प्रतिमायें जल में विसर्जित कर दी।

रुद्राक्ष की माला का खण्डन करते हुए स्वामी जी महाराज ने हंस कर एक रुद्राक्ष-मालाधारी से कहा कि ऐसी बातो से मुक्ति कदापि नही प्राप्त हो सकती। मुक्ति की अभिलाषा होने पर मुमुक्षु को ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। शिवजी की प्रतिमा पर बिल्व-पत्र चढाने की चर्चा करते हुए देव दयानन्द ने हस कर कहा कि शिव-प्रतिमा बिल्वपत्र कदापि नही खायेगी, हाँ ! यदि ऊँट के आगे इसे डाल दे तो उसकी भूख इससे अवश्य मिट जायेगी। इसके अतिरिक्त महर्षि दयानन्द ने आधे मन्त्र बताकर गुरु बनने वालो तथा भैरव बाबा के विभिन्न चमत्कारो का अनेक बार खण्डन किया।

एक गङ्गापुत्र नियमित रूप से प्रात काल स्वामी जी महाराज के समीप आकर उनसे थोड़ी दूर खड़ा होकर उन्हे गालियां दिया करता था। स्वामी जी महाराज ने सब कुछ सुनकर भी अनसुनी कर दी। एक दिन सायकाल स्वामी जी के पास लड्डू-पेड़े इत्यादि मिष्ठान पड़े रह गये। अकस्मात् उन्होने उसी गङ्गापुत्र को उधर से जाते हुए देखा। महाराज ने समस्त मिष्ठान उसे दे दिये और कहा कि प्रतिदिन सायकाल हमारे पास आकर पुष्कल खाद्य वस्तुये ले जाया करो। अन्त मे वही गङ्गापुत्र स्वामी जी के चरणो मे गिर पडा और पश्चात्ताप के आँसू बहाते हुए कहने लगा—

"भगवन् ! यदि मेरी कठोरता का कोई पारावार नही तो आपकी सहिष्णुता की भी कोई सीमा नही। श्री चरणो मे मेरे समस्त अपराध क्षमा किए जाये। स्वामी जी महाराज ने उसे उत्तर देते हुए कहा कि हमने आपके वचनो को स्मृति मे स्थान नही दिया। आप भी अब उन बातो को भूल जाइये।"

वस्तुत. देव दयानन्द एक आदर्श सन्यासी थे। उनके सेवक उनके लिए नाना प्रकार की सुख सामग्री उपस्थित करने को समुद्यत थे, परंतु द्वंद्वातीत स्वामी दयानंद वही भैरवघाट पर बिछौने के बिना ऊंचे नीचे भूतलभाग को शय्या बनाकर व मोटी मोटी इंटो का उपधान बनाकर सुखपूर्वक सो जाते थे।

कानपुर मे रहते हुए देव दयानद ने अपने सत्सङ्ग रूपी पारसमणि के प्रभाव से जिन भगवद् भक्तों के हृदय को निष्कलुष, स्वच्छ एव वासनारहित किया। उनमे भक्तशिरोमणि श्री हृदयनारायण का नाम अग्रगण्य है। कालान्तर मे कानपुर के श्रद्धालुओ को अकस्मात् अथाह विरह सागर मे निमग्न करके वहाँ से प्रस्थान कर महर्षि दयानद फतेहपुर एवं मिर्जापुर इत्यादि स्थानो का परिभ्रमण करते हुए तीर्थ-राज प्रयाग पधारे। यहाँ शिव सहाय नामक एक ब्राह्मणकृत वाल्मीकि रामायण की टीका का अवलोकन करके देव दयानंद ने उसमे अनेकानेक दोषो का उद्घाटन किया। वस्तुत. शिव सहाय ऐसे अभिमानी व्यक्तियों मे से था, जो दोषों को स्वीकार करना

तो दूर रहा, इसके विपरीत देव दयानंद से शास्त्रार्थ करने के लिए उद्यत हो गया। देखते ही देखते वादविवादकेसरी महर्षि दयानंद सरस्वती ने शिव सहाय के घमण्ड-घटाटोप को अपने पाण्डित्यरूपी प्रबल पवन से छिन्न-भिन्न कर दिया।

अत. 'ऋषि-बोधोत्सव' के इस परम पुनीत अवसर पर हम आर्य्यधर्माव-लम्बियो का यही प्रयास होना चाहिए कि देव दयानंद ने जिन आठ—सत्यों के माध्यम से ब्रह्मचर्याश्रम, वर्णाश्रमधर्म, पञ्च-महायज्ञो एव सत्सग-महात्म्य इत्यादि का प्रचार एवं प्रसार किया तथा आठ गप्पो के माध्यम से जिन प्रतिमा-पूजन, तंत्र-ग्रंथ, वाम-मार्ग तथा व्यभिचार इत्यादि मिथ्याचरणो का खण्डन किया, तदनुकूल ही हमे आचरण करना चाहिए तथा ऋषि-बोध को स्व-बोध एव विश्व-बोध के रूप मे परि-णत करने का एक महान् व्रती भी हमे बनना चाहिए।



वय घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि।
न हि त्वदन्य. पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मडिता ॥
ऋ० ८।५६ (६६)१३

हे इन्द्र ! हम तेरे हैं, हम उपासक जनों का तू ही आश्रय है, हे परम बल शालिन् ! बहुतो से प्रशसा किये जाने के योग्य ! हमे सुख देने वाला तेरे अतिरिक्त और कोई नही है।

स्वामी दयानन्द और आर्य समाज

दरबारी लाल उप प्रधान प्रादेशिक सभा

जब किसी अध पतित देश मे किसी सहृदय बलशाली आत्मा का आविर्भाव होता है तो वह स्वभाव से ही अपने देश-सुधार और उद्धार के महाव्रत का व्रती बन जाता है इसका प्रमाण हमे संसार के धार्मिक और सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारों से मिलता है, भगवान् बुद्ध, शंकर, मसीह प्रभृति लोगों के जीवनचरित्र हमारी कल्पना के साथी हैं।

इस प्रकार के सुधारको के सामने दो प्रकार की जनता होती है (१) नमनशील, ग्रहणशील अथवा परिवर्तनशील, (२) हठी, दुराग्रही और स्वार्थी। पहिली श्रेणी के लोगो मे कुछ तो नितान्त विचारहीन मूर्ख धनिको, मुखियो और पुरोहित मडल के पीछे चलनेवाले होते हैं जो अपने आचार विचार, व्यवहार के गुण दोषों को न समझते हैं न समझने है की कभी चेष्टा करते हैं समझाने से भी बहुत देर मे समझते है इनका सीधा जवाब होता है 'ककरस्नानं सोहम स्नानं' अब ककर का संकल्प शुद्ध और पवित्र है या नही, इस बात की इन अनुगामियो को चिन्ता नही। कुछ लोग इस श्रेणी मे समझदार होते हैं प्राचीन प्रथा का अनुकरण करते हुए भी इनको बात के सुनने, समझने और विचार करने की इच्छा और शक्ति होती है, यह न तो नितान्त विचारशील होते हैं न दुराग्रही।

दूसरी दुराग्रही श्रेणीवालो के हम दो विभाग करते हैं पहले तो वह जो अपनी भूलों को समझते हुए भी वैयक्तिक स्वार्थों के कारण सत्य को सत्य कहने के लिये तैयार नहीं होते।

दूसरे लोग अत्यन्त दुराग्रही होते हैं वह नई बातों से ऐसे भड़कते हैं जैसे रगीन चीथड़े से बैल, इनको कितना ही साफ रास्ता, पक्की सड़क, परिमार्जित भूमि क्यो न मिले यह यथासाध्य अपनी पुरानी किचड़ीली काटोंयुक्त गंदी पगडडी को न

छोडेंगे, क्योंकि रूढिप्रियता ने उनके अन्तकरण की महीन विवेकशक्ति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

भारत की गिरी हुई आर्य्यजाति का विक्रमी शताब्दी के दूसरे चरण के आरम्भ मे महर्षि स्वामी दयानन्द का सामना हुआ, इस समय स्वामीजी को हिन्दूजाति ने किस दृष्टि से देखा और उनकी चिकित्सा मे स्वामीजी को कितना कष्ट हुआ, इसका अनुमान करना उन लोगों के सामने बडी बात नही है जो इतिहास जानते है और उसे गम्भीर से दृष्टि मनन करते है, पहिली श्रेणी के विचारशील, परिवर्तनशीलों से ही सदा सुधार का आरम्भ होता है और उन्ही से इस देशभक्त सुधारक के काम का आरम्भ हुआ, उन्होंने अपनी २ भूलो को समझा और भविष्य मे स्वामी के अभिनिर्माण को पूरा करने का बीडा उठाया। बाल विवाह, अपव्यय, विधवाविवाह और शुद्धि के तत्वों को भारत मे प्रचार करने का परमपवित्र काम आर्य्यसमाज के सिर पर आया इसने स्थानातर मे हिन्दू बालको और बालिकाओं के लिये पाठशालायें, अनाथालय और विधवाआश्रम खोले, अपना सगठन करके हिन्दू भाइयो के सामने सुसगठित होकर रहने को प्रत्यक्ष उदाहरण रक्खा, इससे विचार शक्तिहीन जनता को समय २ पर ज्ञान की प्राप्ति के साथ आर्यसमाज के भक्त होने का ध्यान हुआ। यही कारण है कि समाज की उत्तरोत्तर सब प्रकार की उन्नति और वृद्धि होती गई और होती जा रही है।

लेकिन दुराग्रही समुदाय के भाइयो ने हर प्रकार से सामाजिक और धार्मिक सुधारो के काम मे बाधाए डाली तो भी सुख की बात है कि आज हमारे विद्वान् पुरोहितो और उनके हठी अनुगामियो की भी आखे समय ने खोलदी, आज हम देखते हैं कि जो स्वामी दयानन्द के सदुपदेशो को यथासमय मान लेते तो जो बुरे दिन हम देख रहे हैं वह न देखने पडते, जिस शुद्धि का विरोध जिन प्यारे भाइयो ने धर्म के नाम पर किया था वे ही आज उसी को हिन्दू सभ्यता के नाम पर जीवन मरण का प्रश्न समझ कर समर्थन करके हमारा साथ दे रहे है।

इस संसार मे बहुतसे लोग कानो के भरोसे जीते हैं लेकिन बुद्धिमान् लोग अपनी आखों का विश्वास अधिक करते है और यदि आखो की भूल हो तो उसे विवेक शक्ति से पूरा करते हैं अथवा करने को तैयार रहते है। हमारे महर्षि स्वामी दयानन्द ने १०५ वर्ष पहिले भारत की भावी दशा को देखा और उसके सुधार का उपाय सोच कर हमे बताया जब अनिष्ट का दुष्परिणाम हमारी आखो के सामने आया तब हमे कुछ होश हुआ, अब भी यदि हम हिन्दू (आर्य्य) स्वामी दयानन्द के जीवन को, उनके उपदेश को शुद्ध बुद्धि से मनन करें तो बहुत कुछ अपना बचाव कर सकते हैं।

क्या भारत का हिन्दू पुरोहित-मडल सारी बातों को देख कर भी न देखने का बहाना करता रहेगा और हमारे धर्म्म याचकगण भी इसी तरह की अधर्म नीति का अवलम्बन करते चले जायेंगे ? मुझे तो आशा है कि बहुत जल्द हिन्दू सभ्यता के लिये हमारे भाई आर्य्य समाज की सेवा को अपनायेंगे, उसका हाथ बटायेंगे और ससार को दिखला देंगे कि आपस मे थोड़े बहुत सिद्धान्त सम्बन्धी मतभेदो के होते हुए भी ओकार उपासकमात्र एक है, महर्षि का अभिनिर्माण पूरा होकर रहेगा सचाई की आकर्षणशक्ति वह विचित्र शक्ति है जिसका कोई प्रतिकार नही कर सकता, भारत से एक दिन वह बुराइया दूर हो जायंगी जिन्हे हम दूर करना चाहते थे लेकिन समय रहते जो हम उन्हे दूर करने के बदले उनका विरोध करके विलम्ब करेंगे तो उसके लिये हमको ही पछताना होगा, ऐसा न हो हमारी आगे आने वाली सन्तान हमे बुरे शब्दो मे याद करे और केवल इसलिये कि हमने एक सर्वश्रेष्ठ सुधारक की शिक्षाओ की अवहेलना की ।

दूसरी श्रेणी के दुराग्रही, हठी और स्वार्थ परायण लोगो मे से दुराग्रह और हठ जाता रहा इसकी जगह सन्देह ने ली इसलिये हमे स्वामी के उद्देश्य सिद्धि की आशा और दृढ होगई है, हाँ स्वार्थ एक ऐसी चीज है जो जल्दी ही मनुष्य का पीछा नही छोडता इसलिये मनुष्य को सावधान रहना चाहिये ।

कुछ लोग धर्म के रहस्यो को न जानते हुए भी एक सम्प्रदाय को खुश करने के अभिप्राय से धर्म के शिक्षक बन जाते हैं और ग्रन्थो के बिना पढे ही पंडित बनकर प्रलाप करने लगते है, ऐसे लोगो की दुर्नीति से हम तभी बच सकते हैं जब परम-पदारूढ महर्षि स्वामी दयानन्द की तरह अपने लिये अपनी बाहरी और भीतरी आखो को काम मे लावें । आर्य्य-समाज अहिन्दू धर्म्मों की भाँति अन्धविश्वास नही बनाता न किसी एक व्यक्ति का अन्धा साथी होना सिखाता है वह पुकार कर कहता है—

"सत्य को ग्रहण करने और असत्य के परित्याग के लिए सदा तत्पर रहो" ।



वीर दयानन्द

सुभाष विद्यालंकार

भगवान् दयानन्द के जीवन मे एक माधुर्य्यता की लहर प्रवाहित होती थी। जिस समय उनके सम्मुख मनुष्य अपने जीवन की कठिनाइयो की समस्याओ को हल करते देखते थे, उस समय उनकी आकृति से एक ज्ञानमय आभा प्रज्वलित होती थी। अपने अमूल्य विचारो द्वारा उन अन्धकारमय समस्याओ को, जिनमे जनता लिप्त थी, एक महान् प्रकाश द्वारा नष्ट करते थे।

उनका विशाल हृदय दीन अनाथो की दशा तथा निस्सहाय निर्धनों की अध — पतित दशा को देख कर सदैव ही अश्रुपात किया करता था। वे सदैव ही से उन्ही के लिये जीवित रहे, जिससे उनके हृदय की विशालता तथा दयालुता का भली प्रकार परिचय मिलता है।

निस्सन्देह वीरवर दयानन्द ने अनाथ तथा निस्सहाय अबलाओ के लिये निरतर अनन्य कार्य किये। वे अनुभव करते थे—जिस राष्ट्र मे स्त्री जाति का सन्मान नही होता वह देश कदापि उन्नत नही हो सकता। भारत मे मध्यकाल मे पुरुष स्त्रियों को पापमय और अपवित्र समझते थे। उस समय के धर्मान्ध उनको अपने सत्सग मे मिलाने तक मे कम्पित होते थे। ऐसे समय मे वीरवर दयानन्द ने मनुष्यो को पुन उनके प्राचीन सिद्धान्तों को वेद और स्मृति द्वारा जागृत किया और बतलाया कि सुख सम्पत्ति तथा उन्नति केवल उसी जगह निवास करती है जहा स्त्रियो की पूजा और सन्मान होता है। पौराणिक जहा स्त्री जाति को विद्या पठन-पाठन का अनाधिकारी बताते थे वहा वीरवर दयानन्द ने स्त्री जातिको सर्व प्रथम उच्च शिक्षा पाने का अधिकारी सिद्ध किया है। उस समय देविया समाजसेवा मे किसी प्रकार का भाग न लेती थी, उन्हीके प्रताप से माता भगवती देवी अपने जीवन को देश की देवियो के सन्मान उदार के लिये कर्त्तव्यक्षेत्र मे आगई।

उनके हृदय मे विधवाओ की अवस्था के प्रति इतनी करुणा थी कि प्राय वे दु:खित होकर नीरस भाव से कहा करते थे कि भारत के दु:खो का एक मूलकारण

निस्सहाय अबलाओं के मार्मिक हृदयो की वेदनाओं का शाप है।

निस्सहाय अनाथों के प्रति उनके हृदय मे सदैव ही स्थान था। वे केवल अनाथों के ही प्रिय नही थे वरन पाप-आत्माओ तथा अपराधियों के भी प्रिय थे। वीरवर के हाथ मे उनको विष देने वाले षडयन्त्रकारी के विरुद्ध प्रमाण थे, किन्तु वे अपराधी के विरुद्ध कोई कार्य करना अपनी भीरुता समझते थे।

वीर दयानन्द केवल मनुष्यमात्र के ही प्रमी नहीं थे वरन् प्राणीमात्र से प्रेम करते थे। वास्तव मे उनका यह आदर्श एक उच्च आदर्श है। वह भगवान् बुद्ध की तरह अहिंसा के प्रेमी थे, जैसा कि उनके एक पूना के व्याख्यान से पूर्णरूप से विदित होता है। पशु-हत्या के वे घोर विरोधी थे। "पशु यज्ञ मे उनकी बलि देना यहा केवल पाखडी ब्राह्मणो का षडयन्त्र है। मास खाना सर्वदा निन्दनीय तथा वर्जित है"।

महाराणा सज्जनसिंह उदयपुर नरेश को उन्होंने उनके राज्य से पशु-हत्या के बद करने के लिये बड़ी दृढ़ता से प्रेरणा की और महारानी विक्टोरिया को भी अपना मन्तव्य पशु-हत्या के बन्द करने के लिये तथा उनकी रक्षार्थ गोरक्षणी सभाओ की स्थापना और कृषि-विभाग की रक्षा की प्रार्थना की। धन्य है! उनकी विद्वत्तापूर्ण युक्तियों से आज भारत के पडितों और वेदज्ञाताओ के समाजो की गहरी निद्रा भग हुई। बड़े २ विद्वान् तथा धुरंधर पडित ऋषि दयानन्द की युक्तियों के सामने नतमस्तक होकर स्वीकार कर गये है कि किसी भी प्रकार की पशु-हत्या किसी धर्मादि उत्सव पर सर्वदा निन्दनीय है।

इस परिवर्तन के होने से जनता ने वीर की भूरि २ प्रशसा इस पाशविक अत्याचार को रोकने मे की है। समय था कि जब जनता अधकार और अज्ञान मे लिप्त होकर पशु-हत्या और नर-हत्या करती थी। रक्त के प्यासे देवताओ पर निस्सहाय निरापराधी बलि दिये जाते थे। यह जिन्होने आज से पहिले का इतिहास मनन किया है उन्हे भली प्रकार से विदित है।

आज कोई भी अच्छी पुस्तक ऐसी दृष्टिगोचर नही होता जहा कि ऋषि के विचार सम्मिलित न किये गये हो। भारत मे कोई भी ऐसा कृतघ्न प्रतीत नहीं होता जो आज वीर की इस महान् वीरता की प्रशंसा न करता हो।

धन्य हो, वीरवर धन्य हो!



आर्यों का महान स्थान टंकारा

स्वामी स्वरूपानंद सन्यासी

जहाँ दयानन्द ने जन्म लिया वह खास गाँव टकारा है।
शिवरात्रि जागरण किया जहाँ वह मदिर नदी किनारा है।
है वही शिवालाय शिम्भू का है वही प्रतिमा शंकर की।
था लिया मूल ने जन्म जहाँ वही भूमि कर्षनजी के घर की।।

है वही नदी डेमी जिसमे वह कूद कूद कर नहाते थे।
है वही पावन रजकण जिसमें वो लोट लगाते थे।।
थे रहे विचरते दयानद वही है अति पावन स्थल।
की अगणित मनहर क्रीडायें हंस हँस सरके घुटनो के बल।।

है वही गली बाजार नगर जिसको तज करके मूल गया।
सच्चे शंकर के दर्शन हित पित मात बन्धु को भूल गया।।
है धन्य यहाँ के पुरवासी है धन्य छात्र विद्यालय के।
है धन्य स्वजन वह ऋषि भक्त जिन दर्शन किये महालय के।।

वह बडे भाग्यशाली समझो टकारा नगरी आये हैं।
ऋषि दयानद की जन्मभूमि के दर्शन कर हर्षाये हैं।।
यह तप. पूत ! शुचि क्रान्ती दूत की जन्म भूमि टंकारा है।
उस महामहम ने जन्म लिया वह महानस्थान हमारा है।।



शिव-रात्रि

देवेश

तीन सौ पैंसठ अरो की काल-चक्री घूमती है,
आर्यों ! देखो जरा शिव-रात्रि की पहचान कर लो ।।
यदि समय की तीव्र गति से दृष्टि धूमिल हो गई तो,
होय जब निज आत्म-बोधन दिन वही अनुमान कर लो ।।

समय का घोडा सटा सट दौड़ रहा अबाध ग[illegible] से;
चढो इसकी पीठ पर गति से, धृति से और सुमति से;
ध्यान यदि बंट जायगा दुनिया की माया और विषय मे;
गिर पडोगे फिसलकर मन दृढता से संधान कर लो ।१।

त्याग-तप द्वौ चक्र है इस साधनामय विजय रथ के;
मग्न होकर भ्रष्ट होगा मार्ग में ही बिना सत् के;
क्यो पदों के चक्करों में मान-मर्यादा मिटाते,
ऋषि ने जो सूत्र बतलाया उसी का गान कर लो ।।२।।

कथनी और करनी मे आर्यो ! गहरी खाई बन गई है;
'इदन्नमम' का पाठ केवल शृंखला सी तन गई है;
था दयानन्द ने न कोई पद संभाला संस्था का;
सच्चे अनुयायी बनो और इस तरह प्रधान वर लो ।।३।।

भाई-भाइयों मे परस्पर द्वेष दावानल जला है;
धर्म की देवी है रूठी असुर दल का बल पला है,
संगच्छध्वं संवदध्वं'' सूत्र हमने है भुलाया;
दुनिया लखकर हँस रही है कुछ इसी का मान कर लो ।।४।।

चले थे हम मिटाने अंधकार युग की रूढ़ियां;
फंस गये हैं स्वयं ही पग में पहन ली बेड़ियां;
आप ही सो गये फिर क्या दूसरों को जगायेंगे ?
उठो! जागो! बोध-रात्रि आई कुछ तो मान करलो ।५।

वैदिक धर्म के परिपेक्ष्य में मद्यनिषेध

राजेन्द्र शंकर भट्ट

ऐसा लगता है कि जब से मनुष्य मे विवेक का विकास हुआ, सभ्यता सगठित हुई तथा सस्कृति को सुचारू रूप देने की चेष्टाएं हुई, सुरापान को हेय दृष्टि से देखा गया है, उसकी वर्जना की गई है।

वर्जना उसीकी की जाती है जो व्याप्त होता है। वेदो मे प्राप्त उल्लेख से यह स्पष्ट होता है कि जब वेद लिखे गये, और उससे भी पहले, सुरापान प्रचलित हो गया था।

इस पर विचार किया गया कि सुरापान शुभ है या अशुभ। सुरापान के जो भी परिणाम होते थे वे सबके सामने थे। इनको ध्यान मे रखते हुए ऋग्वेद मे आया है

पाप अपनी खुद की गलती से तो होता ही है, यह क्रोध, भ्रम, धूतक्रीडा, सुरापान आदि से भी प्राप्त होता है।

कभी कभी बडे भी छोटो को कुमार्ग पर चलाते है, कभी कभी स्वप्न मे भी पाप की उत्पति हो जाती है।'

इस मत्र की रचना स्वत सिद्ध करती है कि तत्कालिक स्थिति, उस समय व्याप्त व्यवहार और क्या उचित होगा इसका निरूपण बहुत सोच-सोचकर किया गया है।

पाप उस समय बढा होगा। उसकी रोकथाम के साथ-साथ यह विचार भी आया होगा कि पाप किया क्यो जाता है ? विचार-विनिमय और चिन्तन के उपरान्त समाज इस निश्चय पर पहुचा कि प्रमुख रूप से क्रोध, भ्रम, जूआ और सुरा से पाप फैलता है। तर्क और तथ्य दोनो सामने है।

चिन्तन और भी आगे गया। एक ओर सदा कहा गया है कि बड़ों की आज्ञा मानो, वे जो रास्ता बतायें उस पर चलो, परन्तु जहा तक पाप फैलने की बात है उस समय ही स्पष्ट हो गया था कि कभी-कभी बडे भी छोटों को पाप के रास्ते ले

जाते हैं। अर्थात् यदि बडों को क्रोध करते, भ्रम मे फंसते, जूआ खेलते और सुरापान करते देखा जाये, उनसे उसकी प्रेरणा मिले, तब भी इन बातों से बचना चाहिये, तभी समाज पाप से बच सकता है।

अपने घर मे, समान स्तरीय समाज मे, चाहे न हो, लेकिन अन्य वर्गों मे, ऐसे वर्गों मे जो आगे बढे और सम्पन्न हो गये मालूम देते हैं, कुछ बातें ऐसी होती रहती हैं कि लोग उनके सपने देखने लगते हैं, उनकी उत्कट कामना करने लगते हैं। इनमे वे बातें भी आती हैं जो पाप का कारण बनती हैं। उनके प्रति भी सावधान किया गया है, दूसरो की देखा-देखी या उनके मौज-शौक की कल्पना करके भी पाप-कर्म नही करना चाहिए।

ऋग्वेद ही मे और स्पष्ट किया गया है—

'कवियो ने सात मर्यादाए बनायी है। उनमे से एक को भी लाघा कि पापी हुआ।'

मर्यादा का अर्थ होता है मनुष्यो को खा जाने वाली, अतएव वर्जित बातें। मनुष्यो को खाने मे उनके शरीर का ह्रास और उनमे मनुष्योचित गुणों का ह्रास दोनों समाविष्ट हैं—दोनों से बचे बिना जीवन का विकास और अभ्युत्थान नहीं हो सकता। इसलिए इ गित किया गया है कि पाप से बचने के लिए, जीवन को पापपूर्ण बनाने से अपने को रोकने के लिए, वे सात वर्जित व्यवहार नही करने चाहिये जो उस समय भी सुस्पष्ट रूप से स्थापित हो गये थे, मंत्र मे उनको गिनाने की आवश्यकता नही समझी गयी।

सभी भाविष्यकारों ने 'निरुक्त' के आधार पर सात मर्यादाओं की गणना इस प्रकार की है—

१. सुरापान २. जूआ ३. व्यभिचार ४. मृगया ५. कठोर दण्ड ६. कठोर वचन ७. मिथ्या दोषारोपण।

वर्जित व्यवहार मे सुरापान को सर्वोपरि स्थान प्रदान करके दोनों बातें स्पष्ट कर दी गयी हैं—सुरापान अधिक प्रचलित था यौर सुरापान सबसे अधिक वर्जन योग्य है।

जैसे-जैसे समय आगे बढा समाज मे वर्गभेद बढता गया। वेद में जो कहा गया है वह सबके लिए, मनुष्य मात्र के लिए है।

मनुस्मृति में उच्च वर्ग, दिव्ज का ध्यान अधिक था। उसमें कहा गया है—

'द्विज यदि अनजाने मे वरुणी (शराब) पी ले तो पुनः संस्कार द्वारा शुद्ध हो सकता है, परन्तु जानबूझकर शराब पीने से तो मरणान्तक प्रायश्चित्त से ही शुद्ध हो सकता है।

'जानबूझकर व्यसन के रूप मे द्विज यदि सुरा पी ले तो जलती हुई (अग्नि के समान) सुरा पीकर अपने शरीर को जला देने पर ही पाप-मुक्त हो सकता है।'

इसका अर्थ यह हुआ कि जानबूझकर शराब के लिए आदत पडने पर वह तभी छूटती है जब उसके पीते-पीते शरीर उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे अग्नि से नष्ट होता है।

ये कथन इतने स्पष्ट है कि इनकी व्याख्या के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नही रहती। परन्तु वेदो मे एक शब्द और आया है, 'सोम', जिसके अर्थ अपनी तरह कर के कई लोगों ने सुरापान को वाँछित मान लिया है।

वेद अत्यन्त प्राचीन ग्रथ हैं। उनके सब शब्दो के अर्थ सरलता से नही समझे जा सकते। फिर वेदो ही मे 'सुरा' और 'सोम' शब्दो का अलग अलग व्यवहार हुआ है और सुरा का वर्णन असंदिग्ध रूप से किया गया है। सोम का उल्लेख करके सुरा, अर्थात् शराब, का सेवन और प्रचलन स्वीकार्य नही सिद्ध किया जा सकता। सोम वैदिक वाँग्मय का एक अनेकार्थवाची शब्द है।

'सोम' शब्द वेदो मे निम्न अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है. ब्रह्म, आत्मा, सुपेय, स्नेह, रस, संसार, प्रेम, भक्ति, औषधि, ज्ञान, ज्ञानी, भक्त, योगी, यज्ञ, ऐश्वर्य, चन्द्र, लोक, वायु, प्राण, स्तुति, युग, शिष्ट, राष्ट्र, राजा, वीर्य, आनन्द, अन्न, अमृत, पेय, हर्ष, सौन्दर्य, प्रजा, सखा, जल और गोदुग्ध।

प्रत्येक का अपना अपना सोम कहा गया है। किसी को सोम पति है। किसी का सोम पत्नी है। किसी का सोम पुत्र है। किसी का सोम शिष्य है। किसी का सोम सूर्य है। किसी का सोम उषा है। किसी का सोम सखा है। किसी का सोम पेय है।

पेय सोम भी दो प्रकार के माने गये है, माया सोम और 'ब्रह्म' सोम। ऋग्वेद मे स्वीकार्य सोम का स्वरूप स्पष्ट रूप से वर्णित है।

'जो मुझे न तमकाये, न नशा लाये, न थकाये और न तन्द्राये, न खुमार लाये, न अलसाये, मेरे लिये जो तृप्ति करे, जो (ज्ञान-विज्ञान-शक्ति) दे, जो निर्बोध कराये, सदा बोधमुक्त रखे, जो आभाओ सहित मुझे सोम निष्पादक भक्त के समीप आये, ऐसे 'सोम को मत निष्पादन करो'—ऐसा हम नही कहें।'

भेद को और भी स्पष्ट करके ऋग्वेद ने बताया है—

'पीने वाला उसी को सोम समझता है जिसे लोग सोमलता-औषधि को पीसकर बनाते हैं। परन्तु ब्रह्मज्ञानी जिस सोम को जानते है उसका संसारी मनुष्य सेवन नहीं कर पाता है।'

वेदानुयायियों का आदर्श वाक्य है —'पाप्मा हतो न सोमः,' पाप मरे, सोम नहीं। इस सूक्ति मे सोम शब्द का प्रयोग पाप के विरोधी अर्थ मे हुआ है। पाप का विरोधी अर्थ है धर्म। सोम इस तरह धर्म के स्तर पर पहुंच जाता है। एक सूक्ति मे आया है—'अपने सोम की रक्षा कर।' जो कुछ पाप है उसकी रक्षा का प्रतिपादन नही किया जा सकता था। ऋग्वेद मे सोम को अमृत कहा गया है—'हमने सोम पी लिया है, हम अमृत हो गये है।' हमने ज्योति प्राप्त कर ली है। हमने दिव्यता प्राप्त कर ली है।' ऐसे पेय को 'सुरा' का पर्याय नही कहा जा सकता। 'श्री ज्योति सोम.', श्री और ज्योति जिसमे हो वह सोम है।

सोम खो जाने का नही, सोजाने का नही, जागने का और आगे बढने का पर्याय है—जो जाग गया उसके प्रति वह सोम कहता है, 'मैं तेरे पास नियुक्त हू।'

यह नियुक्त कौन होता है? 'वेदो मे अप्राप्य, दुस्तर सोम को पवित्र मे उडेल। इन्द्र के लिए, पवित्र को पवित्र कर।'

सोम को कितना ऊंचा, अप्राप्य अंकित किया गया है। फिर यह भी निर्धारित किया गया है कि यदि वह प्राप्त हो जाये तो उसका अधिकारी वही है जो स्वयं, स्वत, पवित्र है। 'इन्द्र' भी यहां ध्यान देने योग्य शब्द हैं, इंद्रियो के स्वामी को इन्द्र कहा गया है, न कि इन्द्रियो के वशीभूत होकर इन्द्रियो को वश के बाहर करने वाले को।

प्रत्येक समाज मे, प्रत्येक समय मे, ऐसे व्यक्ति होते हैं जो परिस्थितियो से परास्त होकर पतित हो जाते हैं और पतन के पथ पर, पाप के रास्ते पर, चलने को मजबूर होते हैं। वातावरण और अवस्था विशेष मे बडे से बड़े और अच्छे से अच्छे व्यक्तियों का पतन हुआ है, और हो सकता है। वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थ इस बात का प्रमाण हैं, इस बात का भी कि समाज को पाप से बचने की प्रेरणा सदा से मिलती रही है, और पापों मे सुरापान को सर्वोपरि स्थान प्राप्त रहा है।



शिवरात्रि

—पूर्णचन्द, एडवोकेट

महर्षि दयानन्द को बोध हुआ कि शिवरात्रि को ईश्वर के स्वरूप और उसके चिन्तन व पूजा-विधि के सम्बन्ध मे जो पाखण्ड अर्थात् वेद विरुद्ध बाते प्रचलित हो रही है उनका निराकरण अवश्य होना चाहिए और जब उनके हृदय मे इस प्रकार की पवित्र भावना उत्पन्न हुई तो उन्होने गृह त्याग किया देशाटन किया, योगियो की तलाश की और अत मे उनका सम्पर्क गुरु विरजानन्द से हुआ और उनसे शिक्षा मिली और दीक्षित हुए और इनकी ये धारणा दृढ हुई कि बिना वेदो के ज्ञान प्राप्त हुए, ईश्वर सम्बन्धी सही ज्ञान प्राप्त नही हो सकता और बिना ईश्वर के स्वरूप को ठीक रूप से समझे न मानव का निर्माण हो सकता है न राष्ट्र का और इसलिए उन्होने वेदो को अपने सारे कार्य का आधार बना लिया और वेदो का प्रचार विधिपूर्वक करने का निश्चय कर लिया। ईश्वर की कृपा से उनको ऐसा परिपक्व ज्ञान प्राप्त कि उन्होने गुरु विरजानन्द से दीक्षित होकर अपने गुरु के नाम को भी, उज्जवल और जग विख्यात कर दिया। उन्होने वेद प्रचार का बीडा उठाया और १८६८ के लगभग धर्म प्रचार आरम्भ किया और ॐ की पताका फहराई। उन्हे ये अनुभव हुआ कि जब तक भारतवर्ष के निवासियो के अदर से भ्रम-मूलक विश्वास और प्रथाये नही निकल जायेगी उस समय तक वेद के असली ज्ञान का प्रभाव उन पर नही पडेगा अभी उन्होने पाखण्ड खण्डिनी पताका लगाकर प्रचलित वेद विरुद्ध बातो का खण्डन भी अपने प्रचार का अ ग बना लिया।

और ७-८ वर्ष तक अकेले ही प्रचार करते रहे। इसी अवधि मे उनको ये ज्ञात हुआ और उनका ध्यान भी आकर्षित हुआ कि जिस प्रकार महर्षि प्रचार कर रहे है उस प्रचार की प्रणाली को स्थाई रूप देने के लिए कोई विधि होनी चाहिए और इस निमित्त उनका आर्य समाज की स्थापना की ओर ध्यान गया। आर्य शब्द प्रमुख है श्रेष्ठ सज्जन सदाचारी ईश्वर-पुत्र आर्य कहलाता है। वैदिक धर्म का उद्देश्य मानव को आर्य बनाना है और इसी का प्रचार करना है। आर्य शब्द बड़ा

विचारणीय है जब आर्य समाज के संगठन का या आर्य समाज के निर्माण का प्रश्न उनके सामने आया तो उन्होंने वेदो के आधार पर प्रजातन्त्र प्रणाली को अपनाया। जब उन्होने प्रचार आरम्भ किया था तो धर्म के क्षेत्र मे महन्त थे गद्दिया थी परन्तु कोई ऐसी विधि नही थी जिसमे श्रद्धा के साथ तर्क का भी समावेश हो सके और शक्ति एक मे केन्द्रित न हो। सबको सहयोग का अवसर मिले। उन्होने प्रजातन्त्र को अपनाया परन्तु अपने वेद ज्ञान का परिचय देते हुए ये प्रतिबन्ध लगाया कि समाज मे सम्मति का अधिकार केवल सदाचारी को होगा। उस समय तक किसी भी राजनीति की पुस्तक मे सम्मति को सदाचार से नही जोडा हुआ था। वेदो मे और मनु स्मृति मे सदाचार पर स्पष्ट रूप से बल दिया गया है। महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास मे बडे स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि जिस मनुष्य ने उसकी आत्मा इतनी बल युक्त नही है कि वो ईश्वर के आदेश की ओर ध्यान न देकर मन इन्द्रियो के प्रभाव मे आ जाय तो स्वतन्त्रता का अधिकारी नही है। उन्होने अनुशासन पर बहुत बल दिया है और शासन की सफलता का आधार इसको माना है। आरम्भ मे आर्य-समाज मे उन्होने प्रवेश किया जिन पर महर्षि के प्रचार भी अभी सभाओ मे मुकदमे बाजी आदि त्रुटिया प्रचलित हो गई और दशा दिन प्रतिदिन चिन्ताजनक होती गई। आर्य समाज की सस्थाओ पर भी इसका बडा बुरा प्रभाव पडा जो सबको विदित है। ऋषि बोध के अवसर पर मै अपने आर्यसमाज के साथियो से अनुरोध करूगा कि वो अपने ऊचे लक्ष्य अर्थात् सारे जगत को आर्य बनाने का उद्देश्य सम्मुख रखे। प्रचलित चिन्ताजनक दशा को समाप्त करने के लिए, कटिबद्ध हो जाये। इसकी विधि यह है कि सघर्ष समाप्त किया जाय। जो महारथी २५-३० वर्ष से अधिकारो के चक्कर मे है उन्हे अब आराम दिया जाय। उनका अभिनन्दन करके उन्हे प्रबन्ध से छुट्टी दी जाय और केवल प्रचार के कार्य मे लगे रहने की प्रार्थना की जाय।

मैं आर्यसमाज का एक बडा पुराना सेवक हूं ६७ वर्ष पूर्व प्रवेश किया था। इसमे ५० वर्ष तो निर्वाचनो मे ही व्यतीत हुए अपनी सामर्थ के अनुसार सेवा भी की है। अब मैं एकान्त मे बैठा हुआ अपनी त्रुटियों की ओर ध्यान करता हू। किसी की आलोचना नही। आर्यसमाज के उत्थान के लिए क्षमा याचना करता हुआ आर्य-समाज के कर्णधारो से अनुरोध करता हूं कि वो ऐसी विधि बनायें कि निर्वाचनो के झगडे समाप्त हों सेवालक्ष्य सामने आये। यही ऋषिबोध दिवस मनाने का उद्देश्य है इस पर ही ध्यान देना चाहिए।



गीत

रमेश सोनी, "मधुकर"

जग की रीत, परख ले प्राणी ! जप ले शभू-भवानी ।
फूलो की इस रजधानी मे, मीठा जहर·······जवानी ।।
करनी-भरनी के दर्पन मे,
देख रहा तू सपना,
रग बिरगी इस बगिया मे,
कोई न पछी अपना,
साँसो की बहती सरिता मे ।
हँस, न कर······मनमानी ।।
प्राणो की चचल पूनम को,
राहू, केतु, · ··डसेगा,
सुन्दरता पर गर्व न करना,
मरघट व्यग कसेगा,
मौन के घर गिरवी होगी ।
हीरा, सी जिदगानी ।।
जीवन के पृष्ठो पर लिक्खी,
आँसू भरी कहानी,
तन, पीतल, से उड जायेगा,
सोने सा ये······ ··पानी,
अ गारो की सेजो पर है ।
बूँदो सी मेहमानी ।।
जनम-मरण, की आँख मिचौली,
उमर चुरा ले जाती,
कभी जगाती कभी सुलाती,
ऐसा रास, रचाती,
समय अ गूठी मे जडता है ।
प्रीत की सिर्फ निशानी ।।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत

प्रि० अमर नाथ शर्मा

शिवरात्रि के पर्व के महत्त्व को हम सब भली प्रकार जानते हैं। यह वही रात्रि है जबकि महर्षि स्वामी दयानन्द सतर्क होकर जागते रहे और सच्चे शिव को प्राप्त करने की प्रेरणा पाई। शिव के अन्य सभी भक्त बारी बारी से सो गये परन्तु जिज्ञासु मूलशकर जागता रहा—क्योंकि वह जानता था कि किसी वरदान को प्राप्त करने अथवा प्राप्य वरदान को समझने के लिए सचेत होकर जागना पडता है।

हम सभी त्योहार जागकर ही मनाते है। प्राय त्योहार दिन मे आते हैं जैसे रक्षा बन्धन दशहरा आदि। रात्रि को मनाये जाने वाले त्योहारो—जन्माष्टमी, दिवाली आदि को मनाने के लिए भी हमे जागना पडता है। कुछ भाई अपनी इष्ट देवता को मनाने के लिए जगराता करते हैं। स्पष्ट हुआ की वरदानों को पाने के लिए जागना अनिवार्य है साथ ही अपनी बुद्धि को भी सचेत रखने के लिए जागने की आवश्वयकता है।

कठोपनिषद् का वाक्य है—उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत। अर्थात् उठो जागो और जो वर तुम्हे प्राप्तव्य है उन्हे जानो। बात स्पष्ट है कि किसी वरदान को प्राप्त करने के लिए उठते हुए जागने की आवश्यकता है। प्रात काल यदि कोई चाय का प्याला हमारे बिस्तर के पास रख दे तो उसको पीने के लिए भी हमे जागना और उठना पडता है। सोये सोये हम इस छोटे से वरदान को भी न जान सकते हैं और न प्राप्त कर सकते हैं। बिना उठे जागने का कोई अर्थ नही। यदि कोई व्यक्ति बिस्तर मे लेटा रहे और आंखे भी खुली हो, लेकिन उठे नही तो ऐसी अवस्था मे वह कोई काम नही कर सकता। कोई वर प्राप्त नही कर सकता। इसी प्रकार कई व्यक्तियों को एक ऐसी बीमारी होती है जिसमें कि वे नींद मे ही चल

पढते हैं और कई बार तो वे मीलो का चक्कर काटकर फिर अपने बिस्तर पर आ जाते हैं। यदि उनसे इस घटना के बारे मे कुछ पूछो तो वे कहेगे कि हमे कुछ पता नही। ऐसा व्यक्ति उठ तो जाता है परन्तु जागता नही है। उपनिषद् इस बात को स्पष्ट कर देता है कि हमे अपनी उपलब्धियो के लिए उठने और जागने दोनो की आवश्यकता है। स्वामी दयानन्द रात भर जागे और उठे भी रहे इसलिए उन्होंने वह महान बोध प्राप्त किया जो आज कल न केवल हिन्दू जाति का ही अपितु सारे ससार का मार्ग दर्शन करता रहा है और सदा करता रहेगा।

जब हम अपने प्राप्य वरो को नही जान पाते तो हमारी स्थिति उस मृग की भाँति होती है जो कस्तूरी की सुगन्ध से मुग्ध होकर उसको पाने के लिए निरन्तर दौडता रहता है किन्तु नहीं जानता कि यह कस्तूरी उसकी अपनी ही नाभि मे विद्यमान है। उपनिषद् का उपर्युक्त वाक्य हमारे लिए उपाय प्रस्तुत करता है कि हम उठकर और जाग कर अपने प्राप्त वरो को समझे।

किसी वस्तु के ज्ञान को हम प्रकाश की सज्ञा दे सकते है। हमारी अनभिज्ञता अन्धकार के समान है। अत ज्ञान प्राप्ति के लिए हमे मानसिक अंधकार से प्रकाश मे आने का प्रयत्न करना पड़ेगा। इसलिए वेद कहता है तमसो मा ज्योतिर्गमय। अर्थात् हम भगवान् से प्रार्थना करते है कि वह हमे तम अथवा अंधेरे से ज्योति अथवा प्रकाश मे लाये। सभी प्राणियो का सरल स्वभाव है कि वे प्रकाश मे आना चाहते हैं। रात्रि समाप्त होने के बाद सूर्य जब उदय होता है तो पशु पक्षी और इसी प्रकार मनुष्य अपने अपने स्थानो को छोडकर उठ खडे होते है। उस समय वे उठते और जागते हैं तभी अपने प्राप्य वरो का ज्ञान कर पाते है।

गीता मे तीन प्रकार की वृत्तियो का वर्णन आया है। सत्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक वृत्ति वाला मनुष्य पूर्णतया जागरूक तथा विवेक शील होता है। राजसी वृत्ति वाले व्यक्ति मे कोई अधिक विशेषता नही होती वह अपने जीवन को साधारणतया ही बिताने का प्रयत्न करता है। इनके विपरीत तामसिक व्यक्ति का सोचने का ढग अधकारपूर्ण होता है। वह करने योग्य कार्य को न करने योग्य और न करने योग्य को करने योग्य समझता है। यह स्पष्ट है कि संसार का कोई प्राणी जानबूझ कर अंधेरे मे नही रहना चाहता। तमसो मा ज्योतिर्गमय का पाठ हमे स्फुरित करता है कि हम भगवान् से वरदान मागे कि अन्धकार से प्रकाश मे आ सकें। अज्ञान का त्याग तथा ज्ञान को प्राप्त कर सके। उपनिषद् इससे आगे हमारा मार्गदर्शन करता है कि हम विवेक शील होते हुए उठें, जागे और अनेको वर जो हमे स्वत उपलब्ध हैं उनको भी जानने और पहचानने का प्रयत्न करे।

बालक मूलशकर ने 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का अनुसरण शिवरात्रि को 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' के समन्वय से करने का प्रयास किया। इसी लिए इस प्रयत्न ने मूलशकर को स्वामी दयानन्द बना दिया। आओ शिवरात्रि के इस पावन पर्व पर हम भी व्रत ले कि हम अपने जीवन मे सदा उठे हुए जागते रहेगे और भगवान् से प्रार्थना करते रहेगे कि वह हमे अधेरे से प्रकाश की ओर लाये। यदि हम अपने जीवन के कुछ क्षण इस मूल मन्त्र पर केन्द्रित कर सके तो कोई कारण नही कि स्वामी दयानन्द की भाति हम भी अपने प्राप्यवरों को समझते हुए अपने जीवन को सफल न बना सकें।

त्व नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि।
त्व न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित्।
ऋ० ८।४५ (६६) १४

हे भगवन्! हमे तू इस दुर्बुद्धि और भिक्षावृत्ति के निन्दित कर्म से बचा। तू ही हमारा रक्षक है, अपने विचित्र ज्ञान से हमे युक्त कर, हे परम बल शालिन्! तू सन्मार्ग का ज्ञाता है।

The Pioneer Liberator

Surai Bhan

Swami Dayananda Saraswati was a profound scholar of the Vedas, a bold social refromer and, above all, a great patriot In modern times, he was the greatest and noblest among the first generation of our patriots It was he who first dreamt of the redemption of his country from the foreign yoke His heart bled at the miserable plight of his countryment and his anguish finds full expression in the following words ·

"Due to misfortune as well as idleness, vanity and mutual animosities, let alone the possibility of their ruling over other countries, even in India itself the Indians are not having their undivided independent, free and fearless government Whatever there is, smarts under the feet of foreigners !' He further says, "The causes of foreign rule in India are mutual feuds, differences in religion, want of purity of life, lack of education, the neglect of learning and other malpractices It is only when brothers fight among themselves that an outsider poses as an arbiter '

Dayanand was very unhappy at the subjugation of his countr, and he often brooded over the causes that led to it "In this world of God," he says "the domination of the proud, the unjust and the ignorant does not last long It is the natural tendency of the world that excess of walth beyond the limit of utility engenders, idleness, inactivity, jealously, hatred, licentiousness and stupidity "

Swami Dayananda's wail is somewhat similar to Niccolo Machiavelli's, who in 1913 wrote in the "Prince" about Italy in these words, "Our country left almost without life, still wants to know who it is that will heal her bruises, put an end to the devastation and plunder of Lumbardy and heal those wounds of hers which long neglect has changed into running sores O, God send someone to rescue her from the barbarous cruelties and opressions" But Swami Dayananda did not invoke divine intervention nor did he provoke people He went deep into the causes of their downfall He would not admit that it was a freak of fortune. He would not believe that the just and kind God who had in the past showered his choicest gifts on Indians could be so fickle, unkind and unjust as to snatch away, without cause all that glory and reduce them to such a sorry state The ancient Aryans did not rise without cause and the present Hindus did not fall without cause The difference lay in their character

CHARACTER

Here Swami Dayananda has drawn our attention to a great political truth The cause of the downfall of India was not the foreign invasion but the weakeness in the character of the people themselves. In the sixth chapter of magnum opus the "Satyarth Prakash," he has given a general outline of the principles of politics This holds good universally He stressed the importance of character which, according to him, is the beginning and the end of all politics Political progress is impossible without moral foundations The character of the individuals who compose a nation is the real foundation on which the super-structure of political uplift can be laid How one wishes our present political leaders could understand the significance of Dayananda's noble ideas of polity The disqualifications for administrators in Dayananda's view are qualifications today and our private lives seem to have nothing to do with our public duties Mahatma Gandhi based his politics on Truth and Dayananda preached the same, half a century before him The Mahatma believed Brahmacharya to be a national necessity and called the movement for Swarajya, a movement for self-purification. According to him, untouchability was a beinous crime and caste system a curse All these things Dayananda advocated

before the Indian National Congress came into being A burning sense of patriotism breathes throughout his words and deeds He passionately cherished the desire to see his country emacipated and take its rightful place in the comity of nations He went into rapttures over the ineffable beauty and greatness of India "This land of Aryavarta has not its equal in the whole world It has earned the name of Swarn Bhumi, the land of gold, since it has ever been producing gold and other precious treasures The Aryans were attracted to this land in the morning of the world, by its wealth The land has earned the unstinted praise of all people in all ages and has attracted race after race over the centuries Men have fabled of the philosopher's stone which converts base metal into gold but India has been a veritable philosopher's stone, as her mere touch has enriched many poorer nations All the great emperors of the world from the day of creation to that of Mahabharata have been of Aryan race, but now, alas, their descendants are groaning under foreign domination "

Swarajya

Foreign rule thus weighed heavily upon his mind and often he referred to political slavery as the mother of many a national drawback. He used the word Swarajya long before it was used by the great patriots, Dadabhai Naroji and Tilak. How significant is the passage in the Satyarth Prakash, "Say what you will, the indigenous native rule is by far the best A foreign government, howsoever beneficent, can never make the people perfectly happy " He thus indirectly and imperceptibly infused patriotic feelings among the people without becoming a professional politicians He did not evince any interest in the current politics of the country Wisely and intelligently he avoided entanglement in politics of any sort for he was sure that would hinder the work he had taken in hand By temperament and training he had a dislike for active politics and did not believe in preaching sedition. He confined himself to an expression of his concepts of polity and government in his works He derived his political concepts from works of Indian polity written duing the Vedic period He was one of the very few Indian thinkers of the nineteenth century who evinced keen interest in the theories of government The Indian Council Act of 1861

did not at all satisfy the people's aspirations about having a say in the government of their country It was natural for a patriot like Dayananda to voice the disapproval, howsoever, indirectly and feebly of this mere shadow of self-government In 1857 he made a speech in which he asked the Rajas of Rajasthan and other places to base their art of government on the highest ancient Indian traditions

Swami Dayananda had no cut and dried notion about the form of government suitable for his country He laid more emphasis on essence than on form His political views were imbued with a spirit of democracy He says in one of his books, "People should always see that their country is administered not by a single individual but by councils No single individual should be vested with absolute power The King who is the President of the Assembly and the Assembly itself should be interdependent on each other. Both should be controlled by the people who in their turn should be governed by the Assembly"

Distinction has often been made between good government and self-government As stated above, Swami Dayananda regarded foreign rule, howsoever good it might be, as undesirable and something to be shunned Foreign rule, according to him, kills initiative and cripples the development of the people It makes them indolent, inactive static and unprogressive The British governed India well, and did many a good thing for the country But the fact remains that they had demoralised the people of India and dwarfed the soul of India Instead of being active workers the people had become passive receivers and had developed a beggarly attitude. Dayananda wanted his countrymen to shed ease and slavery and take to struggle to save their honour Peace and order are charming slogans but they are to be welcomed only if they are compatible with the growth of a nation.

Swami Dayananda was a patriot to the backbone. He saw that India was in chains and wanted to liberate her. But he did not lose sight of the goals before the entire humanity A humanist as he was he had sympathy for the whole world He established the Arya Samaj not for India and Indians alone but for the whole

world His political teachings were of a cosmopolitan character The sixth chapter of the Satyarth Prakash in which he has described his political views is universal in outlook He did not want India to be a slave to any country nor did he want any other country to be a slave to India There is a reference to the 'Chakravarti Rajya" in his book which by no means should be construed as 'Imperialism' Imperialism means the subjugation of the whole world by one nation But Swami Dayananda wanted all nations to be independent, with a world agency to check one nation from exploiting another This makes it abundantly clear that Dayananda was ahead of other political thinkers and his views were in consonance with the aims and objects of modern world agencies aiming at justice and peace among nations

Swadeshi

Dayananda was an ardent advocate of Swadeshi It was he who first thought of Swadeshi goods and through his lectures and books propagated the use of Swadeshi cloth, footwear and other articles of daily use At Wazirabad, Swamiji asked for a knife and when a knife of foreign make was brought to him, he was unhappy and said that it was a pity that at Wazirabad where cutlery was an important industry, they could not supply him a knife of indegenous manufacture Is it not a proof positive of Dayananda's love for his country and country made goods ? Swami Dayananda also believed that a country could not progress unless its people extended their business and political connections with other countries He writes in the Satyarth Prakash, "The ancient Indians used to go abroad in all parts of the world for the purpose of trade, travel or on political missions Those who do not hesitate to go abroad increase their trade and augment their political power, become fearless and bold and attain great power and prosperity by combining the good qualitiles of foreigners and rejecting their faults " He was thus a great believer in foreign travel and international trade "Let those who go abroad remember that religion dwells in the heart and soul of man, and if they would remember this, no harm would come to them merely by going to foreign lands "

Education

Dayananda's vision and patriotism are fully reflected in his

educational conceptions also According to him, "Education augments learning, culture, rihtecousness and self-control and dispels ignorance and other faults" He was an advocate of compulsory education for the children of a particular age-group in the sixties and nineties of the nineteenth century when the masses were steeped in ignorance and the people in general were illiterate His views on education were thus radical and wise He stressed the need of technical education In one of his letters he suggested that a few persons could be sent to Germany to get technical education In another letter he wrote that he felt the need of technical schools as a solution for unemployment He was, thus, fully aware of the importance of education in the national awakening of the country. He used to state in his lectures that it was due to the lack of knowledge and proper education that the country was enslaved. Rightly he emphasised the importance of Sanskrit and wanted Sanskrit Pathshalas to be run on the lines of ancient Gurukulas, away from the dine and bustle of cities He was not opposed to English education but he was of the view that without the study of Sanskrit, the people of India would be anglicized and they would be cut off from their native moorings He felt that Sanskrit being the oldest language of the world possessed the richest literature and was the repository of all knowledge and, therefore, ought to be studied by every Indian He thought that after studying the Sanskrit language, Indians would not remain enamoured of English culture and literature He was not against studying the English language. He himself at one stage in 1876 tried to learn English from a Bengali gentleman named Benmali. At the request of Keshav Chandra Sein he shifted his emphasis from Sanskrit to Hindi, because it was a very easy language, and was spoken and understood by a vast majority of people in the country He was the first Indian who advocated the adoption of Hindi as our national language

Hindi

He even got prepared a memorandum which was to be presented to Queen Victoria with the request that only one script viz. Devanagri should be declared as the national script of India, and that all the regional languages be required to adopt this script. Dayananda cleared the path for future administrators of India by

the proposal that all Indian students should acquire a working knowledge of at least one other Indian language besides their mother-tongue. Thus, Dayananda may be called the pioneer of the Three Language Formula which is now the declared policy of India. He wrote his monumental "Satyarth Prakash', in Hindi and he strongly advocated Hindi to be adopted as the lingua franca of the country But he was not insular in his outlook and did not wish the study of English to be neglected Thus, Dayananda was the precursor of Mahatma Gandhi If Hindi has come to be adopted as the national language of free India, it is because of Dayananda's advocacy of this language far back in the last century He laid it down as the duty of every Indian to learn Hindi Although he was a master of Sanskrit and his mother tongue was Gujarati he wrote his books in Hindi alone Even in addressing audiences in his native province of Gujarat, he invariably used Hindi His noble work in connection with the creation of a common language for India is indeed worthy of all praise and must ever entitle him to the gratitude of his countryment

Martyr

Swami Dayananda was not vouchsafed a long span of life and yet his achievements are monumental There was an imperative need for his masterly guidance for some more years so that he could complete his mission, but Providence willed it otherwise His bold and fearless denunciation of evils prevailing in society cost him his life, and he died a martyr in the cause of truth and purity.

Veritably Rishi Dayananda blazed a new trail Mahatma Gandhi made his own many reforms that Rishi Dayananda had initiated. India has been liberated from many a social evil because Dayananda drew our attention to their harmful consequences and unleashed powerful forces aimed at the purification of our national life As a result of the teachings of this great pioneer among our national leaders, India started pulsating with new life and vigour But, somehow, with the attainment of freedom, we are losing sight of the high principles and noble objectives espoused by leaders like Dayananda, Gandhi and others We are, therefore, suffering a moral decline and a set-back. It is hight time we reminded ourselves of the rich legacy of divine vision, powerful thoughts and lofty national aims which the memory of Dayananda recalls to our minds.

वैदिक धर्म ही सच्ची मानवता आधार है

डा० प्रह्लादकुमार

इस चराचर जगत् मे मानव ही एक ऐसा प्राणी है जो विवेक बुद्धि से समन्वित है। वही ज्ञान की प्राप्ति कर तदनुसार शुभकर्मों का संपादन कर कल्याण पथ का पथिक बनने का अधिकारी है। मनुष्य योनि एव मनुष्यत्व की महत्ता को विश्व के सभी धर्म ग्रन्थो, विचारको और दार्शनिकों ने एक स्वर से सोद्घोष स्वीकार किया है।

सपूर्ण सृष्टि मे मानव की श्रेष्ठता और मानव-शरीर की दुर्लभता के कारण समय-समय पर मानव कल्याण को लेकर अनेक प्रकार के अध्ययनो, आन्दोलनो, दर्शनो व चिन्तनधाराओ का प्रादुर्भाव हुआ है। सब प्रकार के ज्ञान-विज्ञान एव कला-कौशल का मूल मनुष्य ही है। इस मानव-हित को लेकर पाश्चात्य मे १९वी तथा २०वी शताब्दी मे, मानववाद दर्शन की एक विचारधारा के रूप मे प्रारम्भ हुआ। मानव-वाद समष्टिगत होकर व्यष्टि कल्याण की चितनधारा है। वह समस्त मानव-जाति को लक्ष्य मानकर व्यष्टि-मानव के कल्याण का जीवन-दर्शन है। मानवीय गुणों के प्रति जागरूकता ने पुनर्जागरण काल मे मानव गौरव की स्थापना की और साहित्यकारो, नीति-शास्त्रियो, शिक्षा-विशारदो, धार्मिक नेताओ तथा राजनैतिक और सामाजिक चिंतकों को आकृष्ट किया। बीसवी शताब्दी के प्रो० शिलर ने कहा कि मानव-अनुभव ही इस ससार मे चिंतन का विषय, समस्त मूल्यो का मापदण्ड और समस्त वस्तुओ का निर्माता है। इस प्रकार मानववाद आधुनिक काल का एक प्रसिद्ध और बृहत् दर्शन बन गया और साम्यवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद तथा अन्य अनेक रूपो मे मानव-हित के उद्देश्य को लेकर समाज के चिंतकों के मनन का विषय बना। मानव-हित के लिए मानववाद को धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिकता-वादी एव राजनीतिक आदि अनेक दर्शनो की प्रतियोगिता मे आना पडा। पश्चिम में काण्ट, सार्त्रे, शिलर, जाक मारिया, श्वित्जर, कारलिस लेमाट, जॉन स्टुअर्ट मिल

आदि तथा भारतीय विचारको मे भी श्री अरविन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाधी, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्, श्री पी० टी० राजू, श्रीमती एलन राय तथा श्री शिवनारायण राय, आदि कितने ही विद्वानो ने मानववाद को अपने-अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया।

जर्मन दार्शनिक काण्ट ने व्यावहारिक बुद्धि की मुख्यता का उल्लेख किया तथा शिलर उसे मानते हुए प्रेय की धारणा को प्रधान और सत्य व यथार्थ की धारणाओ को गौण मानते हैं। सार्त्रे व्यक्ति-स्वातत्र्य को आवश्यक मानते है और उनका अस्तित्ववाद मानव-केन्द्रित होकर रह गया है। फ्रेंच विचारक जाक मारिया आन्तरिक मानवीय गुणो का विकास करने पर बल देते हुए भौतिक जीवन के आनन्द को क्षुद्र मानते हैं और त्यागमय वीरोचित जीवन की कामना को मानववाद मे आवश्यक बतलाते है। वे मानववाद मे धर्म और ईश्वर के साथ नैतिक और सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति को अनिवार्य मानते है। इसके विपरीत जॉन स्टुअर्ट मिल आदि अनेकानेक दार्शनिक मानववाद का मूलभाव ऐसी नैतिकता को मानते है जो ऐहिक जीवन, भौतिकवाद तथा सासारिक सुख तक सीमित है तथा जो प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता का भौतिक दृष्टि से ही मूल्यॉकन करती है—आध्यात्मिकता अथवा पारलौकिकता के लिए उसमे कोई स्थान नही।

प्रो० पेरी ने शिक्षा-सम्बन्धी तत्त्व पर अपनी परिभाषा मे प्रकाश डाला। प्रो० लेमाण्ट ने सृजनात्मक स्वतत्रता और मानव-मानव मे मैत्री भावना को अपने मानववाद मे स्थान दिया है। डॉ० अलबर्ट श्वितर ने मनुष्यमात्र की समानता को महत्त्व दिया है। इस समानता के लिए नैतिक गुणो का विकास और उनका पोषण अनिवार्य माना है। श्री अब्राहम का मत भी मानववाद मे अलौकिक तथा दैवी विशेषताओ का सकेत करता है।

उपर्युक्त सपूर्ण वक्तव्य का अभिप्राय यह है कि अभी बीसवी सदी मे पश्चिम मे पनपे मानववाद का कोई निश्चित स्वरूप एव नियत परिभाषा नही बन पाई है। तथापि यह एक ऐसा जीवन-दर्शन है जो लोकमगल की भावना, समत्व की भावना तथा भेद भावो, पूर्वाग्रहो एव अधविश्वासो से उन्मुक्त होकर औदात्य और त्याग का दिव्य सदेश देता है तथा मानव के अन्त बाह्य परिष्कार के द्वारा उसे मानवोचित गुणो से युक्त करके पूर्ण विकास की ओर अग्रसर करता है। किंतु जैसा कि ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वर्तमान मानववाद के चिंतको एव पोषको ने मानव कल्याण के विभिन्न तत्त्वो पर प्राय एकागी दृष्टि से ही विचार किया है। जिन चिंतको ने मनुष्य के भौतिक और आत्मिक उभयविध विकास की आवश्यकता को अनुभव भी किया, वे भी मानव-जीवन की कोई ऐसी निश्चित योजना प्रस्तुत नही कर

सके जिसका अवलम्ब लेकर व्यष्टि एवं समष्टि मानव अभ्युदय और नि श्रेयस् की सिद्धि कर सके।

इसके विपरीत वैदिक-सस्कृति के प्रणेता तत्त्वदर्शी महर्षियो ने आत्मानुभूति व अन्तर्दर्शन से इस समस्त चराचर सृष्टि के मूल मे निहित, सृष्टि की निमित्तकारण, सर्वव्यापक एव सर्वान्तर्यामी परम-सत्ता का साक्षात्कार किया जिसके नियंत्रण मे यह निखिल ब्रह्माण्ड चल रहा है। उसके नियम-ऋत-अटल एव शाश्वत हैं। प्राणिमात्र उसी परमपिता की सतानरूप है। ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी है। वास्तविक दया के लिए न्यायव्यवस्था परमावश्यक है। यह बात लोकसिद्ध है। अत उसकी अटल न्यायव्यवस्था-कर्मसिद्धान्त—के फलस्वरूप ही प्राणी विभिन्न योनियों मे ससरण करता है। वस्तुत समस्त प्राणियो मे निहित आत्मा एक है। वह अजर और अमर है। वह कर्म करने मे स्वतत्र है और कर्मानुसार ही विभिन्न शरीरो को प्राप्त होता है। अत. सब प्राणियो मे एक आत्मतत्त्व के दर्शन करना तथा सबको परम-पिता की सतान समझ कर उनमे भ्रातृभाव रखना वैदिक दर्शन की शिक्षा है। इसके साथ ही वैदिक कर्मसिद्धान्त सब प्रकार की नैतिकताओ का मूल है।

वैदिकतत्त्वद्रष्टाओ का विश्वास है कि निरतर सस्कार से प्राणी शनै शनै ऊचा उठता हुआ अतत· परमात्मसाक्षात्कार कर मोक्ष व अपवर्ग का अधिकारी बनता है। किंतु वैदिकदर्शन सब प्राणियो मे भ्रातृत्वभाव जगाकर सबकी उन्नति मे ही अपनी उन्नति समझने का आधार प्रस्तुत करता है। यहा हिंसक पशुओ की हिंसक-वृत्ति का भी नियमन कर उसकी शक्तियो का प्राणि-हित मे उपयोग कर उन्हे भी आत्म-विकास के पथ पर ले आया जाता है।

किंतु मनुष्य के ही बुद्धिसमन्वित प्राणी होने से वैदिक ज्ञान व दर्शन का केन्द्र बिन्दु तो मनुष्य ही है। अन्य प्राणी तो 'भोग-योनि' मे जन्म लेने से अन्त प्रवृत्तियो से ही विभिन्न कार्यों मे प्रवृत्त होते हैं। केवल मनुष्य ही 'कर्म-योनि मे जन्म ग्रहण करता है और बुद्धिपूर्वक शुभ कर्मों मे प्रवृत्त होकर जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के बधन को काट कर मोक्ष-पद का अधिकारी बन सकता है। किंतु इस मुक्ति के लिए वैदिक धर्म इस ससार को तुच्छ या दु ख रूप मानकर इससे भागने का सदेश नही देता। यह विश्व भी ब्रह्मरूप ही है और प्रत्येक मनुष्य को इसका भोग करना ही है। लेकिन क्योकि सब प्राणी आपस मे भाई-बन्धु ही हैं अत समस्त भौतिक-पदार्थों का उपभोग एवं ज्ञान-विज्ञान का उपयोग सबने मिल कर करना है—यह विचार उसमे त्यागपूर्वक उपभोग करने की दिव्य प्रेरणा—त्यक्तेन भुञ्जीथाः उत्पन्न करता है। भौतिकता और आध्यात्मिकता का संतुलन और सामञ्जस्य वैदिक-सस्कृति की ऐकान्तिक विशेषता है। यहां मानव जीवन को एक अविच्छिन्न इकाई मानकर

उसके शारीरिक, मानसिक एव आत्मिक–सर्वाविध-विकास की योजना बनाई गई है। वैदिक आश्रम व्यवस्था जहा व्यक्ति के पूर्णविकास की व्यवस्था है वहा वैदिक वर्ण-व्यवस्था मानव के सामूहिक विकास की। दोनो एक साथ चलती हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपास्य यम-नियमो मे भी जहा 'नियम' प्रधान रूप से व्यष्टि के उत्कर्ष का मूल है वहा यमो की भूमि पर ही समस्त मानव-कल्याण का प्रासाद प्रतिष्ठित है। अस्तित्ववादी भी सत्य, अहिंसा आदि का किसी न किसी रूप मे आश्रय लेता है किंतु उसका आधार बालुकामय ही होता है और उस पर निर्मित मानव-कल्याण का महल किसी भी समय धराशायी हो सकता है। यही कारण है कि विश्वशान्ति और विश्व-बंधुत्व की रट लगा लगा कर भी समय-समय पर व्यक्तियो और राष्ट्रो ने मानव-जाति को युद्ध और अहिंसा की आग मे झोका है।

वैदिक सस्कृति का प्राण है—"यज्ञ" यह मात्र कर्मकाण्ड व बाह्य न होकर मनुष्य की आत्मा का अग भी है और व्यक्ति को—सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय त्याग की प्रेरणा देता रहता है।

एक ईश्वर मे अटूट विश्वास एव उसी की उपासना, परमात्मा की अटल व्यवस्था--ऋत तत्त्व, के अनुसार सत्यमयजीवन, सब प्राणियो मे समदृष्टि, सबकी उन्नति मे अपनी उन्नति मानना, अष्टाग-योग द्वारा व्यष्टि-समष्टि का सर्वविध उत्कर्ष करना ही वैदिक-समाजव्यवस्था तथा वैदिक शासन-व्यवस्था का भी मूलमत्र है।

वेद मे मानव के नैतिक और आत्मिक विकास के लिए जहा एक सुनियोजित आचारशास्त्र (Ethics) का विधान है वहा मानव के भौतिक आभ्युदय के लिए विविध प्रकार का विज्ञान, शिल्प, उद्योग एव कलाए भी वेद मे वर्णित हैं। जिनका सक्षिप्त वर्णन इस प्रबध मे किया गया है।

इस प्रकार यद्यपि मानव-कल्याण की प्रबल भावना से ही पश्चिम मे मानव-वादी चिंतनधारा प्रवृत्त हुई किंतु वह अभी अपनी विकास-परपरा मे ही है और मानव-हित के लिए—उसके सर्वाविध विकास और चरम उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोई निश्चित एव एकसूत्र मे ग्रथित समाज-व्यवस्था, शासन-व्यवस्था और आचार शास्त्र (Ethics) नही दे सकी। हमारा विश्वास है कि ऊपर वर्णित वैदिक धर्म ही मानव-वाद का सच्चा सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत करता है।

ॐ

डी० ए० वी० कालिज जलन्धर

१९४८-१९७८

हीरक जयन्ती समारोह

के

शुभ अवसर पर

अपने सभी छात्र तथा छात्राओं से अनुरोध करता है कि अपना पूरा पता तथा अपने व्यवसाय सम्बन्धि पूर्ण विवरण सहित यथा शीघ्र भेजने की कृपा करें।

चमन लाल अरोड़ा
प्राचार्य
डी० ए० वी० कालिज जालन्धर

ऋषि दयानन्द के स्वलिखित मूल पत्र

श्रीयुत लाला मूलराज जी आनन्दित रहो।

प्रकट हो कि पत्र आप का २८ फ० का लिखा पहुचा। हाल मालूम हुआ। गोकरुणानिधि पहुचने से खातिर जमा हुई। इस का अंग्रेजी तर्जमा जल्दी करके हमारे पास रवाना कर दीजिये। हम भी उसको किसी अच्छे विद्वान् अंग्रेजी वाले से सुन लेवेंगे। और जो आपने बावा क्षमानन्द का हाल लिखा सो बहुत अच्छा है। परन्तु जब तक वे आद्योपान्त निरुक्त पढ लेवे तब तक अच्छी प्रकार नही खुल सकता। और आप जानते हैं कि हमको अवकाश बहुत कम है। और उनको १ घटे वा २ घटे अवश्य पढना चाहिये। इसका हमने यह विचार किया है कि जो हम को अवकाश मिला तो हम नही तो किसी अच्छे विद्वान् से उसकी सूक्ष्म व्याख्या लिख लेवे तो बहुत अच्छा उपकार होगा। हमको अवकाश होता तो नही दीखता। जब कभी अवकाश मिलेगा तब क्षमानन्द हमारे पास आ सकते है। अब हम आगरा से ८ वा ९ मार्च को चल कर १० मार्च को जयपुर पहुचेंगे। जो पत्रादि वा गोकरुणानिधि भेजे तो वही भेजिये। और लाला शिवदयाल आज कल कहा हैं। और मुशी बखतावर सिंह ने प्रेस मे बहुत हानि की है। अब उसके मामले मे पचायत ठहर के इकरार नामा कागज स्टाम्प पर लिखा गया है। हमारे पच बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट और उसके पच लाला आनन्दलाल मत्री आर्य समाज और सरपच लाला रामशरणदास रईस मेरठ। और लाला गिरिधर लाल वकील आगरा हमारे वकील ठहरे हैं। और मई मास मे यह मामला निपट जायेगा।।

आगरा — हस्ताक्षर

३ मार्च १८८१ — दयानन्द सरस्वती

प्रसन्नता पत्र

विदित हो कि मुन्शी समर्थदान मगलदान जी के पुत्र ग्राम नेठवे ताल्लुका रामगढ रियासत सीकर राज जयपुर के रहने वाले हैं। इन्होने मुबई मे हमारे वेद-भाष्य कार्यालय का काम एक वर्ष तक बडे प्रेम परिश्रम और चतुराई से किया।

इनके काम देखने और ये हमारे पास भी कई दिन तक रहे, इससे हमने निश्चय किया है कि यह पुरुष धार्मिक, निष्कपटी, सच्चा, उद्योगी, परिश्रमी, चतुर, सभ्य, सुशील और चालचलन का बहुत ही अच्छा और श्रेष्ठ है। इसलिये हम बहुत प्रसन्न होके लिखते हैं कि जो कोई महाशय इनको उन्नति देंगे तो हम बहुत प्रसन्न होंगे। और हमें पूरी-पूरी आशा है कि इनके आधीन जो कार्य होगा उसको यह अच्छे प्रकार से पूर्ण करेंगे। हमने यह प्रसन्नता पत्र इनको बड़ी प्रसन्नता पूर्वक इसलिये दिया है कि किसी नये स्थान में ये जायें तो अजान लोगों को भी इनके सद्‌गुण प्रगट हों।

मिती वैशाख शुक्ला ६ हस्ताक्षर
स० १९३८। तारीख ४ दयानन्द सरस्वती
मई सन् १८८१ स्थान जयपुर
राजपूताना

———

लाला कालीचरण जी रामचरण जी आनन्दित रहो। यदु नाथ मित्र को जो तुमने ४०) रु० मासिक पर नियत किया है सो ठीक है। परन्तु इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये। और इसमें केवल लड़के ही पढ़ते हैं अथवा हमारे रईस लोगों में से भी कोई पढ़ता है। और उस पाठशाला में से कोई विद्यार्थी अच्छे निकले वा नहीं क्योंकि शाला को एक वर्ष हो चुका है। चौबे तोताराम का हाल लिखा सो जाना। उसका मिजाज तेज है सहन शक्ति बहुत कम है। जयपुर में हम डेढ़ मास पर्य्यन्त रहे। वहां अभी राज्य प्रबंध में गड़बड़ सा है। और सब सरदार लोग तो मिले थे परन्तु राजा अभी नहीं मिला। इसलिये कि उनके बाधक लोग बहुत हैं। वहां पर वेदधर्म के प्रकाश की बड़ी आवश्यकता है। सो हमने कुछ-कुछ वहां संस्कार भी डाला है। ईश्वर करे कुछ फल लगे। अब प्रयाग में हिसाब ठीक हो रहा है। सो सबको विदित होगा। परन्तु सीधा हिसाब तो आप लोग जानते हैं कि प्रति ग्राहक दोनों वेदों का चार वर्ष का २५॥) चाहिये। इसी हिसाब से देखकर भेज दो। और लाला निर्भय राम के पास भी हिसाब होगा। उनसे भी समझ सकते हो। आपको विदित करते हैं कि आर्य्य समाज लाहौर से एक अखबार अंगरेजी भाषा में जारी होने वाला है। इससे यह अभिप्राय है कि उसके द्वारा वेदोक्त आर्य्य धर्म्म तथा आर्य्य समाजों की कार्रवाई राज प्रधान अंगरेज लोगों को भी विदित होती रहे। वरन विलायत वालों पर भी प्रगट होता रहेगा। इसके प्रबन्ध में आर्य्य समाज लाहौर और मेरठ की अंतरंग सभा की ठीक-ठीक अनुमति हो गई है। इसके नफे नुकसान में सहभागी रहेंगे। मेरी अनुमति है कि आप लोग भी इनके शामिल होओ क्योंकि इससे आमदनी और तुम्हारे धर्म तथा आर्य्य समाजों की कार्रवाई का ठीक-ठीक वृत्तान्त गवर्नमेण्ट तथा सम्पूर्ण अंगरेजों को विदित भी

होता रहेगा जिससे अनेक अच्छे लाभो की आशा हो सकती है । और अनुमान होता है कि यह पत्र विलायत के बडे-बडे-ठिकानो मे पहुचेगा । इससे आशा है कि लाभ भी अच्छा होगा । पण्डित गोपालरावहरी ने जो एक मुदर्रिस हमारे पास भेजने को कहा था वह अभी तक नही आया । जिसको १५ दिन का अर्सा हो गया । सो उन से कहना कि क्या कारण है जो अभी तक नही आया । किमधिकम् । वैशाख शुक्ला १४ संवत् १९३८ ।

दयानन्द सरस्वती

सेठ निर्भय राम जी आनन्दित रहो ।

यह पत्र आपको आवश्यक समझ कर इसलिये लिखा जाता है कि आप इसको उपसभा मे सब लोगो को सुना देवें । मुशी कालीचरण रामचरण जी के पत्र से विदित हुआ कि आप लोगों की पाठशाला मे आर्य्यभाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अर्थात् अगरेजी व उर्दू फारसी अधिक पढाई जाती है । इससे वह अभीष्ट जिसके लिये यह शाला खोली गई है सिद्ध होता नही दीखता । वरन आप का यह हजारहा मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है । हमने कभी परीक्षा के कागजात वा आज तक की पढाई का फल कुछ नही देखा । आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्य्यावर्त मे सस्कृत विद्या का अभाव हो रहा है । वरन सस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अगरेजी लोगो की मातृभाषा हो चली है । अगरेजी का प्रचार तो जगह-जगह सम्राट की ओर से जिनकी यह मातृभाषा है भले प्रकार हो रहा है । अब इसकी वृद्धि मे हम तुम को इतनी आवश्यकता नही दीखती । और न सम्राट के समान कुछ कर सकते हैं । हा हमारी अति प्राचीन मातृभाषा सस्कृत जिसका सहायक वर्तमान मे कोई नहीं है । और यही व्यवस्था देखकर सस्कृत के प्रचारार्थ आप लोगो ने यह पाठशाला स्थापित की है । तो यह भी उचित कर्तव्य अवश्य है कि सदैव पूर्व इष्ट के सिद्धि पर दृष्टि रक्खी जावे । अब इसके साधनार्थ यह होना चाहिये कि कुल पठन पाठन समय के छ घटो मे ३ घटे संस्कृत २ घटे अंगरेजी और १ घटा उर्दू फारसी पढाई जाया करे । और प्रति मास सस्कृत की परीक्षा अन्य पण्डितों के द्वारा हुआ करे । और वे प्रश्नोत्तरो के कागजात हमारे पास भेजे जाया करें । अभी तक कुछ फल सस्कृत मे इस शाला से नहीं लगा । सो इसलिये ऊपर जो कुछ लिखा गया उसको बर्त्ताव मे लाओ तो अपने अभीष्ट के सिद्धि होने की आशा कर सकते हैं । किमधिकं सुज्ञेषु ।

आजकल हम ऐसे देश में हैं जहा पर इस ऋतु के श्रेष्ठ फल अर्थात् आम पके तो दरकिनार कच्चे भी नहीं मिलते । उस ओर इसकी फसल कैसी हुई है।

यदि वहा आम फले हों तो एक बार मुम्बई आम अथवा और प्रकार के जो तुम्हारी समझ मे अच्छे हो दो सौ तीन सौ रेल द्वारा प्रबन्ध करके भेज दो। परन्तु वहा से गद्दर आम रवाने करना जिससे यहा पर ठीक-ठीक आन पहुचे। यदि डाक गाडी मे रख दोगे तो शायद ठीक रहेगा। हमारे पास जयपुर के मुकाम पर चूरू के सेठों के सरपच का पत्र आया कि आप यहा पधारें। और लिखा है कि साभर के रेलघर पर रथ बहल और ऊट इत्यादि सवारी भेज देवें। अभी तो हमने उनको यही उत्तर लिख दिया है कि एक अच्छी वर्षा होने पर हम अजमेर से कहीं को रवाने हो सकेंगे। क्योकि उदयपुर मेवाड की तरफ भी कुछ हमारे बुलाने का विचार हो रहा है। यदि उदयपुर को गये तो वह भी आप लोगो को विदित किया जायेगा। शायद इन दोनो स्थानों को जाने मे आप से सवारी लेने की आवश्यकता नही दीखती। जब जरूरत होगी आपको लिखा जायगा। पत्र का उत्तर देना। किमधिकम्।

ज्येष्ठ कृष्ण ११ स० १९३८। ता० २३ मई १८८१ ई०।

हस्ताक्षर
दयानन्द सरस्वती
(अजमेर)

———

लाला मूलराज जी एम. ए आनदित रहो।

अर्सा तीन महीने के लगभग व्यतीत हुआ कि हमने आगरे के मुकाम से प्रथम ही गोकरुणानिधि की प्रति आपके पास इस अभिप्राय से भेज दी है कि इसका बहुत अच्छा तर्जुमा अगरेजी भाषा मे कर दीजिये। कि वह जल्द छप कर अगरेज राज-पुरुषों वा सामान्यों के अवलोकनार्थ विलायत तक भी भेजी जावे। जिससे इस बडे धर्म कार्य्य मे फल प्राप्ति होवे। परन्तु मालूम नही अब तक उसके तर्जुमे मे क्यो विलम्ब हुआ। शायद आप भूल गये या कार्य्य की बहुतायत से यह ढील हुई। ऐसे कार्य मे आलस्य वा सुस्ती होना अच्छा नही। सो अब शीघ्र उक्त काम को पूर्ण करके भेज दीजिये। जयपुर मे हम डेढ मास तक रहे। यथ[ा]शक्य अच्छा संस्कार वहा पर हमने डाल दिया है। ईश्वर चाहे वृद्धि होकर सफल होगा। अब ता० ६ मई से हम यहा अजमेर मे हैं। सेठ फतेमल जी के बाग की कोठी मे ठहरे हैं। प्रति दिन रात को दो घटे रोज व्याख्यान हो रहा है। हम सब प्रकार यहां आनंद मे हैं। आप अपनी कुशलता के समाचार भी दीजिये। किमधिकम् बहुज्ञेषु। ता० २८ मई सन् १८८१ ई०। मिती ज्येष्ठ सुदी १ स० १९३८।

⚜

हार्दिक शुभकामनाओं सहित



दयानन्द माडल स्कूल

मन्दिर मार्ग नई दिल्ली-११०००१

श्रीमति बिमला ग्रोवर
मुख्याध्यापिका (जूनियर सैक्शन)

श्रीमति सुशीला दुबे
प्रिन्सीपल

यतो यत. समीहसे ततो नो ऽभयं कुरु ।
श न कुरु प्रजाभ्यो ऽभय न पशुभ्य. ।।

यजु ३६।२२

शिवरात्रि के अवसर पर हार्दिक

शुभकामनाऐं



दिल्ली में जनता प्रशासन

प्रमुख उपलब्धियाँ

ग्रामीण विकास

* 1 45 करोड रुपये तकावी वितरित
* पीने के पानी की योजना 45 लाख रुपये
* 92 ट्यूबवैल कनैक्शन दिये गये। 500 शीघ्र दिये जायेंगे।

हरिजन कल्याण

* हरिजनो को छात्रवृत्तियाँ 70 50 लाख रुपये
* हरिजनो को मकान बनाने के लिये अनुदान 24 50 लाख रुपये
* हरिजन छात्र-छात्राओ के लिए छात्रावास मुफ्त आवास तथा भोजन।

श्रम कल्याण

* श्रमिक वर्ग के ट्रेड यूनियन अधिकारो की बहाली
* औद्योगिक शान्ति उत्पादन मे वृद्धि
* श्रमजीवी वर्ग की शिकायतो के शीघ्र निपटान की व्यवस्था
* श्रमिको के लिए मनोरजन के साधनो मे वृद्धि अधिक श्रमिक गृहो की स्थापना।

शिक्षा

* 16,500 छात्रो के लिए तकनीकी शिक्षा प्रशिक्षण
* निर्धन छात्र-छात्राओ को मुफ्त वर्दियाँ तथा पुस्तके
* 57 73 लाख रुपये की छात्रवृत्तियाँ
* 1000 प्रौढ शिक्षा केन्द्र स्थापनाधीन।

चिकित्सा

* शाहदरा तथा हरिनगर मे 500-500 बिस्तरो के दो अस्पताल · 22 करोड रुपये
* आधुनिक नेत्र अस्पताल के लिए एक करोड रुपया
* देहाती क्षेत्रो मे 100-100 बिस्तरो के सात अस्पताल व 18 डिस्पैंसरिया।

उद्योग

* अनधिकृत क्षेत्रो मे 24,000 औद्योगिक इकाइयो के लिए लाइसेंस
* 5 24 करोड रुपये की लागत से टूल-रूम तथा प्रशिक्षण केन्द्रो का निर्माण
* नरेला मे 620 एकड क्षेत्र मे औद्योगिक बस्ती की योजना तैयार
* 28 सामुदायिक विकास केद्र 5 600 व्यक्तियो को रोजगार।

आवास

* गृह निर्माण के लिए आवास बोर्ड बनाने का निर्णय
* प्रति वर्ष एक लाख मकानो के निर्माण का लक्ष्य
* पुनर्वास कालोनियो मे बिजली के कनैक्शन तथा अतिरिक्त सुविधाए।
* चार साल मे पूर्ण नशाबदी - प्रथम चरण आरम्भ।

सूचना एव प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन,

दिल्ली द्वारा प्रसारित

महात्मा हंसराज साहित्य विभाग

वैदिक साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पुस्तक	मूल्य रु०-पैसे
1. सामवेद भाष्य	20-00
2 डा०जी०एल० दत्ता अभिनन्दन ग्रथ	12-50
3. ऋषि गाथा	20-00
4. महात्मा आनद स्वामी सरस्वती (उर्दू मे)	10-00
5 सत्यार्थ प्रकाश	4-00
6. स्वाध्याय सग्रह	3-00
7 वेदोपदेश	3-00
8. ट्रैक्टमाला (ज्ञानी पिण्डीदास द्वारा)	6-00
9 सस्कार विधि	3-00
10. दयानद शतक	3-00
11. महर्षि दर्शन	3-00
12. सध्या पर व्याख्यान	4-00
13. जीवन ज्योति	3-00
14 दयानद हिज लाईफ एण्ड वर्क (श्री सूरजभान) (अंग्रेजी मे)	4-00
15. उपनिषद् दिग्दर्शन	3-20
16. अमृतसर शताब्दी स्मारिका	2-50
17. आर्य जगत (हसराज विशेषाक)	2-50
18. आर्य जगत शिवरात्रि विशेषाक	3-00
19. शिष्टाचार	2-30
20. वेद प्रकाश	2-00
21. अमर संदेश	2-00

पत्र लिखकर बड़ा सूची पत्र मुफ्त मगायें

मैनेजर प्रकाशन विभाग

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा

मंदिर मार्ग नई दिल्ली-110001